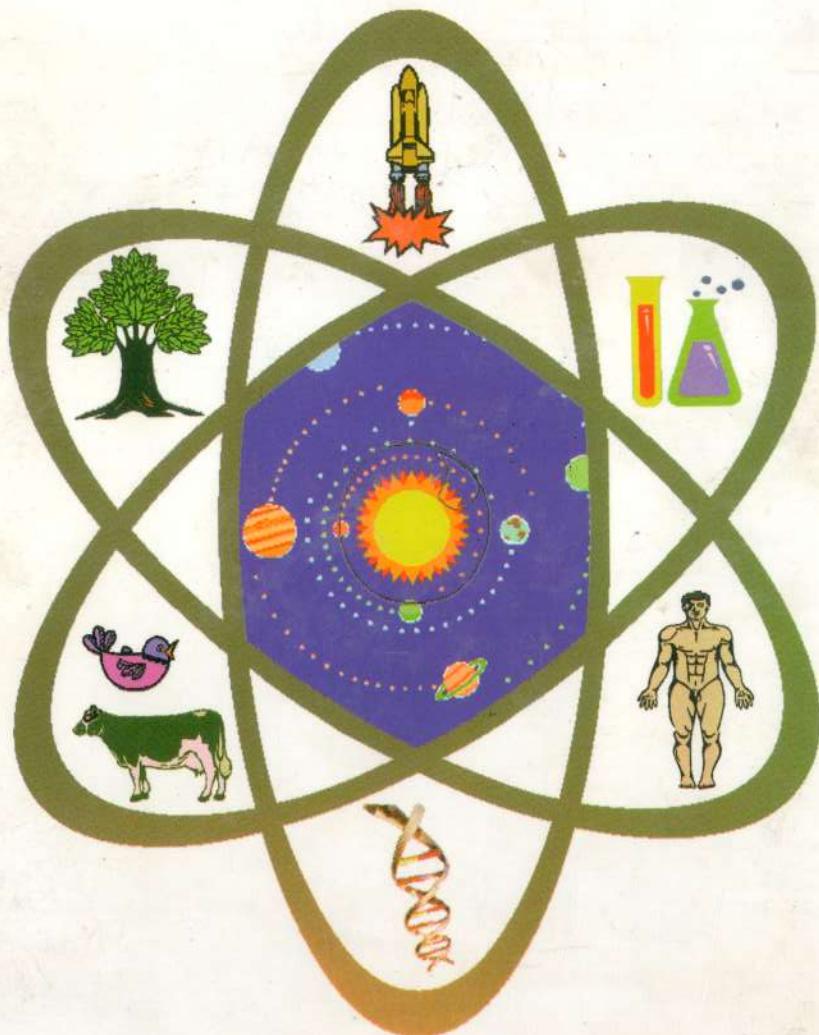


ब्रह्माण्डीय जैविक, भौतिक एवं रसायन विज्ञान





ज्ञान दानी श्री प्रद्युम्न, धन लक्ष्मी ज्ञवेरी (U.S.A.)
आ. श्री. से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए



साहित्य साधना रत आ. श्री कनकनंदी ससंघ एवं
मुग्गणा की धार्मिक शिष्याएँ



२७ वाँ शिविर समापन के अवसर पर महाआरती करते
हुए शिविरार्थी एवं मुग्गणा वासी

JAIN FACTS ! BEYOND MODERN KNOWLEDGE

जैन तथ्य - जो आधुनिक ज्ञान से परे (ज्ञानधारा १)

ब्रह्माण्डीय जैविक भौतिक एवं रसायन विज्ञान
(परमाणु, २३ वर्गणा एवं कर्म विज्ञान)

लेखक

वैज्ञानिकाचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव

अमेरिका में धर्मप्रचार में सहयोगी तथा इस ग्रन्थ के अर्थ सहयोगी

Pradhuman & Dhanlaxmi Zaveri

2223, Gianera St., Santa Clara CA 95054 - 1321 UA

Tel. : 001 408 496 6993

E-mail : laxmizaveri@yahoo.com

JAIN FACTS : BEYOND MODERN KNOWLEDGE

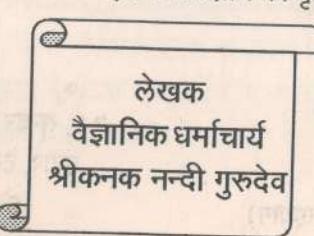
जैन तथ्य जो आधुनिक ज्ञान से परे (ज्ञानधारा - 1)
ब्रह्माण्डीय जैविक, भौतिक एवं रसायन विज्ञान
(परमाणु, 23 वर्गणा एवं कर्म विज्ञान)

जैन तथ्य जो आधुनिक ज्ञान से परे (ज्ञानधारा - 1) में हम उन परम वैज्ञानिक, गणितीय, सार्वभौम, शाश्वतिक, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी, विश्व कल्याणकारी सत्य - तथ्यों को उजागर कर रहे हैं जो जैन ग्रन्थों में समाहित हैं। जैन ग्रन्थों में वर्णित होने मात्र से इसे संकीर्ण धर्मान्धता तथा अपूर्ण विज्ञान से आवेशित होकर सत्यग्राही, उदारमना, स्व-पर-विश्व कल्याणकारी भावना से युक्त व्यक्तियों के द्वारा त्यजनीय नहीं है परन्तु सादर ग्रहणीय तथा प्रचार-प्रसार के योग्य है।

इस कृति में सम्पूर्ण भौतिक ब्रह्माण्ड, सूर्य, नीहारिका, रसायन, शरीर, D.N.A., R.N.A., प्रकाश, फोटोन, इलेक्ट्रॉन से लेकर क्वार्क, कर्म आदि के अविभाज्य मूलतत्त्व रूपरूप परमाणु का सप्रमाण सविस्तार वर्णन है जो कि आधुनिक विज्ञान से भी परे है।

इस कृति में जो 23 भौतिक परमाणुओं के समूह रूपरूप (परस्पर अवंधावरस्था) वर्णणाओं का वर्णन है, ऐसा वर्णन हमें किसी भी देश-विदेश के धर्म-दर्शन या आधुनिक-विज्ञान में अभी तक नहीं मिला है।

इस कृति में ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण सूक्ष्म रोगाणु, जीवाणु, वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि में जो विभिन्न आकार - प्रकार - बुद्धि - भावना, क्रिया - प्रतिक्रिया, रोग, रंग - रूपादि पाये जाते हैं, उसके मूलभूत कारण, रूपरूप, कर्म, सिद्धान्त एवं कर्म परमाणु का वर्णन किया गया है। अनेक दर्शन, धर्म में कर्म का तो वर्णन है परन्तु कर्म के भी भौतिक परमाणु होते हैं इसका वर्णन नहीं है। आधुनिक विज्ञान शरीर, रोग, भावना आदि के कारणभूत विभिन्न ग्रन्थियों के स्त्राव से लेकर D.N.A., R.N.A., जीनोम तक तो पहुँच गया है परन्तु कर्म परमाणु तक नहीं पहुँचा है। उपर्युक्त समर्त विषयों का वर्णन इसमें अत्यन्त वैज्ञानिक, गणितीय, आध्यात्मिक एवं मनोविज्ञान की दृष्टि से किया गया है।



JAIN FACTS : BEYOND MODERN KNOWLEDGE

जैन तथ्य जो आधुनिक ज्ञान से परे (ज्ञान धारा - 1)

ब्रह्माण्डीय जैविक, भौतिक, रसायन विज्ञान
(परमाणु, 23 वर्गण एवं कर्म विज्ञान)

-: पावन प्रसंग :-

षष्ठ्य अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी
(कर्म सिद्धान्त और उसके वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आयाम)
उदयपुर-2004

-: लेखक :-

वैज्ञानिक धर्मचार्य आचार्य श्री कनकनंदीजी
शुभाशीर्वाद - ग.आ. श्री कुन्थुसागरजी गुरुदेव

-: प्रकाशक :-

- (1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
(School of Jainology)
- (2) धर्म दर्शन सेवा संस्थान

प्रथम संस्करण = 2004

प्रतियाँ = 1000

मूल्य = 125.00

(सत्य धर्म प्रचारार्थे आपके उदार सहयोग)

मुद्रक : मोदी प्रिन्ट्स्

21, सुन्दरनगर (मेन), सुखलिया,
इंदौर, टेलीफोन : 2574178

मो. : 98260-16543

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान :

- (1) धर्म-दर्शन - विज्ञान शोध संस्थान :-
C/o प्रो. श्री सुशील चन्द्रजी जैन, निकट दि. जैन धर्मशाला, बड़ौत,
फोन नं. (01234) 262845
- (2) धर्म-दर्शन - विज्ञान शोध संस्थान :-
C/o श्रीमती लक्ष्मी गुरुचरणजी जैन (वकील - मुंबई हाईकोर्ट 144 मूवी टावर
नियर मिल्लतनगर, लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.) मुंबई - 400053
फोन नं. : (022) 26327152, 26312124, 26327152
- (3) धर्म-दर्शन - विज्ञान शोध संस्थान :-
'सेवाश्री' सुरेखा जैन (शिक्षिका) W/O वीरेन्द्र कुमार डालचन्दजी गड्डिया, कपडे
के व्यापारी - सलुम्बर, जि. उदयपुर
पिन. 313001 फोन. नं. : (02906) 231143 लोकल 916
- (4) धर्म-दर्शन - विज्ञान शोध संस्थान :-
C/o श्री महावीर कुमार जैन, श्रीमती सुरुचि उन्नत जैन (गोयल) B.Ed., M.Sc.
13 अग्रसेन कॉलोनी, दादावाड़ी, कोटा
फोन नं. (0744) 2410818, 2363992
- (5) धर्म - दर्शन - विज्ञान शोध संस्थान
श्री दिगम्बर जैन नया मन्दिर
C/o श्री धर्मचन्द एवं मनसुख सेठ (जैन)
निचला बाजार, प्रतापगढ़ (राज.) 312605
फोन नं. (01478) 220304, 222229, 222529
- (6) Pradhuman & Dhanlaxmi Zaveri
2223 Gianera st.
Santa Clara CA 95054-1321 USA,
Tel : 001 408 496 6993
Email :- LAXMIZAVERI@yahoo.com
- (7) धर्म - दर्शन - सेवा संस्थान C/o चन्द्रप्रभ मन्दिर, आयड़
छोटूलाल चित्तौड़ा, आयड बस स्टॉप के पास, उदयपुर - 313 001 (राज.)
फोन नं. (0294) 2413565

भूमिका / प्रवेश द्वार

जैन तथ्य जो आधुनिक ज्ञान से परे !

JAIN FACTS : BEYOND MODERN KNOWLEDGE

- आचार्य कनकनंदी गुरुदेव

अति ही प्राचीनकाल से भारतीय मनीषा ने स्व-आत्म स्वरूप की शोध - बोध - उपलब्धि के माध्यम से समस्त ब्रह्माण्डीय तत्त्वों का भी परिज्ञान किया है, क्योंकि स्व-आत्मा की उपलब्धि से अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य की उपलब्धि होती है, जिसके माध्यम से वह अनन्त मनीषा / प्रज्ञा से अन्य यन्त्र, ग्रंथ, गुरु, प्रकाश, भौतिक प्रयोगशाला के बिना ही अणु से लेकर ब्रह्माण्ड, चैतन्य से लेकर अचैतन्य, मूर्तिक से लेकर अमूर्तिक समस्त द्रव्यों को उसकी अनन्त भूत, अनन्त भविष्यत् एवं वर्तमान की समस्त पर्यायों / अवस्थाओं को भी युगपत् / एक साथ जानती है। अतएव भारतीय मनीषा / संस्कृति मुख्यतः आध्यात्मिक होने पर भी भौतिक ज्ञान से परिपूर्ण है। यह सब होते हुए भी भारतीय संस्कृति ने भौतिकता को, भोग को, सत्ता-सम्पत्ति को नश्वर, आत्मकल्याण के लिए वाधक, राग-द्वेष, संकलेश, युद्ध-कलह के लिए कारण, मानसिक-आध्यात्मिक सुख-शांति के लिए अपर्याप्त एवं विरोधी मानकर उसका प्रयोग करते हुए भी उसको अतिमहत्व नहीं दिया है परन्तु यथायोग्य सदुपयोग किया है।

भारतीय मनीषा ने अध्यात्म विद्या, भौतिक-रसायन विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, गणित-ज्ञान, मनोविज्ञान, प्राणीविज्ञान, ध्यानयोग, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, आदि का शोध-बोध, प्रायोगिककरण किया है। भारतीय मनीषा में विशेषतः जैन तीर्थकरों ने जो स्व-वीतरागमय, समतापूर्ण अनन्त ज्ञानदर्शन से समस्त विश्व तत्त्व को पूर्णतः जाना एवं विश्व के मंगल के लिए निरपेक्ष भाव से अनेकान्तात्मक-स्याद्वाद-पद्धति से दिव्य-धनि के माध्यम से 718 भाषाओं में उपदेश दिया और जिसे गणधर एवं अन्य आचार्यों ने ग्रंथों में लिपिबद्ध किया, वह ज्ञान-विज्ञान अत्यन्त अलौकिक गणितीय, वैज्ञानिक एवं पूर्णता को लिये हुए हैं। जैन धर्म में उपलब्ध ग्रंथों में जो अभी वर्णन पाया जाता है वह ज्ञान उस अनन्त ज्ञान रूपी सिन्धु के सामने बिन्दु के बराबर है तथापि उपलब्ध जैन ग्रंथों में जो ज्ञान-विज्ञान सूत्रात्मक प्रणाली में समाहित है, वह ज्ञान-विज्ञान भी आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से अनेक दृष्टिकोण से श्रेष्ठ है, ज्येष्ठ है। इसका कुछ दिग्दर्शन निम्न में कर रहा हूँ।

संपूर्ण ब्रह्माण्ड अकृत्रिम/शाश्वतिक एवं परिणमनशील है। इसका निर्णयात्मक संपूर्ण ज्ञान विज्ञान को नहीं है। विज्ञान में भौतिक तत्त्वों का तो कुछ शोध-बोध हुआ है तथा किंचित् रूप से जीवद्रव्य, आकाश, काल, गति माध्यम, स्थिति माध्यम का वर्णन पाया जाता है, परंतु जिस प्रकार सर्वांगीण रूप से गणितीय/वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जीव, भौतिक तत्त्व (पुद्गल) धर्म द्रव्य (गतिमाध्यम), अधर्म द्रव्य (स्थिति माध्यम) आकाश, काल का वर्णन है ऐसा वर्णन जैन धर्म को छोड़कर अन्य धर्म यहाँ तक कि विज्ञान में भी नहीं है। विश्व का आकार-प्रकार, घनफल और विश्व में स्थित समस्त द्रव्यों की संख्या का वर्णन भी जैन धर्म में जैसा है वैसा अन्य धर्मों व विज्ञान में नहीं है। वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने विश्व-प्रतिविश्व की परिकल्पना तो की है परंतु वे भी समग्र रूप से उसके क्षेत्रफल, घनफल, गोण का निर्धारण नहीं कर पाये और यह निर्धारण अभी तक नहीं हो पाया है।

संपूर्ण ब्रह्माण्ड में 23 भौतिक वर्गणाएँ एवं 5 सूक्ष्म स्थावर जीव ठसाठस भरे हुए हैं, इसका वर्णन भी अन्यत्र नहीं है।

प्रायः प्रत्येक धर्म व विज्ञान परिणमन को तो मानते हैं परंतु विश्व के प्रत्येक द्रव्य में उसके अनंतगुणी आदि षट्गुण हानि-वृद्धि रूप में जो परिणमन होता है उसका परिज्ञान उन्हें नहीं है। इसी प्रकार काल परिवर्तन रूप उत्सर्पणी-अवसर्पणी एवं षट्कालों का वर्णन विधिवत् नहीं पाया जाता है।

विज्ञान से यह सिद्ध नहीं हो पाया है कि विश्व क्य से है, क्य तक रहेगा, क्य नष्ट होगा। जीव क्य से है, उसके गुणधर्म, स्वभाव क्या है, उसकी शुद्ध-अशुद्ध अवस्था क्या है ? जैन धर्म में सूक्ष्म एकेन्द्रिय निगोदिया जीव से लेकर पंचेन्द्रिय मनुष्य, पशु-पक्षी, नारकी, र्वर्ग के देव एवं पूर्ण शुद्धता को प्राप्त शुद्ध जीव (सिद्ध परमात्मा) का वर्णन 14 गुणरथान, मार्गणा, जीवसमास के माध्यम से अत्यन्त वैज्ञानिक/गणितीय पद्धति से किया गया है।

गणित का आविष्कार भारत में हुआ परंतु जैन धर्म के अलौकिक गणित में अनंत, असंख्यात, संख्यात, पल्य सागर आदि का जो वर्णन है ऐसा विधिवत् वर्णन अन्य धर्मों में व आधुनिक विज्ञान में भी नहीं है। अलौकिक गणित में जो चिह्न/उपमान आदि का वर्णन किया गया है वह भी अन्यत्र कहीं नहीं है।

शुद्ध परमाणु की एवं शुद्ध जीव की गति एवं मृत्यु के बाद जीव की गति की मंदता, मध्यमता, तीव्रता का जो वर्णन जैन धर्म में पाया जाता है वह अन्यत्र नहीं है। यहाँ तक कि आइन्स्टीन ने जो प्रकाश की परम गति जो कि एक सैकण्ड में 3 लाख कि.मी. माना है वह भी दोषपूर्ण है। अभी तक विज्ञान अविभाज्य परमाणु की खोज नहीं कर पाया है परंतु इसका वर्णन जैन धर्म में है। शुद्ध परमाणु में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और उसकी गति आदि का वर्णन जैसा जैन धर्म में है, वैसा विज्ञान में नहीं है। विज्ञान में वनस्पति को तो जीव रूप

में सिद्ध कर लिया है और स्वीकार कर लिया है परंतु पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक को जीव रूप में सिद्ध नहीं कर पाया है।

प्रायः प्रत्येक धर्म तथा मनोविज्ञान अच्छे-बुरे भाव एवं कर्म के फल को तो मानते हैं परंतु जिस प्रकार जैन धर्म में योग (मन-वचन-काय का परिस्पन्दन) उपयोग (विभिन्न भावनाएँ एवं आवेश) से अनंतानंत भौतिक कर्मपरमाणु आकर्षित होकर आत्मा के प्रत्येक असंख्यात प्रदेशों में बंधते हैं, स्थिर रहते हैं एवं समय प्राप्त होने पर फल देते हैं ऐसा गणितीय/वैज्ञानिक वर्णन नहीं है। जैन धर्म का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त अनेकांतवाद (सापेक्षवाद) है। इस सिद्धान्त को व्यवहारिक जीवन में तो सब कोई अपनाते हैं लेकिन किसी भी धर्म-दर्शन में इसका विधिवत् वर्णन नहीं पाया जाता है। वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने इस सिद्धान्त को माना है परन्तु आइन्स्टीन का सापेक्षवाद भी जैन धर्म के अनेकांतवाद सिद्धान्त के बराबर व्यापक/सार्वभौम नहीं है।

वनस्पति से लेकर पशु-पक्षी-मनुष्य में जो आकार-प्रकार, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, भाव, क्रिया-प्रतिक्रिया, संवेदना, ज्ञान, अनुभूति आदि होती है उसके कार्य-कारण संबंधों का संपूर्ण ज्ञान अन्यत्र कहीं नहीं है।

जैन धर्म में जैसे गणितीय/वैज्ञानिक दृष्टि से कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, केवलज्ञान का वर्णन पाया जाता है वैसा वर्णन अन्य धर्मों में यहाँ तक कि विज्ञान में भी नहीं है।

जीव के पूर्वोत्तर अनंत भवों का वर्णन जैसे जैन धर्म है वैसा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं है। जीव के जो औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस, कार्माण आदि 5 शरीरों का विधिवत् वैज्ञानिक वर्णन है वह भी अन्यत्र नहीं है।

संसारी जीव ही जिस प्रकार क्रमशः विकास करता हुआ भगवान् बनता है ऐसा विधिवत् क्रम विकास का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता है। जब कोई साधक अरहन्त बनता है उस समय समवशरण की जो रचना होती है, उस समय अरहन्त भगवान् 7 18 भाषाओं में उपदेश देते हैं। उनके हजारों पशु-पक्षी शिष्य होते हैं। उनका शरीर स्फटिक के समान पारदर्शी होता है, आकाश में गमन होता है। उनके प्रभाव से षट्ट्रतुओं के फल-फूल एक साथ फलते-फूलते हैं, दुर्भिक्ष, युद्ध, महामारी आदि नहीं होता है ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता है। प्रलय का जिस प्रकार व्यवस्थित वर्णन जैन धर्म में है वैसा अन्यत्र नहीं है।

जैन धर्म में जो साम्यवाद/समाजवाद का वर्णन भोगभूमि, सर्वार्थ सिद्धि के देव और सिद्धअवरथा के प्रकरण में पाया जाता है ऐसा वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता है।

जैन धर्म में जिस आत्मा-परमात्मा का व्यवस्थित/क्रमबद्ध/गणितीय वर्णन है

ऐसा वर्णन अन्यत्र नहीं पाया जाता।

श्यामविवर (तमसकंध) Black Hole का भी जैसा वर्णन जैनधर्म में है ऐसा वर्णन विज्ञान में भी नहीं है। वैज्ञानिक अभी इसकी खोज कर रहे हैं तथा दुविधा में हैं।

जिस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक डाल्टन, रदरफोर्ड, आइन्स्टीन आदि ने अणु विज्ञान का अनुसंधान किया है और वर्तमान के वैज्ञानिक लोग भी कर रहे हैं उसी प्रकार भारत में प्राचीन काल से जैन आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने, महर्षि कणाद आदि ने भी अणु का अनुसंधान किया है। कणाद अणु को पीलः कहते थे। पीलः का अर्थ है कण, महाकण, परमाणु। महर्षि कणाद रचित वैशेषिक दर्शन के छठे अध्याय में कहा है - “नित्यं परिमण्डलम्” अर्थात् परमाणु नित्य है एवं परिमण्डलाकार है। उन्होंने (कणाद) परमाणु का शोध-वोध किया इसलिए उन्हें कणभूज, कणभक्षी, कणशोधक, कणयोगी कहते हैं। जैनधर्म में अणु, वर्गणा से लेकर रक्ंध तक को पुद्गाल कहते हैं। जैन धर्म की जो अणु से लेकर रक्ंध की परिभाषा है, वह अत्यन्त सूक्ष्म, व्यापक, गणितीय एवं वैज्ञानिक है।

जैन धर्म में जो 23 वर्गणाओं का वर्णन है वह मुझे अन्यत्र किसी भी धर्म, दर्शन, विज्ञान में उपलब्ध नहीं हुआ। जैन धर्म में वर्णित 23 वर्गणाएँ। यथा -

(1) अणु वर्गणा – Atom, (2) संख्याताणु वर्गणा – Numerable, (3) असंख्याताणु वर्गणा – Innumerable, (4) अनन्ताणु वर्गणा – Infinite, (5) आहार वर्गणा – Assimilation, (6) अग्राह्य वर्गणा – Unreceivable, (7) तैजस वर्गणा – Electric, (8) अग्राह्य वर्गणा – Unreceivable, (9) भाषा वर्गणा – Speech, (10) अग्राह्य वर्गणा – Unreceivable, (11) मनो वर्गणा – Mind, (12) अग्राह्य वर्गणा – Unreceivable, (13) कार्माण वर्गणा – Karmic, (14) ध्रुव वर्गणा – Fixed, (15) सान्तर निरन्तर वर्गणा – Inter non-Inter, (16) शून्य वर्गणा – Indifferent, (17) प्रत्येक वर्गणा – Individual, (18) ध्रुव शून्य वर्गणा – Fixed Indifferent, (19) वादरनिगोद वर्गणा – Gross-Common-body, (20) शून्य वर्गणा – Indifferent, (21) सूक्ष्म निगोद वर्गणा – Fine Common-body, (22) शून्य वर्गणा – Sphere, (23) महारक्ंध वर्गणा – Great Molecule.

इन उपर्युक्त वर्गणाओं से ही जीव के कर्म, शरीर, मन, भाषा आदि बनते हैं, इसलिए इसका विशेष अनुसंधानात्मक अध्ययन प्रस्तुतिकरण आदि में मैं अभी संलग्न हूँ। अनेक वैज्ञानिक, प्रोफेसर, विद्वान भी इस अनुसंधान, वैज्ञानिक-विश्लेषण एवं समन्वय के लिए मुझसे अनुरोध कर रहे हैं और वे भी इसके अनुसंधान में संलग्न हैं।

जैन धर्मानुसार एकाधिक परमाणु के बंधन से रक्ंध की उत्पत्ति होती है। इस द्वि-अणुक रक्ंध से लेकर इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, फोटॉन, सूर्य-किरण, लेजर, वायु,

जल, पृथ्वी, मिट्टी, पथर, स्वर्ण, रजत, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, नीहारिका आदि सब रक्ख के अन्तर्गत हैं।

वैज्ञानिक लोग सत्यग्राही, पुरुषार्थी, प्रगतिशील, लगनशील होते हैं। वे किसी भी धर्म, जाति, पंथ, परम्परा, रीति-रिवाज देश की संकीर्ण सीमा में बंधकर नहीं रहते हैं। इसलिए उनके अनुरोध के कारण में भी अभी कुछ वर्षों से प्रयासरत हूँ कि जैन धर्म में निहित सार्वभौम, गणितीय, वैज्ञानिक विश्वकल्याणकारी, सर्व जीव हितकारी, सर्व जीव सुखकारी, सत्य-तथ्य का आधुनिक-वैज्ञानिक - परिप्रेक्ष्य प्रणाली में अनुसंधान, प्रस्तुतिकरण एवं प्रचार-प्रसार हो। इसलिए कुछ वर्षों से राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठियों के आयोजन, साहित्य लेखन, अनेक वैज्ञानिक, प्रोफेसर, विद्वान को प्रशिक्षण प्रदान करना एवं कुछ विद्वान, वैज्ञानिकों को देश-विदेश में भेजकर उपर्युक्त उद्देश्य के प्रायोगीकरण में संलग्न हूँ।

इस कार्य में देश-विदेश के जैन-जैनत्तर विद्वान, वैज्ञानिक, दानी, सहयोगी, तन-मन-धन से सहयोग कर रहे हैं, जिससे हमें सफलता प्राप्त हो रही है तथा हमारे उद्देश्य एवं कार्य में प्रगति आ रही है।

2002 को प्रतापगढ़ (राज.) में “जैन शास्त्र में निहित विज्ञान” के ऊपर 5वीं अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक संगोष्ठी का आयोजन हुआ था। उस संगोष्ठी में एक शोधार्थी विद्वान को वैज्ञानिक राजमल जैन (इसोरो के वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं मेरे द्वारा स्थापित “धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान” के निर्वेशक) ने उनसे प्रश्न किया कि - आप बतायें कि जैन धर्म में कौन से सिद्धान्त हैं जो आधुनिक विज्ञान में भी नहीं हैं। इसका उत्तर वह विद्वान शोधार्थी देने में असमर्थ रहा। उस अवसर पर मैंने इसका कुछ संक्षिप्त उत्तर दिया जिससे वैज्ञानिक राजमल से लेकर देश-विदेश के शोधार्थी प्रभावित हुए और मुझे इस सम्बन्ध में विशेष शोध करने के लिए एवं साहित्य लेखन के लिए अनुरोध किया जिसके फलस्वरूप 2003 के मुंगाणा चातुर्मास में उपर्युक्त कार्य को मूर्त रूप देने के लिए एक नवीन शोधपूर्ण ग्रन्थों की शृंखला का प्रारम्भ किया। इस शृंखला का नाम है -

“JAIN FACTS : Beyond Modern Knowledge (जैन तथ्य जो आधुनिक ज्ञान से परे।) प्रस्तुत कृति ‘ब्रह्माण्डीय जैविक, भौतिक एवं रसायन विज्ञान (परमाणु, 23 वर्णण एवं कर्म विज्ञान) इस शृंखला की प्रथम ज्ञानधारा है। इसी प्रकार इस ज्ञानधारा में अनेक श्रोत प्रवाहित होने वाले हैं।

शान-मान-अभिमान एवं अतिथि देवो भवः मेवाऽ अन्तर्गत सरल-सहज, मृदु स्वभावी, मित एवं मधुर भाषी एकता-प्रेमी मुंगाणा के भौगोलिक, सामाजिक एवं भावात्मक वातावरण से मेरी बुद्धि तथा भावना में भी प्रखरता, व्यापकता एवं पवित्रता में वृद्धि हुई

जिससे ऐसे कठिनतम कार्य भी सरलता से सम्पन्न हो रहे हैं।

इस कार्य में मेरी धार्मिक शिष्याएँ यथा-अर्चना पचोरी (B.A. I year), रागिनी जैकणावत (B.A. I year), सोनल बोहरा (B.A. I year), संध्या जैकणावत (B.A. I year), जयाप्रदा मैदावत (B.A. II year), प्रेमलता मकनावत (B.A. II year) का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इसी प्रकार संघरथ उपाध्याय विद्यानन्दीजी, मुनि श्री आज्ञा सागरजी, मुनि श्री तीर्थ नन्दीजी, आर्थिका ऋद्धि श्री माताजी, आर्थिका गुरुवाणी, क्षुलक राच्छिदानन्दजी, ब्र.प्रो. कविता, वीणा जैन (संघरथ) व भूतपूर्व प्रो. प्रभात कुमार जैन का भी योगदान रहा। इस ग्रंथ के द्रव्यदाता :-

Pradhuman & Dhanlaxmi zaveri 2223 Gianera st. Santa clara CA 95054-1321 USA, Tel : 408 4946993 Email : Laxmi zaveri@yahoo.com.

मुझे प्रेरित करने वाले, अनुरोध करने वाले उपर्युक्त वैज्ञानिक, विद्वान, मुंगाणावासी आवक-श्राविका, सहयोग करने वाले मेरी धार्मिक शिष्याएँ, अर्थ सहयोगी, ज्ञानदानी तथा संघरथ साधु-साधी को मेरा यथाक्रम आशीर्वाद, प्रति नमोरन्तु, धन्यवाद है क्योंकि इन लोगों के सहयोग से ही यह कार्य सफल हो रहा है।

इस कृति में प्रयुक्त विभिन्न ग्रन्थों के कृतिकारों का भी मैं कृतज्ञ हूँ, जो इस कृति का अध्ययन करके सत्य-तथ्य को जानकर स्वपर, विश्वकल्याण में तत्पर होंगे उनका भी मैं अन्तःकरण की विशुद्धता से स्वागत करता हूँ। इस कृति के माध्यम से विश्व मंगलमय बने इस शुभकामना के साथ -

दिनांक 15.12.2003

मुंगाणा (राज.)

वैज्ञानिक धर्माचार्य
श्री कनकनन्दीजी

संयोगविभागाश्च कर्मणाम् । (30)

संयोग और विभाग यह दोनों कार्य कर्म से ही होते हैं इसलिये इन्हें समान कहा गया है। क्योंकि कर्म के बिना न तो कोई वरन्तु मिलाई जा सकती है और न कोई वरन्तु अलग-अलग की जा सकती है। इसलिये, इन दोनों का कारण कर्म को ही मानना चाहिये। जैसे चने की दाल बनानी है तो उसे दलने के लिये दरेंता चलाना होगा बिना दले हुए दाल नहीं बन सकती।

द्रव्य में गुणों के अतिरिक्त कर्म का अस्तित्व भी है। बिना द्रव्य के कोई कम नहीं हो सकता। पर गुण और कर्म में यह अन्तर है कि गुण द्रव्य का स्वाभाविक धर्म है जो उसमें सदैव उपस्थित रहता है, परन्तु कर्म प्रयत्नपूर्वक कुछ समय के लिये प्रकट होता है। पाँच कर्म उत्क्षेपण अवक्षेपण, आंकुचन, प्रसारण और गमन के रूप में होते हैं।

विषय - अनुक्रमणिका

अध्याय - 1	
कर्म सिद्धान्त का आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधान	16-22
अध्याय - 2	
अनन्त गुण धर्मात्मक पदार्थ	23-28
(1) द्रव्य का लक्षण	23
(2) द्रव्यों के सामान्य गुण	25
(3) सोलह विशेष गुण	26
अध्याय - 3	
पुद्गल की 23 वर्गणाओं के नाम एवं सामान्य वर्णन	29-34
(1) जघन्य से उत्कृष्ट वर्गण प्राप्त करने के उपाय	
(2) नीचे की उत्कृष्ट वर्गण से ऊपर की जघन्य वर्गण का अंतर	
(3) पुद्गल के छह भेद	
(4) अन्य प्रकार से पुद्गल के भेद	
(5) छहों द्रव्यों का कार्य अर्थात् उपकार	
(6) अविभागी पुद्गल परमाणु के बंध के कारण	
अध्याय - 4	
23 वर्गणाओं का विशेष वर्णन	35-131
(1) अणु वर्गण	35
(2) संख्याताणु वर्गण	36
(3)-(4) असंख्यात एवं अनन्ताणु वर्गण	38
(5) आहार द्रव्य वर्गण	40
(6) अग्रहण द्रव्य वर्गण	41
(7) तैजस शरीर द्रव्य वर्गण	42
(8) दूसरी अग्रहण द्रव्य वर्गण	43
(9) भाषा द्रव्य वर्गण	44
(A) भाषा वर्गण का विशेष वर्णन	44
(10) तीसरी अग्रहण द्रव्य वर्गण	48
(11) मनोद्रव्य वर्गण	48
(A) द्रव्य मन का रूपरूप	49
(12) चौथी अग्रहण द्रव्य वर्गण	50

(13) कार्माण द्रव्य वर्गण	50
(A) बन्धनीय कर्म परमाणु	51
(B) Analogy with Modern Scientific studies	57
(C) विज्ञानानुसार भेद संघात एवं भेद संघात से रक्खोत्पत्ति	61
(D) भाव बन्ध एवं द्रव्य बन्ध	74
(E) बन्ध के भेद व कारण :-	
(a) प्रकृति बन्ध (b) स्थिति बन्ध (c) अनुभाग (d) प्रदेश बन्ध	76
(1) ज्ञानावरणीय	77
(2) दर्शनावणीय	77
(3) वेदनीय	77
(4) मोहनीय	77
(a) दर्शन मोहनीय (b) चारित्र मोहनीय	78
(5) आयु	78
(6) नाम	79
(7) गोत्र	79
(8) अंतराय	79
* नाम कर्म का विशेष वर्णन	80
* तीर्थकर नाम कर्म	91
* नाम कर्म के प्रभेद	92
(14) ध्रुव रक्ख द्रव्य वर्गण	97
(15) सान्तर निरन्तर द्रव्य वर्गण	98
(16) ध्रुव शून्य वर्गण (प्रथम)	98
(17) प्रत्येक शरीर वर्गण	98
(18) ध्रुव शून्य वर्गण (द्वितीय)	110
(19) वादर निगोद द्रव्य वर्गण	111
(20) ध्रुव शून्य वर्गण (तृतीय)	127
(21) सूक्ष्म निगोद वर्गण	127
(22) चौथी ध्रुव शून्य वर्गण (चतुर्थ)	129
(23) महारक्ख द्रव्य वर्गण	129
* नाना श्रेणी वर्गण	130
अध्याय - 5	
23 वर्गणाओं की उत्पत्ति	132-155
(1) अणु वर्गण की उत्पत्ति	132

(2)	संख्याणु वर्गणा की उत्पत्ति	132
(3-4)	असंख्याणु वर्गणा से लेकर अनन्ताणु वर्गणा की उत्पत्ति	134
(5-15)	आहार वर्गणा से लेकर ध्रुव संकंध वर्गणा तक की उत्पत्ति	134
(16)	सान्तर निरन्तर वर्गणा की उत्पत्ति	134
(17)	प्रत्येक शरीर वर्गणा की उत्पत्ति	135
(18)	बादर निगोद वर्गणा की उत्पत्ति	137
(19)	सूक्ष्म निगोद वर्गणा की उत्पत्ति	138
(20)	महारकंध वर्गणा की उत्पत्ति	139
	* वर्गणा भागभाग	139
	* ध्रुवाध्रुवानुगम	142
	* वर्गणा - जघन्य से उत्कृष्ट प्राप्त करने के उपाय	148

अध्याय - 6

	जीवों के लिए भौतिक एवं रसायन तत्त्व की उपयोगिता	156-212
(1)	शरीर के पौद्गलिक का कारण	158
(2)	वचन पौद्गलिक - शब्द पौद्गलिक	159
(3)	मन पौद्गलिक	161
(4)	प्राणापान पौद्गलिक	167
(5)	सांसारिक सुख - दुःख भी पौद्गलिक	169
	(I) सुख (II) दुःख (III) जीवन (IV) मरण	
(6)	विभिन्न जीवों की उत्पत्ति आदि	172
(7)	ज्ञान, कर्म एवं कर्मफल चेतना	190
(8)	तीनों चेतना का लक्षण एवं फल	196
(9)	कर्माधीन अवस्थाएँ जीव के स्वभाव नहीं	197

अध्याय - 7

	आठों कर्म के सविस्तार वर्णन	213-254
(1)	जीव एवं कर्म के अनादि सम्बन्ध	213
(2)	संसारी जीव के कर्म के साथ संबंध के कारण	214
(3)	प्रत्येक समय में बन्धने योग्य कर्म परमाणु	214
(4)	प्रदेश बन्ध	214
(5)	द्रव्य कर्म एवं भाव कर्म का परस्पर जन्य-जनकत्व भाव	220
(6)	कर्म में अपरिवर्तनशील (आवाधा) काल	225
	(I) आयु कर्म संबंधी आवाधा	226
	(II) उदीरणा की अपेक्षा आवाधा	226

(1)	ज्ञानावरणीय कर्म	227
(2)	दर्शनावरणीय कर्म	231
(3)	वेदनीय कर्म	233
(4)	मोहनीय कर्म	234
(5)	आयु कर्म	240
	* जाति आदि नाम - कर्म के विशेष वर्णन	241
	* स्थावर काय के पाँच भेद	242
	* 5 प्रकार के शरीर बन्ध	242
(6)	नाम कर्म	245
(7)	गोत्र कर्म	245
(8)	अंतराय कर्म	246
	* प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियाँ	247
	* अप्रशस्त प्रकृतियाँ	248
	* पुद्गल विपाकी - भौतिक प्रकृतियाँ	249
	* भव विपाकी - क्षेत्रविपाकी एवं जीव विपाकी प्रकृतियाँ	250
	* जीव विपाकी - प्रकृतियाँ	250
	* जीव विपाकी प्रकृतियों में कही गई नामकर्म की 27 प्रकृतियाँ	250
	* कर्मों के सहायक कर्म द्रव्य (नोकर्म द्रव्य)	250
	* मूल प्रकृतियों के नोकर्म	250
	* ज्ञानावरण की उत्तर भेदों के नोकर्म	250
	* दर्शनावरण की उत्तर प्रकृतियों के नोकर्म	251
	* अवधि - केवल दर्शनावरण एवं वेदनीय के उत्तर भेदों का - नोकर्म द्रव्य	252
	* मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के नोकर्म	252
	* कषायों के नोकर्म	252
	* नो-कषायों के नोकर्म	252
	* आयु कर्म एवं गतिनाम कर्म के नोकर्म	253
	* नाम कर्म के उत्तर भेदों के नोकर्म	253
	* गोत्र तथा अंतराय कर्म उत्तर भेदों के नोकर्म	254
	* नो आगम भाव कर्म	254

अध्याय - 8

	आधुनिक विज्ञानानुसार परमाणु एवं जीन	255-303
(1)	इलेक्ट्रॉन	259

(2)	क्वांटमवाद	261
(3)	प्रोटॉन व न्यूट्रॉन	264
(4)	प्रोटॉन से न्यूट्रॉन	265
(5)	आइन्टीन के प्रसिद्ध समीकरण	268
(6)	विखण्डन	269
(7)	नाभिकीय विखण्डन से परमाणु ऊर्जा की उत्पत्ति	271
(8)	डार्क मैटर	272
(9)	एंटी हायड्रोजन एटम	274
(10)	एंटी मैटर तथा विश्व के रहस्य	277
(11)	पेटाक्वार्क	279
(12)	प्रकाश को बदला जा सकेगा तरल पदार्थ में	279
(13)	शरीर एवं व्यक्तित्व का निर्माता जीन	280
(14)	शरीर में जीन मशीन	283
(15)	मनुष्य की जैविक घड़ी	283
(16)	वृक्ष की जैविक घड़ी	286
(17)	चावल का जीनोम	287
(18)	तीसरे गुणसूत्र का शोध	287
(19)	क्या है जीनोम ?	288
(20)	सातवें गुणसूत्र का विश्लेषण	291
(21)	यौन व्यवहार का निर्धारण जीन से	292
(22)	एथलीट बनने का जीन	293
(23)	क्यों बेलगाम हो जाते हैं पुरुष	293
(24)	जीनोम शरीर और स्वास्थ्य विज्ञान	294
(25)	टीएनए की खोज	296
(26)	विचार (बुद्धि) से प्रभावित व्यवहार	297
(27)	प्रभासमण्डल (ओरा)	298
(28)	Effect of Bis intakes on human genome	303

परिशिष्ट

* अलौकिक गणित (प्रस्तुत कृति को समझने के लिए मूलभूत गणित)

* गणना की सर्व जघन्य/प्राथमिक इकाई = परमाणु

(1)	उवसन्नासन्न संकंध का लक्षण	311
(2)	सन्नासन्न से अंगुल पर्यन्त के लक्षण	311
(3)	अंगुल के भेद एवं उत्सेधांगुल का लक्षण	312

(4)	प्रमाणांगुल का लक्षण	312
(5)	आत्मांगुल का लक्षण	312
(6)	उत्सेधांगुल से द्वारा माप करने योग्य वस्तुएं	312
(7)	प्रमाणांगुल से मापने योग्य पदार्थ	312
(8)	आत्मांगुल से मापने योग्य पदार्थ	312
(9)	पाद से कोश - पर्यंत की परिभाषाएं	312
(10)	योजन का माप	312
(11)	व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या निकालने का विधान तथा उनका प्रमाण	312
(12)	उपर्युक्त संदृष्टि का गुणनफल	313
(13)	व्यवहार पल्य का लक्षण	313
(14)	उद्धार पल्य का प्रमाण	313
(15)	अद्वार या अद्वापल्य के लक्षण आदि	314
(16)	व्यवहार उद्धार एवं अद्वा सागरोपम के लक्षण	314
(17)	सूच्यंगुल और जगच्छ्रेणी के लक्षण	314
(18)	सूच्यंगुल आदि का तथा राजू का लक्षण	314
* द्रव्य क्षेत्रादि के प्रमाण		315
(1)	क्षेत्र के प्रमाण	315
(2)	द्रव्य क्षेत्रादि के प्रमाणों का निर्देश	316
(3)	काल प्रमाण	318
(4)	उपमा काल प्रमाण	319

गुरुत्व प्रयत्न संयोगानामुत्क्षेपणम् । (29) पृ.55, वै. दर्शन

किसी वस्तु में बोझ होना, उस वस्तु के ऊपर उछालने का प्रयत्न और उस वस्तु के साथ हाथ का संयोग, यह सब समानकर्म हैं। परन्तु इन कर्मों की आवश्यकता गुरुत्व के बिना नहीं पड़ सकती। क्योंकि, बोझ के कारण उसे उठाने का प्रयत्न करना होता है और तभी हाथ का संयोग होता है। यदि बोझ न हो तो उस वस्तु को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं हो सकती थी।

कारणाऽभावात्कार्याऽभाव । (1) पृ. 57, वै. दर्शन

जब उत्पन्न करने वाला ही नहीं, तो उत्पत्ति रूप कार्य कहाँ से होगा ? जब बोज होगा तभी अंकुर होगा अथवा मिट्टी होगी तो घड़ा बनेगा। इस प्रकार कारण होगा, तभी कार्य हो सकेगा, बिना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता। यदि बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति मानें तो कभी वस्तु का अभाव ही न रहे।

शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से वस्तुतः प्रत्येक जीव का स्वरूप ईश्वरीय/भगवत्, स्वरूप है अर्थात् प्रत्येक जीव में अनन्त, अक्षय, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, शक्ति, सत्ता, विभूति आदि अनन्त गुण विद्यमान हैं, तथापि सूक्ष्म जीवाणु-रोगाणु से लेकर वृक्ष, कीट, पतंग, पशुपक्षी, मनुष्य आदि में उपर्युक्त अनन्त ज्ञानादि गुण प्रगट रूप में अनुभव में पाए नहीं जाते हैं, इतना ही नहीं इन जीवों में शारीरिक, मानसिक, भावात्मक व्यावहारिक विभिन्नता विचित्रता भी अनेक प्रकार की है। ऐसे क्यों? इसका कारण क्या है? क्योंकि बिना कारण कभी कार्य सम्भव नहीं है। इसके अनुसंधान में देश-विदेश के प्राचीन एवं आधुनिक, दार्शनिक, धार्मिक, वैज्ञानिक लोग प्रयत्नशील हैं। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस दिशा में शोध करते - करते शारीरिक ग्रन्थि तन्त्र, मस्तिष्क, D.N.A., R.N.A., जीनोम तक पहुँच रहे हैं! परन्तु वे भी सम्पूर्ण सत्य - तथ्य पर पहुँच नहीं पाये हैं। ब्रह्माण्डमें (1) पृथ्वीकायिक आदि एकेन्द्रिय (2) लट आदि द्वीन्द्रिय (3) चींटी आदि त्रीन्द्रिय (4) पतंग आदि चतुरेन्द्रिय (5) मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय के (1) पृथ्वीकायिक (2) अग्निकायिक (3) वायुकायिक (4) जलकायिक (5) वनस्पतिकायिक रूप से पांच भेद पाए जाते हैं। इनके पुनःसूक्ष्म एवं वादर रूपसे 2 भेद हैं। द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव सब वादर (स्थूल, वाधा से युक्त) ही होते हैं। वादर जीव के लिए पृथ्वी आदि स्थूल आधार की आवश्यकता होती है तथा वे दूसरों को वाधा पहुँचा सकते हैं और दूसरों से वाधा प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु सूक्ष्म जीव बिना आधार के लोकाकाश में सर्वत्र रह सकते हैं और किसी को भी वाधा नहीं पहुँचा सकते हैं और किसी से भी वाधित नहीं होते हैं। उनकी मृत्यु स्वाभाविक होती है, वे स्वगति से ब्रह्माण्ड में अवाधा रूप से सर्वत्र संचार कर सकते हैं। इसलिए सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि पंच स्थावर जीव ब्रह्माण्ड में (343) घनराजू में सर्वत्र ठसाठस भरे हुए हैं। कुछ कम 13 घनराजू प्रमाण विश्व में (त्रसनाली) में त्रसजीव रहते हैं।

कर्म को प्रायः प्रत्येक दार्शनिक एवं धार्मिक परम्परा स्वीकार करती है। कोई कर्म को भाग्य कहता है तो कोई अदृष्ट। अन्य एक पूर्वकृत्। अन्यान्यदर्शन कर्म को स्वीकार करते हुए भी और उसका प्रतिपादन करते हुए भी जैन धर्म में जो सूक्ष्म वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण, गाणितिक, विस्तृत वर्णन पाया जाता है, वैसा वर्णन मुझे अन्य किसी दार्शनिक या धार्मिक साहित्य में देखने को नहीं मिला। जैन दर्शन कर्म को केवल एक भावात्मक संरक्षक रस्ता नहीं करता है, अपरंच भौतिक (पौद्गलिक, जड़ात्मक, रासायनिक, जैविक-रासायनिक) संरक्षक (संश्लेष-वन्धन, संयोग) भी मानता है। जिस समय में जीव अज्ञान, ईर्ष्या, काम - क्रोधादि के वशीभूत होकर कुछ मन, वचन या काय से कार्य करता है, उस समय में जीव के सम्पूर्ण आत्म प्रदेश में परिस्पंदन होता है। उस परिस्पंदन से आकर्षित

स्वीकार सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त कर्मवर्गणाओं में से कुछ वर्गणायें आकर्षित होकर आती हैं, इसको कर्मासव कहते हैं। यह कार्माण वर्गण भौतिक (पौद्गलिक परमाणुओं के समूह स्वरूप) होती हैं। राग द्वेषादि कषाय भाव से आकर्षित हुई कर्म वर्गणाएँ आत्मा के असंख्यात प्रदेश में संश्लेष रूप से मिल जाती हैं, इसको कर्मवन्ध कहते हैं। जैसे धन-विद्युत् एवं ऋण विद्युत् से आवेशित होकर के लौह खण्ड चुम्बक रूप से जब परिणमन करता है तब स्वक्षेत्र में रिथ्ट योग्य लौह खण्ड को आकर्षित करता है। उसी प्रकार राग (धनात्मक आवेश, आकर्षण) द्वेष (ऋणात्मक आवेश, विद्वेष, विकर्षण) से आवेशित होकर, जीव भी स्वयोग्य कार्माण - वर्गणाओं को आकर्षित करके स्वप्रदेश में संश्लेष रूप से वांधता है। और कुछ यहाँ ज्ञातव्य विषय यह है कि अनेक कार्माण वर्गणाएँ भी जब तक जीव के योग और उपयोग से प्रभावित नहीं होती तब तक बंधरूप में परिणमन करके कर्म अवरथा को प्राप्त नहीं करती है। उनमें से कुछ वर्गणाएँ सामान्य वर्गण हैं तो कुछ वर्गणाएँ उम्मीदवार (प्रत्याशीरूप) हैं। जैसे - देश के सामान्य नागरिक होते हैं। उनमें से कुछ नागरिक, एम.एल.ए., एम.पी. वनने के लिए प्रत्याशी होते हैं। जब नागरिकों से मत (वोट) प्राप्त करके जय युक्त होते हैं, तब वे एम.एल.ए. एम.पी. मंत्री वन जाते हैं। मंत्री आदि वनने पर सामान्य नागरिक से अधिक सत्ताधारी होकर दूसरों पर अनुशासन करते हैं। उसी प्रकार सामान्य वर्गणाएँ सामान्य नागरिक के समान होती हैं। जब रागद्वेष रूपी मत प्राप्त कर लेती हैं तब विशेष शक्तिशाली होकर जीव के ऊपर अनुशासन चलाती हैं। जैसे सामान्य नागरिक मत प्राप्त करके विभिन्न विभाग के मंत्री आदि वनते हैं, उसी प्रकार कार्माण वर्गणाएँ राग-द्वेष आदि मत प्राप्त करके ज्ञानावरणादि कर्मरूप परिणमन कर लेती हैं। एक समय में, एक साथ एक-दो परमाणु कर्म रूप में परिणमन नहीं करते, इतना ही नहीं, करोड़ों-अरबों, संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणु भी कर्म-रूप में परिणमन नहीं करते हैं, किन्तु केवल अनंतानंत परमाणु कर्मरूप में एक साथ परिणमन करते हैं। जिस समय में कर्म वंधते हैं उस समय आत्मा के एक दो या करोड़ों-अरबों प्रदेश में एक साथ नहीं वंधते, किंतु जब कर्म वन्धेंगे तब सम्पूर्ण आत्मा में एक साथ ही कर्म वंधते हैं। प्रत्येक जीव के मध्य के आठ आत्मप्रदेश चलायामन नहीं होने पर भी कर्मवन्धन से सहित ही हैं, क्योंकि अन्यान्य आत्मप्रदेशों में जब परिस्पंदन होता है तब कर्म वर्गणाएँ आकर्षित होकर आती हैं। आत्मा के असंख्यात प्रदेश अखण्ड होने के कारण तथा आठ मध्य प्रदेश में द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म होने के कारण आकर्षित हुई कार्माण-वर्गणाएँ भी आठ मध्य प्रदेश में विभाजित होकर वंध जाती हैं। यदि आठ मध्य प्रदेश कर्म से रहित हो जायेंगे तब प्रत्येक संसारी जीव भी अनंतज्ञान दर्शन, सुख, वीर्य का स्वामी बन जाएगा परन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष विरोध ह।

यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि अनंतानंत परमाणु को छोड़कर संख्यात्, असंख्यात्, परमाणु कर्मरूप में परिणमन क्यों नहीं करते ? इसका उत्तर देते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि अनंतानंत परमाणुओं के समूह स्वरूप वर्गणा को छोड़कर अन्य वर्गणा में कर्मरूप परिणमन की योग्यता नहीं होती है । यह तो हुआ आगमोक्त उत्तर । कुछ तार्किक दृष्टि से विचार करने पर यह सत्य सिद्ध भी होता है, तर्क यह है कि जब कर्मवन्ध होता है तब युगपत् आत्मा के असंख्यात् प्रदेश में कर्म बन्ध होते हैं । असंख्यात् प्रदेश में युगपत् कर्मवन्ध होने के कारण युगपत् सम्पूर्ण आत्मप्रदेश में योग (परिस्पदन) एवं उपयोग (कषाय भाव) का होना है । यदि एक साथ असंख्यात् प्रदेश में कर्म बंधते हैं तब असंख्यात् से कम परमाणु से तो कार्य ही नहीं चलेगा । दूसरा तर्क है कि आत्मा अनादि से कर्म बद्ध होने के कारण एक-एक आत्मप्रदेश में अनन्तानन्त परमाणु बंधे हुए हैं, जो नये कर्म परमाणु बंधते हैं, वे प्राचीन कर्म परमाणु के साथ बंधते हैं इसीलिये उन कर्म परमाणु के साथ बंधने के लिए अनंतानंत परमाणु की आवश्यकता होती है । और भी एक तर्क यह है कि प्रत्येक आत्मप्रदेश में अनंत ज्ञान, सुख, वीर्य आदि मौजूद हैं, उन अनंत शक्तियों को पराभूत करने के लिए अनन्त शक्ति की भी आवश्यकता होती है । इसीलिए अनन्त शक्तिशाली जीव को पराभूत करके, बंधन में डालकर संसार में परिभ्रमण कराने के लिये अनंतानंत परमाणु की आवश्यकता होती है । जैसे - सामान्य पशु को बांधने के लिए सामान्य रससी से काम चल सकता है, परन्तु विशेष शक्तिशाली पशु सिंह, हाथी आदि के लिए विशेष रससी आदि की आवश्यकता होती है । और एक तर्क यह है कि एक समय में जो कर्म वर्गणाएँ निर्जरित होती हैं, उस वर्गणा में अनंतानंत परमाणु रहते हैं । “व्यय के अनुसार आय” इस न्यायानुसार व्यय परमाणु अनंतानंत होने के कारण आय परमाणु भी अनंतानंत होने ही चाहिए ।

आस्रव एवं बंध तत्त्व संसार तत्त्व है । इस आस्रव एवं बंध तत्त्व के कारण ही जीव संसार में परिभ्रमण करता है । इसलिए दोनों तत्त्व हेय (त्यजनीय) हैं । प्रत्येक समय में जीव योग और उपयोग से जैसे- कर्म को आकर्षित करके बांधता है, वैसे ही स्वाभाविक स्थिति बंध के क्षय से कर्म की निर्जरा भी होती है, परन्तु यह निर्जरा नवीन कर्म बंध के लिए कारणभूत हो जाती है, क्योंकि जिस समय कर्म उदय में आकर निर्जीर्ण होता है, उस समय जीव में उदय प्राप्त कर्म के निमित्त से तज्ज्योग्य, योग और उपयोग होता है । उस योग और उपयोग से प्रेरित होकर पुनः कर्म का आस्रव एवं बंध हो जाता है । इसीलिए इस प्रकार की निर्जरा को सविपाक्ष निर्जरा - अकुशल निर्जरा, अकामनिर्जरा कहते हैं । जैसे - बीज योग्य भूमि में गिरने के बाद वृक्षरूप में परिणमन कर लेता है उसी प्रकार यह निर्जरा नये कर्म को जन्म देने के लिए कारण भी बन जाती है । यह निर्जरा विशेषतः एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तथा मिथ्यात्व गुणस्थान में होती है । सत्य, प्रीति, सदज्ञान, सदाचरण के

माध्यम ये जो कर्म आत्मा से पृथक् होता है, उसको अविपाक्ष निर्जरा, सकाम निर्जरा या सकुशल निर्जरा कहते हैं । यह निर्जरा परम्परा से मोक्ष तत्त्व के लिए कारणभूत है । आध्यात्मिक जागरण के बाद कुछ विशेष पापकर्म का आना रुक जाता है, उसको संवरण या संवर कहते हैं । संवर पूर्वक निर्जरा ही यथार्थ से उपादेय है, इसीलिये संवर एवं निर्जरा मोक्ष तत्त्व के लिए कारणभूत है । जब सम्पूर्ण आध्यात्मिक जागरण या रत्नत्रय की पूर्णता होती है, और सम्पूर्ण कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं - गल जाते हैं, खिर जाते हैं, तब उसको मोक्ष तत्त्व कहते हैं ।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह सिद्ध हुआ है कि सम्पूर्ण जीव अनादि काल से कर्म बंधन से जकड़े होते हुए भी आध्यात्मिक पुरुषार्थी जीव सम्पूर्ण बंधनों को तोड़कर, सर्वशक्तिमान, पूर्ण स्वतंत्र, शुद्ध - बुद्ध भगवान् बन जाता है, परन्तु जो आध्यात्मिक पुरुषार्थ से हीन होते हैं, वे कर्म बंध से रहित होकर सुख का आस्वादन नहीं ले पाते हैं अर्थात् अनादि काल से कर्म बलवान् होते हुए भी भव्य जीव का पुरुषार्थ कर्म से भी अधिक शक्तिशाली होने से अन्त में भव्य जीव, स्वपुरुषार्थ से सम्पूर्ण कर्म को नष्ट करके परमात्मा बन जाता है, परन्तु अभव्य जीव के लिए कर्म अनादि से बलवान् है एवं अनन्त तक बलवान् ही रहेगा । अन्य एक दृष्टिकोण से विचार करने पर जैसे बीज से वृक्ष की उत्पत्ति होती है, वैसे ही पुरुषार्थ से कर्म की उत्पत्ति होती है । वर्तमान का पुरुषार्थ भविष्य के लिए भाग्य बन जाता है, इसलिए भाग्य और पुरुषार्थ परस्पर में जन्य जनकत्व, अनुपूरक, परिपूरक हैं । इससे सिद्ध होता है कि वर्तमान में कोई सुखी या दुःखी है तो उस - सुख - दुःख का उत्तरदायित्व स्वोपार्जित पूर्व कर्म है । इसलिये उस सुख - दुःख के लिए निमित्त को ही मुख्य कारण मानकर दूसरों पर राग द्वेष करना अज्ञानियों का काम है । प्रत्येक सुख-दुःख के लिए स्वोपार्जित पूर्व कर्म ही उपादान कारण है तो अन्य वाह्य कारण निमित्त कारण हैं । ज्ञानियों को यथार्थ रहस्य का परिज्ञान करके मूल कारण को ही हटाना चाहिए । जैसे, सिंह पर कोई लाठी प्रहार करता है तो वह लाठी को नहीं पकड़ता, परन्तु प्रहार करने वाले को ही पकड़ता है, परन्तु कुत्ते को कोई लाठी से प्रहार करता है तो वह लाठी को ही पकड़ता है, आदमी को नहीं । उसी प्रकार ज्ञानी सिंह के समान सुख - दुःख का मूल कारण कर्म को जानकर उसके निर्मूलन करने का पुरुषार्थ करता है, परन्तु अज्ञानी कुत्ते के समान कर्म को नहीं जानता हुआ अन्य वाह्य कारण, अन्य जीव या वस्तु आदि को मानकर उसको ही नष्ट करने का पुरुषार्थ करता है । वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस कर्म बंध सिद्धान्त पर निम्न प्रकार से विचार कर सकते हैं ।

प्रत्येक दृष्टव्य पदार्थ को छोटे भागों में विभाजित किया जा सकता है, जिन्हें अणु

कहते हैं। ये अणु ही परस्पर संयुक्त होकर इतना बड़ा कण (स्कंध) बनाते हैं अथवा बनाते चले जाते हैं कि वे दृष्टव्य हो जाते हैं। प्रश्न यह है कि ये अणु परस्पर संयुक्त क्यों होते हैं? इन सभी अणुओं में एक विशेष पारस्परिक आकर्षण बल (mutual force of attraction) होती है जिसके द्वारा ही ये परस्पर संयुक्त होते हैं, किन्तु यह बल स्थायी नहीं होता, इसी कारण किसी वाहा अथवा आन्तरिक (वहिंग या अन्तरंग) बल से प्रेरित होने पर ये विभक्त (पृथक्) हो जाते हैं। इस बल को वाण्डर वाल आकर्षण बल (vander waal's force of attraction) व बन्ध के टूटने को (cleavage, breaking) कहते हैं। जैन दर्शन में कर्म सिद्धान्त के आधार पर इस आकर्षण को आस्रव व पृथक् होने को निर्जरा कहते हैं। जीव एवम् कार्माण वर्गणाओं (molecules having the nature of karma) के परस्पर संश्लेषण संबंध को कर्म बंध (bond formation) कहते हैं।

अणुसिद्धान्त के अनुसार किसी भी पुद्गल का किसी अन्य पुद्गल से संबंध संसंजन बल (Cohesive force) जो समान अणुओं में कार्य करता है वह असंजन बल (adhesive force) (जो विपरीत प्रकृति के अणुओं में कार्य करता है) के द्वारा होता है चाहे वह एक से हो, दो से हो अथवा संख्यात या असंख्यात पुद्गलों से हो।

न तु कार्याभावात् कारणाभावः । (2)

यह नहीं कह सकते कि कार्य के न होने से कारण भी नहीं हो सकता। जैसे कि ध्रुओं कार्य और अग्नि कारण है, धूंआ न होने पर भी अग्नि का अभाव नहीं हो सकता।

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता । (7)

जिन द्रव्य, गुण, कर्म में यह प्रतीति होती हो कि यह द्रव्य है, यह गुण है, यह कर्म है, वहीं सत्ता कही जाती है। जैसे मिट्टी में मिट्टीपन दिखाई दे, तो वह मिट्टी की सत्ता हुई और सोने में सुनहलापन रचना की सत्ता हुई। इसी प्रकार सब वस्तुओं में सत्ता होती है।

द्रव्यगुण कर्मेभ्योऽर्थान्तरं सत्ता । (8)

द्रव्य, गुण, कर्म से सत्ता में भिन्नता है।

ते आकाशे न विद्यते । (5) पृ. 65

रूप, रस, गुण, रपर्श के जो गुण कहे हैं वे आकाश में नहीं रहते।

तत्वं भावेन । (8)

जैसे सत्ता द्रव्य, गुण, कर्म तीनों में रहती हुई भी एक ही हैं, वैसे ही काल भी भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों में व्याप्त रहकर एक ही है।

अध्याय - 2

अनन्त गुण - धर्मात्मक पदार्थ

विश्व में जितने द्रव्य पाये जाते हैं उनमें केवल 1, 2 संख्यात, असंख्यात धर्म नहीं रहते हैं, अपितु उनमें अनन्त धर्म रहते हैं। द्रव्य अनन्त धर्म, अनन्त गुण, अनन्त पर्यायों का पिण्ड स्वरूप है। उपरोक्त धर्मादि को छोड़कर किसी भी द्रव्य का अस्तित्व भी नहीं रह सकता है जैसा कि आचार्य ने कहा है -

अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वमतोऽन्यथा सत्त्वमसूपपादम् ।

इति प्रमाणान्यपि ते कुवादि कुरंगसंत्रासनसिंहनादाः ॥ (22) स्यां.म.

प्रत्येक पदार्थ में अनन्त धर्म मौजूद हैं। पदार्थों में अनन्त धर्म माने विना, वस्तु की सिद्धि नहीं होती अतएव आपके प्रमाण कुवादी रूप मृगों को डराने के लिए सिंह की गर्जना के समान है। वस्तु में यदि अनन्त धर्म नहीं होंगे तब वस्तु का अस्तित्व ही नहीं होगा।

जं वत्थुं अणेयतं तं चिय कज्ज करेदि णियमेण ।

बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकर दीसदे लोए ॥

जो वस्तु अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक धर्मवाली है उसी के नियम से अर्थक्रिया-कारित्व रूप कार्य नहीं दिखाई देता है, किन्तु एकान्त धर्म युक्त द्रव्यों का संसार में अर्थक्रिया कारित्व रूप कार्य नहीं दिखाई देता है। जो अर्थक्रिया-कारित्व रूप कार्य नहीं करता है वह द्रव्य कैसे हो सकता है? इसीलिए प्रत्येक द्रव्य को अनेकान्तात्मक अर्थात् अनन्त धर्मात्मक होना चाहिए।

द्रव्य का लक्षण

सदद्रव्य लक्षणम् (29)

The differentiation of a Substance or reality is Sat, isness or being.

(स्वतंत्रता के सूत्र. पृ. 320)

द्रव्य का लक्षण सत् है ।

यह विश्व शाश्वतिक है, क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक हैं। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है, परन्तु परिवर्तित होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है -

Matter and energy neither be created nor be destroyed, each can be completely changed into another from or into one another.

विज्ञान का मूलभूत सिद्धान्त है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कि वस्तु संम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियादि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं ।
दवियं तं मण्णते अण्णभूदं तु सुत्तादो ॥ (9)

पंचास्तिकाय

What flows or maintains its identity through its several qualities and modifications, and what is not different from Satta or Substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं - जो कि सत्ता अनन्यभूत है।

दवं सल्लखणं य उप्पादव्यय धुवत्त संजुत्तं ।

गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्ह ॥ (10)

Whatever has substantiality, has the dialectical triad or birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes is Dravya, so say the all-knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पादव्यय ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुणपर्यायों का आश्रय आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् । (28)

Substance is possessed of attributes and modifications.

द्रव्य, गुण और पर्यायों का एक अखंड पिण्ड स्वरूप है। गुण को सामान्य, उत्सर्ग अन्वय भी कहते हैं, पर्याय को विशेष, भेद भी कहते हैं। ऐसे सामान्य और विशेष से सहित द्रव्य होता है। पंचास्तिकाय में कहा भी है -

पज्जयविजुदं दवं दवविजुत्तं व पज्जया णस्थि ।

दोणहं अण्णभूदं भावं समणा परुविंति ॥ (12)

पर्यायों से रहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभाव श्रमण प्ररूपित करते हैं।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, धी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता है उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता, जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, धी इत्यादि नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य से पर्यायें नहीं होती। इसीलिए, यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात्-विवक्षा वश कथंचित् भेद है तथापि, वे अस्तित्व में नियत (दृढ़-रूप से स्थित) होने के कारण अन्योऽन्यवृत्ति नहीं छोड़ती इसीलिए वस्तुरूप से उनका अभेद है।

दव्वेण विणा गुणा, गुणेहिं दवं विणा ण संभवदि ।

अव्वदिरित्तो भावो दवगुणाणं हवदि तम्हा ॥ (13)

द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता है, इसीलिए द्रव्य और गुणों का अव्यतिरिक्त भाव अनन्यभाव है।

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य के

विना गुण नहीं होते, जिस प्रकार स्पर्श - रस-गंध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिए, यद्यपि द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अव्यतिरिक्तत्व में नियत होने के कारण अन्योऽन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसीलिए वस्तुरूप से उनका भी अभेद है।

द्रव्य के बिना गुण नहीं हो सकते तथा गुणों के बिना द्रव्य नहीं संभव है इसीलिए द्रव्य और गुणों का अभिन्न भाव होता है।

जैसे पुद्गल द्रव्य की सत्ता के बिना उसमें स्पर्श-रस, गंध, वर्ण नहीं पाये जा सकते वैसे द्रव्य के बिना गुण नहीं होते हैं तथा जैसे वर्णादि गुणों को छोड़कर पुद्गल द्रव्य नहीं मिलता वैसे गुणों के बिना द्रव्य नहीं प्राप्त हो सकता है। द्रव्य और गुणों की सत्ता अभिन्न है - एक है, क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा वे अभिन्न हैं। द्रव्य और गुणों के प्रदेश अभिन्न हैं - एक है क्योंकि क्षेत्र की अपेक्षा एकता है। द्रव्य और गुणों को एक ही काल उत्पाद-व्यय का अविनाभाव है, क्योंकि काल की अपेक्षा दोनों एक हैं। द्रव्य और गुण दोनों एक स्वरूप हैं क्योंकि उनका स्वभाव एक है। अतः द्रव्य और गुणों का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की अपेक्षा अभेद है इसीलिए द्रव्य और गुण अभिन्न हैं, एक है। अथवा दूसरा व्याख्यान करते हैं कि भाव जो पदार्थ वह द्रव्य और गुणों से अभिन्न है अर्थात् द्रव्य गुण रूप ही पदार्थ कहा गया है।

द्रव्यों के सामान्य गुण

द्रव्यों के दस सामान्य गुण इस प्रकार हैं -

(1) अस्तित्व, (2) वस्तुत्व, (3) द्रव्यत्व, (4) प्रमेयत्व, (5) अगुरुलघुत्व, (6) प्रदेशत्व, (7) चेतनत्व, (8) अचेनत्व, (9) मूर्तत्व और (10) अमूर्तत्व।

(1) अस्तित्व गुण :- जिस द्रव्य का जो स्वभाव प्राप्त है उस स्वभाव से च्युत नहीं होना अस्तित्व गुण है। (विश्व विज्ञान रहस्य पृ. 67 से)

(2) वस्तुत्व गुण :- सामान्य - विशेषात्मक वस्तु होती है, उस वस्तु का जो भाव है वह वस्तुत्व गुण है।

(3) द्रव्यत्व गुण :- जो अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्डता से अपने स्वभाव और विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होयेगा, हो चुका है वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव है वह द्रव्यत्व गुण है।

(4) प्रमेयत्व गुण :- जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी प्रमाण (ज्ञान) का विषय अवश्य होता है उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

(5) अगुरुलघुत्व गुण :- जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, हर समय परिणमनशील है और आगम प्रमाण से जाना जाता है वह अगुरुलघुगुण है अथवा जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं होता है, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता है और द्रव्य में रहने वाले अनन्तगुण

- विखरकर अलग-अलग नहीं हो पाते हैं उस शक्ति को अगुरुलघुगुण कहते हैं।
- (6) **प्रदेशत्व गुण** :- जिस गुण के निमित्त से द्रव्य, क्षेत्रता को प्राप्त हो वह प्रदेशत्व गुण है अर्थात् जिस गुण के कारण द्रव्य में कुछ आकार हो उसे प्रदेशत्वगुण कहते हैं।
 - (7) **चेतनत्व गुण** :- अनुभूति का नाम चेतना है। जिस शक्ति के निमित्त से स्व-पर की अनुभूति अर्थात् प्रतिभासकता होती है अर्थात् जाना जाता है वह चेतना गुण है।
 - (8) **अचेतनत्व गुण** :- जड़पने को अचेतन कहते हैं, अननुभवन सो अचेतनता है। चेतना का अभाव ही अचेतना है। इस गुण के माध्यम से स्व-पर का अनुभव नहीं होता है।
 - (9) **मूर्तत्व गुण** :- रूपादि भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण भाव को मूर्तत्व कहते हैं।
 - (10) **अमूर्तत्व गुण** :- स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित भाव अमूर्तत्व है।

ये गुण एक से अधिक द्रव्य में पाए जाते हैं इसलिये सामान्य गुण हैं। जीव द्रव्य अनन्तानन्त होने के कारण तथा एक चेतनत्व सब जीवों में पाये जाने के कारण चेतनत्व गुण सामान्य है। पुद्गल द्रव्य अनन्त होने के कारण एवं सर्व पुद्गलों में मूर्तत्व गुण पाये जाने से मूर्तत्व गुण सामान्य है। जीव के अतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्य अचेतन हैं इसलिये अचेतनत्वगुण सामान्य है। पुद्गल को छोड़कर अन्य पाँच द्रव्य अमूर्तिक हैं इसलिये अमूर्तत्व गुण सामान्य है।

उपरोक्त दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण पाये जाते हैं और दो-दो नहीं पाए जाते हैं। जैसे जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व, अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में चेतनत्व, मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्वः प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्व, प्रदेशत्व और अचेतनत्व, अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

सोलह विशेष गुण :-

द्रव्यों के 16 विशेष गुण इस प्रकार हैं :-

- (1) ज्ञान, (2) दर्शन, (3) सुख, (4) वीर्य, (5) स्पर्श, (6) रस, (7) गन्ध,
- (8) वर्ण, (9) गति हेतुत्व, (10) स्थिति हेतुत्व, (11) अवगाहन हेतुत्व, (12) वर्तना हेतुत्व, (13) चेतनत्व, (14) अचेतनत्व, (15) मूर्तत्व, (16) अमूर्तत्व।

- (1) **ज्ञान** :- जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समरूप गुण और अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जाने सो ज्ञान गुण है। वहिर्मुख चित्प्रकाश को ज्ञान कहते हैं। जिस शक्ति के द्वारा आत्मा, पदार्थ को साकार जानता है उसे ज्ञान

कहते हैं। जिस शक्ति के द्वारा आत्मा, पदार्थ को साकार जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। भूतार्थ का प्रकाश करने वाले अथवा सद्भाव का निश्चय करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।

- (2) **दर्शन** :- अंतर्मुख चित्प्रकाश को दर्शन कहते हैं। जो अवलोकन करता है वह आलोक अर्थात् आत्मा है तथा वर्तन अर्थात् व्यापार वही वृत्ति है। अवलोकन अर्थात् आत्मा की वृत्ति तो आलोकन वृत्ति या स्वसंवेदन है और वही दर्शन है। प्रकाश ज्ञान है, उस प्रकाश ज्ञान के लिए जो आत्मा का व्यापार सो प्रकाशवृत्ति है और वही दर्शन है। विषय और विषयी के योग्य देश में होने की पूर्वावस्था दर्शन है। सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों को अलग-अलग भेद रूप से ग्रहण नहीं करके जो सामान्य ग्रहण रूप अवभासना होता है उसे दर्शन कहते हैं।
- (3) **सुख** :- जो स्वाभाविक भाव के आवरण के विनाश होने से आत्मिक शांतस अथवा जो आनंद उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं। सुख का लक्षण अनाकुलता है। स्वभाव प्रतिधान का अभाव ही सुख है। मोहनीय कर्म के उदय से इच्छा रूप आकुलता उत्पन्न होती है सो ही दुःख है। मोहनीय कर्म के अभाव से आकुलता का अभाव हो जाता है और आत्मिक परम आनंद उत्पन्न होता है वही सुख है।
- (4) **वीर्य** :- जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। आत्मा में अनंत वीर्य है, किन्तु अनादि-काल से वीर्यान्तराय कर्म ने उसको घात कर रखा है। उसके क्षयोपशम के अनुसार कुछ वीर्य प्रगट होता है। पूर्ण क्षय होने के बाद अनंत वीर्य प्रकट होता है। ये चारों गुण जीव के विशेष गुण हैं।
- (5) **स्पर्श** :- जो स्पर्श किया जाता है, अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है वह स्पर्श है। कोमल, कठोर, हल्का, ठंडा, गर्म, रुखा, चिकना स्पर्श के आठ भेद हैं। वायु देखने में नहीं आने पर भी स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा उसकी अनुभूति की जाती है इसलिए वायु भी पुद्गल है। सूर्य किरण में गर्म स्पर्श होने के कारण एवं दिखाई देने के कारण भी सूर्य किरण पुद्गल है।
- (6) **रस** :- जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है। तीखा, कड़आ, खट्टा, मीठा, कसायला ये रस के पांच भेद हैं।
- (7) **गंध** :- जो सूंधा जाता है वह गंध है। सुगंध-दुर्गंध के भेद से गंध दो प्रकार की होती है।
- (8) **वर्ण** :- जो देखा जाता है वह वर्ण है। काला, पीला, सफेद, नीला, लाल ये वर्ण के मुख्य पाँच भेद हैं। स्पर्शादि के जो आठ आदि भेद बताए हैं वे मूलभूत हैं। प्रत्येक स्पर्शादि के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं। छाया एवं अंधकार में वर्ण होने के कारण वे भी पुद्गल हैं, क्योंकि अंधकार प्रकाश की भाँति

- चक्षु से दिखाई देता है। जिसमें वर्ण होता है उसमें स्पर्शादि अविनाभावी गुण पाये जाने के कारण एवं पौद्गलिक इन्द्रिय के माध्यम से जानने के कारण अंधकार छायादि पुद्गल की पर्यायें हैं। इस प्रकार भी शंका नहीं करनी चाहिए कि जो चाक्षुष पदार्थ हैं वे प्रतिभाषित होने में आलोक की अपेक्षा रखते हैं, परन्तु तम के प्रतिभास में प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। इसलिए तम चक्षु का विषय नहीं है? इसका समाधान यह है कि उल्लू आदि बिना प्रकाश के तम को देखते हैं। यह ठीक है कि अन्य चाक्षुष घट, पटादि बिना प्रकाश के हम नहीं देख सकते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि तम के देखने में भी प्रकाश की आवश्यकता पड़े। संसार में पदार्थों के विचित्र स्वभाव होते हैं। वे विचित्र स्वभाव होने के कारण ज्ञान में विचित्र रूप से प्रतिभाषित होते हैं। पीत-स्वर्ण, श्वेत-मोती आदि में तैजस होने पर भी बिना प्रकाश के प्रतिभाषित नहीं होते, जबकि दीपक, सूर्य आदि दूसरों के प्रकाश का अवलम्बन नहीं लेते हैं। इसी प्रकार तम भी अपने विचित्र स्वभाव के कारण बिना प्रकाश से चक्षु का विषय होता है, अतः तम भी पुद्गल की पर्याय है। वर्तमान विज्ञान ने भी वैज्ञानिक पद्धति से प्रकाश एवं तम को पौद्गलिक सिद्ध कर दिया है। उपरोक्त स्पर्शादि चार विशेष गुण पुद्गल के हैं। उपरोक्त चारों में से किसी के कभी-कभी किसी एकादि गुण की प्रगटता रहती है, अन्य गुणों की नहीं तो भी उसमें अन्य शेष गुण न्यूनता रूप से रहते हैं। इसके कारण जैन सिद्धांत के अनुसार लोक में जो विभिन्न धातु आदि पाये जाते हैं वे सर्व पुद्गल ही हैं। ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, स्वर्ण-चाँदी, रेडियम, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि मौलिक एवं स्वतंत्र द्रव्य नहीं हैं, किन्तु एक पुद्गल का ही परिणमन या अवरथा विशेष हैं।
- (9) **गति हेतुत्व :-**— जीव और पुद्गल को गमन में सहकारी होना गति हेतुत्व है। धर्म द्रव्य का यह विशेष गुण है।
- (10) **स्थिति हेतुत्व :-**— जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी होना स्थिति हेतुत्व है। अधर्म द्रव्य का यह विशेष गुण है।
- (11) **अवगाहन हेतुत्व :-**— समरत द्रव्यों को अवकाश देना अवगाहन हेतुत्व है। आकाश द्रव्य का यह विशेष गुण है।
- (12) **वर्तना हेतुत्व :-**— समरत द्रव्यों के वर्तन में (परिणमन) सहकारी होना वर्तना हेतुत्व है। काल द्रव्य का यह विशेष गुण है।
- चेतनत्व एवं अचेनत्व आदि का पहले वर्णन किया जा चुका है। चेतनत्व समरत जीवों में पाया जाता है इसलिए इसको सामान्य गुण कहा गया है, किन्तु पुद्गलादि में नहीं पाया जाता है इसलिए विशेष गुण कहा गया है। इसी प्रकार अन्य गुणों का भी जानना चाहिए।

अध्याय - 3

पुद्गल की 23 वर्गणाओं के नाम एवं सामान्य वर्णन

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहिं अंतरिया ।

आहारतेजभासामणकम्मइया ध्रुवक्खंधा ॥(594)॥

सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुव-सुण्णा ।

वादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदाणभो महक्खंधा ॥(595)॥

(गो जीवकाण्ड पृ. 661)

- 1) अणु वर्गणा, 2) संख्याताणु वर्गणा, 3) असंख्याताणु वर्गणा, 4) अनन्ताणु वर्गणा, 5) आहार वर्गणा, 6) अग्राहा वर्गणा, 7) तैजस वर्गणा, 8) अग्राहा वर्गणा, 9) भाषा वर्गणा, 10) अग्राहा वर्गणा, 11) मनो वर्गणा, 12) अग्राहा वर्गणा, 13) कार्मण वर्गणा, 14) ध्रुव वर्गणा, 15) सान्तरनिरन्तर वर्गणा, 16) शून्य वर्गणा, 17) प्रत्येक शरीर वर्गणा, 18) ध्रुव शून्य वर्गणा, 19) वादरणिगोद वर्गणा, 20) शून्य वर्गणा, 21) सूक्ष्मनिगोद वर्गणा, 22) शून्य वर्गणा, 23) महारक्खन्ध वर्गणा।

(There are 23 kinds of molecules-Vargana)

1. अणु वर्गणा Atom (-anu vargana),
2. संख्याताणु वर्गणा Numerble (-atoms- molecule, Sankhyatanu-vargana),
3. असंख्याताणु वर्गणा Innumerable (-atoms- molecule, Asankhyatanu-vargana),
4. अनन्ताणु वर्गणा Infinite (-atoms- molecule, Anantantu-vargana),
5. आहार वर्गणा Assimilation (-molecule, Ahara- vargana),
6. अग्राहा वर्गणा Unreceivable (-molecule, Agrahya- vargana),
7. तैजस वर्गणा Electric (molecule, Taijasa- vargana),
8. अग्राहा वर्गणा Unreceivable (molecule, Agrahya- vargana),
9. भाषा वर्गणा Speech (-molecule, Bhasha- vargana),
10. अग्राहा वर्गणा Unreceivable (-molecule, Agrahya- vargana),
11. मनो वर्गणा Mind (-molecule, Mano- vargana),
12. अग्राहा वर्गणा Unreceivable (molecule, Agrahya-vargana),
13. कार्मण वर्गणा Karmic (-molecule, Karmana- vargana),
14. ध्रुव वर्गणा Fixed (-molecule, Dhruva- vargana),
15. सान्तरनिरन्तर वर्गणा Inter- non- inter (-molecule, santara-nirantara-

- vargana),
 16. शून्य वर्गणा Indifferent (-molecule, Shunya- vargana),
 17. प्रत्येक शरीर वर्गणा Individual-body (-molecule, pratyeka sharira-vargana),
 18. ध्रुव शून्य वर्गणा Fixed- indifferent (-molecule, Dhruva shunya- vargana),
 19. बादरनिगोद वर्गणा Gross- common body (-molecule, Badara Nigoda-vargana),
 20. शून्य वर्गणा Indifferent (-molecule, Shunya- vargana),
 21. सूक्ष्मनिगोद वर्गणा Fine- common- body (-molecule, Shukshma Nigoda- vargana)
 22. नमोया शून्य वर्गणा Sphere (-molecule, Nabho- vargana), and
 23. महारक्तं वर्गणा Great (-molecule, Maha- Skandha- vargana),
 1. अणु वर्गणा = एक-एक परमाणुओं को अणुवर्गणा कहते हैं।
 2. संख्याताणु वर्गणा = द्वयणुक से लेकर एक-एक परमाणु बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट संख्यात परमाणुओं के स्कन्ध पर्यन्त संख्याताणु वर्गणा है।
 3. असंख्याताणु वर्गणा = जघन्य परितासंख्यात परमाणुओं से लेकर एक-एक अणु बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात परमाणुओं के स्कन्ध पर्यन्त असंख्याताणु वर्गणा है।

4. अनन्ताणु वर्गणा = संख्याताणु वर्गणा और असंख्याताणु वर्गणा में विवक्षित वर्गणा को लाने के लिए गुणाकार नीचे की वर्गणा से विवक्षित वर्गणा में भाग देने से जो प्रमाण आवे उतना है। जैसे त्र्यणुक लाने के लिए द्वयणुक का गुणाकार द्वयणुक से त्र्यणुक में भाग देने पर जितना प्रमाण आवे उतना है। उसके अनन्तर उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर अनन्ताणु का जघन्य होता है। उसे सिद्धराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण अनन्त से गुणा करने पर अनन्ताणु वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

5. आहार वर्गणा = उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की आहार वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे जघन्य में मिलाने पर आहार वर्गणा उत्कृष्ट होता है।

6. अग्राहा वर्गणा = उत्कृष्ट आहार वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राहा वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देकर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिला देने पर अग्राहा वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

7. तैजस वर्गणा = इसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की तैजसशरीरवर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने से जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर तैजसशरीरवर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

8. अग्राहा वर्गणा = उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राहा वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से गुणा करने पर अग्राहा वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

9. भाषा वर्गणा = उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की भाषा वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि, के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर भाषा वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

10. अग्राहा वर्गणा = उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राहा वर्गणा का जघन्य है। उससे अनन्तगुणा अग्राहावर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

11. मनो वर्गणा = उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की मनो वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसीमें मिला देने पर मनो वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

12. अग्राहा वर्गणा = उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राहा वर्गणा का जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट है।

13. कार्मण वर्गणा = उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की कार्मणवर्गणा का जघन्य है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर कार्मणवर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

14. ध्रुव वर्गणा = उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की ध्रुव वर्गणा का जघन्य है। उसे अनन्तजीवराशि से गुणा करने पर ध्रुव वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

15. सान्तरनिरन्तर वर्गणा = उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की सान्तरनिरन्तर वर्गणा का जघन्य है। उसे अनन्तजीवराशि से गुणा करने पर उसका उत्कृष्ट होता है। यहाँ इतना विशेष है कि परमाणु वर्गणा से लेकर सान्तरनिरन्तर वर्गणा पर्यन्त पन्द्रह वर्गणाओं का समानधन अनन्तगुणे पुदगलों को वर्गमूल प्रमाण होने पर भी क्रम से विशेषहीन है। उनका प्रतिभागहार सिद्धराशि का अनन्तवाँ भाग है।

16. शून्य वर्गणा = उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तर वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की शून्य वर्गणा का जघन्य होता है। उससे अनन्तगुणी जीवराशि के प्रमाण से गुणा करने पर उसका उत्कृष्ट होता है।

17. प्रत्येक शरीर वर्गणा = इससे ऊपर प्रत्येक शरीर वर्गणा है। एक जीव के

एक शरीर के विस्त्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म के स्कन्ध को प्रत्येक शरीर वर्गणा कहते हैं। शून्य वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। जिसके कर्म के अंश क्षय रूप हुए हैं ऐसा कोई क्षतिकर्मांश जीव एक पूर्व कोटि वर्ष आयु लेकर मनुष्य जन्म धारण करके अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम को एक साथ स्वीकार करके सयोगकेवली हुआ। वह कुछ कम एक पूर्व कोटि पर्यन्त औदारिक शरीर और तैजस शरीर की अवस्थिति गणना के अनुसार निर्जरा करता हुआ और कार्मण शरीर की गुणश्रेणिनिर्जरा करता हुआ अयोगकेवली के चरम समय को प्राप्त हुआ। उसके आयु कर्म औदारिक और तैजस शरीर के साथ नाम, गोत्र, वेदनीय कर्म के परमाणुओं का समूह रूप जो तीन शरीरों का स्कन्ध होता है वह जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। इस जघन्य को पल्य के असंख्यातर भाग से गुणा करने पर उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। नन्दीश्वर द्वीप के अकृत्रिम महाचैत्यालयों के धूपघटों में और स्वयम्भूरमण द्वीप में उत्पन्न दावानि में असंख्यात आवली के वर्ग प्रमाण बादर पर्याप्त तैजसकायिक जीवों के शरीरों का एक स्कन्ध रूप हैं। उनमें गुणित कर्मांश जीव बहुत अधिक होने पर भी आवली के असंख्यातर भागमात्र हैं। उनका औदारिक तैजस कार्मण शरीरों का विस्त्रसोपचय सहित उत्कृष्ट संचय उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा है।

18. ध्रुवशून्य वर्गणा = उसमें एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा होती है। इस जघन्य को सब मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रमाण को असंख्यात लोक से भाग देने पर जो प्रमाण आवे उससे गुणा करने पर उत्कृष्ट भेद होता है।

19. बादरनिगोद वर्गणा = उससे एक परमाणु अधिक बादरनिगोद वर्गणा है। बादरनिगोदिया जीवों के विस्त्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म परमाणुओं के एक स्कन्ध को बादरनिगोद वर्गणा कहते हैं। वह कहाँ पायी जाती है यह कहते हैं - क्षपित कर्मांश लक्षणवाला कोई जीव एक पूर्वकोटि वर्ष की आयुवाला मनुष्य हुआ। अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम की एक साथ धारण करके कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष पर्यन्त कर्मों की उत्कृष्ट गुणश्रेणी निर्जरा करते हुए जब सिद्ध पद प्राप्त करने में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब क्षपक क्षेणी पर आरोहण करके कर्मों की उत्कृष्ट निर्जरा करता हुआ क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हुआ। उसके शरीर में जघन्य और उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातर भागमात्र पुलवी एक बन्धनवद्ध होती है, क्योंकि सब स्कन्धों में पुलवी असंख्यातलोकमात्र कहे हैं। एक-एक पुलवी में असंख्यातलोकप्रमाण शरीर होते हैं। सो आवली के असंख्यातर भाग को असंख्यात लोक से गुणा करने पर शरीरों का प्रमाण होता है। उस शरीरों के प्रमाणों को एक शरीर में रहने वाले निगोदिया जीवों के प्रमाण से गुणा करनेपर जितना प्रमाण हो

उतना एक स्कन्ध में निगोदिया जीवों का प्रमाण जानना। इनमें से क्षीणकषाय गुणस्थान के प्रथम समय में अनन्त जीव स्वयं आयु पूरी होने से मरते हैं। दूसरे समय में पहले समय में मरे हुए जीवों के प्रमाण में आवली के असंख्यातर भाग से भाग देकर जो प्रमाण आवे उतने अधिक जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीणकषाय गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर आवली पृथक्त्वकाल तक आवली के असंख्यातर भाग अधिक जीव प्रतिसमय क्रम से तब तक मरते हैं जब तक क्षीणकषाय गुणस्थान का काल आवली के असंख्यातर भाग मात्र शेष रहता है। उसके अनन्तर समय में पल्य के असंख्यातर भाग से गुणित जीव मरते हैं। उसके पश्चात् पूर्व-पूर्व समय में मरे जीवों को संख्यात पल्य से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने-उतने जीव क्षीणकषाय, गुणस्थान के अन्तिम समयपर्यन्त प्रतिसमय मरते हैं। सो अन्त के समय में अलग-अलग असंख्यात लोकमात्र शरीरों युक्त आवली के असंख्यातर भाग पुलवियों में जो गुणितकर्मांश जीव मरे उनसे हीन शेष जो अनन्तानन्त जीव गुणित कर्मांश रहे उनके विस्त्रसोपचय सहित जो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर के परमाणुओं का स्कन्ध है वह जघन्य बादरनिगोद वर्गणा है।

20. ध्रुवशून्य वर्गणा = इसमें एक परमाणु हीन करने पर उत्कृष्ट ध्रुव शून्य वर्गणा होती है।

21. सूक्ष्मनिगोद वर्गणा (उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा) :- इस जघन्य को जगत् श्रेणी के असंख्यातर भाग से गुणा करने पर उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा है। स्वयम्भूरमणद्वीप में जो मूलक आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतियों के शरीर हैं उनमें एक बन्धनवद्ध जगत् श्रेणी के असंख्यातर भागप्रमाण पुलवियों में रहने वाले गुणितकर्मांश अनन्तानन्त बादरनिगोद जीवों का विस्त्रसोपचय सहित औदारिक तैजस कार्मणशरीर का उत्कृष्ट शरीर है वह उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा है। उसमें एक परमाणु अधिक होने पर तीसरी शून्य वर्गणा का जघन्य होता है। वह कैसे है सो कहते हैं - जल-थल अथवा आकाश में एक बन्धनवद्ध आवली के असंख्यातर भाग पुलवियों में क्षपितकर्मांश अनन्तानन्त सूक्ष्मनिगोद जीव रहते हैं उनके विस्त्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर का संचय सूक्ष्मनिगोद जघन्य वर्गणा है। उसमें एक परमाणु हीन करने पर तीसरी शून्यवर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

शंका - बादरनिगोद वर्गणा के उत्कृष्ट में पुलवियाँ श्रेणी के असंख्यातर भाग कही हैं और सूक्ष्मनिगोद वर्गणा के जघन्य में आवली के असंख्यातर भाग कही हैं। अतः बादरनिगोद वर्गणा से पहले सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होनी चाहिए, क्योंकि पुलवियों का प्रमाण बहुत होने से परमाणुओं का प्रमाण बहुत होना सम्भव है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि वादरनिगोद वर्गणा के शरीरों से सूक्ष्मनिगोद वर्गणा के शरीरों का प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे वहाँ जीव भी बहुत है। अतः उन जीवों के तीन शरीर सम्बन्धी परमाणु भी बहुत हैं। जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा को पल्ट्ये के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होती है। सौ कैसे, 'यह कहते हैं।'

महामत्त्य के शरीर में एक बन्धनबद्ध आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियों में स्थित गुणितकर्मांश अनन्तानन्त जीवों के विस्रोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्मण शरीरों के परमाणुओं का रकन्ध है वही उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होती है।

22. शून्य वर्गणा (नभो वर्गणा) = उसमें एक परमाणु अधिक करने पर नभो वर्गणा का जघन्य होता है। इसको जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर नभो वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

23. महारकन्ध वर्गणा = उसमें एक बढ़ाने पर महारकन्ध वर्गणा का जघन्य होता है। इसमें उसी का पल्ट्य का असंख्यातवाँ भाग बढ़ाने पर महारकन्ध वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्योभूताच्च प्राची । (14)

भूत, भविष्यत् वर्तमान इन तीनों समयों में सूर्य के संयोग से प्राचो या पूर्व कहते हैं।

तथा दक्षिण प्रतीच्युदीची च । (15)

जैसे सूर्य के उदय का सम्बन्ध पूर्व दिशा से है, वैसे ही सूर्य छुपाने वाली दिशा को पश्चिम कहते हैं। सूर्य की ओर मुख करके खड़े होने पर यह दिशा पीठ पीछे रहती है। दाहिनी ओर रहे वह दक्षिण और बायी ओर रहे वह उत्तर दिशा कही जाती है।

श्रोत प्रहणे योऽर्थः स शब्दः । (21) वै.द.पृ 83

शब्द उसे कहते हैं जिसे कान सुन ले। अथवा शब्द कान से ही सुना जा सकता है। सभी इन्द्रियों के अपने-अपने नियत विषय है। नेत्र का कार्य देखना, जिह्वा का कार्य रस ग्रहण करना या आस्वादन करना, त्वचा का कार्य रूपर्श अनुभव करना, हाथों का कार्य वोझ उठाना अथवा अन्य कार्य करना, पाँवों का कार्य चलना फिरना नासिका का कार्य सूंधना है, वैसे ही कानों का कार्य शब्द को ग्रहण करना है। क्योंकि शब्द नेत्र या अन्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार देखना, सूंधना रसास्वादन करना, रूपर्श अनुभव करना आदि कार्य कान नहीं कर सकते। वे तो केवल शब्द को ही ग्रहण कर सकते हैं और शब्द आकाश का गुण है, इसलिये कानों का आकाश तत्व द्वारा उत्पन्न होना माना जाता है।

अध्याय - 4

23 वर्गणाओं का विशेष वर्णन

वर्गणादव्वसमुदाहरे त्ति तथ्य इमाणि चोद्वस अणुयोगद्वाराणिवग्रगणापरुवणा वग्रगणाणिरुवणा वग्रगणा ध्रुवाध्रुवाणुगमो वग्रगणासांतरणिरंतराणुगमो वग्रगणाओज जुम्माणुगमो वग्रगणा खेत्ताणुगमो, वग्रगणा फोसणाणुगमो वग्रगणाकालाणुगमो वग्रणाअंतराणुगमो वग्रणाभावाणुगमो वग्रणाउवणयणाणुगमो वग्रणापरिमाणाणुगमो वग्रणाभागाभागाणुगमो वग्रणाअप्पावहुए त्ति (75)

(षटखंडागम : खंड-5, पुरस्तक - 14, पृ. 53)

वर्गणाद्रव्य समुदाहर का प्रकरण है। उसमें ये चौदह अनुयोगद्वारा हैं (1) वर्गण प्ररुपणा, (2) वर्गणानिरुपणा, (3) वर्गण ध्रुवाध्रुवानुगम, (4) वर्गणासान्तर - निस्तरानुगम, (5) वर्गण ओजयुग्मानुगम, (6) वर्गणाक्षेत्रानुगम, (7) वर्गणारपर्शानुगम, (8) वर्गणाकालानुगम, (9) वर्गणाअन्तरानुगम, (10) वर्गणाभावानुगम, (11) वर्गणाउपनयनानुगम, (12) वर्गणापरिणानुगम, (13) वर्गणाभागाभागानुगम और (14) वर्गणाअल्पवहुत्वानुगम

(1) अणुवर्गण :-

वग्रणपरुवणदाए इमा एयपदेसियपरमाणुपोमाल दव्ववग्रणा णाम । (76)

(ध.पृ. 14 पृ. 54)

वर्गणा की प्ररुपणा करने पर यह एक प्रदेशी परमाणु पुद्गलद्रव्यवर्गणा है। यहाँ सर्वप्रथम श्रेणि का अवलम्बन लेकर वर्गणा का कथन करते हैं - एक प्रदेशी पुद्गलद्रव्यवर्गणा परमाणु स्वरूप होती है, अन्यथा 'एक प्रदेशी' यह विशेषण नहीं बन सकता।

शंका - परमाणु अप्रत्यक्ष होता है, क्योंकि, 'उसका इन्द्रियों द्वारा ग्रहण नहीं होता' ऐसा सूत्रवचन है। इसलिए उसके लिये सूत्र में 'इमा' ऐसा प्रत्यक्ष निर्देश नहीं बन सकता?

समाधान - नहीं, क्योंकि, आगम-प्रमाण से सिद्ध परमाणु विषयक ज्ञान के प्रत्यक्ष रूप होने पर 'इमा' इस प्रकार प्रत्यक्ष निर्देश बन जाता है।

शंका :- परिकर्म में परमाणु को अप्रदेशी कहा है परन्तु यहाँ पर उसे एकप्रदेशी कहा है, इसलिए इन दोनों सूत्रों में विरोध करने नहीं होगा ?

समाधान :- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि परमाणु के एकप्रदेश को छोड़कर द्वितीयादि प्रदेश नहीं होते इस बात का परिकर्म में निषेध किया है। जिसमें द्वितीयादि प्रदेश नहीं है वह अप्रदेश परमाणु है यह उसकी व्युत्पत्ति है। यदि 'अप्रदेश' पद का यह अर्थ न किया जाय तो जिस प्रकार गधे के सींगों का असत्त्व है उसी प्रकार परमाणु के भी असत्त्व का

प्रसंग आता है।

शंका :- परमाणु पुद्गल रूप है यह वात कैसे सिद्ध होती है?

समाधान :- उसमें अन्य पुद्गलों के साथ मिलने की शक्ति सम्भव है, इससे सिद्ध होता है कि परमाणु पुद्गलरूप है।

शंका :- परमाणु सदा काल परमाणु रूप से अवस्थित नहीं रहते इसलिये उनमें द्रव्यपना नहीं बनता?

समाधान :- नहीं, क्योंकि, परमाणुओं का पुद्गल - रूप से उत्पाद और विनाश नहीं होता इसलिये उनमें भी द्रव्यपना सिद्ध होता है।

वैज्ञानिक समीक्षा :- जिस प्रकार गणित में एक सम्पूर्ण संख्याओं/गणनाओं के लिए मूलभूत इकाई है उसी प्रकार भौतिक, रासायनिक, ब्रह्माण्डीय, वर्गण, रक्ंध, कर्म-सिद्धान्त आदि की मूलभूत इकाई परमाणु है। परमाणु अविभाज्य, इन्द्रिय एवं यन्त्रों से अदृश्य, अज्ञात होते हुए भी इसकी वास्तविक सत्ता है। जिस प्रकार रेखागणित में विन्दू की मोटाई, लंबाई, चौड़ाई नहीं होते हुए भी उसकी सत्ता है। विन्दू से ही सम्पूर्ण रेखागणित का अस्तित्व है। इसी प्रकार परमाणु से ही समस्त भौतिक जगत् का अस्तित्व है। परमाणु का वर्णन इस शोधपूर्ण कृति में यत्र-तत्र-सर्वत्र किया है इसीलिए यहाँ पर विस्तार से वर्णन नहीं कर रहा हूँ।

(2) संख्याताणुवर्गण :-

इमा द्विप्रदेशियपरमाणु पोग्गलदव्ववग्गणा णाम (77) (ध.पु. 14, पृ. 55)

यह द्विप्रदेशी परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा है। अजघन्य स्तिंघ और रुक्ष गुणवाले दो परमाणुओं के समुदायसमागम से द्विप्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा होती है।

शंका :- परमाणुओं का समागम क्या एकदेशन होता है या सर्वात्मना होता है? सर्वात्मना तो हो नहीं सकता है, क्योंकि, ऐसा होने पर अनन्त परमाणुओं का भी यदि समागम हो जाय तो भी परमाणुमात्र परिणाम प्राप्त होता है। पर ऐसा है नहीं, क्योंकि, ऐसा होने पर परमाणु-वर्गणा के सिवा शेष सब वर्गणाओं का अभाव प्राप्त होता है। एकदेशन समागम भी नहीं बनता, क्योंकि, ऐसा होने पर परमाणु सावयंव प्राप्त होता है। यदि परमाणु को सावय भाना जाता है तो अनवरथा दोष आता है। अनवरथा नहीं आवें यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा होने पर सब स्थूल कार्यों की अनुत्पत्ति का प्रसंग आता है और एकप्रदेशी दो परमाणुओं के सर्वात्मना समागम को छोड़कर एकदेशन समागम बन नहीं सकता, क्योंकि, परमाणु के द्वितीयदि प्रदेश नहीं पाये जाते?

समाधान :- यहाँ इस शंका का समाधान करते हैं कि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन करने पर दो परमाणुओं का कथंचित् सर्वात्मना समागम होता है, क्योंकि,

परमाणु निरवयव होता है। जो परमाणु जिस कार्य के आरम्भक होते हैं वे उसके अवयव होते हैं और उनके द्वारा आरम्भ किया गया कार्य अवयवी होता है। परमाणु अन्य से उत्पन्न होता है, यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, उसके आरम्भक अन्य पदार्थ नहीं पाये जाते। और यदि उसके आरम्भक अन्य पदार्थ होते हैं ऐसा माना जाता है तो यह परमाणु नहीं ठहरता, क्योंकि, इस तरह इससे भी सूक्ष्म अन्य पदार्थों का सद्भाव सिद्ध होता है। एक संख्या वाले परमाणु में द्वितीयादि संख्या होती है यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, एक को दो रूप मानने में विरोध आता है। दूसरी वात यदि परमाणु के अवयव होते हैं ऐसा माना जाय तो परमाणु को अवयवी होना चाहिये, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अवयव के विभाग द्वारा अवयवों के संयोग का विनाश होने पर परमाणु का अभाव प्राप्त होता है। पर ऐसा है नहीं, क्योंकि, कारण का अभाव होने से सब स्थूल कार्यों का भी अभाव प्राप्त होत है। परमाणु के कल्पित रूप अवयव होते हैं, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस तरह मानने पर अव्यवरथा प्राप्त होती है। इसलिये परमाणु को निरवयव होना चाहिये। अतः सिद्ध होता है कि परमाणुओं का कथंचित् सर्वात्मना समागम होता है। निरवयव परमाणुओंसे स्थूल कार्य की उत्पत्ति नहीं बनेगी यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, निरवयव परमाणुओं के सर्वात्मना समागम से स्थूल कार्य की उत्पत्ति होने में कोई विरोध नहीं आता।

पर्यार्थिकन्य का अवलम्बन करनेपर कथंचित् एकदेशन समागम होता है। परमाणु के अवयव नहीं होते यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, यदि उसके उपरिम, अधर्त्तन, मध्यम और उपरिमोपरिम भाग न हों तो परमाणु का ही अभाव प्राप्त होता है। ये भाग कल्पितरूप होते हैं यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, परमाणु में उदर्भभाग, अधोभाग और मध्यभाग तथा उपरिमोपरिमभाग कल्पना के विना भी उपलब्ध होते हैं। तथा परमाणु के अवयव हैं इसलिये उनका सर्वत्र विभाग ही होना चाहिये ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, इस तरह मानने पर तो सब वस्तुओं के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। जिनका भिन्न-भिन्न प्रमाणों से ग्रहण होता है, और जो भिन्न-भिन्न दिशा वाले हैं वे एक हैं यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, ऐसा मानने पर विरोध आता है। अवयवों से परमाणु नहीं बना है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, अवयवों के समूहरूप ही परमाणु दिखाई देता है। तथा अवयवों के संयोग का विनाश होना चाहिये यह भी कोई नियम नहीं है, क्योंकि, अनादि संयोग के होने पर उसका विनाश नहीं होता। इसलिये द्विप्रदेशी परमाणु पुद्गल द्रव्यवर्गण सिद्ध होती है। यह प्ररूपण आगे सर्वत्र करनी चाहिये।

विशेषार्थ :- यहाँ प्रसंग से परमाणु सावयव है कि निरवयव इस वात का विचार किया गया है। परमाणु एक और अखण्ड है, इसलिये तो वह निरवयव भाना गया है और

उसमें उर्ध्वादि भाग होते हैं इसलिये वह सावयव माना गया है। द्रव्यार्थिकन्य अखण्ड द्रव्य को स्वीकार करता है और पर्यार्थिकन्य उसके भेदों को स्वीकार करता है। यही कारण है कि द्रव्यार्थिकन्य की अपेक्षा परमाणु को निरवयव कहा है और पर्यार्थिकन्य की अपेक्षा सावयव कहा है। परमाणु का यह विश्लेषण केवल बुद्धि का व्यायाम नहीं है, किन्तु वास्तविक है ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

वैज्ञानिक समीक्षा :- भारत में जिस प्रकार आध्यात्मिक विद्या का प्रचार-प्रसार हुआ उसी प्रकार भारत में गणित का भी प्रचार-प्रसार हुआ। उसमें भी जैन धर्म में जो विशेष करके लौकिक गणित से भी श्रेष्ठ अनंत आयाम एवं विस्तार से युक्त अलौकिक गणित है वह अन्यत्र प्रायः दुर्लभ एवं नहीं के बराबर है। जैन धर्म के अनुसार गणित (मान) के मुख्य तीन भेद है - (1) संख्यात (2) असंख्यात (3) अनंत। एक से लेकर मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी के द्वारा जानने योग्य गणित को/संख्या को संख्यात कहते हैं। अवधिज्ञानी मनःपर्यायज्ञानी द्वारा जानने योग्य गणित/संख्या को असंख्यात कहते हैं और केवल द्वारा जानने योग्य गणित/संख्या को अनंत कहते हैं अर्थात् इसे अन्य प्रकार से कहने पर यह होगा जघन्य अनंत से एक कम करने पर उत्कृष्ट असंख्यात होगा। जघन्य असंख्यात से एक कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात होगा अर्थात् एक से लेकर जघन्य असंख्यात त्रयं एक तक संख्यात में गर्भित होगा। (उत्कृष्ट संख्यात = जघन्य असंख्यात - 1) (संख्यात = 1 से लेकर के जघन्य असंख्यात - 1) इसी कृति में इस प्रकार गणित का वर्णन यत्र-तत्र-सर्वत्र किया गया है इसीलिए यहाँ पर विस्तार से वर्णन नहीं कर रहा हूँ।

(3-4) असंख्यात एवं अनन्ताणुवर्गणा :-

एवं तिपदेसिय - चदुपदेसिय - पंचपदेसिय - छपदेसिय - सत्तपदेसिय - अट्टपदेसिय - णवपदेसिय - दसपदेसिय - संखेज्जपदेसिय - असंखेज्जपदेसिय परित्तपदेसिय - अपरित्तपदेसिय - अणंतपदेसिय - अणंताणंतपदेसिय परमाणुपोमालदव्ववग्गाणाणम्। (78)(ध, पु, 14, पृ, 57)

इस प्रकार त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, पञ्चप्रदेशी, षट्प्रदेशी, सप्तप्रदेशी, अष्टप्रदेशी, नवप्रदेशी, दशप्रदेशी, संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी, परित प्रदेशी, अपरित प्रदेशी अनन्त प्रदेशी और अनन्तानन्त प्रदेशी परमाणुपुद्गलद्रव्य वर्गणा होती हैं।

पहले कही गई एकप्रदेशी परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा एक प्रकार की होती है तथा द्विप्रदेशी परमाणु पुद्गलद्रव्यवर्गणा से लेकर उत्कृष्ट संख्यात प्रदेशी द्रव्यवर्गणा तक यह सब संख्यातप्रदेशी द्रव्यवर्गणा हैं। इसके एक कम उत्कृष्ट संख्यात भेद होते हैं। इस प्रकार ये दो वर्गणायें हुई (2)

उत्कृष्ट संख्यात प्रदेशी परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर जघन्य

असंख्यात प्रदेशी द्रव्य वर्गणा होती हैं। पुनः उत्तरोत्तर एक-एक के मिलाने पर असंख्यात प्रदेशी द्रव्यवर्गणायें होती हैं और ये सब उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात प्रदेशी द्रव्यवर्गणा के प्राप्त होने तक होती हैं। उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में से उत्कृष्ट संख्यात के न्यून करने पर शेष में जितने रूप (अंक) हैं उतनी ही असंख्यात प्रदेशी वर्गणायें होती हैं। ये संख्यातप्रदेशी वर्गणाओं से असंख्यातगुणी होती हैं। गुणकार क्या है? असंख्यातलोक गुणकार हैं। ये सब ही तीसरी असंख्यातप्रदेशी वर्गणा हैं। (3) सूत्र में कही गई परीतवर्गणायें और अपरीतवर्गणायें अनन्तप्रदेशी वर्गणाओं में ही सम्मिलित हैं, क्योंकि, अनन्त और अनन्तानन्त से अतिरिक्त परीत और अपरीत संख्या उपलब्ध नहीं होता। इसलिये अनन्त के विशेषण रूप से ही परीत और अपरीत के निर्देश का कथन करना चाहिये।

उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यातप्रदेशी परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर जघन्य अनन्तप्रदेशी परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा होती है। पुनः क्रम से एक-एक की वृद्धि होते हुए अभ्यों से अनन्त गुने और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान आगे जाते हैं। अपने जघन्य से अनन्तप्रदेशी उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी होती है। गुणकार क्या है? अभ्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण गुणकार है।

सूत्र में आया हुआ 'परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा' शब्द त्रिप्रदेशी और चतुःप्रदेशी आदि पदों में सर्वत्र जोड़ना चाहिये, क्योंकि वह अन्तदीपक है। इस प्रकार यह अनन्तप्रदेशी द्रव्यवर्गणा चौथी है। (4)

ये सब वर्गणायें एक क्यों हैं? क्योंकि ये सब अनन्तरूप से एक हैं! ये चारों ही वर्गणायें अग्राह्य हैं।

विशेषार्थ :- प्रथम परमाणुवर्गणा, दूसरी संख्यातवर्गणा, तीसरी असंख्यातवर्गणा और चौथी अनन्तवर्गणा में चार प्रकार की वर्गणायें अग्राह्य हैं। इसका यह आशय है कि जीव द्वारा इनका ग्रहण नहीं होता। शेष कथन सुगम है।

वैज्ञानिक समीक्षा :- परमाणु से लेकर जो 23 वर्गणाएँ हैं उनमें से जीव हर वर्गणाओं को ग्रहण नहीं करता है। परमाणु से लेकर अनन्त तक की वर्गणाओं को ग्रहण नहीं करता है। केवल मध्यम प्रकार के अनन्तानन्त परमाणु के समूह स्वरूप योग्य वर्गणाओं को ही जीव ग्रहण करता है।

यहाँ प्रश्न होना स्वाभाविक है कि अनन्तानन्त परमाणु को छोड़कर संख्यात, असंख्यात, परमाणु कर्मरूप में परिणमन क्यों नहीं करते? इसका उत्तर देते हुए पूर्वाचार्यों ने कहा है कि अनन्तानन्त परमाणुओं के समूह स्वरूप वर्गणा को छोड़कर अन्य वर्गणा में कर्मरूप परिणमन की योग्यता नहीं होती है। यह तो हुआ आगमोक्त उत्तर। कुछ तार्किक दृष्टि से विचार करने पर यह सत्य सिद्ध भी होता है। तर्क यह है कि जब कर्म बन्ध होता है तब युगपत्

आत्मा के असंख्यात प्रदेश में कर्मवन्ध होते हैं। असंख्यात प्रदेश में युगपत् कर्मवन्ध होने के कारण युगपत् सम्पूर्ण आत्मप्रदेश में योग (परिस्पदन) एवं उपयोग (कषय भाव) का होना है। यदि एक साथ असंख्यात प्रदेश में कर्म बंधते हैं तब असंख्यात से कम परमाणु से तो कार्य ही नहीं है चलेगा। दूसरा तर्क यह है कि एक आत्मा अनादि से कर्मबद्ध होने के कारण एक-एक आत्मप्रदेश में अनंतानंत परमाणु बंधे हुए हैं। जो नये कर्म परमाणु बंधते हैं, वे प्राचीन कर्म परमाणु के साथ बंधते हैं। इसीलिए उन कर्म परमाणु के साथ बंधने के लिए अनंतानंत परमाणु की आवश्यकता होती है, और भी एक तर्क यह है कि प्रत्येक आत्मप्रदेश में अनंत ज्ञान, सुख वीर्य आदि मौजूद है। उन अनंत शक्तियों को पराभूत करने के लिए अनंत शक्ति की भी आवश्यकता होती है। इसलिए अनन्त शक्तिशाली जीव को पराभूत करके, बंधन में डालकर, संसार में परिप्रेषण कराने के लिए अनंतानन्त परमाणु की आवश्यकता होती है जैसे सामान्य पशु को बांधने के लिए सामान्य रस्सी से काम चल सकता है, परंतु विशेष शक्तिशाली पशु यथा सिंह, हाथी आदि के लिए विशेष रस्सी आदि की आवश्यकता होती है और एक तर्क यह है कि एक समय में जो कर्म वर्गणाएँ निर्जरित होती हैं, उस वर्गणा में अनंतानंत परमाणु रहते हैं। “व्यय के अनुसार आय” इस न्यायानुसार व्यय परमाणु अनंतानंत होने के कारण आय परमाणु भी अनंतानंत होने ही चाहिए।

जीव कौन - कौन सी वर्गणाओं को ग्रहण करता है इसका वर्णन इसी कृति में अन्यत्र किया गया है वहां से अवलोकनीय है।

(5) आहार द्रव्य वर्गणा :-

अणंतानंतपदेसियपरमाणुपोग्मालदव्ववगणामुवरि आहारदव्वगणा णाम (79)

(ध. पु. 14., पृ. 59)

अनन्तानन्तप्रदेशी परमाणु पुद्गल द्रव्यवर्गणा के ऊपर आहारद्रव्यवर्गणा है।

उत्कृष्ट अनन्तप्रदेशी द्रव्यवर्गणायें एक अंक के मिलाने पर जघन्य आहारद्रव्यवर्गणा है। फिर एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण भेदों के जाने पर अन्तिम आहार द्रव्यवर्गणा होती है। यह जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण होता हुआ भी उत्कृष्ट आहार द्रव्यवर्गणा अनन्तवें भाग प्रमाण है।

शंका :- यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान :- अविरुद्ध आचार्यों के वचन से जाना जाता है।

औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर के योग्य पुद्गल स्कन्धों की आहारद्रव्यवर्गणा संज्ञा है। इस प्रकार यह पाँचवीं वर्गणा है (5)

वैज्ञानिक समीक्षा :- एकेन्द्रिय वनस्पति कायिक, पृथ्वीकायिक, जलकायिक,

अग्निकायिक, वायुकायिक, द्विइन्द्रिय लट आदि से लेकर पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी मनुष्य के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। देव एवं नारकियों के शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते हैं। आहार ऋद्धिधारी मुनियों के मर-तक से एक अरली प्रमाण (मुड़ी बंधा हुआ एक हाथ प्रमाण) शुभ पवित्र शरीर निकलता है और केवली या श्रुत केवली के पादमूल में जाकर शंका समाधान करता है, उसे आहारक शरीर कहते हैं। इन उपर्युक्त शरीरों का निर्माण जिन मूल तत्त्वों से होता है, उसे आहारद्रव्य वर्गणा कहते हैं। सामान्यतः मानते हैं कि मनुष्य पशु-पक्षी आदि के शरीर के मूल तत्त्व रज-वीर्य हैं यह पूर्णतः सही नहीं है। इतना ही नहीं अभी जो वैज्ञानिक मानते हैं कि शरीर आदि के मूल तत्त्व जीनोम, डी.एन.ए., आर.एन.ए. आदि हैं यह भी पूर्णतः सही नहीं है। जीनोम, डी.एन.ए., आर.एन.ए. के लिए भी जो मूल कारण है वह है आहारक द्रव्य वर्गणा, कार्मण द्रव्य वर्गणा, मनो द्रव्य वर्गणा आदि। इस प्रकरण का भी वर्णन इसी कृति में अन्यत्र किया गया है वहां से अध्ययन करें।

आहारक समुद्धात : पद और पदार्थ में जिसे कुछ शंका उत्पन्न हुई हो उस परम ऋद्धि के धारक महर्षि के मर-तक में से मूल शरीर को न छोड़कर निर्मल रफ्टिक के रंग का एक हाथ का पुतला निकलकर अन्तर्मूहूर्त में जहाँ कहीं भी केवली, श्रुतकेवली को देखता है तब उन केवली के दर्शन से अपने आश्रय मुनि को पद और पदार्थ का निश्चय उत्पन्न करकर पुनः अपने स्थान पर प्रवेश कर जावे तो उसे आहारक समुद्धात कहते हैं।

आहारक समुद्धात में एक जीव के प्रदेश शरीर के प्रदेश से वाहर निकलने पर संख्यात योजन प्रमाण लंबे और सुच्यंगुल के संरव्यातवें भाग चौड़े ऊँचे क्षेत्र को रोकते हैं। इसका घन क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल होता है।

(6) अग्रहणद्रव्य वर्गणा :-

आहारदव्ववगणाणमुवरि अग्रहणदव्ववगणा णाम। (80) (ध.पु. 14, पृ. 59)

आहार द्रव्यवर्गणा के ऊपर अग्रहणद्रव्य वर्गणा है। उत्कृष्ट आहार द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर प्रथम अग्रहण द्रव्यवर्गणासम्बन्धी सर्वजघन्य वर्गणा होती है। फिर एक-एक बढ़ाते हुए अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण स्थान जाकर उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा होती है। यह जघन्य से उत्कृष्ट अनन्तगुणी होती है। गुणाकार क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणी और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण गुणाकार हैं। इस प्रकार यह छठी वर्गणा है। (6)

शंका - इन वर्गणाओं में एकत्व कैसे है?

समाधान - अग्रहणपने की अपेक्षा इनमें एकत्व है।

पाप शरीर तथा भाषा और मन के अयोग्य जो पुद्गलरकन्ध हैं उनकी अग्रहणवर्गणा संज्ञा है।

वैज्ञानिक समीक्षा :- पूर्व में भी बताया गया था कि जीव के द्वारा हर प्रकार की वर्गणायें कर्म आदि रूप में ग्रहणीय नहीं होती हैं, क्योंकि उस वर्गणा में ऐसी अवश्या/योग्यता/शक्ति नहीं होती है जिससे वह जीव के द्वारा ग्रहणीय हो सके, क्योंकि हर कार्य अंतरंग एवं बहिंसं कारण के सम्यक् सद्भाव एवं विरोध कारण के अभाव से होता है। जिस प्रकार चुम्बक ख्यात आकर्षण, ख्यात शक्ति के माध्यम से आकर्षित होने की शक्ति से युक्त लोहा को योग्य क्षेत्र में एवं परिस्थिति में ही आकर्षित करता है उसी प्रकार राग - द्वेष से युक्त जीवों के द्वारा योग्य वर्गणाओं को ही ग्रहण किया जाता है। चुम्बक में जिस प्रकार आकर्षण की शक्ति होने पर भी चुम्बक लकड़ी पत्थर आदि को आकर्षित नहीं कर सकता है अथवा चुम्बकीय क्षेत्र से वाहर स्थित लोहा को भी चुम्बक आकर्षित नहीं कर सकता है या मध्य में चुम्बकीय शक्ति को वाधा पहुँचाने वाला कोई द्रव्य होने पर भी आकर्षण नहीं होता है तथा विपरीत ध्रुव में आकर्षण होता है और सम ध्रुव से विकर्षण होता है। इसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये। ऐसा ही अन्य अग्राहा वर्गणा में होता है।

(7) तैजस शरीर द्रव्य वर्गणा :-

अग्रहणद्रव्यवग्मणाणमुवरि तेयादव्ववग्मणा णाम। (81) (ध.पु. 14, पृ. 60)

अग्रहणद्रव्यवर्गणा के ऊपर तैजस शरीरद्रव्यवर्गणा है।

उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर सबसे जघन्य तैजस शरीर द्रव्यवर्गणा होती है। पुनः एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्त गुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण रथान जाकर उत्कृष्ट तैजसशरीर द्रव्यवर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण है। यह सातवीं वर्गणा है। (7) इसके पुदगल - रकन्ध तैजस शरीर के योग्य होते हैं, इसलिये यह ग्रहणवर्गणा है।

वैज्ञानिक समीक्षा :- तैजस शरीर (विद्युतीय शरीर) दो प्रकार का होता है। (1) शुभ तैजस शरीर (2) अशुभ तैजस शरीर। छठवें गुणरथानवर्ती आहारक ऋद्धिधारी मुनियों को कोई विशेष शंका होती है और उस शंका का समाधान वहाँ स्थित किसी आचार्य आदि से प्रत्यक्ष रूप से नहीं हो पाता है। तब उनके मरत्तक से जो तैजस शरीर निकलता है उस शरीर को शुभ तैजस शरीर कहते हैं। अनिष्ट विचार से ऋद्धिधारियों का जो तैजस शरीर निकलता है उसे अशुभ तैजस शरीर कहते हैं। इसका सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार है -

तैजस समुद्घात (अशुभ)

अपने मन को अनिष्ट उत्पन्न करने वाले किसी कारण को देखकर क्रोधित संयम के निदान महामुनि के बाये कन्धें से सिन्दूर के ढेरे के समान कान्तिमान 12योजन (96 मील) लंबे सूच्यंगुल के संरव्यातभाग प्रमाण मूल विस्तार और 9 योजन (72 मील) के

अग्र विस्तार वाली कहाली के आकार का धारक पुरुष निकल करके वार्यों प्रदक्षिणा देकर मुनि, जिस पर क्रोधी हो उस विरुद्ध पदार्थ को भरम करके उसी मूनि के साथ आप भी भरम हो जावे इसको अशुभ तैजस समुद्घात कहते हैं।

शुभ तैजस समुद्घात :- यदि तैजस ऋद्धिधारी मुनि रोग दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित व्यक्तियों को देखकर दया भाव से प्रेरित होते हैं तब दायें कन्धे से श्वेत वर्ण का कान्तियुक्त 12 योजन (96 मील) लंबे सूच्यंगुल के संरव्यात भागप्रमाण मूल विस्तार और 9 योजन (72 मील) के अग्र विस्तार वाला कहाली के आकार का धारक पुरुष निकलकर के उस क्षेत्र को रोग और दुर्भिक्ष आदि से रहित कर देता है तथा शुभ भाव से शुभ तैजस शरीर निकलने के कारण शुभ तैजस दूसरों का उपकार करता है तथा मुनिराज को किसी भी प्रकार की क्षति नहीं होती है। कुछ आचार्यों के मतानुसार द्वीपायन मुनि को जव यादव कुमारों ने अत्यन्त पीड़ा दी जब द्वीपायन मुनि क्रोधित हुए जिससे अशुभ तैजस निकलकर पूरी द्वारिका नगरी को भरम कर दिया। हिन्दू धर्म में भी द्वारिका का भरम तपस्वियों के अभिशाप से हुआ इस प्रकार का वर्णन पाया जाता है।

उपरोक्त शरीर का निर्माण तैजस शरीर द्रव्य वर्गणा से होता है। भले इस शरीर का आकार छोटा हो, परन्तु वह शरीर अत्यन्त संघन शरीर होता है और उसमें जो परमाणु होते हैं उन परमाणु की संख्या रथूल मनुष्य एवं पशुओं के शरीर के परमाणु से भी अनन्तगुणी ज्यादा है। केवल परमाणु की संख्या ही अधिक नहीं है उसकी ऊर्जा/शक्ति भी औदारिक शरीर से अधिक है इसलिए जो कार्य औदारिक शरीर से नहीं हो पाता है वह कार्य इस तैजस शरीर से संभव हो पाता है। इसका सविस्तार वर्णन मेरी पुस्तक 'अतिमानवीय शक्ति' में अवलोकनीय है।

(8) दूसरी अग्रहण द्रव्य वर्गणा :-

तेयादव्ववग्मणाणमुवरि अग्रहणद्रव्यवग्मणा णाम। (82) (ध. पु. 14, पृ. 60)

तैजसशरीरद्रव्यवर्गणाओं के ऊपर अग्रहण द्रव्य वर्गणा है।

उत्कृष्ट तैजसशरीर द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर दूसरी अग्रहण द्रव्यवर्गणासंबंधी पहली सर्वजघन्य अग्रहणद्रव्यवर्गणा होती है। फिर आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण रथान जाकर दूसरी अग्रहणद्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। यह अपनी जघन्य वर्गणा से अपनी उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी है। गुणाकार क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण गुणाकार है। यह आठवीं वर्गणा है। (8) यह पाँच शरीरों के ग्रहण योग्य नहीं है इसलिये इसकी अग्रहण द्रव्यवर्गणा संज्ञा है।

शंका:- जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी है यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान :- अवस्थित आचार्यवचन से जाना जाता है।

(९) भाषा द्रव्यवर्गण :-

अग्रहणद्रव्यवगमणाणमुवरि भासादव्यवगमणा णाम । (८३)

(ध, पु, १४, पृ, ६१)

अग्रहण द्रव्यवर्गणाओं के ऊपर भाषा द्रव्यवर्गण है। उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गण में एक अंक के प्रक्षिप्त करने पर सबसे जघन्य भाषा द्रव्यवर्गण होती है। इससे आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण रथान जाकर भाषा द्रव्यवर्गण सम्बन्धी उत्कृष्ट द्रव्यवर्गण होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण कितना है? अपनी जघन्य वर्गण का अनन्तवाँ भाग विशेष का प्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? अभव्यों से अनन्त गुणा और सिद्धों का अनन्तवाँ भाग प्रतिभाग है। यह नौवी वर्गण है। (९) भाषा द्रव्यवर्गण के परमाणु पुद्गलरक्तरन्ध चारों भाषाओं के योग्य होते हैं तथा ढोल, भेरी, नगाड़ा और मेघ का गर्जन आदि शब्दों के भी योग्य ये ही वर्गणायें होती हैं।

शंका :- नगाड़ा आदि के शब्दों की भाषा संज्ञा कैसे है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि भाषा के समान होने से भाषा है इस प्रकार से उपचार से नगाड़ा आदि के शब्दों की भी भाषा संज्ञा है।

भाषा वर्गण का विशेष वर्णन

मुखादि से बाहर निकालने से पूर्व ग्राह्य भाषा द्रव्यों के विभिन्न रूप :- यह तो पहले बताया बताया जा चुका है कि जीव भाषा निकालने से पूर्व भाषा के रूप में परिणित करने के लिए भाषाद्रव्यों को अर्थात् भाषावर्गण के पुद्गलों को ग्रहण करता है। इन तीन सूत्रों में इन्हीं ग्राह्य भाषाद्रव्यों की चर्चा का निष्कर्ष क्रमशः इस प्रकार है -

- (१) जीव स्थित (स्थिर, हलन-चलन से रहित) द्रव्यों को ग्रहण करता है अस्थिर (गमन-क्रियायुक्त) द्रव्यों को नहीं।
- (२) वह स्थित द्रव्यों को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से ग्रहण करता है। (प्रज्ञापनासूत्र द्वि. खण्ड पृ. ८२)
- (३) द्रव्य से एकप्रदेशी (एक परमाणु) से लेकर असंख्यातप्रदेशी भाषाद्रव्यों को ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वे स्वभावतः आग्राह्य होते हैं, किन्तु अनन्तप्रदेशी द्रव्यों को ही ग्रहण करता है, क्योंकि अनन्त परमाणुओं से बना हुआ रक्तरन्ध ही जीव द्वारा ग्राह्य होता है।
- (४) क्षेत्र से भाषारूप में परिणमन करने के लिए ग्राह्य भाषाद्रव्य आकाश के एक प्रदेश से लेकर संख्यात प्रदेशों में अवगाह वाले नहीं होते, किन्तु असंख्यात प्रदेशों में

अवगाह होते हैं।

- (५) काल से वह एक समय की स्थिति वाले भाषाद्रव्यों से लेकर असंख्यात समय की स्थिति वाले भाषाद्रव्यों तक को ग्रहण करता है, क्योंकि पुद्गलों (अनन्तप्रदेशी रक्तरन्ध) की अवस्थिति (हलन-चलन से रहितता) जघन्य एक समय तक और उत्कृष्ट असंख्यात समय तक रहती है।
- (६) भाव से, भाषा रूप में ग्राह्य द्रव्य वर्ण, गन्ध, रस और रस्पर्श वाले होते हैं।
- (७) भावतः वर्ण वाले जिन भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है वे ग्रहण करता है। वे ग्रहणयोग्य पृथक्-पृथक् द्रव्यापेक्षया कोई एक, कोई दो, यावत् कोई पाँच वर्णों से युक्त होता है। किन्तु सर्वग्रहणापेक्षया अर्थात् ग्रहण किये हुए समर्त द्रव्यों के समुदाय की अपेक्षा से वे नियमतः पाँच वर्णों से युक्त होते हैं।
- (८) वर्ण की अपेक्षा से भाषारूप में परिणित करने हेतु एकगुण कृष्ण से लेकर अनन्तगुण कृष्ण भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है। इसी प्रकार रक्त, पीत, शुक्ल वर्णों के विषय में समझ लेना चाहिए।
- (९) ग्रहणयोग्यद्रव्यापेक्षया एक गन्ध वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, किन्तु सर्वग्रहणापेक्षया दो गन्धवाले द्रव्यों को ही ग्रहण करता है।
- (१०) एकगुण सुगन्ध वाले से लेकर यावत् अनन्तगुण सुगन्ध वाले भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है, तथैव एकगुण दुर्गन्ध से लेकर अनन्तगुण दुर्गन्ध तक के भाषापुद्गलों को ग्रहण करता है।
- (११) ग्रहणयोग्य द्रव्यों की अपेक्षा से एक रस वाले भाषाद्रव्यों को भी ग्रहण करता है, विन्तु सर्वग्रहणापेक्षया नियमतः पाँच रसों वाले भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है।
- (१२) भाषा के रूप में परिणित करने हेतु एकगुण तिक्तरस वाले से लेकर अनन्तगुण तिक्तरस वाले भाषाद्रव्यों तक को ग्रहण करता है। इसी प्रकार कटु कषाय, अम्ल और मधुर रसों वाले भाषाद्रव्यों के विषय में समझना चाहिए।
- (१३) भावतः रस्पर्श वाले जिन द्रव्यों को भाषारूप में परिणित करने हेतु जीव ग्रहण करता है, वे भाषाद्रव्य ग्रहणद्रव्यापेक्षया एकरस्पर्शी नहीं होते, क्योंकि एक परमाणु में दो रस्पर्श अवश्य होते हैं। अतः वे द्रव्य द्विरस्पर्शी, त्रिरस्पर्शी या चतुरस्पर्शी होते हैं, किन्तु पंचरस्पर्शी से लेकर अष्टरस्पर्शी तक नहीं होते। सर्वग्रहण की अपेक्षा से नियमतः शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष चतुरस्पर्शी भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है।
- (१४) शीतरस्पर्श वाले जिन भाषाद्रव्यों को भाषारूप में परिणित करने हेतु जीव ग्रहण करता है वे एकगुण शीतरस्पर्श वाले यावत् अनन्तगुण शीतरस्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध और रुक्षरस्पर्श वाले भाषाद्रव्यों के विषय में समझना चाहिए।

- (15) एकमुण्ण कृष्णवर्ण से लेकर अनन्तगुण रुक्षरस्यर्श तक के जिन द्रव्यों को जीव भाषा के रूप परिणित करने के लिए ग्रहण करता है, वे द्रव्य आत्मप्रदेशों के साथ स्पृष्ट होते हैं, अस्पृष्ट नहीं तथा वह अवगाढ़ द्रव्यों (जिनआकाशप्रदेशों में जीव के प्रदेश हैं, उन्हीं आकाशप्रदेशों में अवस्थित भाषाद्रव्यों) को ग्रहण करता है, अनवगाढ़ द्रव्यों को नहीं विशेषतः अनन्तरावगाढ़ (व्यवधानरहित) द्रव्यों को ग्रहण करता है। परम्परावगाढ़ (व्यवहितरूप से अवस्थित) द्रव्यों को नहीं तथा अनन्तरावगाढ़ जिन द्रव्यों को जीव ग्रहण करता है, वे अणु (थोड़े प्रदेशों वाले रक्न्ध) भी होते हैं और बादर (बहुत प्रदेशों से उपचित) भी होते हैं। फिर जितने क्षेत्र में जीव के ग्रहणयोग्य भाषाद्रव्य अवस्थित हैं, उतने ही क्षेत्र में जीव उन अणुरूपद्रव्यों को उर्ध्वदिशा, अधोदिशा और तिर्यग्दिशा से भी ग्रहण करता है तथा उन्हें आदि (प्रथम समय) में भी ग्रहण करता है, मध्य (द्वितीयादि समयों) में भी ग्रहण करता है और अन्त (ग्रहण के उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्तप्रमाणकाल रूप में अन्तिम समय) में भी ग्रहण करता है। इस प्रकार के वे भाषाद्रव्य स्वविषय (स्वगोचर अर्थात् - स्पृष्ट, अवगाढ़ और अनन्तरावगाढ़रूप) होते हैं, अविषय (स्वके अगोचर अर्थात् - स्पृष्ट अवगाढ़ और अनन्तरावगाढ़ से भिन्न रूप) नहीं होते तथा उन द्रव्यों को भी जीव आनुपूर्वी से (अनुक्रम से - ग्रहण की अपेक्षा सामीप्य के अनुसार) ग्रहण करता है, अनानुपूर्वी से (आसन्नता का उल्लंघन करके) नहीं एवं नियम से छह दिशाओं से आए हुए भाषाद्रव्यों को ग्रहण करता है, क्योंकि नियमतः त्रसनाडी में अवस्थित भाषक त्रसजीव छहों दिशाओं के द्रव्यों को ग्रहण करता है।
- (16) जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करता है, उन्हें सान्तर (वीच में कुछ समय का व्यवधान डाल कर अथवा रुक-रुक कर) भी ग्रहण करता है। अगर जीव भाषाद्रव्यों को सान्तर ग्रहण करे तो जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असंख्यात समयों का अन्तर करके ग्रहण करता है। यदि कोई लगातार बोलता रहे तो उसकी अपेक्षा से जघन्य एक समय का अन्तर समझना चाहिए। जैसे-कोई वक्ता प्रथम समय में भाषा के जिन पुद्गलों को ग्रहण करता है, दूसरे समय में उनको निकलता तथा दूसरे समय में ग्रहीत पुद्गलों को तीसरे समय में निकालता है। इस प्रकार प्रथम समय में सिर्फ ग्रहण होता है, वीच के समयों में ग्रहण और निसर्ग दोनों होते हैं, अन्तिम समय में सिर्फ निसर्ग होता है। भाषापुद्गलों का ग्रहण और निसर्ग, ये दोनों परस्पर विरोधी कार्य एक समय में कैसे हो सकते हैं? इस शंका का समाधान यह है कि यद्यपि जैन सिद्धान्तानुसार एक समय में दो उपयोग सम्भव नहीं है, किन्तु एक समय में कियाँ तो अनेक हो सकती हैं, उनके

- होने में कोई विरोध भी नहीं। एक ही समय में एक नर्तकी भ्रमणदि किया करती हुई, हाथों-पैरों आदि से विविध प्रकार की क्रियाएँ करती है, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। सभी वस्तुओं का एक ही समय में उत्पाद और व्यय देखा जाता है। इसी प्रकार भाषाद्रव्यों के ग्रहण और निसर्ग के परस्पर विरोधी प्रयत्न भी एक ही समय में हो सकते हैं। इसलिए कहा गया है कि भाषाद्रव्यों को जीव विना व्यवधान के निरन्तर ग्रहण करता रहे तो जघन्य दो समय तक और उत्कृष्ट असंख्यात समयों तक निरन्तर ग्रहण करता है। कोई असंख्यात समयों तक एक ही ग्रहण न समझ ले, इस भ्रान्ति के निवारणार्थ 'अनुसमय' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है - 'एक समय के पश्चात' कोई व्यक्ति वीच में व्यवधान होने पर भी 'अनुसमय' समझ सकता है, इस भ्रमनिवारण के लिए 'अविरहित' शब्द प्रयुक्त किया है। इस प्रकार प्रथम समय में ग्रहण ही होता है, निसर्ग नहीं, क्योंकि विना ग्रहण के निसर्ग सम्भव नहीं। और अन्तिम में भाषा का अभिप्राय उपरत हो जाने से ग्रहण नहीं होता, केवल निसर्ग ही होता है शेष (वीच के) दूसरे, तीसरे आदि समयों में ग्रहण-निसर्ग दोनों साथ-साथ होते हैं, किन्तु पूर्व समय में ग्रहीत पुद्गल उसके पश्चात के उत्तर समय में ही छोड़े जाते हैं। ऐसा नहीं होता कि जिन पुद्गलों को जिस समय में ग्रहण किया, उसी समय में निसर्ग भी हो जाए।
- (17) भाषा के रूप में ग्रहीत द्रव्यों को जीव सान्तर निकालता है, निरन्तर नहीं, क्योंकि जिस समय में जिन भाषाद्रव्यों को जीव ग्रहण करता है, उसी समय में उन द्रव्यों को नहीं निकालता अर्थात् प्रथम समय में ग्रहीत भाषा द्रव्यों को प्रथम समय में नहीं, किन्तु दूसरे समय में और दूसरे समय में ग्रहीत द्रव्यों को तीसरे समय में निकालता है, इत्यादि। निष्कर्ष यह है कि पूर्व-पूर्व में ग्रहीत द्रव्यों को अगले-अगले समय में निकालता है। पहले ग्रहण होने पर ही निसर्ग का होना सम्भव है, अग्रहीत का नहीं, इसीलिए कहा गया है कि निसर्ग सान्तर होता है। ग्रहण की अपेक्षा से ही निसर्ग को सान्तर कहा गया है। ग्रहीत द्रव्य का अनन्तर अर्थात् अगले समय में नियम से निसर्ग होता है। इस दृष्टि से निरन्तर ग्रहण और निसर्ग का काल जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त तक का है।
- नैरायिक आदि के विषय में अतिदेश - नैरायिक जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करता है, वे स्थित (स्थिर) होते हैं या अस्थित (संचरणशील)? इस प्रश्न के पूछे जाने पर शास्त्रकार अतिदेश करते हुए कहते हैं - स्थित, अस्थित द्रव्यों के ग्रहण की प्ररूपणा से लेकर अल्प वहुत्व तक की जैसी प्ररूपणा समुच्चय जीव के विषय में की है वैसी ही प्ररूपणा नैरायिक से लेकर वैमानिक पर्यन्त (एकेन्द्रिय को छोड़कर) करनी चाहिए।

भिन्न-अभिन्न भाषाद्रव्यों के निःसरण की व्याख्या :- वक्ता दो प्रकार के होते हैं, तीव्र प्रयत्न वाले और मन्द प्रयत्न वाले। जो वक्ता रोगारस्तता, जराप्रस्तता या अनादरभाव के कारण मन्द प्रयत्न वाला होता है, उसके द्वारा निकाले हुए भाषाद्रव्य अभिन्न-स्थूलखण्डरूप एवं अव्यक्त होते हैं। जो वक्ता निरोग, बलवान् एवं आरदभाव के कारण तीव्रप्रयत्नवाला होता है, उसके द्वारा निकाले हुए भाषाद्रव्य खण्ड-खण्ड एवं स्फुट होते हैं। तीव्रप्रयत्नवान् वक्ता द्वारा छोड़े गए भाषाद्रव्य खंडित होने के कारण सूक्ष्म होने से और अन्य द्रव्यों को वासित करने के कारण अनन्तगुण वृद्धि को प्राप्त होकर लोक के अंत तक पहुँचते हैं और संपूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं।

मन्दप्रयत्न द्वारा छोड़े गए भाषाद्रव्य लोकान्त तक नहीं पहुँच पाते। वे असंख्यात अवगाहन वर्गणा तक जाते हैं। वहाँ जाकर भेद को प्राप्त होते हैं, फिर संख्यात योजन तक आगे जाकर विधवसं हो जाते हैं।

एकत्व और पृथक्त्व के दस दण्डक :- असत्यमृषाभाव के रूप में जिन द्रव्यों को ग्रहण किया जाता है, वे स्थित होते हैं, अस्थित नहीं। इस विषय में विकलेन्द्रियसहित दस दण्डक होते हैं वे इस प्रकार हैं - नारक, भवनवासी, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यचपंचेन्द्रिय, मनुष्य, वाणप्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। अथवा दस दण्डक अर्थात् आलापक इस प्रकार होते हैं - सामान्य एक जीव के भाषाद्रव्य ग्रहण के सम्बन्ध में एक तथा चार पृथक्-पृथक् चार भाषाओं के द्रव्य ग्रहण करने के, सम्बन्ध में यों 5 एक वचन के और 5 ही बहुवचन के दण्डक (पाठ) मिल कर दस दण्डक होते हैं।

(10) तीसरी अग्रहण द्रव्य वर्गणा :-

भासादव्यवग्मणाणमुवरि अग्रहणदव्यवग्मणा णाम । (84)

(ध, पु, 14, पृ. 62)

भाषा द्रव्यवर्गणाओं के ऊपर अग्रहण द्रव्यवर्गणा है।

उत्कृष्ट भाषा द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर तीसरी अग्रहण द्रव्यवर्गणासम्बन्धी सबसे जघन्य वर्गणा होती है। इसके आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभ्यव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर तीसरी अग्रहणद्रव्यवर्गणासम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट अनन्तगुणी होती है। गुणाकार क्या है? अभ्यव्यों से अनन्तगुण और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण गुणाकार है। यह दसवीं वर्गणा है। (10) इसके भी पुद्गलरक्न्य ग्रहणयोग्य नहीं होते हैं, क्योंकि ऐसा नहीं मानने पर इसकी अग्रहण संज्ञा नहीं बन सकती है।

(11) मनोद्रव्य वर्गणा :-

अग्रहणदव्यवग्मणाए उवरि मद्दव्यवग्मणा णाम । (85) (ध, पु, 14, पृ, 62)

अग्रहण द्रव्यवर्गणा के ऊपर मनोद्रव्यवर्गणा है। तीसरी उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर जघन्य मनोद्रव्यवर्गणा होती है। फिर आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभ्यव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण स्थान जाकर उत्कृष्ट मनोद्रव्यवर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा विशेष अधिक है तथा विशेष का प्रमाण सबसे जघन्य मनोद्रव्यवर्गणा का अनन्तवाँ भाग है। इसका प्रतिभाग क्या है? अभ्यव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण प्रतिभाग है। यह म्यारहर्वीं वर्गणा है। (11) इस वर्गणा से द्रव्यमन की रचना होती है।

वैज्ञानिक समीक्षा = मन सहित जीव को समनरक (सैनी) कहते हैं और मन रहित जीव अमनरक (असैनी) कहते हैं। एकेद्विय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक जीव असैनी होते हैं एवम् मन सहित पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी होते हैं। इन दोनों में से संज्ञी जीव श्रेष्ठ हैं, क्योंकि संज्ञी जीव गुण और दोषों का विचारक होता है। अमनरक जीव मन रहित होने के कारण गुण दोषों की समीक्षा नहीं कर पाता है। एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होते हुए भी मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान, कुज्ञान के साथ-साथ बहुत ही अविकसित ज्ञान है, इतना ही नहीं असंज्ञी जीव सम्यदर्शन प्राप्त करने की योग्यता भी नहीं रखता है। सभी संज्ञी जीव सम्यदर्शन प्राप्त करने योग्यता रखते हैं। मन के दो प्रकार हैं - (1) द्रव्य मन (2) भाव मन।

उनमें से द्रव्य मन पुद्गलविपाकी आंगोपांग नाम कर्म के उदय से होता है तथा वीर्यान्तराय और नो इंद्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने वाले आत्मा की विशुद्धि को भाव मन कहते हैं। यह मन जिन जीवों के पाया जाता है वे 'समनरक' हैं, और जिनके मन नहीं पाया जाता है वे 'अमनरक' हैं। इस प्रकार मन के सद्भाव और असद्भाव की अपेक्षा संसारी जीव दो भागों में वँट जाता है।

द्रव्य मन का स्वरूप -

हिदि होदि हु दव्यमण वियसियअदृठच्छराविदं वा ।

अंगोवंगदयादो मणवगणखंधदो णियमा ॥ (443) गो. जी.

अंगोपांग नाम कर्म के उदय से मनोवर्गणा के स्कन्धों के द्वारा हृदयस्थान में नियम से विकसित आठ पांखुडी के कमल के आकार में द्रव्यमन उत्पन्न होता है।

णोइंदियत्ति सण्णा तरस्स हवेसेसइंदियाणं वा ।

वत्तत्त्वाभावादो ----- ॥ (444) गो.जी.

इस द्रव्यमन की इन्द्रिय संज्ञा भी है, क्योंकि दूसरी इन्द्रियों की तरह यह व्यक्त नहीं है। (गोम्मटसार, पृ. 163)

उपर्युक्त द्रव्यमन एवं भाव मन में से द्रव्य मन का निर्माण मनोद्रव्य वर्गण से होता है। आयुर्वेद हो, शरीर विज्ञान हो या मनोविज्ञान हो या तथा यहाँ तक कि आधुनिक जीनोम सिद्धांत भी पूर्णतः इस सत्य-तथ्य पर नहीं पहुँच पाया कि द्रव्य मन का अवरथान कहाँ पर है, उसका आकार क्या है और वह किससे निर्मित है? परंतु उपर्युक्त वर्णन से जैन धर्म की वैज्ञानिकता, व्यापकता, सूक्ष्मता, प्रामाणिकता का सहज परिज्ञान हो जाता है।

(12) चौथी अग्रहणद्रव्य वर्गण :-

मणदव्ववगणाणमुवरि अग्रहणदव्ववगणा णाम । (86)

(ध, पु, 14, पृ, 63)

मनोद्रव्यवर्गणाओं के ऊपर अग्रहण द्रव्यवर्गण है। उत्कृष्ट मनोद्रव्यवर्गण में एक अंक के मिलाने पर चौथी अग्रहणद्रव्यवर्गणासम्बन्धी सबसे जघन्य वर्गण होती है। इससे आगे एक-एक प्रदेश के अधिक क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग-प्रमाण स्थान जाकर चौथी अग्रहण द्रव्यवर्गणासम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गण होती है। यह अपनी जघन्य वर्गण से उत्कृष्ट वर्गणाअनन्तगुणी है। गुणाकार क्या है? अभव्यों से अनन्त गुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण गुणाकार है। यह बारहवीं वर्गण है। (12) यह ग्रहणयोग्य नहीं होती है, क्योंकि, यह न्यूनाधिक परिणामवाली है।

(13) कार्माण द्रव्य वर्गण :-

अग्रहणदव्ववगणाणमुवरि कम्मइयदव्ववगणा णाम । (87)

(ध, पु, 14, पृ. 63)

अग्रहण द्रव्यवर्गणाओं के ऊपर कार्माण द्रव्यवर्गण है।

चौथी अग्रहण द्रव्यवर्गणासम्बन्धी उत्कृष्ट द्रव्यवर्गणाओं में एक अंक के प्रक्षिप्त करने पर सबसे जघन्य कार्माणशरीर द्रव्यवर्गण होती है। आगे एक-एक प्रदेश अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण स्थान जाकर कार्माण द्रव्यवर्गणासम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गण होती है। यह अपनी जघन्य वर्गण से अपनी उत्कृष्ट वर्गण विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण कितना है? जघन्य कार्माण वर्गण के अनन्तवें भागप्रमाण है। इसका प्रतिभाग क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण इसका प्रतिभाग है। यह तेरहवीं वर्गण है। (13) इस वर्गण के पुद्गल स्कन्ध आठ कर्मों के योग्य होते हैं।

वैज्ञानिक समीक्षा :- विश्व में व्याप्त 23 वर्गणाओं में से यह 13 वीं कार्माण वर्गण है। इस वर्गण से ही आठ प्रकार के कर्म बनते हैं। यह वर्गण सम्पूर्ण विश्व में उसाठस व्याप्त होकर रहने के साथ-साथ प्रत्येक अनन्तानन्त संसारी जीव के सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त होकर रहने पर भी जब तक जीव के मन-वचन-कार्य के परिस्पन्दन/कम्पन और

कषाय भाव से प्रभावित नहीं होती है तब तक कर्म रूप से परिणमन नहीं करती है। जीव के योग/कम्पन से योग्य कार्माण वर्गण (अनन्तानन्त कर्मपरमाणु) आकर्षित होकर जीव के असंख्यात प्रदेश में प्रवेश /आस्रव करती है और जीव के कषाय भाव से बन्ध रूप से परिणमन कर लेती है। निम्न में इसका कुछ सविस्तर वर्णन कर रहे हैं।

बन्धनीय कर्मपरमाणु

जो बन्धनीय हैं उसका इस प्रकार अनुगमन करते हैं। वेदनस्वरूप पुद्गल है, पुद्गल स्कन्धस्वरूप है, और स्कन्ध वर्गणस्वरूप है॥ (1) (ध, पु, 14, पृ, 48)

जो वेद जाते हैं उन्हें वेदन कहते हैं। जीव से पृथग्भूत बन्धयोग्य कर्म और नोकर्म स्कन्ध बन्धनीय कहलाते हैं।

शंका :- वे वेदनस्वरूप कैसे हो सकते हैं।

समाधान :- नहीं, क्योंकि, जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वेदना योग्य हैं, उनमें द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा वेदना शब्द की प्रवृत्ति स्वीकार की गई है।

वेदनपना जिनका आत्मा अर्थात् स्वरूप है वे वेदनात्मा कहलाते हैं। यहाँ इस पद से पुद्गलों का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अन्य कोई पदार्थ बन्धनीय नहीं हो सकते। वे बन्धनीय पुद्गल स्कन्धसमुद्दिष्ट अर्थात् स्कन्धस्वरूप कहे गये हैं, क्योंकि स्कन्धस्वरूप अनन्तान्त परमाणुपुद्गलों के समुदायस्वरूप समागम से बन्धयोग्य पुद्गल होते हैं। इस पद से एक प्रदेशी ओर दो प्रदेशी आदि वर्गणाओं से पृथग्भूत स्कन्ध नहीं पाये जाते हैं। इस पद से बन्धनीय पुद्गल निर्विकल्प होते हैं। इस बात का निषेध किया है। इसीलिये बन्धनीय का कथन करते समय वर्गण का कथन नियम से करना चाहिए। अन्यथा तेज्ज्वर प्रकार की वर्गणाओं में ये वर्गण ही बन्धयोग्य है, अन्य बन्धयोग्य नहीं है, यह ज्ञान नहीं हो सकता।

वर्गणानिक्षेप छह प्रकार का है। नामवर्गण, स्थापनावर्गण, द्रव्यवर्गण, क्षेत्रवर्गण, कालवर्गण और भाववर्गण ॥(71)

वर्गण शब्द नामवर्गण है। 'वह यह है' इस प्रकार युद्धि द्वारा वर्गणस्वरूप से संकल्पित अर्थ स्थापनावर्गण है। द्रव्यवर्गण दो प्रकार की है - आगमद्रव्यवर्गण और नोआगमद्रव्यवर्गण। वर्गणाप्राभूत को जानने वाला किन्तु वर्तमान में उसके उपयोग से रहित जीव आगमद्रव्यवर्गण है। नोआगमद्रव्यवर्गण तीन प्रकार की है - ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यवर्गण, भाविनोआगमद्रव्यवर्गण और तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यवर्गण। ज्ञायकशरीर और भाविनोआगमद्रव्यवर्गण ये सुगम हैं। तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यवर्गण दो प्रकार की है - कर्मवर्गण और नोकर्मवर्गण। उन में से आठ प्रकार के कर्मस्कन्धों के भेद कर्मवर्गण हैं तथा शेष उन्नीस प्रकार की वर्गणायें नोकर्म वर्गण हैं।

एक आकाशप्रदेशप्रमाण अवगाहना से लेकर प्रदेशोत्तर आदि के क्रम से कुछ कम

घनलोक तक ये सब क्षेत्रवर्गणायें हैं। कर्मद्रव्य की अपेक्षा एक समय अधिक तक आवली से लेकर उत्कृष्ट कर्मस्थित तक और नोकर्मद्रव्य की अपेक्षा एक समय से लेकर असंख्यात लोकप्रमाण काल तक ये सब कालवर्गणायें हैं।

भाववर्गणा दो प्रकार की हैं :- आगमभाववर्गणा और नोआगमभाववर्गणा। वर्गणप्राभूत को जानने वाला और वर्तमान में उसके उपयोग से युक्त जीव आगमवर्गणा हैं। औदयिक आदि पाँच भावों के जो भेद हैं वे सब नोआगमभाववर्गणा हैं।

णिद्वा वेमादाल्हुक्खदा बंधो ॥ (32) (ध, पु, 14, पृ, 30)

विसदृश स्निग्धता और विसदृश रुक्षता बन्ध है।

माद का अर्थ सदृशता है। जिसमें सदृशता नहीं होती उसे विमादा कहते हैं। विसदृश स्निग्धता और विसदृश रुक्षता यह बन्ध है अर्थात् बन्धका कारण है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शंका :- कारणों को कार्य क्यों कहा ?

समाधान :- कारण में कार्य का उपचार होने से ऐसा कहा है।

यहाँ स्निग्धता में विसदृशता रुक्षता की अपेक्षा और रुक्षता में विसदृशता स्निग्धता की अपेक्षा लेनी चाहिये। इसलिये यह निष्कर्ष निकला कि स्निग्ध परमाणुओं का रुक्ष परमाणुओं के साथ बन्ध होता है और रुक्ष परमाणुओं का भी स्निग्ध परमाणुओं के साथ बन्ध होता है, क्योंकि, यहाँ गुण की अपेक्षा समानता नहीं पाई जाती।

समणिद्वा समल्हुक्खदा भेदो ॥(33)

समान स्निग्धता और समान रुक्षता भेद है।

समान स्निग्धता और समान रुक्षता भेद अर्थात् असंयोग का कारण होता है। स्निग्ध परमाणुओं का स्निग्ध परमाणुओं के साथ और रुक्ष परमाणुओं का रुक्ष परमाणुओं के साथ बन्ध नहीं होता, यह उक्त कथन का तात्पर्य है। स्निग्ध परमाणुओं के साथ बन्ध को प्राप्त हुए रुक्ष परमाणु यदि स्निग्ध गुणरूप से परिणित होते हैं या स्निग्ध परमाणु रुक्ष गुणरूप से परिणित होते हैं तो नियम से उनका भेद हो जाता है, यह अर्थ यहाँ लेना चाहिए। यह अर्थ दोनों ही सूत्रों के द्वारा कहा गया है। अब गाथा द्वारा इसी अर्थ को स्पष्ट करने के लिये आगे का गाथा सूत्र कहते हैं।

णिद्वणि द्वा ण बज्जंति ल्हुक्खल्हुक्खा य पोगला।

णिद्वल्हुक्खा य बज्जंति रुवारुवी य पोगला ॥ (34)

स्निग्ध पुद्गल स्निग्ध पुद्गलों के साथ नहीं बंधते, रुक्ष, पुद्गल रुक्ष पुद्गलों के साथ नहीं बंधते, किन्तु सदृश और विसदृश ऐसे स्निग्ध रुक्ष पुद्गल परस्पर बंधते हैं।

इस गाथा के पूर्वार्ध द्वारा 'समणिद्वा समल्हुक्खदा भेदो' इन सूत्र का अर्थ कहा

गया है। स्निग्ध परमाणु दूसरे स्निग्ध परमाणुओं के साथ नहीं बंधते, क्योंकि, स्निग्ध गुणकी अपेक्षा वे समान हैं। रुक्ष पुद्गल दूसरे कक्ष पुद्गलों के साथ बन्ध को नहीं प्राप्त होते, क्योंकि, रुक्ष गुण की अपेक्षा वे समान हैं।

गाथा के उत्तरार्ध द्वारा प्रथम सूत्र का अर्थ कहते हैं - 'णिद्वल्हुक्खा य बज्जंति' अर्थात् स्निग्ध पुद्गल और रुक्ष पुद्गल परस्पर बन्ध को प्राप्त होते हैं, क्योंकि, इनमें विसदृशता पाई जाती है। क्या गुणों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान स्निग्ध और रुक्ष पुद्गलों का बन्ध होता है या अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा विसदृश स्निग्ध और रुक्ष पुद्गलों का बन्ध होता है, ऐसा प्रश्न करने पर 'रुवारुवी य पोगला बज्जंति' यह कहा है। जो स्निग्ध और रुक्ष गुणों से युक्त पुद्गल गुणों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा समान होते हैं वे रूपी कहलाते हैं। वे भी बंधते हैं और विसदृश पुद्गल अरूपी कहलाते हैं। वे भी बन्धन को प्राप्त होते हैं। स्निग्ध और रुक्ष पुद्गल गुणों के अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या की अपेक्षा चाहे समान हो चाहे असमान हो, उनका परस्पर बन्ध होता है, यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

वेमादा णिद्वा वेमादा ल्हुक्खदा बंधो ॥(35)

द्विमात्रा स्निग्धता और द्विमात्रा रुक्षता (परस्पर) बन्ध है।

गुणों के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा सदृश और विसदृश ऐसे स्निग्ध पुद्गलों का स्निग्ध पुद्गलों के साथ और रुक्ष पुद्गलों का रुक्ष पुद्गलों के साथ पूर्वोक्त अर्थ के अनुसार बन्ध का अभाव प्राप्त होने पर उनका भी बन्ध होता है, इस बात का ज्ञान कराने के लिए इस सूत्र का दूसरा अर्थ कहते हैं। यथा मात्रा का अर्थ अविभागप्रतिच्छेद है।

शंका :- उसका कितना प्रमाण है ?

समाधान :- गुण की जघन्य वृद्धिमात्र उसका प्रमाण है।

जिस स्निग्धता में दो मात्रा अधिक या हीन होती है वह द्विमात्रा स्निग्धता कहलाती है। वह बन्ध है अर्थात् बन्ध का कारण है। स्निग्ध पुद्गल दो अविभागप्रतिच्छेद अधिक स्निग्ध पुद्गलों के साथ या दो अविभागप्रतिच्छेद कम स्निग्ध पुद्गलों के साथ बंधते हैं। इनका तीन आदि अविभागप्रतिच्छेद अधिक पुद्गलों के साथ और तीन आदि अविभागप्रतिच्छेद कम पुद्गलों के साथ बन्ध नहीं होता, यह अर्थ यहाँ लेना चाहिये। इसी प्रकार रुक्ष पुद्गलों का भी रुक्ष पुद्गलों के साथ बन्ध का कथन करना चाहिये। अब इस अर्थ का निश्चय उत्पन्न करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं।

णिद्वस्स णिद्वेण दुरहिएण ल्हुक्खरस्स ल्हुक्खेण दुरहिएण।

णिद्वस्स ल्हुक्खेण हवेदि बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ॥(36)

स्निग्ध पुद्गल का दो गुण अधिक स्निग्ध पुद्गलों के साथ और रुक्ष पुद्गल का दो गुण अधिक रुक्ष पुद्गल के साथ बन्ध होता है तथा स्निग्ध पुद्गल के साथ

जघन्य गुण के सिवा विषम अथवा सम गुण के रहने पर बन्ध होता है।

स्निध पुद्गल का अन्य स्निध पुद्गल के साथ यदि बन्ध होता है तो दो गुण अधिक स्निध पुद्गल के साथ ही होता है। रक्ष पुद्गल का अन्य रक्ष पुद्गल के साथ यदि बन्ध होता हैं तो दो गुण अधिक रक्ष पुद्गल के साथ ही होता है।

स्निध रूप पुद्गल का रक्ष रूप पुद्गल के साथ जो बन्ध होता है वह किस अवरथा में होता है, ऐसा पूछने पर 'विसमे समे वा' यह वचन कहा है। गुण के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा रक्ष पुद्गल के साथ सदृश स्निध पुद्गल सम कहलाता है और असदृश स्निध पुद्गल विषम कहलाता है। यहाँ स्निध और रक्ष गुण के द्वारा पुद्गलों का बंध होता है, इस नियम के अनुसार सब पुद्गलों का बन्ध प्राप्त होने पर 'जहण्णवज्जे' यह कहा है। जघन्य गुणवाले स्निध और रक्ष पुद्गलों का न तो स्वरथान की अपेक्षा बन्ध होता है और न पररथान की अपेक्षा ही बन्ध होता है। इस तरह इस प्रकार के गुणविशिष्ट पुद्गलों का बन्ध होता है और अन्यादृश पुद्गलों का भेद होता है, क्योंकि, बन्ध में विरुद्ध गुण से मुक्त होना आवश्यक है।

विशेषार्थ :— पुद्गल परमाणुओं के बन्ध के विषय में दो परम्परायें उपलब्ध होती हैं। प्रथम परम्परा का निर्देश यहाँ किया ही है। इसके अनुसार निम्न व्यवस्था फलित होती है -

क्रमांक	गुणांश	सदृशबन्ध	विसदृशबन्ध
1.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
2.	जघन्य+एकादिअधिक	नहीं	नहीं
3.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	है
4.	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	है
5.	जघन्येतर+द्विअधिकजघन्येतर	है	है
6.	जघन्येतर+त्रयादिअधिकजघन्येतर	नहीं	है

दूसरी परम्परा तत्वार्थसूत्र की है। इसके अनुसार निम्न व्यवस्था फलित होती है -

क्रमांक	गुणांश	सदृशबन्ध	विसदृशबन्ध
1.	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
2.	जघन्य+एकादिअधिक	नहीं	नहीं
3.	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	नहीं
4.	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं
5.	जघन्येतर+द्विअधिकजघन्येतर	है	है
6.	जघन्येतर+त्रयादिअधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं

यद्यपि सर्वार्थसिद्धि और तत्वार्थवार्तिक में 'णिद्वरस णिद्वेण' इत्यादि गाथा उद्धृत की गई है, पर इस गाथा के उत्तरार्द्ध के अर्थ में मतभेद है और यह मतभेद तत्वार्थवार्तिक से स्पष्ट हो जाता है। गाथा के उत्तरार्द्धका शब्दार्थ यह है कि स्निधगुणवाले परमाणु का रक्ष गुणवाले परमाणु के साथ सम या विषमगुण होने पर बंध होता है। मात्र जघन्य गुणवाले का किसी भी अवरथा में बंध नहीं होता, किन्तु तत्वार्थवार्तिक में 'समे विसमे वा' इस पद में सम का अर्थ तुल्यजातीय और विषम का अर्थ अतुल्यजातीय किया है। तत्वार्थवार्तिककार के समक्ष वर्गणाखण्ड के ये सूत्र उपस्थित थे, फिर भी उन्होंने यह अर्थ किया है। तत्वार्थसूत्र में 'बन्धेऽधिको पारिणमिकौ च' यह सूत्र आया है और इस सूत्र से स्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्वार्थसूत्र के मत से तुल्यजातीय और अतुल्यजातीय पुद्गल परमाणुओं का बन्ध दो अधिक गुण के होने पर ही होता है। यही कारण है कि तत्वार्थवार्तिककारने उक्त गाथांश का उक्त प्रकार से अर्थ किया है।

से तं बंधणपरिणामं पप्प से अबाणं वा मेहाणं वा संज्ञाणं वा विज्जूणं वा उक्काणं वा काण्याणं वा दिसादाहाणं वा धूमकेदूणं वा इंदाउहाणं वा से खेत्तं पप्प कालं पप्प उड्डं पप्प पोग्लं पप्प जे चामणे एवमादिया अंगमलप्पहुडीणि, बंधपरिणामेण परिणमंति सो सलो सादिविस्सावन्धो णाम ॥ (37)

इस प्रकार वे पुद्गल बन्धन परिणाम को प्राप्त होकर विविध प्रकार के अभ्रूप से, मेघरूप से सन्ध्यारूप से विजलीरूप से, उल्कारूप से, कनकरूप से दिशादाअनुसार, अयन के अनुसार और पुद्गल के अनुसार जो बन्धन परिणामरूप से परिणित होते हैं वह सब सादिविस्सावन्ध है।

'से ते' अर्थात् जघन्यगुण पुद्गलों के सिवा के पुद्गल 'तं बंधणपरिणामं' अर्थात् बंध के कारण भूत स्निध और रक्ष गुणरूप परिणाम को प्राप्त होकर सब स्निध और रक्ष पुद्गल बन्ध को प्राप्त होते हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि स्निध पुद्गलों के साथ और रक्ष पुद्गलों के साथ बन्ध नहीं होता, किन्तु दो अविभागप्रतिच्छेद अधिक स्निध पुद्गलों के साथ बन्ध होता है तथा दो अविभागप्रतिच्छेद अधिक रक्ष पुद्गलों का दो अविभागप्रतिच्छेद हीन रक्ष पुद्गलों के साथ बन्ध होता है। इस प्रकार बन्ध को प्राप्त होकर वे पुद्गल परिणमन करते हैं। यथा-वर्षात्रितु के सिवा अन्य समय में जो मेघ होते हैं उन्हें अभ्र कहते हैं। उन अभ्ररूप से वे परिणित होते हैं अथवा वर्षात्रितु में जो कृष्णवर्ण के बादल होते हैं वे मेघ कहलाते हैं। सूर्योदय के समय और सूर्यास्त के समय पूर्वापर दिशाओं में जो जवा-कुसुम के सदृश दिखाई देती है वह संध्या कहलाती है जो रक्त, धवल और श्याम वर्ण की होती है जिसमें अत्यधिक तेज होता है, जो कुपित हुए 'भुजंग के समान चंचल शरीर वाली होती है और जो मेघों में उपलब्ध होती

है वह विद्युत् कहलाती है। जो जलते हुए अग्निपिण्ड के समान अनेक आकारवाली होकर आकाश से गिरती है वह उल्का कहलाती है। जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी, मर जाते हैं तथा जो वृक्ष और पर्वतों के शिखरों का विदारण करती है ऐसी अग्नि को कनक कहते हैं। उत्पातकाल में अग्नि के बिना दावानल के समान जो दशों दिशाओं में उपलब्ध होता है उसे दिशादाह कहते हैं। उत्पातकाल में ही धूमयष्टि के समान जो आकाश में उपलब्ध होता है उसे धूमकेतु कहते हैं। जो पांच वर्ण का होकर धनुषाकार रूप से या त्रुटित आकार रूप से पूर्वापर दिशाओं में उपलब्ध होता है उसे इन्द्रायुध कहते हैं। इन मेघ, संध्या, विजली, कनक, दिशादाह, धूमकेतु और इन्द्रायुध के आकार रूप से वे पुद्गल परिणित होते हैं। वे किस कारण परिणित होते हैं, ऐसा पूछने पर 'से खेत्तपप्पे' इत्यादि सूत्रवचन कहा है। विशिष्ट आकाशदेश का नाम क्षेत्र है। शीत, उष्ण और वर्षा से उपलक्षित समय का नाम काल है। शिंशिर, वसन्त, निदाघ, वर्षा, शरद और हेमन्त का नाम ऋतु है। सूर्य का दक्षिण और उत्तर को गमन करना अयन है जिनका पूरण और गलन स्वभाव है वे पुद्गल कहलाते हैं। अपने-अपने योग्य क्षेत्र, काल, ऋतु, अयन और पुद्गलों को प्राप्त होकर वे पुद्गल उन मेघ आदि के आकार रूप से परिणित होते हैं, अन्यथा सर्वत्र और सर्वदा उनकी उत्पत्ति का प्रसंग आता है। जो ये और अन्य अंगमल अर्थात् शरीरमल आदि पदार्थ हैं। यहाँ 'प्रभूति' शब्द से सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्र उनका उपराग तथा परिवेश और गन्धर्व नगर आदि लेने चाहिये यह सब आदि विस्तासावन्ध है।

विशेषार्थ :- आगमद्रव्यवन्ध के सिवा शेष सब वन्ध नोआगमद्रव्यवन्ध कहलाते हैं। इसके प्रयोगवन्ध और विस्तासावन्ध ये दो भेद हैं जिसमें जीव के व्यापार की अपेक्षा होती है वह प्रयोगवन्ध कहलाता है और जो जीव के व्यापार के बिना अपनी योग्यतानुसार होता है वह विस्तासावन्ध कहलाता है। यहाँ सादिविस्तासावन्ध का विचार किया जा रहा है। यह पुद्गलों की अपनी-अपनी योग्यतानुसार ही होते हैं, किन्तु बाह्य निमित्त को ध्यान में रखकर वन्ध के प्रयोगवन्ध और विस्तासावन्ध ये भेद किये गये हैं। कर्मवन्ध प्रयोगवन्ध में आता है, पर समयप्राभृत के इसके विषय में लिखा है कि रागादिक का निमित्त पाकर कर्मपुद्गल रस्यं कर्म रूप से परिणित होते हैं और कर्म का निमित्त पाकर जीव रागादिकरूप से परिणमण करता है। समयप्राभृत के उक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बलात् अन्य अन्य का परिणमन करानेवाला नहीं होता, किन्तु एक दूसरे का निमित्त पाकर प्रत्येक द्रव्य स्ययं परिणमन करता है शेष कथन सुगम है।

जो सो थप्पो पओअवंधो णाम सो दुविहो-कम्मवंधो चेद णोकम्मवंधो चेव ॥ (38)
जो प्रयोगवन्ध रथगित कर आये हैं वह दो प्रकार का है - कर्मवन्ध और नोकर्मवन्ध।
इस तरह दो प्रकार का ही प्रयोग वन्ध होता है, क्योंकि, अन्य प्रकार का प्रयोग वन्ध

उपलब्ध नहीं होता।

शंका :- प्रयोगवन्ध किसे कहते हैं?

समाधान :- जीव के व्यापार द्वारा जो वन्ध समुत्पन्न होता है उसे प्रयोगवन्ध कहते हैं। ज्ञानावरणादि 8 प्रकार के कर्म के वन्ध को कर्मवन्ध कहते हैं।

6. Analogy with modern Scientific studies

Scientific studies says that atom is the smallest and individual particle, this is in perfect agreement with above mentioned phenomena.

Scientific research could establish a partial truth as an atom consist of a positively charged nucleus surrounded by negatively charged electrons, so that the atom as a whole is electrically neutral. Atomic nuclei are composed of two kinds of fundamental particles namely protons and neutrons. The proton carries a single unit positive charge equal in magnitude to the electron's charge, and is in fact identical with nucleus of a hydrogen atom. The neutron is very slightly heavier than proton and, as its name implies, it is an electrically neutral particle.

Analogous to above mentioned scripture principle, modern science has worked out two form of energy conversion :-

(A) Mass to energy conversion

- (i) Nuclear fission
- (ii) Nuclear fusion

(B) Energy to Mass conversion

These two process of energy conversion are briefly described here :

(A) Mass to energy conversion - Refer fig (1)

(i) Fission : caused by absorption of a neutron, occurs with certain nuclei of high atomic no. and mass. Repulsive force within the nucleus is an important contributory factor. When fission takes place the excited compound nucleus formed after absorption of a neutron breaks up into two lighter Nuclei, called fission fragments.

Fission chain reaction is shown below :

STRAY NEUTRON

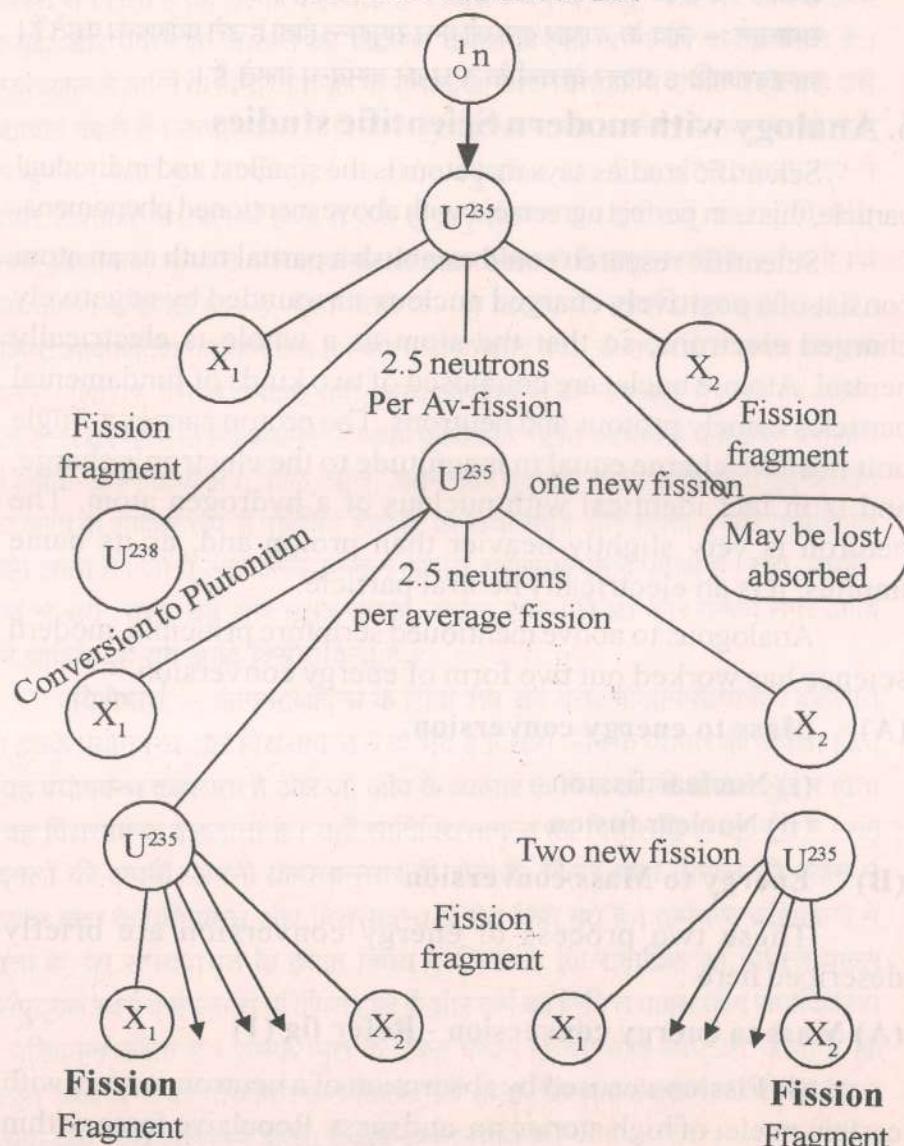
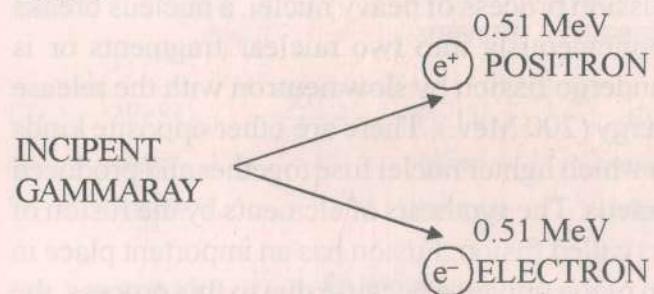


Fig. - 1 - Chain reaction of U^{235} fission

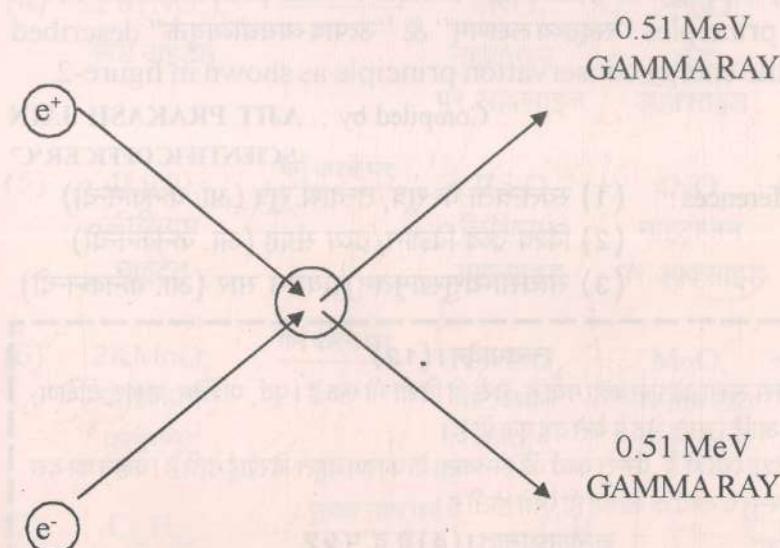
Total energy per fission - 201 Mev.

If one gm. atom of U^{235} is fissioned, at this rate about 2×10^7 K. cal of energy will be released.

Above complex phenomena of mass to energy conversion is used to produce electric power. This phenomena obeys "सद्ग्रव्य लक्षणम्" & 'उत्पाद व्ययधोव्ययुक्तं सत्' scriptural principles described earlier.



(a) PAIR PRODUCTION ENERGY TO MASS CONVERSION.



(b) ANNIHILATION RADIATION MASS TO ENERGY CONVERSION

ENERGY AND MASS IS CONSERVED IT PROVES;

सद्द्रव्यं लक्षणम्
उत्पाद व्ययधोव्ययुक्तं सत्

Similarly, fusion is another process of energy conversion :

- (ii) **Fusion :** In fission process of heavy nuclei, a nucleus breaks up either spontaneously into two nuclear fragments or is induced to undergo fission by slow neutron with the release of a large energy (200 Mev.). There are other opposite kinds of process in which lighter nuclei fuse together and produced a heavier nucleus. The synthesis of elements by the fusion of light nuclei is called fusion. Fusion has an important place in the evolution of the universe because due to this process, the most abundant element in galaxy i.e. hydrogen converts slowly into helium and other elements.

(B) Energy to Mass conversion : This process also obeys scriptural principles "सद्द्रव्यं लक्षणम्" & "उत्पाद व्ययधोव्ययुक्तं" described earlier & the energy conservation principle as shown in figure-2.

Compiled by : AJIT PRAKASH JAIN
SCIENTIFIC OFFICER 'C'

- References : (1) स्वतन्त्रता के सूत्र/तत्त्वार्थ सूत्र (आ. कनकनन्दी)
(2) विश्व द्रव्य विज्ञान/द्रव्य संग्रह (आ. कनकनन्दी)
(3) सत्यसाम्यसुखामृतम्/प्रवचन सार (आ. कनकनन्दी)

तत्त्वभावेन। (12)

जैसे सत्ता को एक कहा गया है, वैसे ही दिशा भी एक है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर, नीचे आदि उसके भेद हैं वैसे वह एक ही है।

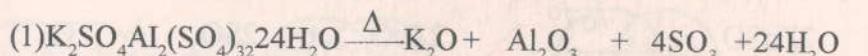
दिशा एक ही है, परन्तु कार्य की अनेकता के कारण बहुत दिखाई देती है। कहने को दस दिशाएँ हैं, परन्तु वे कार्य के कारण ही ऐसी होती हैं।

कारणाज्ञानात्। (4) वै.द. पृ 92

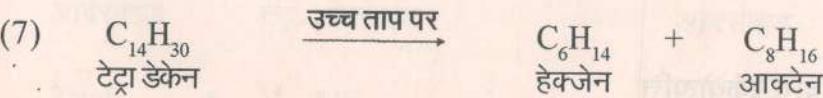
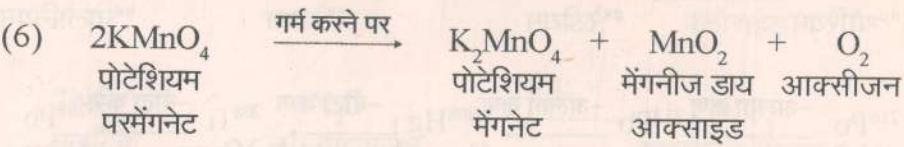
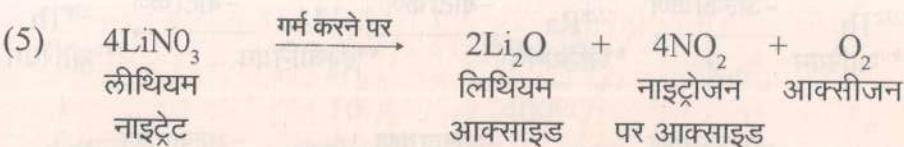
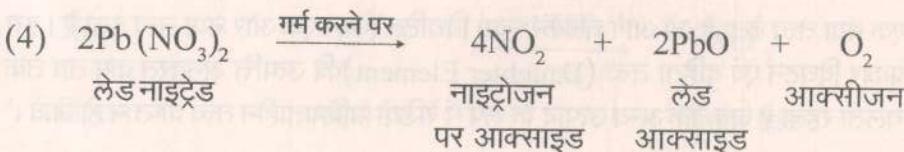
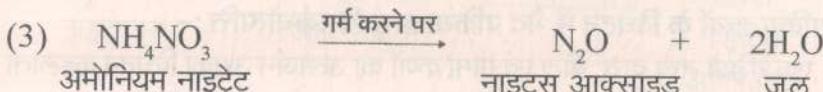
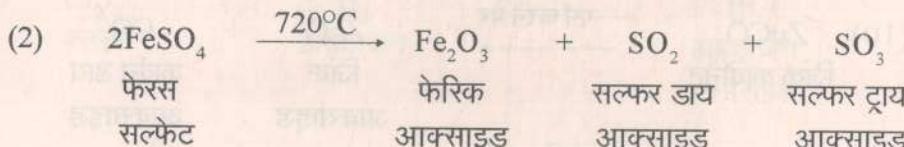
शरीर के कारण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश में ज्ञान नहीं रहता और जो गुण उत्पादन में होंगे, वही गुण उसके कार्य में हो सकते हैं इससे सिद्ध होता है कि ज्ञान शरीर का आश्रित नहीं, आत्मा का आश्रित ही है।

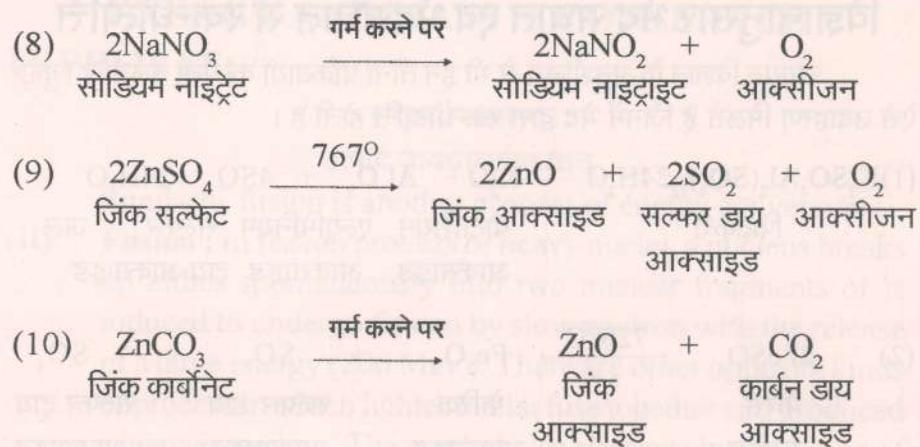
विज्ञानानुसार भेद संघात एवं भेदसंघात से स्कन्धोत्पत्ति

रसायन विज्ञान के अनुशीलन से भी इन तीनों प्रक्रियाओं का पता चलता है। कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें भेद द्वारा स्कन्धोत्पत्ति होती है।



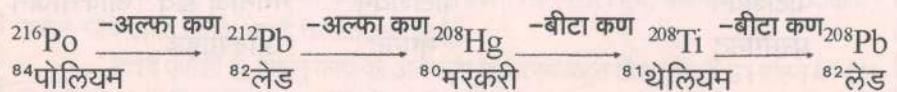
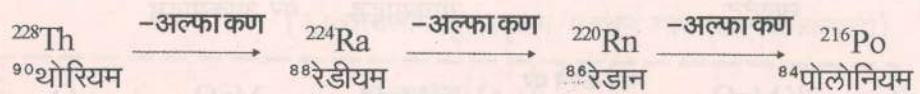
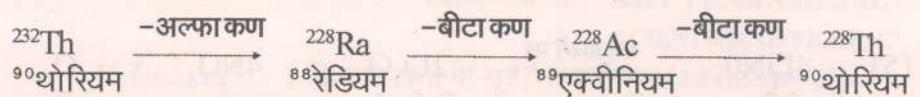
फिटकरी पोटाशियम एल्यूमिनियम सल्फर जल
आक्साइड आक्साइड ट्राय आक्साइड





रेडियो सक्रिय तत्वों के विघटन में भेद प्रक्रिया द्वारा ही स्कंधोत्पत्ति :-

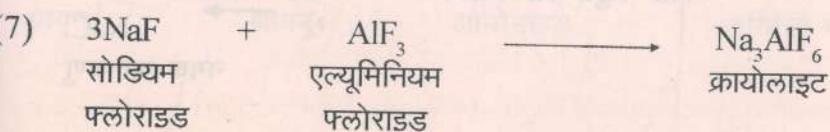
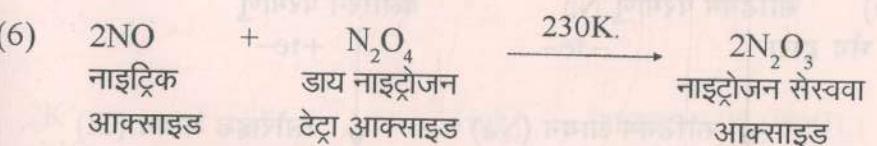
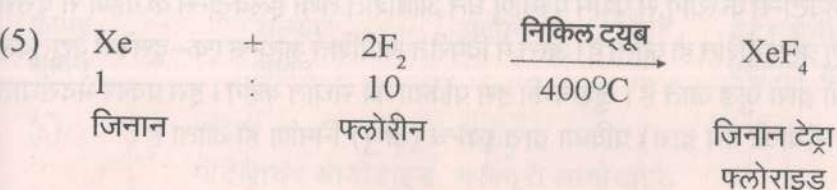
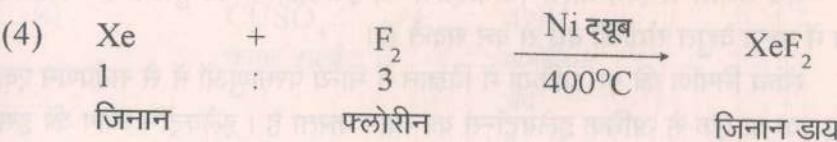
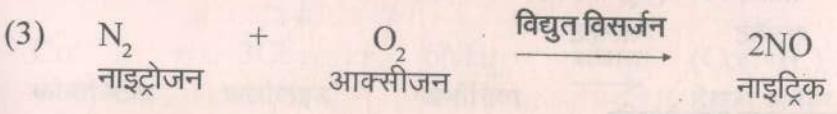
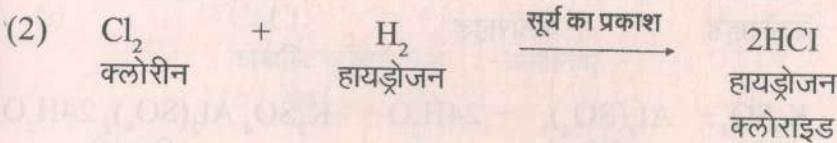
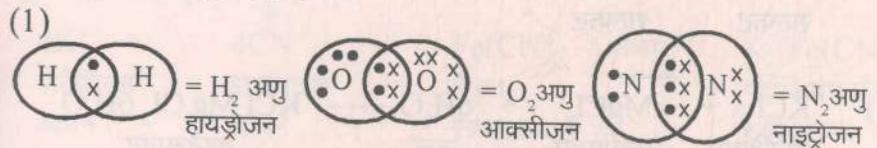
एक रेडियो सक्रिय तत्व द्वारा, वीटा एवं गामा कणों का उत्सर्जन उसका विघटन कहलाता है। रेडियो सक्रिय तत्व जिसे हम जैनाचार्यों की भाषा में स्कंध कह सकते हैं, विघटित होकर एक नया तत्व देता है जो आगे चलकर स्वयं विघटित होकर एक और नया तत्व देता है। इस प्रकार विघटन एवं दुहिता तत्व (Daughter Element) की उत्पत्ति अनवरत क्रम तब तक चलता रहता है जब तक अन्य उत्पाद के रूप में रेडियो सक्रियताहीन तत्व प्राप्त न हो जावे।¹⁵

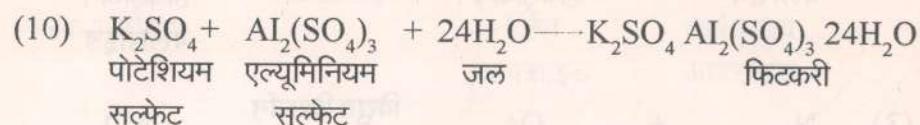
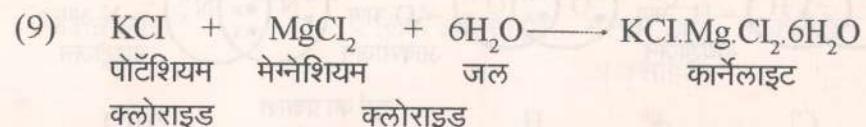
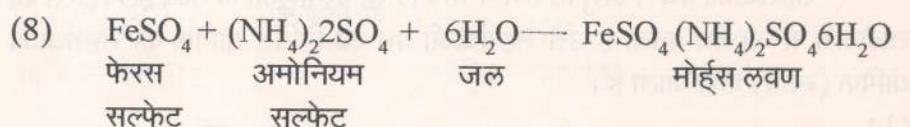


संघात द्वारा स्कंधोत्पत्ति

रसायन विज्ञान में संघात द्वारा स्कंधोत्पत्ति की प्रक्रिया का भी लक्षण दृष्टिगोचर होता है स्कंधोत्पत्ति की इस प्रक्रिया को सहसंयोजी वंध के रूप में समझा जा सकता है।

सहसंयोजी वंध में अणु निर्माण में भाग ले रहे परमाणुओं के मध्य इलेक्ट्रॉन्स की साझेदारी से जो वंध बनता है उसे सहसंयोजी वंध एवं निर्मित योगिक को सहसंयोजी योगिक (स्कंध) कहा जाता है।

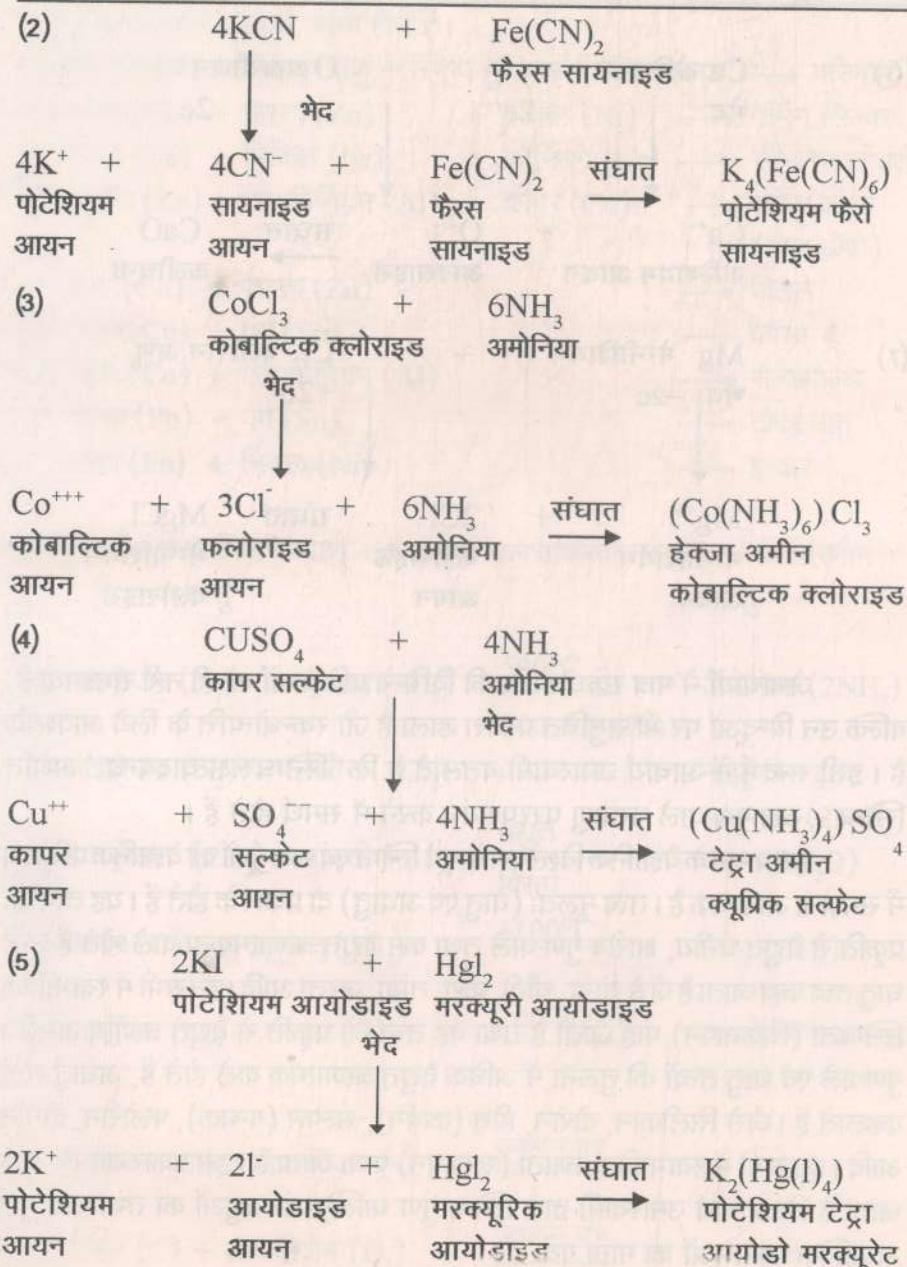
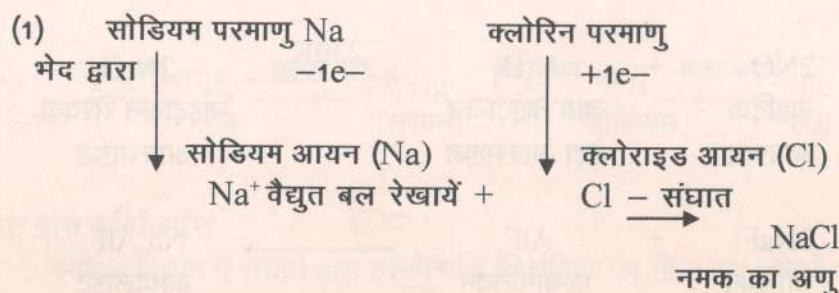


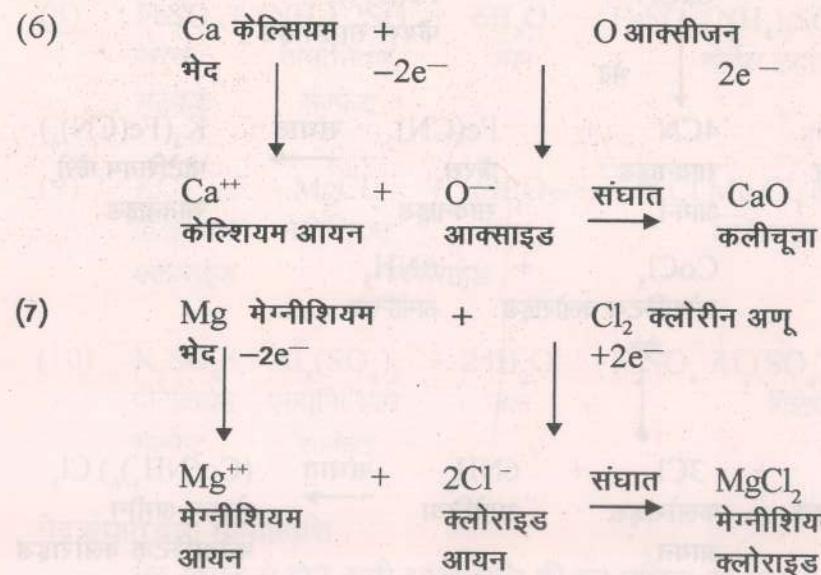


भेद संघात द्वारा संक्षेपत्ति

भेद संघात से होने वाली संक्षेपत्ति की इस प्रक्रिया की तुलना हम रसायन विज्ञान में मान्य वैद्युत संयोजी बंध से कर सकते हैं।

संक्षेपत्ति की इस प्रक्रिया में विज्ञान में मान्य परमाणुओं में से सर्वप्रथम एक परमाणु एक या एक से अधिक इलेक्ट्रॉन्स का त्याग करता है। इलेक्ट्रॉन त्याग की इस प्रक्रिया को भेद कहेंगे। तदुपरान्त दूसरा परमाणु इन त्यागे हुए इलेक्ट्रॉन्स को ग्रहण करता है। इलेक्ट्रॉन्स के त्याग से प्रथम परमाणु धन आवेशित तथा इलेक्ट्रॉन्स के ग्रहण से दूसरा परमाणु ऋणावेशित हो जाता है। अन्त में विपरीत आवेशित आयन्स एक-दूसरे से वैद्युतबल रेखाओं द्वारा जुड़ जाते हैं। जुड़ने की इस प्रक्रिया को संघात कहेंगे। इस प्रकार भेदसंघात (वैद्युतसंयोजी बंध द्वारा) प्रक्रिया द्वारा संक्षेपत्ति (अणु) निर्माण हो जाता है।





जैनाचार्यों ने मात्र स्कंधोत्पत्ति की विभिन्न प्रक्रियाओं को ही नहीं समझाया है, बल्कि उन विन्दुओं पर भी समुचित प्रकाश डाला है जो स्कंधोत्पत्ति के लिये आवश्यक है। इसी सन्दर्भ में आचार्य उमारवामी बतलाते हैं कि 'स्निधरूक्षत्वादबन्धः' अर्थात् स्निध - रुक्ष गुण वाले परमाणु परस्पर बंध करने में समर्थ होते हैं।

इस कथन के वैज्ञानिक विश्लेषण के पूर्व स्निध एवं रुक्ष गुणों को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है। तत्व मूलतः (धातु एवं अधातु) दो प्रकार के होते हैं। यह तत्व जो प्रकृति से वैद्युत धनीय, क्षारीय गुण वाले तथा कम वैद्युत ऋणात्मकता वाले होते हैं उन्हें धातु तत्व कहा जाता है जैसे सोना, चौंदी, पारा, तांबा, जस्ता आदि। इन सभी में स्वाभाविक स्निधता (चिकनापन) पाई जाती है तथा वह तत्व जो प्रकृति से वैद्युत ऋणीय अम्लीय गुणवाले एवं धातु तत्वों की तुलना में अधिक वैद्युत ऋणात्मक वाले होते हैं, अधातु तत्व कहलाते हैं। जैसे सिलीकान, बोरोन, हीरा (कार्बन), सल्फर (गन्धक), फ्लोरीन, ब्रोमीन आदि। इन सभी में स्वाभाविक रुक्षता (रुखापन) पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य उमारवामी द्वारा स्निध गुण धात्विक परमाणुओं का तथा रुक्ष गुण अधात्विक परमाणुओं का माना गया है।

वैज्ञानिक विश्लेषण :-

वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा धातु-धातु, अधातु-अधातु एवं धातु-अधातु परमाणु

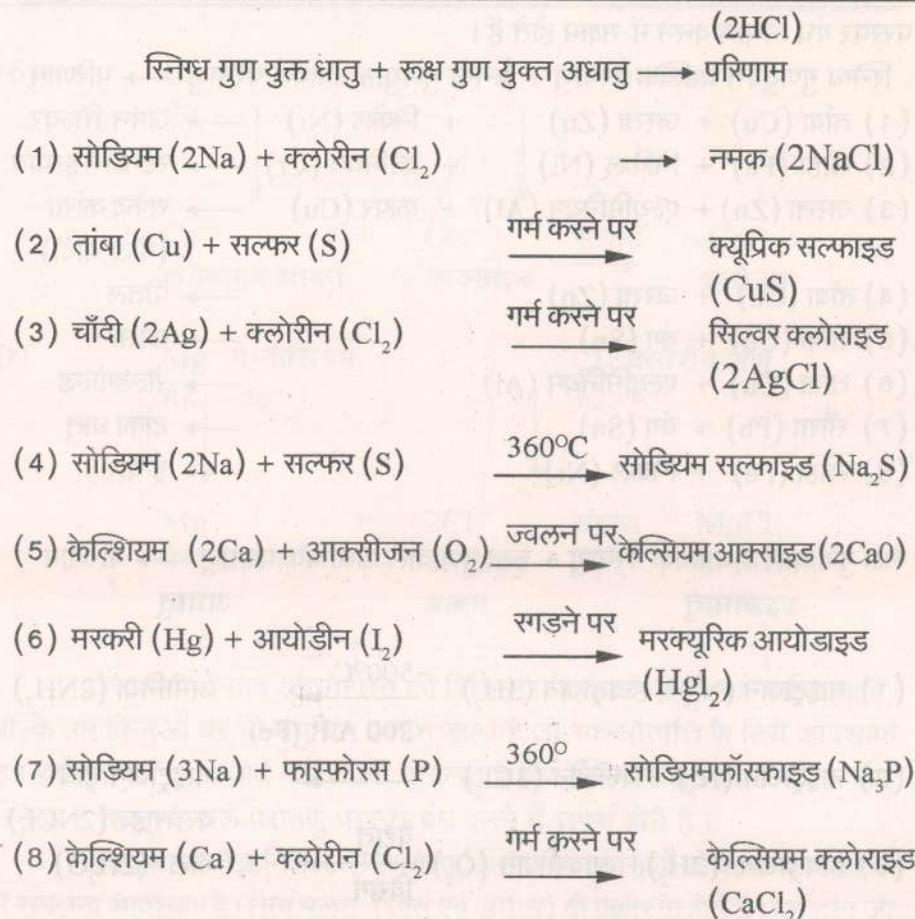
परस्पर बंध त्रिमाण करने में सक्षम होते हैं।

- स्निध गुणयुक्त धात्विक परमाणु + स्निध गुणयुक्त धात्विक परमाणु \rightarrow परिणाम
- (1) तांबा (Cu) + जस्ता (Zn) + निकल (Ni) \rightarrow जर्मन सिल्वर
 - (2) लोहा (Fe) + निकिल (Ni) + क्रोमियम (Cr) \rightarrow स्टेनलेस इस्पात
 - (3) जस्ता (Zn) + एल्युमिनियम (Al) + कापर (Cu) \rightarrow सफेद कांसा (गोटा चौंदी)
 - (4) तांबा (Cu) + जस्ता (Zn) \rightarrow पीतल
 - (5) तांबा (Cu) + वंग (Sn) \rightarrow कांसा
 - (6) तांबा (Cu) + एल्युमिनियम (Al) \rightarrow रोल्डगोल्ड
 - (7) सीसा (Pb) + वंग (Sn) \rightarrow टंका धातु
 - (8) लोहा (Fe) + निकल (Ni) \rightarrow इन्वार

रुक्ष गुण वाले अधात्विक परमाणु + रुक्ष गुण वाले अधात्विक परमाणु \rightarrow परिणाम

अधातु + अधातु *

- (1) नाइट्रोजन (N_2) + हायड्रोजन (3H_2) $\xrightarrow[200 \text{ A.P. (Fe)}]{500^\circ\text{C}}$ अमोनिया (2NH_3)
- (2) नाइट्रोजन (N_2) + क्लोरीन (3Cl_2) \longrightarrow नाइट्रोजन ट्राय क्लोराइड (2NCl_3)
- (3) हायड्रोजन (2H_2) + आक्सीजन (O_2) $\xrightarrow[\text{वैद्युत विसर्ग}]{}$ जल ($2\text{H}_2\text{O}$)
- (4) कार्बन (C) + हायड्रोजन (2H_2) $\xrightarrow{1100^\circ\text{C}}$ मेथेन (CH_4)
- (5) हाइड्रोजन (H_2) + सल्फर (S) $\xrightarrow{200-400^\circ\text{C}}$ हायड्रोजन सल्फाइड (H_2S)
- (6) सिलिकन (Si) + आक्सीजन (O_2) $\xrightarrow{\text{ज्वलन पर}}$ रेत (SiO_2)
- (7) कार्बन (C) + आक्सीजन (O_2) $\xrightarrow{\text{ज्वलन पर}}$ काबनडाय आक्साइड (CO_2)
- (8) हाइड्रोजन (H_2) + क्लोरीन (Cl_2) $\xrightarrow{\text{सूर्य का प्रकाश}}$ हायड्रोजन क्लोराइड



अगले तीन सूत्रों के माध्यम से आचार्य उमास्वामी द्वारा उन विन्दुओं पर प्रकाश डाला गया प्रतीत होता है जो भेद संघात प्रक्रिया द्वारा स्कन्धोत्पत्ति के लिये आवश्यक है। यह सूत्र एवं इनकी विवेचना निम्नानुसार है।

‘गुणासाम्येसदृशानाम्’

अर्थात् गुण रात्म्य रहने पर सदृशों का बन्ध नहीं होता। इस बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिन परमाणुओं में स्निग्ध एवं रुक्ष गुणों की संख्या समान होती है, उनका परस्पर बन्ध नहीं होता। आधुनिक विज्ञान भी इस कथन से पूर्ण रूप से सहमत है कि ऐसे परमाणु जिनकी वैद्युत ऋणात्मकता समान होती है, परस्पर वैद्युत संयोजी (भेद संघात प्रक्रिया द्वारा) बन्ध द्वारा स्कन्ध निर्माण नहीं करते।

परमाणु	वैद्युतऋणात्मकता	वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कन्धोत्पत्ति
1. नाइट्रोजन (N)	3.0	नहीं होती
क्लोरीन (Cl)	3.0	नहीं होती
2. फास्फोरस (P)	2.1	नहीं होती
हाइड्रोजन (H)	2.1	नहीं होती
3. आरसेनिक (As)	2.2	नहीं होती
आयोडीन (I)	2.2	नहीं होती
4. बोरोन (B)	2.0	नहीं होती
हाइड्रोजन (H)	2.1	नहीं होती
5. आक्सीजन (O)	3.5	नहीं होती
आक्सीजन (O)	3.5	नहीं होती

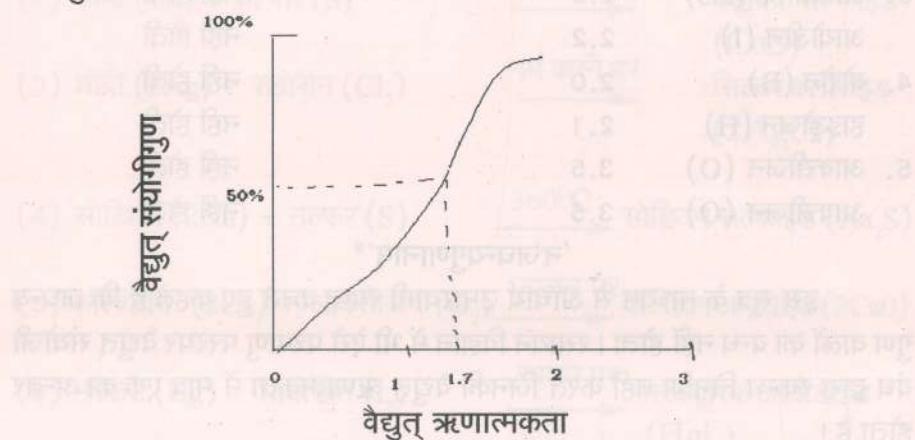
‘न जघन्यगुणानाम्’⁹

इस सूत्र के माध्यम से आचार्य उमास्वामी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जघन्य गुण वालों का बन्ध नहीं होता। रसायन विज्ञान में भी ऐसे परमाणु परस्पर वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कन्ध निर्माण नहीं करते जिनकी वैद्युत ऋणात्मकता में मात्र एक का अन्तर होता है।

परमाणु	वैद्युत ऋणात्मकता	वै.ऋणा. का अन्तर	वैद्युत संयोजी बंध द्वारा स्कन्धोत्पत्ति
1. कार्बन (C)	2.5	0.1	नहीं होता
आक्सीजन (O)	3.5		
2. क्लोरीन (Cl)	4.0	0.1	नहीं होता
फ्लोरीन (F)	3.0		
3. फोस्फोरस (P)	2.1	0.9	नहीं होता
क्लोरीन (Cl)	3.0		
4. नाइट्रोजन (N)	3.0	0.1	नहीं होता
फ्लोरीन (F)	4.0		
5. बोरोन (B)	2.0	0.1	नहीं होता
क्लोरीन (Cl)	3.0		
6. कापर (Cu)	1.8	1.2	नहीं होता
क्लोरीन (Cl)	3.0		

“द्वयधिकादिगुणानं तु”

आचार्य उमास्वामी इस सूत्र के माध्यम से आगे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि दो अधिक गुण वालों का परस्पर बन्ध होता है अर्थात् जिनमें स्तिंघ अथवा रुक्ष गुणों की संख्या में दो का अन्तर होता है वे परस्पर बंध निर्माण करने में सक्षम होते हैं। रसायन विज्ञान में भी वैद्युत संयोजी बंध द्वारा रुक्षधोत्पत्ति के लिये आवश्यक है कि बंध निर्माण में भाग ले रहे परमाणुओं की ऋणात्मकताओं में दो का अन्तर हो या दो से अधिक का अन्तर हो।



**A NEW CONCISE IN ORGANIC CHEMISTRY by
J.D.LEE Page No. 25, 100, 102**

	परमाणु	वैद्युत	वै.ऋणा. का	वैद्युत संयोजी बंध	संकेत
			ऋणात्मकता	अन्तर	द्वारा रुक्षधोत्पत्ति
1	सोडियम (Na)	1.0	2.0	सोडियम क्लोराइड (NaCl)	
	क्लोरीन (Cl)	3.0			
2	पोटेशियम (K)	0.8	2.2	पोटेशियम क्लोराइड (KCl)	
	क्लोरीन (Cl)	3.0			
3	बोरेन (B)	2.0	2.0	बोरेन ट्राय फ्लोराइड (BF ₃)	
	फ्लोरीन (F)	4.0			
4	विस्मथ (Bi)	1.7	2.3	विस्मथ फ्लोराइड (BiF ₃)	
	फ्लोरीन (F)	4.0			
5.	एल्यूमीनियम (Al)	1.5	2.5	एल्यूमीनियम फ्लोराइड (AlF ₃)	
	फ्लोरीन (F)	4.0			

6	केल्शियम (Ca)	1.0	2.0	केल्शियम क्लोराइड (CaCl ₂)
	फ्लोरीन (F)	3.0		
7	सीजियम (Cs)	0.7	2.0	सीजियम ब्रोमाइड (CsBr)
	ब्रोमीन (Br)	2.7		
8	लीथियम (Li)	1.0	2.0	लीथियम नाइट्राइड (Li ₃ N)
	नाइट्रोजन (N)	3.0		
9	वेरियम (Ba)	1.0	2.0	वेरियम क्लोराइड (BaCl ₂)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
10	रेडियम (Ra)	1.0	2.0	रेडियम क्लोराइड (RaCl ₂)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		
11	स्ट्रोन्शियम (Sr)	1.0	2.0	स्ट्रोन्शियम क्लोराइड (SrCl ₂)
	क्लोरीन (Cl)	3.0		

रुक्ष निर्माण की विभिन्न प्रक्रियाओं के उपरान्त आचार्य उमास्वामी रुक्ष की प्रकृति के बारे में बतलाए हुए कहते हैं कि “वन्धेऽधिकौपारिणामिको च” अर्थात् बन्ध होने पर अधिक गुण वाला न्यून गुण वाले को अपने रूप परिणमन करा लेता है। रसायन विज्ञान मान्य रुक्षों (मोलीक्यूल्स) में भी प्रायः यही देखने में आता है अर्थात् जब स्तिंघ (धातु) गुण युक्त परमाणु एवं रुक्ष (अधातु) गुण युक्त परमाणु परस्पर बन्ध कर रुक्ष निर्माण करते हैं तब निर्मित अणु (रुक्ष) उसी गुण रूप होता है जिसका द्रव्यमान अधिक होता है।

तात्पर्य यह है कि रुक्ष (अणु) निर्माण में भाग ले रहे परमाणुओं में से यदि स्तिंघ गुण युक्त (धातु) परमाणुओं का द्रव्यमान अधिक है तब निर्मित रुक्ष क्षारीय प्रकृति वाला होगा इसके विपरीत रुक्ष गुण युक्त (अधातु) परमाणुओं का द्रव्यमान अधिक होने पर निर्मित रुक्ष (अणु) अम्लीय प्रकृति का होगा क्योंकि क्षारीय प्रकृति का होना धातुओं का तथा अम्लीय प्रकृति का होना अधातु का विशिष्ट गुण होता है।

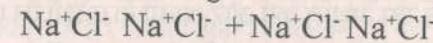
	परमाणु	प्रकृति	द्रव्यमान	निर्मित रुक्ष	सन्ध की प्रकृति
1	मैंगनीज (Mn)	स्तिंघ	54, +	मैंगनस आक्साइड	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रुक्ष	16	(MnO)	
2	मैंगनीज (Mn)	स्तिंघ	54, +	मैंगनीज हेप्टोक्साइड	अम्लीय
	आक्सीजन (O)	रुक्ष	16	(Mn ₂ O ₇)	
3	क्रोमियम (Cr)	स्तिंघ	52, +	क्रोमियम आक्साइड	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रुक्ष	16	(Cr ₂ O ₃)	
4	वेनेडियम (V)	स्तिंघ	50, +	हाइपो वेनेडस	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रुक्ष	16	आक्साइड (VO)	

5	वेनेडियम (V)	स्निग्ध	$50 \times 1 +$	हाइपोवेनेडिक	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	आक्साइड (VO_2)	
6	बोरोन (B)	रूक्ष	$10 \times 2 +$	बोरोन ट्राय आक्साइड	अम्लीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3	(B_2O_3)	
7	एल्युमीनियम (AL)	स्निग्ध	$26 \times 2 +$	एल्युमीनियम आक्साइड	उभयगुणी
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3	(Al_2O_3)	
8	सल्फर (S)	रूक्ष	$32 \times 1 +$	सल्फर डाय आक्साइड	अम्लीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	(SO_2)	
9	सिलिकान (Si)	रूक्ष	$28 \times 1 +$	सिलिका	अम्लीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	(SiO_2)	
10	सेडियम (Na)	स्निग्ध	$23 \times 1 +$	सेडियम हाइड्रोक्साइड	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×1	(NaOH)	
	हाइड्रोजन (H)	रूक्ष	01×1		
11	केल्शियम (Ca)	स्निग्ध	$40 \times 2 +$	केलिश्यम	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	हाइड्रोक्साइड	
	हायड्रोजन (H)	रूक्ष	01×1	($\text{Ca}(\text{OH})_2$)	
12	कापर (Cu)	स्निग्ध	$16 \times 1 +$	कापर सल्फेट	अम्लीय
	सल्फर (S)	रूक्ष	$32 \times 1 +$	(CuSO_4)	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×4		
13	आयरन (Fe)	स्निग्ध	$56 \times 1 +$	फेरिक क्लोराइड	अम्लीय
	क्लोरीन (Cl)	रूक्ष	35×3	(FeCl_3)	
14	कार्बन (C)	रूक्ष	$12 \times 1 +$	कार्बन डाय आक्साइड	अम्लीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×2	(CO_2)	
15	विरस्थ (Bi)	स्निग्ध	$208 \times 2 +$	विरस्थ ट्राय आक्साइड	क्षारीय
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3	(Bi_2O_3)	
16	नाइट्रोजन (N)	रूक्ष	14×3	हायड्रोजोइक	अम्लीय
	हाइड्रोजन (H)	रूक्ष	01×1	(N_3H)	
17	हाइड्रोजन (H)	रूक्ष	$01 \times 1 +$	नाइट्रिक अम्ल	अम्लीय
	नाइट्रोजन (N)	रूक्ष	$14 \times 1 +$	(HNO_3)	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×3		
18	आयरन (Fe)	स्निग्ध	$56 \times 1 +$	फेरस सल्फेट	अम्लीय
	सल्फर (S)	रूक्ष	$32 \times 1 +$	(FeSO_4)	
	आक्सीजन (O)	रूक्ष	16×4		

“भेदसंघाताम्यां चाक्षुषः”

अर्थात् भेदसंघात प्रक्रिया द्वारा चाक्षुष रक्न्ध बनता है अथवा इसी प्रक्रिया द्वारा अचाक्षुष रक्न्ध चाक्षुष बनता है।

वैज्ञानिक विश्लेषण :- भेदसंघात अर्थात् वैद्युतसंयोजी बन्ध द्वारा निर्मित रक्न्ध (अणु) ठोस होते हैं अतः चाक्षुष होते हैं क्योंकि इस प्रक्रिया द्वारा निर्मित अणु ध्रुवीय होते हैं जिस कारण अनन्त अणु एक-दूसरे से विपरीत आवेशित आयनों की ओर से वैद्युतव्ल रेखाओं द्वारा जुड़ते चले जाते हैं तथा चाक्षुष का निर्माण करते हैं।

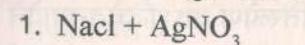


वैद्युत बल रेखायें

उदाहरण :- नमक, चूना, नौसादर, फिटकरी, नीला थोथा, हरा करीस आदि बंध की भेदसंघात प्रक्रिया द्वारा अचाक्षुष रक्न्ध भी चाक्षुष बन जाते हैं। इस आधार पर वैद्युत संयोजी योगिकों (सकन्धों) की विलयन में होने वाली आयनिक क्रियाओं को भी समझा जा सकता है।

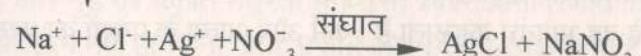
रक्न्धों का अचाक्षुष जलीय विलयन

भेदसंघात प्रक्रिया द्वारा बने चाक्षुष रक्न्ध

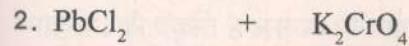


नमक सिल्वर नाइट्रेट

भेद

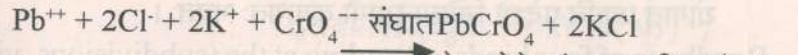


सिल्वर क्लोराइड (सफेद) +
सोडियम नाइट्रेट



लेड क्लोराइड पॉटेशियम क्रोमेट

भेद



लेड क्रोमेट (सुनहरा पीला ठोस) +
पॉटेशियम क्लोराइड

भाव बन्ध एवं द्रव्य बन्ध

ब्लृदिकान्तं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो । कर्मादपदेसाणं अणोपवेसणं इदरो (32) ॥
बध्यते कर्म्य येन तु चेतनाभावेन भावबन्धः सः । कर्मात्मस्प्रिदेशानां अन्योन्यप्रवेशं इतरः ॥

That conscious state by which karma is bound (with the soul) is called Bhava-bandha, while the interpenetration of the Pradesas of karma and the soul is the other (i.e. Dravyabandha)

जिस चेतना भाव से कर्म बंधता है वह तो भाव बंध है और कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशन रूप अर्थात् कर्म और आत्मा के प्रदेशों का एकाकार होने रूप दूसरा द्रव्य बंध है । आत्मव के बाद जीव एवं पुद्गल की जो अवस्था विशेष होती है उसे बंध कहते हैं । गाय को जैसे रस्सी से बंधते हैं या कागज को गोंद से चिपकाते हैं उसी प्रकार बंध यहां नहीं होता है, परन्तु यह बंध लोहे को अग्नि से गर्म करने पर जिस प्रकार अग्नि और लोहे का संश्लेष बंध (अन्योन्य प्रदेश) होता है उसी प्रकार होता है । ये बंध भी दो प्रकार के हैं ।

1. द्रव्य बंध 2. भाव बंध । मिथ्यात्व आदि वैभाविक भाव, भाव बंध है तो कर्म परमाणु का जीव प्रदेशों में संश्लेषतः बन्ध हो जाना द्रव्य बन्ध है । वृहद् द्रव्य संग्रह में संरकृत टीका में भी कहा गया है “मिथ्यात्वरागादिपरिणतिरूपेण वाऽशुद्धचेतनभावेन परिणामेन बध्यते ज्ञानावरणदि कर्म येन भावेन स भावबंधो भण्यते । “कर्मादपदेसाणं अणोणपवेसणं इदरो” कर्मात्मप्रदेशानामन्योन्य प्रवेशमितरः । तेनैव भावबन्ध निमित्तेन कर्मप्रदेशानामात्मप्रदेशानां च क्षीरनीरवधंन्योन्य प्रवेशनं संश्लेषी द्रव्यबन्ध इति ।

मिथ्यात्व राग आदि में परिणति रूप अशुद्ध चेतन भाव स्वरूप जो परिणाम है उससे जो कर्म बंधता है वह भावबंध कहलाता है । कर्म और आत्मा के प्रदेशों का परस्पर प्रवेशनरूप द्रव्य बंध (दूसरा) है अर्थात् उसी पूर्वोक्त भावबंध के निमित्त से कर्म के प्रदेशों का और आत्मा के प्रदेशों का जो दूध तथा जल की भाँति एक-दूसरे में प्रवेश होना अर्थात् मिल जाना है सो द्रव्य बंध है ।

बन्ध के भेद व कारण

पयडिद्विअणुभागप्पदेसभेदादु चदुविधोणो बंधो ।

जोग प्याडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो हौंति ॥ (33)

प्रकृतिस्थित्यनुभागदेशभेदात् तु चतुर्विधो बंधः ।

योगात् प्रकृति प्रदेशो स्थित्यनुभागौ कषायतः भवतः ।

Bandha is of four kinds, according at the (subdivisions, viz.) Prakriti, sthiti, Anubhage and Pradesa, Prakriti and Pradesa are (produced) from yoga, but sthiti and Anubhage are from kashaya.

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन भेदों से बंध चार प्रकार का है । इनमें योगों से प्रकृति तथा प्रदेश बंध होते हैं और कषायों से स्थिति तथा अनुभाग बंध होते हैं ।

वर्तमान गाथा के पूर्वार्ध में बंध के भेद एवं उत्तरार्ध में उस बंध के कारण को बताया गया है ।

सामान्य दृष्टि से यह बंध एक होते हुए भी विशेष दृष्टि से इसके अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं । द्रव्य बंध, भावबंध के भेद से दो भेद, कर्म बंध, नोकर्मबंध, भावबंध के भेद से तीन प्रकार के हैं (1) प्रकृति बंध (2) स्थिति बंध (3) अनुभव (अनुभाग) (4) प्रदेशबन्ध के भेद से बन्ध चार प्रकार के हैं । ज्ञानावरणादि आठ कर्म के भेद से बन्ध आठ प्रकार के भी हैं । 148 (एक सौ अड़तालीस) भेद रूप कर्म की अपेक्षा बंध 148 प्रकार के भी हैं, परन्तु मुख्यतः प्रकृति आदि के प्रकार के बंध के भेदों का वर्णन यहां पर कर रहे हैं ।

महान् तत्त्वज्ञ दार्शनिक महर्षि उमास्वामी ने ज्ञान-विज्ञान-धर्म एवं दर्शन की अनुपम कृति तत्त्वार्थ सूत्र में चार प्रकार के बंधों का वर्णन करते हुए कहा भी है -

प्रकृतिस्थित्यनुभव प्रदेशस्तद्विधयः ॥ (3) (रा. वा. अ. 8)

प्रकृति, स्थिति, अनुभव (अनुभाग) और प्रदेश के भेद से बंध चार प्रकार का है । प्रकृति बंध

प्रकृतिः स्वभाव इत्यनर्थान्तरम् ॥ (4) (रा. वा. अ. पृ. 452)

प्रकृति और स्वभाव ये एकार्थवाची शब्द है । जैसे-नीम की प्रकृति क्या है ? नीम का स्वभाव तिक्तता है गुड का स्वभाव या प्रकृति मधुर है अर्थात् नीम की प्रकृति कड़आपन है और गुड की प्रकृति मधुरता है । उसी प्रकार ज्ञानावरणीय की प्रकृति अथवा स्वभाव अर्थज्ञान नहीं होने देना, अतः प्रकृति और स्वभाव एकार्थवाची है, इसी प्रकार दर्शनावरण की प्रकृति (स्वभाव) है अर्थ का दर्शन नहीं करने देना, वेदनीय का स्वभाव है सुख-दुःख का संवदेन कराना, दर्शन मोहनीय की प्रकृति है तत्त्वार्थ श्रद्धान नहीं होने देना, चारित्र मोहनीय की प्रकृति है असंयम परिणाम होना, आयु का स्वभाव है भव धारण, नामकर्म की प्रकृति है नारक, तिर्यच आदि व्यवहार कराना, गोत्र का स्वभाव है ऊँच-नीच का व्यवहार कराना तथा अंतराय कर्म का स्वभाव है दानादि में विघ्न करना । इस प्रकार के कार्य जिससे उत्पन्न होते हैं वह प्रकृति बंध है । अपादान साधन से निष्पन्न यह प्रकृति शब्द है ।

स्थिति बन्ध

तत्स्वभावा प्रच्युतिः स्थितिः ॥ (15)

उस स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है अर्थात् उस स्वभाव की अप्रच्युत स्थिति कहलाती है । जैसे-बकरी, गाय, भैंस आदि के दूध का अपने माधुर्य स्वभाव से च्युत नहीं होना स्थिति है । उसी प्रकार ज्ञानावरणीय आदि कर्म-प्रकृति का अपने अर्थान्गमन आदि

(अर्थों का ज्ञान नहीं हो, वेदना आदि) स्वभाव से च्युत न होना स्थिति है।
अनुभाग बंध -

तद्रसविशेषोऽनुभवः ॥ (6)

कर्मों के इस विशेष (फलदान शक्ति विशेष) को अनुभाग बंध कहते हैं। जैसे-बकरी गाय भैंस आदि के दूध में तीव्र मंद आदि भाव से रस विशेष होता है अर्थात् दूध सामान्य होते हुए भी उसमें रिनग्धता, मधुरता आदि में विशेषता होती है उसी प्रकार कर्म पुद्गलों की स्वकीय फलदान शक्ति के सामर्थ्य विशेष को अनुभव/अनुभाग बंध कहते हैं। प्रदेश बन्ध -

इयत्ताऽवधारणं प्रदेशः ॥ (7)

इयत्ता के अवधारणा को प्रदेश बन्ध कहते हैं अर्थात् कर्म रूप से परिणित पुद्गल स्कन्धों के परमाणुओं की गणना को प्रदेश बंध कहते हैं।

तत्र योग निमित्तो प्रकृति प्रदेशो ॥ (9)

उन बंध के विकल्पों में प्रकृति बंध और प्रदेश बंध योग के निमित्त से होते हैं ऐसा जानना चाहिये।

स्थित्यनुभवौ कषायहेतुकौ ॥ (10)

स्थिति बंध और अनुभाग बंध क्षय के कारण होता है अर्थात् स्थिति बंध और अनुभाग बंध क्षय हेतुक हैं ऐसा जानना चाहिए। इन क्षयों के तारतम्य से स्थिति अनुभाग में विचित्रता आती है, क्योंकि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है।

जीव को परतंत्र करने रूप स्वभाव के कारण कर्म प्रकृति एक होते हुए भी विभिन्न कार्य भेद में इन प्रकृतियों में भी आठ भेद हो जाते हैं।

यथा- (1) ज्ञानावरणीय (2) दर्शनावरणीय (3) वेदनीय (4) मोहनीय (5) आयु (6) नाम (7) गोत्र (8) अन्तराय। इन प्रकृतियों के स्वभाव अर्थात् कार्य निम्न प्रकार के होते हैं।

पठपडिहारसिमज्जाहलिचित्रकुलाल भंडयारीण् ।

यह ऐदेसी भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा ॥ (21) (गो. सा कर्मकाण्ड)

पठ अर्थात् देवता के मुख के ऊपर का वस्त्र (1) प्रतिहार अर्थात् राजद्वार पर वैठ हुआ द्वारपाल (झ्योडीवान) (2) असी (शहद लपेटी तलवार की धार) (3) शराब (4) काठ का यन्त्र - खोडा (5) चित्रकार/चितेरा (6) कुंभार (7) भण्डारी (खजांची) (8) इन आठों के जैसे-जैसे अपने-अपने कार्य करने के भाव होते हैं उसी तरह क्रम से कर्मों के भी स्वभाव समझना चाहिए। उपर्युक्त उदाहरण आगे कर्म के लिए क्रम से हैं। इसका विशेष व्याख्यान नीचे कर रहे हैं।

1. ज्ञानावरणीय

वर्थस्य सेदभावो जह णासेदि मल विमेलणाच्छणो ।

अण्णाण मलोच्छणां तह णाणं होदिणादव्वं ॥ (165)

मैल के विशेष सम्बन्ध से दवकर वस्त्र का श्वेतपना नष्ट हो जाता है वैसे ही जीव का मोक्ष का हेतुभूत ज्ञानगुण भी अज्ञान रूपी मल से (ज्ञानावरण) कर्म से दवकर नष्ट हो जाता है।

जैसे-दर्पण के ऊपर धूली लगने से दर्पण की स्वच्छता छिप जाती है या सूर्य के सन्मुख बादल आने पर सूर्य की रश्मि छिप जाती है व भगवान् के सामने वस्त्र रहने पर भगवान् का रूप ढक जाता है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म जीव के ज्ञान गुण को ढक देता है।

2. दर्शनावरणीय

सामान्य सत्ता अवलोकन रूप अन्तः चेतना रूपी प्रकाश को आवरण करने वाला दर्शनावरणीय कर्म है। जैसे द्वारपाल, राजा, मंत्री आदि मालिक को देखने नहीं देता है अर्थात् देखने के लिये रोक देता है। उसी प्रकार यह कर्म वस्तु का सामान्य अवलोकन रूप दर्शन नहीं होने देता है।

3. वेदनीय

अक्खाणं अणुभवणं वेयणियं सुहरुवयं सादं ।

दुक्ख सरुवमसादं तं वेदयदीदि वेदणियं ॥ (14) (गो. कर्मकाण्ड)

इन्द्रियों का अपने-अपने रूपादि विषय का साता रूप में अनुभव करना सातावेदनीय है, उसमें दुःख रूप अनुभव करना असाता वेदनीय है। उस सुख-दुःख का अनुभव जो करावे वह वेदनीय कर्म है।

जो कर्म वेदन किया जाता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। इस अपेक्षा सभी कर्म वेदन किए जाते हैं इसलिये सभी कर्म वेदनीय होने पर भी विशेष रूप से संसारी जीव सुख-दुःख का अधिक रूप से वेदना करता है इसलिए सुख-दुःख को देने वाले कर्म को ही वेदनीय कर्म कहते हैं। दूसरी बात है कि वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म के भेद जो रागद्वेष हैं उनके उदय के बल से ही घातिया कर्मों की तरह जीवों का घात करता है अर्थात् इन्द्रियों के रूपादि विषयों में से किसी में से किसी में रति (प्रीति) और किसी में अरति (द्वेष) का निमित्त पाकर सुख तथा दुख स्वरूप साता और असाता का अनुभव करके जीव को अपने ज्ञानादि गुणों में उपयोग नहीं करने देता, परस्वरूप में लीन करता है।

4. मोहनीय कर्म

जो जीव को मोहिते करे वह मोहनीय कर्म है। इस दृष्टि से मोहनीय कर्म के सामान्य से एक होते हुए भी विशेष अवस्था में दो भेद हैं। जो दर्शन गुण को मोहित करके विपरीत करे

वह दर्शन मोहनीय है। जो चारित्र गुण को मोहित करके विपरीत करे वह चारित्र मोहनीय है।
(A) दर्शन मोहनीय -

सम्मत पडिणिबंद्ध मिच्छत्तं जिणवरेहिं परिकहिंद ।

तस्सोदयेण जीवो मिच्छादिट्ठित्तिणादव्वो ॥ (168) (समयसार)

आत्मा के सम्यक्त्व गुण को रोकने वाला मिथ्यात्व कर्म है जिसके उदय से यह जीव मिथ्यादृष्टि हो रहा है।

मिच्छत वेदंतो जीवो विवरीयदंसणओ होदि ।

ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो ॥ (17) (गो. जीव)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभाव को अथवा मोक्ष के कारणभूत रलत्रयात्मक धर्म को भी पसन्द नहीं करता। इसमें दृष्टान्त देते हैं जैसे - पित्त ज्वर से ग्रसित मीठे दूध आदि रस को पसन्द नहीं करता, उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता।

मिच्छाइट्ती जीवो उवइट्टरं पवयणं सद्धहिं ।

सद्धहिं असद्भावं उवइट्टरं वा अणुवइट्टर ॥ (18) (गो, जीव)

मिथ्यादृष्टि जीव उपदिष्ट अर्थात् अर्हन्त आदि के द्वारा कहे गये, प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ ये तीन इनकी श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन-प्रवचन अर्थात् परमागम प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है अर्थात् प्रमाण के द्वारा कहा जाता है, वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ, इन निरुक्तियों 'प्रवचन' शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्यारूप प्रवचन यानि आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

(B) चारित्र मोहनीय

चरित्तं पडिणिबंद्ध कसायं जिणवरेहिं परिकहिंद ।

तस्सोदयेण जीवो अचरित्तो होदि णादव्वो ॥ (170) समयसार

चारित्र गुण को रोकने वाला कथाय भाव जिसके उदय से यह जीव चारित्र रहित अर्थात् अचारित्री हो रहा है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने बतलाया है।

5 आयुर्कर्म :-

एत्यनेन गच्छति नारकादि भवमित्यायुः । (राज. अ. 8पृ. 456)

जिस कर्म के उदय से जीव नारकादि पर्यायों को प्राप्त होता है, नारकादि भवों में वास करता है, उसे आयु कहते हैं। इसका स्वभाव लोहे की सांकल वा काठ के यंत्र के

समान है। जैसे-सांकल अथवा काठ का यंत्र पुरुष को अपने स्थान में ही स्थित रखता है दूसरी जगह नहीं जाने देता, ठीक उसी प्रकार आयु कर्म जीव को मनुष्यादि पर्याय में स्थित (मौजूद) रखता है दूसरी जगह नहीं जाने देता।

6. नाम कर्म :-

गति आदि जीव भेद देहादी पोगलाण भेदं च ।

गदियंतरपरिणमन करेदि णामं अणेयविहं । (12) गो. कर्म

नाम कर्म गति आदि अनेक तरह का है। वह नारकी वगैरह जीवन की पर्यायों के भेदों को और औदारिक शरीर आदि पुद्गल भेदों को तथा जीव के एक गति से दूसरी गति रूप परिणमन को करता है अर्थात् चित्रकार की तरह अनेक कार्य को किया करता है। नाम कर्म के कारण ही विभिन्न वैचित्र्य पूर्ण शरीर के शरीर के अवयव, इन्द्रियों शरीर के आकार-प्रकार आदि का निर्माण होता है। शुभ नाम कर्म से सुन्दर प्रशरस्त शरीर आदि की उपलब्धि होती है तथा अशुभ नाम कर्म के उदय से असुन्दर हीनांग अधिकांग की विकलांग सहित शरीर की प्राप्ति होती है।

7. गोत्र कर्म :-

संताणकमेणागयजीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा ।

उच्चं णीचं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं । (13)

कुल की परिपाटी के क्रम से चला आया जो जीवन का आचरण, उसकी गोत्र संज्ञा है, अर्थात् उसे गोत्र कहते हैं। उस कुल परम्परा में ऊँचा (उत्तम) आचरण हो तो उसे उच्च गोत्र कहते हैं। यदि निंद्य आचरण हो तो वह नीच गोत्र कहा जाता है। जैसे, एक कहावत है कि सियार का एक बच्चा बचपन से सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चों के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सब बच्चे किसी जगह में गये। वहाँ उन्होंने हाथियों का समूह देखा। देखकर जो सिंहनी के बच्चे थे वे तो हाथी से सामने हुए, लेकिन वह सियार जिसमें कि कुल का डरपोक पने का संरक्षक था हाथी को देखकर भागने लगा तब सिंह के बच्चे भी अपना बड़ा भाई समझकर उसके साथ पीछे लौटकर माता के पास आये, और उस सियार की शिकायत की कि इसने हमें शिकार से रोका। तब सिंहनी ने उस सियार के बच्चे से एक श्लोक कहा जिसका मतलब यह है कि अब हे बेटा तू यहाँ से भाग जा, नहीं तो तेरी जान नहीं बचेगी। शूरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रकः यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजरत्तत्र न हन्यते ।

अर्थात् हे पुत्र ! तू शूरवीर है, बुद्धिमान है, देखने योग्य (रूपवान) है, परन्तु जिस कुल में तू पैदा हुआ है उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते।

8. अन्तराय कर्म-

बहियोगो वा, यस्मिन् मध्येऽवास्थि दात्रादीना-दानादिक्रियाऽभावः दानादीच्छाया
बहिर्भावो वा सोऽन्तरायः।

दाता और पात्र आदि के बीच में विघ्न करावे या जिस कर्म के उदय से दाता और पात्र के मध्य में अंतर डाले उसे अन्तराय कहते हैं अथवा जिसके रहने पर दाता दानादि क्रियाएं नहीं कर सके, दानादि की इच्छा से पराङ्मुख हो जावे, वह अन्तराय कर्म है।

जीव के वैभाविक भाव एवं योग के कारण कर्म पुद्गलों का उपर्युक्त ज्ञानावरणीयादि शक्ति सहित हो जाना ही “प्रकृति बंध” है।

जीव के उपयोग एवं योग को निमित्त पाकर जो कर्म परमाणु आकर्षित होकर जीव के साथ बंधते हैं उसे ‘प्रदेश बंध’ कहते हैं। ये प्रदेश संख्यात, असंख्यात या जघन्य अनंत भी नहीं होते हैं पर मध्यम अनंतानंत होते हैं, क्योंकि जीव महान् अनंत शक्ति सम्पन्न द्रव्य है और उसमें असंख्यात प्रदेश भी होते हैं। जिस प्रकार एक मदोन्मत्त हाथी को एक तिनके से बांधकर परतंत्र नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार संख्यात, असंख्यात परमाणु जीव को बांधकर परतंत्र नहीं कर सकते। जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं, इसीलिए असंख्यात को बांधने के लिये कम से कम असंख्यात चाहिए ही। परन्तु असंख्यात आत्म प्रदेश के ऊपर अनादिकालीन कर्मबंध की संतति की अपेक्षा एक-एक आत्म प्रदेश में अनंतानंत कर्म परमाणु बंधे हुए हैं। नवीन कर्मबंध प्राचीन कर्मबंध में होता है इसीलिए भी संख्यात, असंख्यात एवं जघन्य अनंत कर्म परमाणु भी एक समय में नहीं बंधते हैं। तत्वार्थ सूत्र एवं तत्त्वार्थ वार्तिक आदि प्राचीन ग्रंथ में यह सब कहा भी है।

नाम कर्म का विशेष वर्णन -

जो नाना प्रकार की रचना निर्वृत करता है, वह नाम कर्म है। शरीर, संरथान, संहनन, वर्ण, गंध आदि कार्यों के करने वाले जो पुद्गल जीव में निविष्ट हैं वे ‘नाम’ इस संज्ञा वाले होते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है।

शंका - उस नामकर्म का अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान - शरीर, संरथान, वर्ण आदि कार्यों के भेद अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्ति से नामकर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

नामकर्म की बयालीस पिंडप्रकृतियां हैं।

(1) गतिनाम, (2) जातिनाम, (3) शरीरनाम, (4) शरीरवंधन नाम, (5) शरीरसंघात नाम, (6) शरीर संरथाननाम, (7) शरीर अंगोपांगनाम, (8) शरीरसंहनन नाम, (9) वर्णनाम, (10) गंधनाम, (11) रसनाम, (12) स्पर्शनाम, (13) आनुपूर्वीनाम, (14) अगुरुलघुनाम, (15) उपघातनाम, (16) परघातनाम, (17) उच्छ्वास नाम, (18) आतापनाम, (19) उद्योतनाम, (20) विहायोगतिनाम, (21)

त्रसनाम, (22) स्थावरनाम, (23) वादरनाम, (24) सूक्ष्मनाम, (25) पर्याप्तिनाम, (26) अपर्याप्तिनाम, (27) प्रत्येकशरीर नाम, (28) साधारणशरीर नाम, (29) स्थिरनाम, (30) अस्थिरनाम, (31) शुभनाम, (32) अशुभनाम, (33) सुभगनाम, (34) दुर्भगनाम, (35) सुस्वरनाम, (36) दुःस्वरनाम (37) आदेयनाम, (38) अनादेयनाम, (39) यशः कीर्तिनाम, (40) अयशः कीर्तिनाम, (41) निर्वाणनाम और (42) तीर्थकरनाम, ये नामकर्म की बयालीस पिंडप्रकृतियां हैं। (28)

(1) गति नाम कर्म :-

इस सूत्र का अर्थ कहते हैं - गति यह नाम भव अर्थात् संसार का है। यदि गति नामकर्म न हो, तो जीव गतिरहित हो जाय। जिस जीवभाव में आयुकर्म से अवरथान के प्राप्त करने पर शरीर आदि कर्म उदय को प्राप्त होते हैं वह भाव मिथ्यात्व आदि कारण के द्वारा कर्मभाव को प्राप्त जिस पुद्गल स्कन्ध के उदय से उत्पन्न होता है, उस कर्म - स्कन्ध की ‘गति’ यह संज्ञा है।

(2) जाति नाम कर्म

जीवों के सदृश परिणाम को जाति कहते हैं। यदि जाति नामकर्म न हो, तो खटमल खटमलों के साथ, चिच्छु चिच्छुओं के साथ, चीटियां चीटियों के साथ, धान्य धान्य के साथ और शालि शालि के साथ समान न होगी, किन्तु इन सब में परस्पर सदृशता दिखाई देती है। इसलिए जिस कर्म स्कन्ध से जीवों के अत्यन्त सदृशता उत्पन्न होती है वही कर्म स्कन्ध कारण में कार्य के उपचार से ‘जाति’ इस नामवाला कहलाता है।

शंका - यदि परिणामिक सदृश परिणाम नहीं हैं, तो सदृश परिणाम रूप कार्य उत्पन्न हो नहीं सकता, इस अन्यथानुपपत्ति से उसके कारणभूत कर्म का अस्तित्व भले ही सिद्ध होवे, किन्तु गंगा नदी की बालुका आदि में परिणामिक सदृश परिणाम पाया जाता है, इसलिये हेतु के अनेकान्तिक होने से सदृश परिणाम अपने कारणीभूत कर्म के अस्तित्व को नहीं सिद्ध करता है ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, गंगा नदी की बालुका के पृथिवीकायिक नामकर्म के उदय से सदृश परिणामता मानी गई है। परमाणुओं से सदृश परिणाम स्वाभाविक पाया जाता है, इसलिए उपर्युक्त हेतु अनेकान्तिक है, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि, हेतु सम्बन्धी दोषों में अनेकान्तिक नाम के दोष का अभाव है। अन्यथानुपपत्ति के अभाव से साधन के अवक्षिप्तता प्राप्त होती है, अन्य प्रकार से नहीं, क्योंकि अन्य प्रकार से मानने पर अव्यवस्था उत्पन्न होती है। यहाँ पर अन्यथानुपपत्ति न हो, यह बात नहीं है, क्योंकि यहाँ वह पाई जाती है। दूसरी बात यह है कि यदि जीव के द्वारा ग्रहण किये गए पुद्गल स्कन्धों का सदृश परिणाम परिणामिक भी हो, तो हेतु अनेकान्त होवे ? किन्तु ऐसा नहीं है,

क्योंकि उस प्रकार का अनुपलम्ब है। यदि जीवों का सदृश परिणाम कर्म के आधीन न होवे, तो चतुरिन्द्रिय जीव घोड़ा, हाथी, भेड़िया वाघ और छवल आदि के आकार वाले हो जाएंगे तथा पंचेन्द्रिय जीव भी भ्रमर, मत्कुण, शलभ, इन्द्रगोप, क्षुलक, अक्ष और वृक्ष आदि के आकार वाले हो जाएंगे, किन्तु इस प्रकार है नहीं, क्योंकि, इस प्रकार के वे पाए नहीं जाते, तथा प्रतिनियत सदृश परिणाम में अवस्थित वृक्ष आदि पाये जाते हैं, इसलिये जीवों का सदृश परिणामिक नहीं है, यह सिद्ध हुआ।

(3) शरीर नाम कर्म :-

जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के पुद्गल रक्तन्ध तथा तैजस और कर्मवर्गणा के पुद्गल रक्तन्ध शरीर योग्य परिणामों के द्वारा परिणित होते हुए जीव के साथ संबद्ध होते हैं उस कर्म रक्तन्ध की शरीर यह संज्ञा है यदि शरीरनामकर्म जीव के न हो, तो तीव के अशरीरता का प्रसंग आता है। शरीररहित होने से अमूर्त आत्मा के कर्मों का होना भी संभव नहीं है, क्योंकि मूर्त पुद्गल और अमूर्त आत्मा के सम्बन्ध होने का अभाव है।

शंका - अमूर्त आत्मा और मूर्त पुद्गल, इन दोनों का यदि सम्बन्ध नहीं हो सकता, तो न होवे, क्या हानि है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, वैसा मानने पर सभी संसारी जीवों के सिद्धों के समान होने की आपत्ति से संसार के अभाव का प्रसंग प्राप्त होगा।

(4) शरीर बंधन नाम कर्म :-

शरीर के लिए आए हुए जीव सम्बद्ध पुद्गल रक्तन्धों का जिन जीव - सम्बन्ध और उदय प्राप्त पुद्गलों के साथ परस्पर बंध किया जाता है उन पुद्गल रक्तन्धों की 'शरीरबंधन' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से अथवा कर्तृ निर्देश से है। यदि शरीर बंधन नाम कर्म जीव के न हो, तो बालुका द्वारा बनाये गये पुरुष शरीर (पुतला) के समान जीव का शरीर होगा, क्योंकि परमाणुओं का परस्पर में बंध नहीं है।

(5) शरीर संघात नाम कर्म :-

उदय को प्राप्त जिन कर्मरक्तन्धों के द्वारा बंधननाम कर्म के उदय से बंधन के लिये आये हुए शरीर-सम्बन्धी पुद्गल रक्तन्धों का मृष्टत्व, अर्थात् छिद्र रहित संश्लेष किया जाता है, उन पुद्गल रक्तन्धों की 'शरीर संघात' यह संज्ञा है। यदि शरीर संघात नामकर्म जीव के न हो, तो तिल के मोदक के समान अपुष्ट शरीरवाला जीव हो जावे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, तिल के मोदक के समान संश्लेषरहित परमाणुओं वाला शरीर पाया नहीं जाता।

(6) शरीर संरथान नामकर्म :-

जातिनाम कर्म के उदय से परतन्त्र जिन कर्म रक्तन्धों के उदय से शरीर का आकार बनता है वह शरीर संरथान नाम कर्म है। शरीर संरथान नाम कर्म के अभाव में जीव

का शरीर आकृति रहित हो जायेगा।

शंका - शरीर संरथान नाम कर्म के अभाव मानने पर यदि जीव का शरीर आकृति रहित होता है, तो होने दो ?

समाधान-नहीं, क्योंकि, संरथान के अभाव मानने पर शरीर के अभाव का प्रसंग आता है और शरीर संरथान निर्हेतुक माना नहीं जा सकता, क्योंकि, द्वीइन्द्रिय आदि जातियों में निर्हेतुक संरथान के नियम का विरोध है तथा जातियों में संरथान का नियम असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, घोड़ा, शेरी और हरिणों में संरथान का नियम पाया जाता है। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि जीव के शरीर का संरथान सहेतुक है।

(7) शरीरांगोपांग नाम कर्म :-

जिस कर्म रक्तन्ध के उदय से शरीर के अंग और उपांगों की निष्पत्ति होती है उस कर्म रक्तन्ध का शरीरांगोपांग' यह नाम है। इस नामकर्म के नहीं मानने पर आठों अंगों का और उपांगों को अभाव हो जायगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अंग और उपांगों का अभाव पाया नहीं जाता है। इस विषय में यह उपयोगी कथन है -

शरीर में दो पैर, दो हाथ, नितम्ब (कमर के पीछे का भाग), पीठ, हृदय और मर्तक, ये आठ अंग होते हैं। इनके सिवाय अन्य (नाक, कान, आँख इत्यादि) उपांग होते हैं।

(8) संहनन नाम कर्म :-

शिर में मुर्धा, कपाल, मर्तक, ललाट, शंख, भौंह, कान, नाक, आँख, अक्षिकुट, हनु (टुड़डी), कपोल, ऊपर और नीचे के ओष्ठ सृकृणी (चाप), तालु और जीभ आदि उपांग होते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर में हड्डी और उसकी संधियों अर्थात् संयोग रथानों की निष्पत्ति होती है, उस कर्म की 'संहनन' यह संज्ञा है। इस कर्म के अभाव में शरीर देवों के शरीर के समान संहनन रहित हो जायगा।

शंका - यदि संहनन कर्म के अभाव में शरीर देव शरीर के समान संहनन रहित होता है, तो होने दो, क्या हानि है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, तिर्यच और मनुष्य के शरीरों में हाड़ों का समूह पाया जाता है।

(9) वर्ण नाम कर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में वर्ण की उत्पत्ति होती है, उस कर्म रक्तन्ध की 'वर्ण' यह संज्ञा है। इस कर्म के अभाव में अनियत वर्ण वाला शरीर हो जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं जाता, क्योंकि भौंरा, कोयल, हंस और बगुला आदि में सुनिश्चित वर्ण पाये जाते हैं, परन्तु जो कार्य निर्हेतुक होता है, उसमें कोई नियम नहीं होता है, क्योंकि निर्हेतुक कार्य में नियम के मानने का विरोध है।

(10) गन्ध नाम कर्म :-

जिस कर्म स्कन्ध के उदय से जीव के शरीर में जाति के प्रति नियत गन्ध उत्पन्न होती है, उस कर्म-कन्ध की 'गन्ध' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से की गई है। यदि गन्धनामकर्म न हो, तो जीव के शरीर का गन्ध अनियत हो जायगी।

शंका - यदि गन्धनामकर्म के अभाव में जीव के शरीर की गन्ध अनियत होती है, तो होने दो, क्या हानि है।

समाधान - नहीं क्योंकि हाथी और बाघ आदि में नियत गन्ध पाई जाती है।

(11) रस नाम कर्म :-

जिस कर्मरकन्ध के उदय से जीव के शरीर में जाति के प्रति नियत तिक्त आदि रस उत्पन्न हो, उस कर्म-स्कन्ध की 'रस' यह संज्ञा है। इस कर्म के अभाव में जीव के शरीर में जातिप्रतिनियत रस नहीं होगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि नीम, आम और नीबू आदि में नियत रस पाया जाता है।

(12) स्पर्श नाम कर्म :-

जिस कर्म-स्कन्ध के उदय से जीव के शरीर में जातिप्रतिनियत स्पर्श उत्पन्न होता है, उस कर्म-स्कन्ध की कारण में कार्य के उपचार से 'स्पर्श' यह संज्ञा है। यदि स्पर्शनामकर्म न हो, तो जीव का शरीर अनियत स्पर्शवाला होगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, कमल के स्वपुष्प, फल और कमल नाल आदि में नियत स्पर्श पाया जाता है।

(13) आनुपूर्वी नाम कर्म :-

पूर्व और उत्तर शरीरों के अन्तरालवर्ती एक, दो और तीन समय में वर्तमान जीव के जिस कर्म के उदय से जीव - प्रदेशों का विशिष्ट आकार-विशेष होता है, उस कर्म की 'आनुपूर्वी' यह संज्ञा है।

शंका - संरथाननामकर्म से आकार - विशेष उत्पन्न होता है इसलिए आनुपूर्वी की परिकल्पना निरर्थक है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, शरीर-ग्रहण करने के प्रथम समय से ऊपर उदय में आने वाले उस संरथान नाम कर्म का विग्रहगति के काल में उदय का अभाव पाया जाता है।

यदि आनुपूर्वी नामकर्म न हो, तो विग्रहगति के काल में जीव अनियत संरथान वाला हो जायगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, जाति-प्रतिनियत संरथान विग्रह-काल में पाया जाता है।

शंका-पूर्व शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को नहीं ग्रहण करके स्थित जीव का इच्छित गति में गमन किस कर्म से होता है ?

समाधान :- आनुपूर्वी नाम कर्म से इच्छित गति में गमन होता है।

शंका - विहायोगतिनामकर्म से इच्छित गति में गमन क्यों नहीं होता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि विहायोगतिनामकर्म का औदारिकादि तीनों शरीरों के उदय के बिना उदय नहीं होता है।

शंका - आकार-विशेष को बनाये रखने में व्यापार करने वाली आनुपूर्वी इच्छित गति में गमन का कारण कैसे होती है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, आनुपूर्वी का दोनों भी कार्यों के व्यापार में विरोध का अभाव है अर्थात् विग्रहगति में आकारविशेष को बनाये रखना और इच्छित-गति में गमन कराना ये दोनों ही आनुपूर्वी नामकर्म के कार्य हैं।

शंका - पूर्व शरीर को न छोड़ते हुए जीव के विग्रहगति में अथवा ऋजुगति में जो गमन होता है, वह किस कर्म का फल है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, पूर्वशरीर को नहीं छोड़ने वाले उस जीव के पूर्व क्षेत्र के परित्याग के अभाव से गमन का अभाव है। पूर्व शरीर को नहीं छोड़ने पर भी जीव-प्रदेशों का जो प्रसार होता है वह निष्कारण नहीं है क्योंकि, वह आगामी भव सम्बन्धी आयुकर्म के सत्त्व का फल है।

शंका - वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श नामकर्मों के वर्ण, गन्ध, रस, और स्पर्श सकारण होते हैं, या निष्कारण। प्रथम पक्ष में अनवरथा दोष आता है। द्वितीय पक्ष के मानने पर शेष नोकर्मों के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श भी निष्कारण होना चाहिए, क्योंकि, दोनों में कोई भेद नहीं है ?

समाधान - यहां पर उक्त शंका का परिहार कहते हैं-प्रथम पक्ष में कहा गया अनवरथा दोष तो प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माना नहीं गया है। न द्वितीय पक्ष में दिया गया दोष भी प्राप्त होता है, क्योंकि, कालद्रव्य के समान द्विरक्षभावी होने से इन वर्णादिक के उभयत्र व्यापार करने में कोई विरोध नहीं है।

विशेषार्थ - जिस प्रकार कालद्रव्य अपने आपके परिवर्तन और अन्य द्रव्यों के परिवर्तन का कारण होता है, उसी प्रकार वर्णादिक नामकर्म भी अपने वर्णादिक के तथा अपने से भिन्न पर पुद्दलों के वर्णादिक के कारण होते हैं। इसीलिए इनको काल-द्रव्य के समान द्विरक्षभावी कहा है।

(14) अगुरुलघु नाम कर्म :-

अनन्तानन्त पुद्दलों से भरपूर जीव के जिन कर्म - रक्खणों के द्वारा अगुरुलघुपना होता है, उन पुद्गल-रक्खणों की 'अगुरुलघु' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से की गई है। यदि जीव के अगुरुलघुकर्म न हो, तो या तो जीव लोहे के गोले के समान भारी हो जायगा, अथवा आक के तूल (रुई) समान हलका हो जायगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि,

वैसा पाया नहीं जाता है।

शंका - अगुरुलघुत्व तो जीव का स्वाभाविक गुण है, फिर उसे यहां कर्म-प्रकृतियों में क्यों गिनाया?

समाधान - नहीं, क्योंकि, संसार अवस्था में कर्म परतंत्र जीव में उस स्वाभाविक अगुरुलघु गुण का अभाव है। यदि कहा जाय कि स्वभाव का विनाश मानने पर जीव का विनाश प्राप्त होता है, क्योंकि, लक्षण के विनाश होने पर लक्ष्य का विनाश होता है, ऐसा न्याय है, सो भी यहां यह बात नहीं है, अर्थात् अगुरुलघुनामकर्म के विनाश हो जाने पर भी जीव का विनाश नहीं होता है, क्योंकि, ज्ञान और दर्शन को छोड़कर अगुरुलघुत्व जीव का लक्षण नहीं है, चूंकि वह आकाश आदि अन्य द्रव्यों में भी पाया जाता है। दूसरी बात यह है कि यहां जीव का अगुरुलघुत्व कर्म के द्वारा नहीं विन्या जाता है, किन्तु जीव में भरा हुआ जो पुनर्ल-संकंध है, वह जिस कर्म के उदय से जीव के भारी या हल्का नहीं होता है, वह अगुरुलघु यहां विवक्षित है। अतएव यहां पर जीव-विषयक अगुरुलघुत्व का ग्रहण नहीं करना चाहिए।

(15) उपघात नामकर्म :-

स्वयं प्राप्त होने वाले घात को उपघात अर्थात् आत्मघात कहते हैं। जो कर्म अवयवों को जीव की पीड़ा का कारण बना देता है, अथवा विष, खड़ग, पाश आदि जीव पीड़ा के कारण स्वरूप द्रव्यों को जीव के लिए ढोता है, अर्थात् लाकर संयुक्त करता है, वह उपघात नामकर्म कहालाता है?

शंका - जीव को पीड़ा करने वाले अवयव कौन-कौन हैं?

समाधान - महाशृंग (वारह सींग के समान बड़े-बड़े सींग), लम्बे रस्तन, विशाल तोंदवाला पेट आदि जीव को पीड़ा करने वाले अवयव हैं।

यदि उपघात नामकर्म जीव के न हो, तो वात, पित्त और कफ से दूषित शरीर से जीव को पीड़ा नहीं होना चाहिए, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है।

शंका - जीव के दुःख उत्पन्न करने में तो असाता-वेदनीयकर्म का व्यापार होता है, फिर यहां उपघातकर्म को जीव-पीड़ा का कारण कैसे बताया जा रहा है?

समाधान - जीव के दुःख उत्पन्न करने में असाता-वेदनीयकर्म का व्यापार रहा आवे, किन्तु उपघात कर्म भी उस असाता-वेदनीय का सहकारी कारण होता है, क्योंकि, उस के उदय के निमित्त से दुःखकर पुद्गल द्रव्य का सम्पादन (समागम) होता है।

(16) परघात नामकर्म :-

परजीवों के घात को परघात कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर के पर की घात करने के कारणभूत पुद्गल निष्पन्न होते हैं, वह परघात नामकर्म कहलाता है। जैसे सांप की दाढ़ों में विष, विच्छू की पूँछ में पर दुःख के कारणभूत पुद्गलों का संचय, सिंह,

व्याघ्र और छवल्ल (शबल-चीता) आदि में (तीक्ष्ण) नख और दन्त तथा सिंगी, वत्स्यनाभि और धतूरा आदि विषैले वृक्ष पर को दुःख उत्पन्न करने वाले हैं।

(17) उच्छ्वास नामकर्म :-

सांस लेने को उच्छ्वास कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव उच्छ्वास और निःशासरूप कार्य के उत्पादन में समर्थ होता है, उस कर्म की उच्छ्वास यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से है। यदि उच्छ्वास नामकर्म न हो, तो जीव ध्वास रहित हो जाय, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि उच्छ्वास से रहित जीव पाये नहीं जाते।

(18) आतप नामकर्म :-

खूब तपने को आतप कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में आताप होता है, उस कर्म की 'आताप' यह संज्ञा है। यदि आतपनामकर्म न हो, तो पृथिवीकायिक जीवों के शरीर रूप सूर्य-मंडल में आताप का अभाव हो जाय, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता।

शंका - आतप नाम किसका है?

समाधान - उष्णता - सहित प्रकाश को आतप कहते हैं।

शंका - इस प्रकार 'आतप' शब्द का अर्थ करने पर तैजस्कायिक जीव में भी आतप कर्म का उदय प्राप्त होता है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, तैजस्कायिक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई उस अग्नि की उष्णप्रभा में सकल प्रभाओं की अविनाभावी उष्णता का अभाव होने से उस काआतप के साथ समानता का अभाव है।

(19) उद्योतन नाम कर्म :-

उद्योतन अर्थात् चमकने को उद्योत कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में उद्योत उत्पन्न होता है वह उद्योत नाम कर्म है। यदि उद्योत नामकर्म न हो, तो चन्द्र, नक्षत्र, तारा और खट्योत (जुगनू नामक कीड़ा) आदि में शरीरों के उद्योत (प्रकाश) न होवेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता।

(20) विहायस् नामकर्म :-

विहायस् नाम आकाश का है। आकाश में गमन को विहायोगति कहते हैं। जिन कर्मरक्तन्धों के उदय से जीव का आकाश में गमन होता है, उनकी 'विहायोगति' यह संज्ञा है।

शंका - तिर्यच और मनुष्यों का भूमि पर गमन किस कर्म के उदय से होता है?

समाधान - विहायोगति नामकर्म के उदय से, क्योंकि, विहस्तिमात्र (वारह अंगुलप्रमाण) पांववाले जीव-प्रदेशों के द्वारा भूमि को व्याप्त करके जीव के समस्त प्रदेशों को आकाश में गमन पाया जाता है।

(21) त्रसपना नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीवों के त्रसपना होता है, उस कर्म की 'त्रस' यह संज्ञा कारण में कार्य के उपचार से है। यदि त्रस नाम कर्म न हो, तो द्वीन्द्रिय आदि जीवों का अभाव हो जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, द्वीन्द्रिय आदि जीवों का सद्भाव (सद्भाव) पाया जाता है।

(22) स्थावर नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव स्थावरपने को प्राप्त होता है उस कर्म की 'स्थावर' यह संज्ञा है। यदि स्थावर नामकर्म न हो तो स्थावर जीवों का अभाव हो जायेगा, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि, स्थावर जीवों का सद्भाव पाया जाता है।

(23) बादर नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव बादरकायवालों में उत्पन्न होता है, उस कर्म की 'बादर' यह संज्ञा है। यदि बादरनामकर्म न हो, तो बादर जीवों का अभाव हो जायेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिघाती शरीर वाले जीवों की भी उपलब्धि होती है।

(24) सूक्ष्म नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव सूक्ष्मता को प्राप्त होता है, उस कर्म की 'सूक्ष्म' यह संज्ञा है। यदि सूक्ष्मनामकर्म न हो, तो सूक्ष्म जीवों का अभाव हो जाय, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, अपने प्रतिपक्षी के अभाव में बादरकायिक जीवों के भी अभाव का प्रसंग आता है।

(25) पर्याप्तनामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्त होता है, उस कर्म की 'पर्याप्त' यह संज्ञा है। यदि पर्याप्त नामकर्म न हो, तो सभी जीव अपर्याप्त ही हो जावेंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, पर्याप्तक जीवों का भी सद्भाव पाया जाता है।

(26) अपर्याप्त नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्तियों को समाप्त करने के लिए समर्थ नहीं होता है, उस कर्म की 'अपर्याप्तनाम' यह संज्ञा है। यदि अपर्याप्तनामकर्म न हो, तो सभी पर्याप्त ही होवेंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षी के अभाव में विवक्षित के भी अभाव का प्रसंग आता है।

(27) प्रत्येक शरीर नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव प्रत्येकशरीरी होता है, उस कर्म को 'प्रत्येक शरीर' यह संज्ञा है। यदि प्रत्येक शरीरनाम कर्म न हो, तो एक शरीर में एक जीव का ही उपलभ्य न होगा किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रत्येक शरीरी जीवों का सद्भाव बाधारहित पाया जाता है।

(28) साधारण शरीर नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव साधारण शरीरी होता है उस कर्म की 'साधारण शरीर' यह संज्ञा है। यदि साधारणनामकर्म न हो, तो सभी जीव प्रत्येक शरीरी ही हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, प्रतिपक्षी के अभाव में विवक्षित जीव के भी अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है।

(29) स्थिरनामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से रस, रुधिर, मेदा, मज्जा, अस्थि, मांस और शुक्र, इन सात धातुओं की स्थिरता अर्थात् अविनाश व अगलन हो, वह स्थिरनामकर्म है। यदि स्थिरनामकर्म न हो, तो इन धातुओं का स्थिरता के अभाव से गलना ही होगा, किन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि, हानि और वृद्धि के बिना इन धातुओं का अवरथान देखा जाता है।

(30) अस्थिरनामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से रस रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र, इन धातुओं का परिणमन होता है, वह अस्थिरनामकर्म है। इस विषय में यह उपयोगी श्लोक है।

रसाद्रक्तं ततो मांस मांसान्मेदः प्रवत्तते ।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्वः शुक्रं ततः प्रजा । (11)

रस से रक्त बनता है, रक्त से मांस उत्पन्न होता है, मांस से मेदा पैदा होती है, मेदा से हड्डी बनती है, हड्डी से मज्जा पैदा होती है, मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है और शुक्र से प्रजा (सन्तान) उत्पन्न होती है। (11)

पन्द्रह नयन-निमेषों की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठा की एक कला होती है। वीस कला का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त और कला के दशवें भाग कालप्रमाण एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है। पन्द्रह अहोरात्रों का एक पक्ष होता है। पच्चीस सौ चौरासी कलाप्रमाण, तथा तीन बटे सात भागों से परिहीन नौ काष्ठाप्रमाण (2584 क, 8 3/7 का,) काल तक रस रसरवरूप से रहकर रुधिररूप परिणत होता है। वह रुधिर भी उतने ही काल तक रुधिर रूप से रहकर मांसरवरूप से परिणत होता है। इसी प्रकार शेष धातुओं का भी परिणमन काल कहना चाहिए। इस तरह एक मास में रस शुक्ररूप से परिणत होता है। इस प्रकार जिस कर्म के उदय से धातुओं का क्रम से परिणमन होता है, वह 'अस्थिर' नामकर्म कहा गया है। इस अस्थिर नामकर्म के अभाव में धातुओं के क्रमशः परिवर्तन का नियम न रहेगा, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा मानने पर अनवरथा प्राप्त होती है।

शंका - सातों धातुओं के कारणभूत पृथक् पृथक् कर्म कहना चाहिए ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उन सातों धातुओं की शरीर नामकर्म से उत्पत्ति होती है।

शंका - सप्त धातुओं से रहित विग्रहगति में भी स्थिर और अस्थिर प्रकृतियों का उदय देखा जाता है, इसलिए इनका वहां पर व्यापार नहीं मानना चाहिए ?

समाधान - ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि सयोगीकेवली भगवान् में परधात प्रकृति के समान विग्रहगति में उन प्रकृतियों का अव्यक्त उदयरूप से अवरंथान रहता है।

(31) शुभनामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से आंगोपांगनामकर्मोदयजनित अंगों और उपांगों के शुभपना (रमणीयत्व) होता है, वह शुभनामकर्म है।

(32) अशुभनामकर्म :-

अंग और उपांगों के अशुभता का उत्पन्न करने वाला अशुभनामकर्म है।

(33) सुभगनामकर्म :-

स्त्री और पुरुषों के सौभाग्य को उत्पन्न करने वाला सुभगनाम है।

(34) दुर्भगनामकर्म :-

उन स्त्री-पुरुषों के ही दुर्भगभाव अर्थात् दौर्भाग्य को उत्पन्न करने वाला दुर्भगनामकर्म है।

शंका - अव्यक्त चेष्टावाले एकेन्द्रिय आदि जीवों में सुभगभाव और दुर्भगभाव कैसे जाने जाते हैं?

समाधान - नहीं, क्योंकि, एकेन्द्रिय आदि में अव्यक्तरूप से विद्यमान उन भावों का अस्तित्व आगम से सिद्ध है।

(35) सुस्वर नामकर्म :-

सुस्वर नाम मधुर नाद (शब्द) का है। जिस कर्म के उदय से जीवों का मधुर स्वर होता है वह सुस्वर नामकर्म कहलाता है।

(36) दुःस्वर नामकर्म :-

अमधुर स्वर को दुःस्वर कहते हैं। जैसे-गधा, ऊंट और सियार आदि जीवों का अमधुर स्वर होता है। जिस कर्म के उदय से जीव के बुरा स्वर उत्पन्न होता है वह दुःस्वर नामकर्म कहलाता है।

(37) आदेयनामकर्म :-

आदेयता, ग्रहणीयता और बहुमान्यता, ये तीनों शब्द एक अर्थवाले हैं। जिस कर्म के उदय से जीव के बहुमान्यता उत्पन्न होती है, वह आदेयनामकर्म कहलाता है।

(38) अनादेयनामकर्म :-

उससे अर्थात् बहुमान्यता से विपरीत भाव (अनादरणीयता) को उत्पन्न करने वाला अनादेयनामकर्म है।

(39) यशः कीर्ति नामकर्म :-

यश नाम गुण का है, उस गुण के उद्भावन को (प्रकटीकरण) कीर्ति कहते हैं। जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान गुणों का उद्भावन लोगों के द्वारा किया जाता है, उस कर्म की 'यशः कीर्ति' यह संज्ञा है।

(40) अयशः कीर्ति नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से विद्यमान या अविद्यमान अवगुणों का उद्भावन लोक द्वारा किया जाता है, उस कर्म की 'अयशः कीर्ति' यह संज्ञा है।

(41) निर्माण नामकर्म :-

नियत मान को निर्माण कहते हैं। वह दो प्रकार का है - प्रमाणनिर्माण और संस्थाननिर्माण। जिस कर्म के उदय से जीवों के दोनों ही प्रकार के निर्माण होते हैं, उस कर्म की 'निर्माण' यह संज्ञा है। यदि प्रमाणनिर्माणनामकर्म न हो, तो जंघा, बाहु, शिर और नासिका आदि का विस्तार और आयाम लोक के अन्त तक फैलनेवाले हो जावेंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकार से पाया नहीं जाता है। इसलिए काल को और जाति को आश्रय करके जीवों के प्रमाण को निर्माण करने वाला प्रमाणनिर्माण नामकर्म है। यदि संस्थाननिर्माण नामकर्म न हो, तो अंग, उपांग, और प्रत्यंग संकर और व्यतिकरस्वरूप हो जावेंगे, किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वैसा पाया नहीं जाता है। इसलिए कान, आँख, नाक आदि अंगों का अपनी जाति के अनुरूप अपने-अपने स्थान पर जो नियामक कर्म है, वह संस्थाननामकर्म कहलाता है।

विशेषार्थ :- ऊपर जो संस्थाननिर्माण नामकर्म के अभाव में अंग-उपांगों से संकर-व्यतिकर स्वरूप होने का वर्णन किया है, उसका अभिप्राय यह है कि यदि संस्थाननिर्माण नामकर्म न माना जायगा, तो वाधक या नियामक कारण के अभाव में किसी एक अंग के स्थान पर सभी अंगों के उत्पन्न होने से संकर दोष आ सकता है तथा नियामक कारण के न रहने से नाक द्वारा आँख का कार्य और आँख द्वारा कान का कार्य भी होने लगेगा, इसलिए इन्द्रियों का परस्पर विषय-गमन होने से व्यतिकर दोष भी प्राप्त होगा। अतएव दोनों दोषों के परिहार के लिए संस्थाननिर्माण नामकर्म का मानना आवश्यक है।

(42) तीर्थकर नामकर्म :-

जिस कर्म के उदय से जीव की त्रिलोक में पूजा होती है, वह तीर्थकर नामकर्म है।

तीर्थकर के जन्म के दस अतिशय :-

(1) खेद रहितता, (2) निर्मल शरीरता, (3) दूध सदृश धवल रुधिर, (4) वज्रवृषभभनाराचसंहनन, (5) समचतुरस्त्र-शरीर संस्थान, (6) अनुपम रूप, (7) नवीन चम्पक की उत्तम गन्ध सदृश गन्ध का धारण करना, (8) एक हजार आठ उत्तम लक्षणों का धारण करना, (9) अनन्त बल वीर्य और (10) हितकारी मृदु एवं मधुर भाषण, ये स्वाभाविक

अतिशय के दस भेद हैं। ये अतिशय तीर्थकरों के जन्म-ग्रहण से ही उत्पन्न हो जाते हैं।
(तिलोयपण्णती पृ. 278 गा)

तीर्थकर के केवल ज्ञान के ग्यारह अतिशय :-

अपने स्थान से चारों दिशाओं में (1) एकसौ योजन पर्यन्त सुभिक्षता, (2) आकाश गमन, (3) अहिंसा (हिंसा का अभाव), (4) भोजन एवं (5) उपसर्ग का अभाव, (6) सबकी और मुख करके स्थित होना, (7) छाया नहीं पड़ना, (8) निर्निषेष दृष्टि, (9) विद्याओं की ईशता, (10) शरीर में नखों एवं बालों का न बढ़ना, अठारह महाभाषा, सात सौ क्षुद्रभाषा तथा और भी जो संज्ञी जीवों की समरत अक्षर - अनक्षरात्मक भाषाएँ हैं उनमें तालु, दाँत, ओष्ठ और कष्ठ के व्यापार से रहित होकर एक ही समय (एक साथ) भव्य जनों को दिव्य उपदेश देना।

भगवान् जिनेन्द्र की स्वभावतः अस्खलित तथा अनुपम (11) दिव्य-ध्वनि तीनों सन्ध्या कालों में नव-मुहूर्तों तक निकलती है और एक योजन पर्यन्त जाती है। इसके अतिरिक्त गणधरदेव, इन्द्र एवं चक्रवर्ती के प्रश्नानुरूप अर्थ के निरूपणार्थ यह दिव्य-ध्वनि शेष समयों में भी निकलती है। यह दिव्य ध्वनि भव्य जीवों को छह-द्रव्य, नो-पदार्थ, पाँच अस्तिकाय, और सात तत्त्वों का निरूपण नानाप्रकार के हेतुओं द्वारा करती है। इस प्रकार घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुए, महान् आश्चर्यजनक ये ग्यारह अतिशय तीर्थकरों को केवलज्ञान उत्पन्न होने पर प्रगट होते हैं। (ति.प.गा. 608-615)

तीर्थकर के देवकृत तेरह अतिशय -

(1) तीर्थकरों के महात्म्य से संख्यात योजनों तक वन प्रदेश असमय में ही पत्रों, फूलों एवं फलों से परिपूर्ण समृद्ध हो जाता है, (2) काँटों और रेती आदि को दूर करती हुई सुखददायक वायु प्रवाहित होती है, (3) जीव पूर्व वैर को छोड़कर मैत्री-भाव से रहने लगते हैं, (4) उतनी भूमि दर्पण तल सदृश स्वच्छ एवं रत्नमय हो जाती है, (5) सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से मेघकुमार देव सुगन्धित जल की वर्षा करता है, (6) देव विक्रिया से फलों के भार से नम्रीभूत शालि और जौ आदि सर्व्य की रचना करते हैं, (7) सब जीवों को नित्य आनन्द उत्पन्न होता है, (8) वायुकुमार देव विक्रिया से शीतल-पवन चलाता है, (9) कूप और तालाब आदिक निर्मल जल से परिपूर्ण हो जाते हैं, (10) आकाश, धुआँ एवं उल्कापातादि से रहित होकर निर्मल हो जाता है, (11) सम्पूर्ण जीव रोगवाधाओं से रहित हो जाते हैं, (12) यक्षेन्द्रों के मरतकों पर स्थित और किरणों की भाँति उज्ज्वल ऐसे चार दिव्य धर्म चक्रों को देखकर मनुष्यों को आश्चर्य होता है तथा (13) तीर्थकरों की चारों दिशाओं (विदिशाओं) में छप्पन स्वर्ण-कमल, एक पादपीठ और विविध दिव्य पूजन-द्रव्य होते हैं॥

नामकर्म के प्रभेद -

जो गतिनामकर्म है वह चार प्रकार का है - नरकातिनामकर्म, तिर्यग्गतिनामकर्म, मनुष्यगतिनामकर्म और देवगतिनामकर्म ॥(29)

जिस कर्म के उदय से नारकभाव जीवों के होता है, वह कर्म कारण में कार्य के उपचार से 'नरकाति' इस नाम से कहलाता है। इसी प्रकार शेष गतियों का भी अर्थ कहना चाहिए।

जो जातिनामकर्म है वह पांच प्रकार का है - एकेन्द्रियजातिनामकर्म, द्वीन्द्रियजातिनामकर्म, त्रीन्द्रियजातिनामकर्म, चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म और पंचेन्द्रियजातिनामकर्म ॥(30)

जिस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय जीवों की एकेन्द्रिय जीवों के साथ एकेन्द्रियभाव से सदृशता होती है, वह एकेन्द्रियजातिनामकर्म कहलाता है। वह एकेन्द्रियजातिनामकर्म भी अनेक प्रकार का है। यदि ऐसा न माना जाय, तो जामुन, नीम, आम, निम्बू, कदम्ब, इमली, शालि, धान्य, जौ, और गेहूं आदि जातियों का भेद नहीं हो सकता है।

जिस कर्म के उदय से जीवों की द्वीन्द्रियत्व की अपेक्षा समानता होती है वह द्वीन्द्रियजातिनामकर्म कहलाता है। वह भी अनेक प्रकार का है, अन्यथा शंख, मातृवाह, क्षुल्क, वराटक (कौड़ी), अरिष्ट, शुक्ति, (सीप), गंडोला और कुक्षि-कृमि (पेट मेंउत्पन्न होने वाली कीड़ा) आदि जातियों का भेद नहीं बन सकता है। जिस कर्म के उदय से जीवों की त्रीन्द्रियभाव की अपेक्षा समानता होती है, वह त्रीन्द्रियजातिनामकर्म है। वह भी अनेक प्रकार का है, अन्यथा, कुंथु, मत्कुण (खट्टमल) जूं, विच्छू, गोम्ही, इन्द्रगोप, और पिपीलिका (चींटी) आदि जातियों का भेद हो नहीं सकता है। जिस कर्म के उदय से जीवों की चतुरिन्द्रियत्व की अपेक्षा समानता होती है वह चतुरिन्द्रियजातिनामकर्म है। वह कर्म अनेक प्रकार का है, अन्यथा भ्रमर, मधुकर, शलभ, पतंग, दंशमशक और मक्खी आदि जातियों का भेद नहीं हो सकता है। जिस कर्म के उदय से जीवों की पंचेन्द्रिय जातित्व के साथ समानता होती है, वह पंचेन्द्रियजातिनामकर्म है। वह कर्म अनेक प्रकार का है, अन्यथा, मनुष्य, देव, नारकी, सिंह, अश्व, हस्ती, वृक्ष, व्याघ्र और चीता आदि जातियों का भेद बन नहीं सकता है।

शरीरनामकर्म के पांच भेद हैं, यथा औदारिकशरीरनामकर्म, वैक्रियिकशरीरनामकर्म, आहारकशरीरनामकर्म, तैजसशरीरनामकर्म और कार्माणशरीरनामकर्म । (31)

जिस कर्म के उदय से जीव के द्वारा अवगाह-देश में स्थित आहारवर्गणा के पुद्दल रक्तन्ध रस, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, और शुक्र रवभाववाले औदारिक शरीर के स्वरूप से परिणित होते हैं, उस कर्म की 'औदारिकशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्म के उदय से आहारवर्गणा के रक्तन्ध अणिमा आदि गुणों से उपलक्षित शुभाशुभात्मक वैक्रियिकशरीर के स्वरूप में परिणित होते हैं, उस कर्म की 'वैक्रियिकशरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्म के उदय से

आहारकर्गणा के स्कन्ध आहारकशरीर के स्वरूप में परिणित होते हैं उस कर्म की 'आहार शरीर' यह संज्ञा है। जिस कर्म के उदय से तैजसवर्गणा के स्कन्ध निःसरण-अनिःसरणात्मक और प्रशस्त-अप्रशस्तात्मक तैजसशरीर के स्वरूप में परिणित होते हैं, वह कारण में कार्य के उपचार से तैजसशरीरनामकर्म कहलाता है। जिस कर्म का उदय कुम्भांडफल के वेंट के सामान सर्व कर्मों का आश्रयभूत हो, उस कर्म को 'कार्मणशरीर' यह संज्ञा है।

शरीरवंधननामकर्म के पांच भेद हैं, यथा :- औदारिकशरीरवंधननामकर्म, वैक्रियिकशरीरवंधननामकर्म, आहारकशरीरवंधननामकर्म, तैजसशरीरवंधननामकर्म और कार्मणशरीरवंधननामकर्म । (32)

जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीर के परमाणु परस्पर बन्ध को प्राप्त होते हैं, उसे औदारिकशरीरवंधननामकर्म कहते हैं। इस प्रकार शेष शरीर सम्बन्धी बन्धनों का भी अर्थ कहना चाहिए।

शरीरसंघातनामकर्म के पांच भेद हैं, यथा :- औदारिकशरीरसंघातनामकर्म, वैक्रियिकशरीरसंघातनामकर्म, आहारकशरीरसंघातनामकर्म, तैजसशरीरसंघातनामकर्म, और कार्मणशरीरसंघातनामकर्म । (33)

शरीरभाव को प्राप्त तथा बन्धननामकर्म के उदय से एक बन्धनबद्ध औदारिक शरीर के स्कन्धों का जिस कर्म के उदय से छिद्रराहित्य होता है वह औदारिकशरीरसंघात नामकर्म है। इसी प्रकार शेष शरीर-संघातों का भी अर्थ कहना चाहिए।

शरीरसंस्थाननामकर्म के छह भेद हैं, यथा :- समचतुरस्त्रशरीरसंस्थाननामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडलशरीरसंस्थाननामकर्म, ख्वातिशरीरसंस्थाननामकर्म, कुञ्जकशरीरसंस्थाननामकर्म, वामनशरीरसंस्थाननामकर्म, और हुंडकशरीरसंस्थान नामकर्म ॥(34)

समान चतुरस्त्र अर्थात् सम-विभक्तों को समचतुरस्त्र कहते हैं। जिस कर्म के उदय से जीवों के समचतुरस्त्रसंस्थान होता है उस कर्म की 'समचतुरस्त्रसंस्थान' यह संज्ञा है। न्यग्रोध वटवृक्षको कहते हैं, उसके परिमंडल के समान परिमंडल जिस शरीर का होता है उसे न्यग्रोधपरिमंडल कहते हैं। न्यग्रोधपरिमंडलरूप ही जो शरीरसंस्थान होता है वह न्यग्रोधपरिमंडल अर्थात् आयतवृत्त शरीरसंस्थाननामकर्म है। ख्वाति नाम वल्मीक या शाल्मकी वृक्ष का है। उसके आकार के समान आकार जिस शरीर का है, वह ख्वातिशरीरसंस्थान है अर्थात् यह शरीर नाभिसे नीचे विशाल और ऊपर सूक्ष्म या हीन होता है। कुबड़े शरीर को कुञ्जकशरीर कहते हैं। उस कुञ्जकशरीर के संस्थान के समान संस्थान जिस शरीर का होता है वह कुञ्जकशरीरसंस्थान है। जिस कर्म के उदय से शाखाओं के दीर्घता और मध्य भाग के व्यस्तता होती है, उसकी 'कुञ्जकशरीरसंस्थान' यह संज्ञा है। बौने के शरीर को वामनशरीर कहते हैं। वामनशरीर के संस्थान के समान

संस्थान जिससे होता है, वह वामनशरीरसंस्थान है। जिस कर्म के उदय से शाखाओं के ह्रस्वता और शरीर के दीर्घता होती है, वह वामनशरीरसंस्थाननामकर्म है। विषम अर्थात् समानता रहित अनेक आकार वाले पाषाणों भरी हुई मशक के समान सर्व ओर से विषम आकार को हुंड कहते हैं। हुंड के शरीर को हुंडकशरीर कहते हैं। उसके संस्थान के समान संस्थान जिससे होता है, उसका नाम हुंडकशरीरसंस्थान है। जिस कर्म के उदय से पूर्वोक्त पाँच संस्थानों से व्यतिरिक्त, इकतीस भेद मिन्न अन्य संस्थान उत्पन्न होता है, वह शरीर हुंडकसंस्थान संज्ञावाला है, ऐसा जानना चाहिए।

शरीर - अंगोपांगनामकर्म के तीन भेद हैं, यथा :- औदारिकशरीरअंगोपांगनामकर्म, वैक्रियिकशरीरअंगोपांग नामकर्म और आहारकशरीर अंगोपांगनामकर्म ॥ (35)

जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीरके अंग, उपांग और प्रत्यंग उत्पन्न होते हैं, वह औदारिकशरीर- अंगोपांगनामकर्म है। इसी प्रकार शेष दो अर्थात् वैक्रियिक और आहारक शरीरसम्बन्धी अंगोपांगों का भी अर्थ कहना चाहिए। तैजस और कार्मण शरीर के अंगोपांग नहीं होते हैं, क्योंकि उनके हाथ, पाँव, गला, आदि अवयवों का अभाव है।

शरीरसहनन नामकर्मके छह भेद हैं, यथा :- वज्रऋषभवज्जनाराचशरीरसहनन नामकर्म, वज्जनाराचशरीरसहनन नामकर्म, नाराचशरीरसंहनन नामकर्म, अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म, कीलकशरीरसंहनन नामकर्म और असंप्राप्तासृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्म ॥(36)

हुंडियों के संचय को संहनन कहते हैं। वेष्टन को ऋषभ कहते हैं। वज्रके समान अभेद्य होने से 'वज्रऋषभ' कहलाता है। वज्र के समान जो नाराच है वह वज्जनाराच कहलाता है। ये दोनों ही, अर्थात् वज्रऋषभ और वज्जनाराच, जिस वज्रशरीरसंहनन में होते हैं, वह वज्रऋषभवज्जनाराच शरीरसंहनन है। जिस कर्मके उदय से वज्रमय हुंडियों वज्रमय वेष्टन से वेष्टित और वज्रमय नाराचसे कीलित होती हैं, वह वज्रऋषभवज्जनाराच शरीरसंहनन है, ऐसा अर्थ कहा गया है। यह उपर्युक्त अस्थिवन्ध ही जिस कर्म के उदय से वज्रऋषभ से रहित होता है, वह कर्म 'वज्जनाराचशरीरसंहनन' इस नाम से कहा जाता है। जिस कर्म के उदय से वज्र विशेषण से रहित नाराच कीलें और हुंडियों की संधियां होती हैं वह नाराच शरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से हाड़ों की सन्धियां नाराच से आधी विधि हुई होती हैं वह अर्धनाराचशरीरसंहनन नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से वज्र-रहित हुंडियों और कीलें होती हैं वह कीलकशरीर संहनन नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से सरीसृप अर्थात् सर्पकी हुंडियों के समान परस्पर में असंप्राप्त और शिरावद्ध हुंडियां होती हैं वह असंप्राप्तासृपाटिकाशरीर संहनन नामकर्म है।

वर्णनामकर्म के पांच भेद हैं, यथा :- कृष्णवर्ण नामकर्म, नीलवर्ण नामकर्म,

रुधिरवर्ण नामकर्म, पीतवर्ण नामकर्म और श्वेतवर्ष नाम कर्म ॥(37)

जिस कर्म के उदय से शरीरसम्बन्धी पुद्दलों का कृष्णवर्ण उत्पन्न होता है, वह कृष्णवर्णनामकर्म है। इसी प्रकार शेषवर्णनामकर्मों का भी अर्थ कहना चाहिए।

गन्धनामकर्म के दो भेद हैं, यथा :- सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध ॥ (38)

जिस कर्म के उदय सेशरीर सम्बन्धी पुद्गल सुगन्धित होते हैं, वह सुरभिगन्ध नामकर्म है। जिस कर्म के उदयसे शरीरसम्बन्धी पुद्गल दुरगन्धित होते हैं, वह दुरभिगन्ध नामकर्म है।

रसनामकर्म के पाँच भेद हैं, यथा :- तिक्तनामकर्म, कटुकनामकर्म, कषायनामकर्म, आम्लनामकर्म और मधुरनामकर्म ॥ (39)

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गल तिक्तरस से परिणित होते हैं, वह तिक्तनामकर्म है। इसी प्रकार शेष रसनामकर्मों का अर्थ कहना चाहिए।

स्पर्शनामकर्म के आठ भेद हैं, यथा :- कर्कशनामकर्म, मृदुकन्नामकर्म, गुरुकन्नामकर्म, लघुकन्नामकर्म, स्निग्धनामकर्म, रुक्षनामकर्म, शीतनामकर्म और उष्णनामकर्म ॥(40)

जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी पुद्गलों के कर्कशता होती है वह कर्कशनामकर्म है। इसी प्रकार शेष स्पर्शनामकर्मों का अर्थ कहना चाहिए।

आनुपूर्वी नामकर्म के चार भेद हैं, यथा :- नरकातिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, तिर्यग्नातिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म ॥(41)

जिस कर्म के उदय से नरकाति को गये हुए और विग्रहगति में वर्तमान जीव के नरकाति के योग्य संरथान होता है, वह नरकातिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म है। इसी प्रकार शेष आनुपूर्वी नामकर्मों का भी अर्थ कहना चाहिए।

विहायोगति नामकर्म के दो भेद हैं, यथा :- प्रशस्तविहायोगति और अप्रशस्तविहायोगति ॥ (43)

जिस कर्म के उदय से जीवों के सिंह, कुंजर, और वृषभ (बैल) के समान प्रशस्त गति होवे, वह प्रशस्तविहायोगति नामकर्म है। जिस कर्म के उदय से गर्दभ, ऊंट और सियारों के समान अप्रशस्तगति होवे, वह अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म है।

त्रस नामकर्म, स्थावर नामकर्म, वादर नामकर्म, सूक्ष्म नामकर्म, पर्याप्त नामकर्म, इनको आदि लेकर निर्माण ओर तीर्थकर नामकर्म तक अर्थात् अपर्याप्त नामकर्म, प्रत्येक शरीर नामकर्म, साधारणशरीर नामकर्म, रिथरनामकर्म, अस्थिर नामकर्म, शुभनामकर्म, अशुभनामकर्म, सुभगनामकर्म, दुर्भगनामकर्म, सुस्वरनामकर्म, दुर्स्वरनामकर्म, आदेयनामकर्म, अनादेयनामकर्म, यशःकीर्ति नामकर्म, अयशःकीर्ति नामकर्म, निर्माण नामकर्म और तीर्थकर नामकर्म ॥(44)

इस सूत्र का अर्थ पहले अर्थात् 28 वें सूत्र की व्याख्या में निरुपण किया जा चुका है तथापि दुवारा यहां उक्त प्रकृतियों के कहने पर पुनरुक्त दोष नहीं आता है, क्योंकि ये सूत्र पठित प्रकृतियां पिण्डप्रकृतियां नहीं हैं, इस बात के बतलाने के लिए उनका पुनः प्ररुपण किया गया है।

(14) ध्रुव स्कन्ध द्रव्य वर्गण :-

कम्मझ्यदव्यगणाणमुवरि ध्रुवक्खंधदव्यवगणा णाम (88)

(ध. पु. 14, पृ. 63)

कार्मण द्रव्य वर्गणों के ऊपर ध्रुवस्कन्ध द्रव्य वर्गण हैं। यह ध्रुवस्कन्ध पद का निर्देश अन्तःदीपक है। इससे पिछली सब वर्गणायें ध्रुव ही हैं अर्थात् अन्तर से रहित है यह उक्त कथन का तात्पर्य है। यहाँ से लेकर आगे कही जाने वाली सब वर्गणाओं में अग्रहणपने की निरन्तर अनुवृत्ति करनी चाहिए।

उत्कृष्ट कार्मण वर्गण में एक अंक के मिलाने पर जघन्य ध्रुवस्कन्ध द्रव्यवर्गण होती है। अनन्तर एक-एक अधिक के क्रम से सब जीवों से अनन्त गुणे रथान जाकर ध्रुवस्कन्ध द्रव्यवर्गण सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गण होती है, यह अपने जघन्य से अपनी उत्कृष्ट वर्गण अनन्तगुणी है। गुणाकार क्या है ? सब जीवों से अनन्तगुणी गुणाकार है। यह चौदहर्वी वर्गण है। (14)

शंका :- यहाँ पर आहारवर्गण, तैजसवर्गण, भाषावर्गण, मनोवर्गण और कार्मणवर्गण ही कहनी चाहिये, क्योंकि वे बन्धनीय हैं। शेष वर्गणायें नहीं कहनी चाहिये, क्योंकि वे बन्धनीय नहीं हैं ?

समाधान :- नहीं, क्योंकि, शेष वर्गणाओं का कथन किये विना बन्धनीय वर्गणाओं के कथन करने का कोई मार्ग नहीं है। अथवा व्यतिरेक का ज्ञान हुए विना निश्चित अन्वय के ज्ञान में प्रवृत्ति नहीं हो सकती, इसलिये यहाँ बन्धनीय व अबन्धनीय सब वर्गणाओं का निर्देश किया है।

वैज्ञानिक समीक्षा - जो वर्गणाएँ अंतर से रहित होती हैं उसे ध्रुव वर्गण कहते हैं। कुछ निश्चित वर्गण के बाद पुनः एक वर्गण आती है जो ध्रुव वर्गण होती है। भले आहार वर्गण आदि बन्धनीय हैं अर्थात् जीव इन वर्गण को योग एवं वैभाविक उपयोग से बांधता है जिससे उसके शरीर आदि का निर्माण होता है तथापि जो अबन्धनीय वर्गण है उस का भी यहाँ वर्णन किया गया है। इसका कारण यह है कि कथन प्रणाली मुख्यतः विधिप्रक एवं निषेधप्रक होती है। इसे हम दार्शनिक भाषा में अस्ति-नास्ति पद्धति अथवा अनेकान्तात्मक र्यादवाद पद्धति कहते हैं। इसी से वस्तु स्वरूप का यथार्थ सर्वागीण परिज्ञान होता है। इसके साथ-साथ वस्तु स्वरूप का परिज्ञान ज्ञान-ज्ञेय ग्रहणीय, त्यजनीय और उपेक्षनीय रूप से भी होता है। इस दृष्टि से ब्रह्माण्ड

में स्थित समस्त तत्वों का वर्णन एवं ज्ञान भी अपेक्षनीय है।

(15) सान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गण :-

ध्रुवक्खन्धदव्वगणाणमुवरि सांतरणिरंतरदव्ववगणा णाम । (89) (ध. पु. पि, पृ. 64)

ध्रुवरक्खन्ध द्रव्यवर्गणाओं के ऊपर सान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गण हैं।

जो वर्गणा अन्तर के साथ निरन्तर जाती है उसकी सान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गण संज्ञा है। यह सार्थक संज्ञा है। उत्कृष्ट ध्रुवरक्खन्ध द्रव्यवर्गण में एक अंक के मिलाने पर जघन्य सान्तर-निरन्तर द्रव्यवर्गण हाती है। आगे एक-एक अंक अधिक क्रम से जब जीवों से अनन्तगुणे स्थान जाकर सान्तर-निरन्तर द्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। यह अपनी जघन्य वर्गणा से अपनी उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी है। गुणाकार क्या है? सब जीवों से अनन्तगुणा गुणाकार है। यह पन्द्रहवीं वर्गणा है। (15) यह भी अग्रहण वर्गणा ही है, क्योंकि, यह आहार, तैजस, भाषा, मन और कर्म के अयोग्य है।

(16) ध्रुव शून्य वर्गण :-

सांतरणिरंतरदव्ववगणाणमुवरि ध्रुवसुण्णवगणा जाम । (90) (ध.पु.पि.पृ. 65)

सान्तरनिरन्तर द्रव्यवर्गणाओं के ऊपर ध्रुवशून्यवर्गणा है।

अतीत, अनागत और वर्तमान काल में इस रूप से परमाणु पुदगलों का संचय नहीं होता, इसलिये इसकी ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा यह सार्थक संज्ञा है। उत्कृष्ट सान्तर निरन्तर द्रव्यवर्गणा के ऊपर एक परमाणु अधिक परमाणुपुदगलरक्खन्ध तीनों ही कालों में नहीं होता, दो प्रदेश अधिक भी नहीं होता, इस प्रकार तीन प्रदेश अधिक आदि के क्रम से सब जीवों से अनन्तगुणे स्थान जाकर प्रथम ध्रुवशून्य वर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। यह अपनी जघन्य वर्गणा से अपनी उत्कृष्ट वर्गणा अनन्तगुणी है। गुणाकार क्या है? सब जीवों से अनन्तगुणी गुणाकार है। यह सोलहवीं वर्गणा है। (16) जो सर्वदा शून्यरूप से अवस्थित है।

(17) प्रत्येक शरीर वर्गण :-

ध्रुवसुण्णदव्ववगणाणमुवरि पत्तेयसरीरदव्ववग्राणा णाम । (91)

(ध. पु. 14. पृ. 65)

ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणाओं के ऊपर प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गण है। एक-एक जीव के एक-एक शरीर में उपचित हुए कर्म और नोकर्मरक्खन्धों की प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा संज्ञा है। अब उत्कृष्ट ध्रुव शून्य द्रव्य वर्गणा में एक अंक के मिलाने पर जघन्य प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा होती है।

शंका - यह जघन्य प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गण किसके होती है?

समाधान - जो जीव सूक्ष्म निगोद अपर्याप्तकों में पल्य का असंख्यातावाँ भाग

कम कर्म स्थिति काल तक क्षपित कर्मांशिक रूप से रहा पुनः जिसने पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण संयमासंयम काण्डक इनसे कुछ अधिक सम्यक्त्वकाण्डक तथा अनन्तानुवन्धी के विसंयोजना काण्डक तथा आठ संयम काण्डक करते हुए चार बार कषाय की उपशमना की। पुनः अन्तिम भव को ग्रहण करते हुए पूर्व कोटि प्रमाण आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। अनन्तर गर्भ निष्क्रमण काल से लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तका होने पर सम्यक्त और संयम को एक साथ प्राप्त करके सयोगी जिन हो गया। अनन्तर कुछ कम पूर्व कोटि काल तक औदारिक और तैजस शरीर की अधः स्थिति गलना के द्वारा पूरी निर्जरा करके तथा कार्माण शरीर की गुण श्रेणी निर्जरा करके अन्तिम समयवर्ती भव्य हो गया। इस प्रकार आकर जो अयोगी केवली के अन्तिम समय में स्थित है उसके सक्षे जघन्य प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा होती है, क्योंकि, इसके शरीर में निगोद जीवों का अभाव है।

अब इस वर्गण के माहात्म्य का ज्ञान कराने के लिए स्थान प्रस्तुपण करते हैं। यथा-ओदारिक शरीर, तैजसशरीर और कार्माणशरीर के परमाणुओं के तीन पुञ्ज ऊपर स्थापित करके और उनके पहले ही विस्सोपचयों के पुञ्ज स्थापित करके फिर इन जघन्य छह पुञ्जों के ऊपर परमाणुओं के बढ़ाने की विधि कहते हैं। क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर जो अन्तिम समयवर्ती भव्य हुआ है उसके ओदारिक शरीर के विस्सोपचय पुञ्ज में एक विस्त्रसोपचय परमाणु के बढ़ने पर वह अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः उसी में दो परमाणुओं के बढ़ने पर तीसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन परमाणुओं के बढ़ने पर चौथा अपुनरुक्त स्थान होता है। चार विस्सोपचय परमाणु पुदगलों के बढ़ने पर पाँचवाँ अपुनरुक्त स्थान होती है। इस प्रकार औदारिक शरीर के विस्सोपचय पुञ्ज में सब जीवों से अनन्त गुणे परमाणुओं की वृद्धि होने तक उत्तरोत्तर एक-एक परमाणु की वृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार वृद्धि करने पर औदारिक शरीर के विस्त्रसोपचय पुञ्ज में जब जीवों से अनन्त गुणे अपुनरुक्त स्थान उपलब्ध होते हैं। यह स्थान प्रस्तुपण सम्भव सत्य की अपेक्षा की है।

शंका :- सम्भव सत्य किसे कहते हैं?

समाधान :- 'इन्द्र मेरु को पलटने में समर्थ है।' इसे संभव कहते हैं।

शंका :- व्यक्त रूप से इतने स्थानों के उत्पन्न होने पर क्या दोष उत्पन्न होता है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि, ऐसा होने पर सब जीवों से सिद्ध अनन्त गुणे प्राप्त होते हैं, परन्तु यहाँ जितने स्थान उत्पन्न किये गये हैं उतने सिद्ध हैं नहीं क्योंकि सिद्ध अतीत काल के असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं, इसलिए उन्हें उक्त स्थान प्रमाण मानने में विरोध आता है।

पुनः क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर सबसे जघन्य प्रत्येक शरीर ऊपर विस्सोपचयसहित एक परमाणु से औदारिक शरीर को अधिक करके अन्य एक जीव के

स्थित होने पर यह भी अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि, उत्तरोत्तर एक परमाणु के क्रम से पहले बढ़ाए हुए औदारिक शरीर विस्सोपचय पुंज के साथ इस समय औदारिक शरीर का एक परमाणु अधिक देखा जाता है। पूर्वोक्त औदारिक शरीर के सबसे जघन्य परमाणु पुंज की अपेक्षा साम्प्रतिक औदारिक शरीर परमाणु पुंज एक परमाणु अधिक है। पुनः पूर्वोक्त क्षपक को छोड़कर और साम्प्रतिक क्षपक को ग्रहण कर इसका औदारिक शरीर विस्सोपचय पुंज में एक परमाणु अधिक दो परमाणु अधिक आदि के क्रम से सब जीवों से अनन्त गुणे विस्सोपचय परमाणु पुदगलों के बढ़ने पर सब जीवों से अनन्तगुणे ही अपुनरुक्त स्थान उपलब्ध होते हैं।

पुनः क्षपित कर्मांशिक विधि से आकार सबसे जघन्य औदारिकशरीर पुंज को दो परमाणु अधिक करके तथा उसी के विस्सोपचय पुंज को भी विस्सोपचय पुंज की अपेक्षा दो परमाणु अधिक करके अन्य जीव के स्थित होने पर अनन्तर पिछले स्थान से साम्प्रतिक स्थान एक परमाणु अधिक होता है। कारण पहले के समान जान कर कहना चाहिए। अब इस समय उत्पन्न हुए स्थान के औदारिकशरीर विस्त्रोपचय पुंज में एक परमाणु पुदगल के बढ़ने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार दो, तीन से लेकर सब जीवों से अनन्त गुणे औदारिक विस्सोपचय परमाणु पुदगलों के बढ़ने पर अनन्त अपुनरुक्त स्थान उपलब्ध होते हैं।

अनन्तर क्षपित कर्मांशिक रूप से प्राप्त सबसे जघन्य औदारिक शरीर पुंज को तीन परमाणु अधिक करके तथा सबको जघन्य विस्सोपचय पुंज में विस्सोपचय के तीन परमाणु अधिक करके स्थित हुए अन्य जीव के अनन्तर पिछले स्थान से एक बार वृद्धि होकर प्राप्त हुआ साम्प्रतिक स्थान एक परमाणु अधिक होता है। इस प्रकार इस विधि से अपने-अपने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट द्रव्य के प्रमाण के प्राप्त होने तक औदारिकशरीर के दो पुंज बढ़ाने चाहिए। इतनी विशेषता है कि इन सब स्थानों में तैजस और कार्माण शरीर सबसे जघन्य रहते हैं।

शंका – इन चारों (तैजस और कार्माण शरीर तथा उनके विस्सोपचय) की वृद्धि हुए बिना अपने विस्सोपचय सहित औदारिक शरीर की ही वृद्धि कैसे होती है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि इन चारों के जघन्य रहते हुए उनकी अविरोधी उत्कृष्ट वृद्धि ही यहाँ ग्रहण की गई है।

पुनः क्षपित कर्मांशिक जीव के विस्सोपचय सहित औदारिक शरीर को उत्कृष्ट करके अनन्तर तैजसशरीर सबसे जघन्य विस्सोपचय पुंज में एक परमाणु पुदगल के बढ़ाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। अनन्तर अन्य जीव के द्वारा तैजसशरीर के विस्सोपचय पुंज में दो परमाणु अधिक करने पर अपुनरुक्त स्थान होता है। यहाँ पर

विस्सोपचय सहित औदारिक शरीर तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट है। तैजसशरीर परमाणु पुंज जघन्य है और विस्सोपचय सहित कार्माण शरीर भी यहाँ पर जघन्य है।

पुनः अन्य जीव के तैजस शरीर के विस्सोपचय परमाणु पुंज को तीन परमाणु अधिक करके स्थित होने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार परमाणु अधिक आदि के क्रम से जीवों से अनन्तगुणे विस्सोपचयरूप परमाणु पुदगलों की वृद्धि होने पर अनन्तर जिसने विस्सोपचय सहित औदारिक शरीर को ओघ उत्कृष्ट किया है और विस्सोपचय सहित कार्माण शरीर को जघन्य किया है तथा तैजसशरीर को एक परमाणु अधिक करके व उसी के विस्सोपचयपुंज को विस्सोपचय के एक परमाणु से अधिक करके जो क्षपित कर्मांशिक अन्य जीव स्थित है, उसके अनन्तर स्थान से साम्प्रतिक स्थान एक परमाणु अधिक होता है। कारण को जानकर कथन करना चाहिये। इस प्रकार तैजसशरीर के दो पुंज तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट होने तक बढ़ाने चाहिये।

शंका :- यहाँ तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट से क्या तात्पर्य है?

समाधान :- योगवृद्धि के बिना उत्कर्षण और अपकर्षण के द्वारा विस्सोपचय सहित जिसने परमाणुओं की वृद्धि सम्भव हो मात्र उतने परमाणु अधिक करना यही यहाँ तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट पद से तात्पर्य है।

शंका :- योग से परमाणुओं की वृद्धि क्यों नहीं ली गई है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि योग से परमाणुओं की वृद्धि ग्रहण करने पर तीनों शरीरों की युगपत् वृद्धि प्राप्त होती है।

पुनः क्षपित कर्मांशिक अन्य एक जीव लीजिये जो विस्सोपचय सहित औदारिक और तैजसशरीर को तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट करके कार्माणशरीर के विस्सोपचय में सब जीवों से अनन्तगुणे परमाणुओं की वृद्धि होने तक एक-एक परमाणु बढ़ाता है। तब पहले के समान क्षपित कर्मांशिक इस अन्य जीव के अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय में स्थित होने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है।

पुनः अन्य एक क्षपित कर्मांशक जीव लीजिये जिसने अपने विस्सोपचय सहित औदारिक और तैजसशरीर को तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट किया है तथा जो कार्माणशरीर के प्रति क्षपित कर्मांशिक है। उसके कार्माणशरीर के विस्सोपचय जघन्य पुंज में दो परमाणु अधिक करके अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय में स्थित होने पर उस समय अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सबजीवों से अनन्तगुणे परमाणुओं की वृद्धि होने तक कार्माण शरीर के विस्सोपचय को एक-एक परमाणु द्वारा बढ़ाना चाहिये।

पुनः क्षपित कर्मांशिक एक अन्य जीव लीजिये जो अयोगी गुण स्थान के अन्तिम समय में कार्माण शरीर को एक परमाणु अधिक करके तथा कार्माणशरीर के विस्सोपचय

पुंज को सब जीवों से अनन्तगुणे परमाणुओं के द्वारा बढ़ाकर स्थित है उसके सब पिछले स्थान से साम्प्रतिक स्थान एक परमाणु अधिक होता है।

पुनः पूर्वोक्त क्षपक को छोड़कर साम्प्रतिक क्षपक के कार्माणशरीर के विस्त्रसोपचय पुंज में एक परमाणु की वृद्धि करने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार कार्माणशरीर के विस्त्रसोपचय पुंज में सब जीवों में सब जीवों से अनन्तगुणे परमाणुपुद्गलों के बढ़ाने पर उस समय पहले के समान क्षणित कर्माणशिक जो अन्य जीव अयोगी गुण स्थान के अन्तिम समय में कार्माणशरीर को पहले के समान एक परमाणु अधिक करके स्थित है, उसके तब अनन्तर पिछले स्थान से साम्प्रतिक स्थान एक परमाणु अधिक होता है। इस प्रकार योग के बिना अपर्कषण-उत्कर्षण के द्वारा ही जो वृद्धि होती है उससे उत्कृष्ट वृद्धि के होने तक वृद्धि करनी चाहिये।

पुनः इन छह द्रव्यों के साथ, योग के द्वारा एक बार छहों द्रव्यों में बढ़ाये हुए द्रव्य के बावर वृद्धि करके स्थित हुआ जीव समान है। इस प्रकार अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय के द्रव्य के सर्वोत्कृष्ट होने तक असंख्यात बार वृद्धि करनी चाहिये। उसमें अन्तिम विकल्प को बतलाते हैं। यथा -

कोई एक गुणित कर्माणशिक जीव सातवीं पृथ्वी में तैजस और कार्माण शरीर को उत्कृष्ट करके पुनः मरकर दो-तीन भव तक तिर्यक्त्रों में उत्पन्न होकर पूर्व कोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भ से लेकर अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष का होने के बाद संयोगी जिन होकर कुछ कम पूर्व कोटि काल तक संयम गुणश्रेणी निर्जरा करके अयोगी गुणस्थान के अन्तिम समय में स्थित हुआ उसके प्रत्येक शरीर की वर्गणा पूर्वोक्त प्रत्येक शरीर की वर्गणा के समान होती है। अब यहाँ तक पुढ़ि नहीं है, क्योंकि इसने सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त कर लिया है।

अब अयोगी के द्विचरम समय का आश्रय करके कथन करते हैं। यथा - जिस गुणित कर्माणशिक जीव ने सातवीं पृथ्वी में तैजस शरीर और कार्माणशरीर की वर्गणा को उत्कृष्ट किया है और जो द्विचरम गुणश्रेणी द्रव्य से तथा कार्माण, तैजस और औदारिक शरीर की द्विचरम गोपुच्छ से न्यून उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा को करके अयोगी के द्विचरम समय में स्थित है उसके अन्तिम समय की वर्गणा के साथ, द्विचरम समय की वर्गणा समान होती है।

पुनः अयोगी के अन्तिम समय की वर्गणा को छोड़ कर अयोगी के द्विचरम समय की क्षपक प्रत्येक शरीर वर्गणा अपने उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा के प्रमाण को प्राप्त होने तक पूर्वोक्त विधि से बढ़ानी चाहिये। इस प्रकार त्रिचरम, चतु:चरम आदि समयों में औदारिक, तैजस और कार्माण शरीर तथा उनके पृथक्-पृथक् विस्त्रसोपचय परमाणु बनकर उतारते हुये संयोगी गुण स्थान के प्रथम समय तक ले जाना चाहिये। अब इससे पीछे उतार कर ले

जाना संभव नहीं है।

क्योंकि क्षीण कषाय के अन्तिम समय में बादर निगोद वर्गणा उपलब्ध होती है, इसलिये सातवीं पृथ्वी के अन्तिम समयवर्ती नारकी के द्रव्य का आश्रय करके वृद्धि का कथन करते हैं। यथा-गुणित कर्माणशिक विधि से आकर सातवीं पृथ्वी में अन्तिम समय में विद्यमान नारकी के तैजसशरीर और कार्माणशरीर के चार पुञ्जों की अपेक्षा प्रथम समयवर्ती संयोगी जिनके तैजस शरीर और कार्माण शरीर के चार पुञ्ज विशेष हीन होते हैं। प्रथम समयवर्ती संयोगी जिनके औदारिक शरीर परमाणु पुद्गल पुंज से नारकी के अंतिम समय में वैक्रियिक परमाणु पुद्गल पुंज असंख्यात गुणा होता है। गुणाकार क्या है? जगत्-श्रेणी का असंख्यातवां भाग गुणाकार है।

शंका :- यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान :- बाह्य वर्गणा अनुयोगद्वारा में पाँच शरीरों के कहे गए प्रदेश अल्पवहृत्व सूत्र से जाना जाता है। यथा-औदारिक शरीर के प्रदेशाग्र सबसे स्तोक हैं। इनसे वैक्रियिक शरीर के प्रदेशाग्र असंख्यात है। गुणाकार क्या है? जगत्-श्रेणी का असंख्यातवां भाग गुणाकार है। इनसे आहारकशरीर के प्रदेशाग्र असंख्यातगुणे हैं। गुणाकार क्या है? जगत्-श्रेणी का असंख्यातवां भाग गुणाकार है। इनसे तैजसशरीर के प्रदेशाग्र अनन्तगुणे हैं। गुणाकार क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों का अनन्तवां भाग गुणाकार है। इनसे कार्माण शरीर के प्रदेशाग्र अनन्तगुणे हैं। गुणाकार क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों का अनन्तवां भाग गुणाकार है।

शंका :- ये गुणाकार किस प्रमाण से सिद्ध हैं?

समाधान :- अविरुद्ध आचार्यों के वचन से सिद्ध हैं। प्रथम समयवर्ती संयोगी जिनके औदारिक शरीर के विस्त्रसोपचय पुंज से अन्तिम समयवर्ती नारकी के वैक्रियिकशरीर का विस्त्रसोपचय पुंज असंख्यातगुणा है।

शंका :- यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान :- बाह्य वर्गणा अनुयोगद्वारा में पाँच शरीरों के विस्त्रसोपचय के कहे गए अल्पवहृत्व सूत्र से जाना जाता है - यथा-जघन्य औदारिक शरीर का जघन्य पद में जघन्य विस्त्रसोपचय सबसे स्तोक है। उसी जघन्य का उत्कृष्ट पद में उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। उसी के उत्कृष्ट का जघन्य पद में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। उसी के उत्कृष्ट का जघन्य पद में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। उसी के उत्कृष्ट का जघन्य पद में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। उसी के उत्कृष्ट का जघन्य पद में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। उसी के उत्कृष्ट का जघन्य पद में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है।

गया द्रव्य यहाँ के छह पुङ्जों में पृथक्-पृथक् बढ़ाना चाहिए

अब अन्य जीव के द्वारा वैक्रियिक शरीर के विस्तरोपचय पुँज में एक परमाणु अधिक करने पर सयोगी जिनके प्रथम समय के उत्कृष्ट द्रव्य के ऊपर एक परमाणु अधिक होकर अन्य अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक-एक परमाणु अधिक के क्रम से वैक्रियिकशरीर के विस्तरोपचय पुँज में सब जीवों से अनन्तगुणे विस्तरोपचय परमाणु होने तक बढ़ाने चाहिए। अनन्तर वैक्रियिकशरीर को एक परमाणु अधिक करके तथा उसी के विस्तरोपचय पुँज को सब जीवों से अनन्तगुणे विस्तरोपचय परमाणुओं से अधिक करके स्थित हुए अन्य जीव के उस समय पहले उत्पन्न हुए स्थान से साम्प्रतिक स्थान एक परमाणु अधिक होता है। कारण सुगम है। इस प्रकार उक्त विधि से अपने उत्कृष्ट द्रव्य के प्रमाण को प्राप्त होने तक वैक्रियिकशरीर के दो पुँज बढ़ाने चाहिए।

अनन्तर अपने विस्ससोपचय के साथ वैक्रियिकशरीर के द्रव्य को उत्कृष्ट करके पुनः तैजसशरीर के विस्ससोपचय पुंज को एक परमाणु अधिक करके स्थित हुए एक अन्य जीव के उस समय अन्य अपुनरुक्त रथान उत्पन्न होता है। इस प्रकार तैजसशरीर के विस्ससोपचय पुञ्ज में सब जीवों से अनन्तगुणे विस्ससोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने तक एक-एक परमाणु की उत्तरोत्तर वृद्धि करते जाना चाहिए। अनन्तर पूर्व में विवक्षित हुए तैजसशरीर को एक परमाणु अधिक करके तथा उसी के विस्ससोपचय पुञ्ज को सब जीवों से अनन्तगुणे विस्त्रसोपचय परमाणुओं से अधिक करके स्थित हुए जीव के प्राप्त हुआ यह रथान अनन्तर पिछले रथान से एक परमाणु अधिक होता है। इस प्रकार तैजसशरीर के दो पुञ्जों में तब तक वृद्धि करते जाना चाहिए जब तक ये उत्कृष्टपने को नहीं प्राप्त हो जाते।

पुनः एक ऐसा नारकी लो, जो वैक्रियिकशरीर और तैजसशरीर को उत्कृष्ट करके पुनः कार्मणशरीर के विस्त्रसोपचय पुञ्ज में एक परमाणु अधिक करके स्थित है। तब अन्य अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार एक-एक परमाणु की तब तक वृद्धि करते जाना चाहिए जब तक कार्मणशरीर के विस्त्रसोपचय पुञ्ज में सब जीवों से अनन्तगुणें विस्त्रसोपचय परमाणुओं की वृद्धि नहीं हो जाती। अनन्तर एक ऐसा अन्य जीव लो जो पूर्व निरुद्ध कार्मणशरीर में एक परमाणु अधिक करके पुनः उसी के विस्त्रसोपचय पुञ्ज को सब जीवों से अनन्तगुणे विस्त्रसोपचय परमाणुओं से अधिक करके स्थित है। तब यह स्थान अनन्तर पिछले स्थान से एक परमाणु अधिक होता है। पुनः इस विधि से गुणित कर्माशिक नारकी जीव के अन्तिम समय में सर्वोत्कृष्ट द्रव्य के प्राप्त होने तक कार्मणशरीर के दोनों पुञ्जों को उत्कृष्ट करना चाहिए।

शंका :- वैक्रियिक शरीर के विच्छसोपचय से आहारक शरीर का विच्छसोपचय असंख्यातगणा है, इसलिए प्रमत्संयंत गुणस्थान में आहारक, तैजस और कार्मणशरीर

के छह पुज्ज ग्रहण करके प्रत्येक शरीर वर्गणा एक जीव सम्बन्धी क्यों नहीं कही ?

समाधान :- नहीं, क्योंकि अन्तिम समयवर्ती नारकी को छोड़कर तैजस और कार्मण शरीर का अन्यत्र उत्कृष्ट द्रव्य उपलब्ध नहीं होता है। जहाँ पर तैजस और कार्मणशरीर जघन्य होते हैं, वहाँ पर प्रत्येकशरीर वर्गणा सबसे जघन्य होती है और जहाँ पर इनके उत्कृष्ट द्रव्य उपलब्ध होते हैं वहाँ पर प्रत्येक शरीर सबसे जघन्य होती है और जहाँ पर इनके उत्कृष्ट द्रव्य उपलब्ध होते हैं वहाँ पर प्रत्येक शरीर वर्गणा उत्कृष्ट होती है, परन्तु प्रमत्त संयत मनुष्यों के प्रत्येक शरीर वर्गणा उत्कृष्ट नहीं होती, क्योंकि उनके गुणश्रेणी निर्जरा के द्वारा और अधिक स्थिति गलना के द्वारा तैजस और कार्मणशरीर का द्रव्य गलित हो जाता है। यदि कहा जाय कि गलित हुए तैजस और कार्मणशरीर के द्रव्य से आहारक शरीर की द्रव्यवर्गणायें बहुत होती हैं सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, यह उनके अनन्तवें भागप्रमाण होता है। अतः प्रमत्तसंयत गुणरथान में प्रत्येक शरीर वर्गणा उत्कृष्ट नहीं कही।

यहाँ पर कर्मस्थिति काल के भीतर संचित हुए आठ प्रकार का कर्मप्रदेश समुदाय की कार्मणशरीर संज्ञा है। छ्यासठ सागर काल के भीतर संचित हुए नोकर्मप्रदेश समुदाय की तैजसशरीर संज्ञा है। तेतीस सागर काल के भीतर संचित हुए नो कर्म प्रदेश समुदाय की वैक्रियिक शरीर संज्ञा है। क्षुल्लक भव ग्रहण काल से लेकर तीन पल्य काल के भीतर संचित हुए नोकर्मप्रदेश समुदाय की औदारिक शरीर संज्ञा है और अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर संचित हुए नोकर्मप्रदेश समुदाय की आहारक शरीर संज्ञा है। इसलिए नारकी जीव के अन्तिम समय में ही उत्कृष्ट स्वामित्व देना चाहिए।

विशेषार्थ :- यहाँ पर प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा का विचार करते हुए वह एक जीवन की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट किस जीव के होती है इस बात का विस्तार से निरुपण किया गया है। जिन शरीरों का स्वामी एक ही जीव होता है और उनके आश्रय से अन्य जीव नहीं उपलब्ध होते उन शरीरों के समुदाय का नाम प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा है। आगम में ऐसे आठ प्रकार के जीव बतलायें हैं जिनके शरीरों के आश्रय से अन्य जीव नहीं रहते। वे आठ प्रकार के जीव ये हैं - केवली जिन, देव, नारकी, आहारशरीर, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अम्निकायिक और वायुकायिक। यहाँ सर्वप्रथम यह देखना है कि इन जीवों में जघन्य प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणा का स्वामी कौन जीव है और उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा का स्वामी कौन जीव है? जीव दो प्रकार के होते हैं - एक क्षपितकर्माशिक और दूसरे गुणितकर्माशिक। जो क्षपितकर्माशिक जीव होते हैं उनके कर्म वर्गणायें उत्तरोत्तर हृस्व होती जाती है और अयोगी के अंतिम समय में वे सबसे न्यून होती है, इसलिये अयोगी जिनके अन्तिम समय में प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा सबसे जघन्य होती है। यहाँ इस वर्गणा से औदारिकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर तथा इनके विस्त्रोपन्नय इन छह पुज्जों

का ग्रहण होता है। गुणित कर्माशिक जीव वे कहलाते हैं जिनके कर्मवर्गणायें उत्तरोत्तर महा परिणाम वाली होती जाती है और तेतीस सागर की आयुवाले नारकी जीव के अन्तिम समय में वे सबसे उत्कृष्ट होती है, इसलिये नारकी जीव के अन्तिम समय में प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणा सबसे उत्कृष्ट होती है। यहाँ इस वर्गणा से वैक्रियिकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर तथा इनके विस्त्रोपन्नय इन छह पुज्जों का ग्रहण होता है। मध्य में इस वर्गणा के अनेक विकल्प हैं जिनका निर्देश मूल में किया ही है। यहाँ जघन्य वर्गणा, एक परमाणु अधिक जघन्य वर्गणा, दो परमाणु अधिक जघन्य वर्गणा इत्यादि क्रम से वृद्धि करते हुए उत्कृष्ट वर्गणा लाने की विधि जिस प्रकार मूल में बतलाई गई है उस प्रकार उसे जान लेना चाहिए। पहले अन्तिम समयवर्ती अयोगी जिनके ही नाना जीवों का आलम्यन लेकर जघन्य वर्गणा में परमाणुओं की वृद्धि कही गई है। इसके बाद उपान्त्य समय वर्ती अयोगी जिन का आश्रय करके वृद्धि कही गई है और इस प्रकार पीछे लौटकर प्रथम समयवर्ती सयोगी जिन तक आकर वृद्धि का क्रम दिखलाया गया है। इसके बाद देव और देवों के बाद नारकी जीवों को स्वीकार करके प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा अपने उत्कृष्ट विकल्प तक उत्पन्न की गई है। प्रथम समयवर्ती सयोगी जिनके बाद आहारक शरीर, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अम्निकायिक और वायुकायिक जीवों का ग्रहण इसलिए नहीं किया क्योंकि, एक जीव की अपेक्षा इनके जो प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा होती है उसका ग्रहण मध्यम विकल्पों में आ जाता है। यहाँ जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा लाते समय प्रत्येक स्थल पर गुणकार सब जीवों से अनन्तगुणों बतलाया गया है सो यह कथन सम्भव सत्य की अपेक्षा से किया गया जानना चाहिए क्योंकि प्रत्येक जीव के औदारिकशरीर आदि उत्कृष्ट वर्गणा व्यक्त रूप से सब जीवों से अनन्तगुणों परमाणुओं के समुच्चय रूप नहीं होती। कारण कि औदारिक शरीर आदि अपना, जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा का गुणकार अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण ही बतलाया है। इस प्रकार एक जीव की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणा के स्वामी का विचार किया। अब एक जीव का अवलम्यन लेकर नारकी के अन्तिम समय में वृद्धि नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्टपने को प्राप्त हो गया है। अतः बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त दो जीवों का आलम्यन लेकर प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणा को प्राप्त करते हैं। यथा-यहाँ गुणित घोलमान विधि से आये हुए ऐसे दो बादर पृथ्वी कायिक पर्याप्त जीव लो, जिनके शरीर परस्पर में सम्बद्ध हैं और जिनमें से प्रत्येक के प्रत्येक शरीर वर्गणा का संचय नारकी के उत्कृष्ट प्रत्येकशरीर वर्गणा के संचय के आधा-आधा है। अतएव इन दोनों जीवों के प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणां का संचय अंतिम समयवर्ती नारकी जीव के वैक्रियिक, तैजस और कार्मणशरीर के संचय के समान होता है। यद्यपि वैक्रियिक शरीर से औदारिकशरीर असंख्यातगुणा हीन होता है तो भी इन दोनों संचयों के सदृश होने में

कोई विरोध नहीं आता, क्योंकि तैजस और कार्मणशरीरों के रहते हुए वैक्रियिक शरीर के असंख्यातवे भाग मात्र औदारिक शरीर का द्रव्य उपलब्ध होता है। अब इन दोनों जीवों में स्थित औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर के छह पुज्जों को पूर्वोक्त विधि से तब तक बढ़ाना चाहिए जब तब वे दो जीवों के योग्य उत्कृष्टपने को नहीं प्राप्त होते। पुनः बादर पृथ्वी कायिक पर्याप्त तीन ऐसे जीव लो जो परस्पर में शरीर से संबद्ध हों और जिनमें से प्रत्येक का प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणा संचय दो बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवों को उत्कृष्ट संचय के तीसरे भागप्रमाण हो। इसलिए इनका संचय उक्त दो जीवों के संचय के समान होता है। पुनः उन पूर्वोक्त जीवों को छोड़कर और इनका अवलम्बन लेकर पूर्वोक्त विधि से अपने उत्कृष्ट प्रमाण के प्राप्त होने तक द्रव्य की वृद्धि करनी चाहिए। पुनः इन तीनों का द्रव्य किनके द्रव्य के समान होता है। ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं। यथा—ऐसे चार बादर पृथ्वीकायिक जीव लो जो एक बन्धनबद्ध हैं और जिनमें से प्रत्येक को तीन बादर पृथ्वीकायिक जीवों के उत्कृष्ट संचय के चौथे भागप्रमाण द्रव्य का संचय प्राप्त हुआ है, अतएव इन चारों का संचय उक्त तीनों के संचय के तुल्य है। इनके भी द्रव्य को उसी क्रम से बढ़ाना चाहिए जिससे इन चारों जीवों का द्रव्य उत्कृष्टपने को प्राप्त हो जाए। इस प्रकार पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस से लेकर तत्प्रायोग्य पल्योपम के असंख्यातवे भागप्रमाण बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवों को होने तक ले जाना चाहिए। पुनः इनके औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर को क्रम से बढ़ाकर पुनः एक बन्धनबद्ध इतने बादर तैजस कायिक पर्याप्त जीवों को लेने चाहिए जो द्रव्यसंचय की अपेक्षा एक बन्धनबद्ध पल्योपम के असंख्यातवे भागप्रमाण बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त जीवों के समान हो। पुनः इनका आश्रय करके पूर्वोक्त विधि से इनके औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरों को आनुपूर्वी से बढ़ाकर पुनः एक जीव को अधिक करते हुए जब तक एक बन्धनबद्ध बादर तैजसकायिक पर्याप्त जीव आवली वर्ग से असंख्यातगुणे नहीं हो जाते तब तक इनकी संख्या और उसी क्रम से द्रव्य को बढ़ाते हुए ले जाना चाहिए। अथवा एक बन्धनबद्ध तत्प्रायोग्य असंख्यात जीव लेने चाहिए क्योंकि, देवकृत झाड़ियों में लगी हुई अग्नि में बादर तैजसकायिक पर्याप्त और अपर्याप्त जीवों के एक स्थान में एक बन्धनबद्ध होने में कोई विरोध नहीं आता।

शंका :— एक बन्धनबद्ध के जीव कहाँ उपलब्ध होते हैं?

समाधान :— लताओं का दाह होते समय, देवकृत झाड़ियों में या महावन का दाह होते समय एक बन्धनबद्ध उक्त जीव उपलब्ध होते हैं। पुनः इनके औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरों के पृथक्-पृथक् बढ़ाने पर प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा उत्कृष्ट होती है। यहाँ जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तैजसकायिक, वायुकायिक देव, नारकी, आहारकशरीर, प्रमत्तसंयत, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये जीव प्रत्येकशरीर वाले होते हैं क्योंकि, इनका निगोद जीवों के साथ सम्बन्ध नहीं होता। विग्रह गति में विद्यमान बादर निगोद जीव और सूक्ष्म निगोद जीव प्रत्येकशरीर वाले नहीं होते हैं, क्योंकि, निगोद नामकर्म के उदय के साथ गमन होने के कारण विग्रहगति में भी एक बन्धनबद्ध अनंत जीवों का समूह पाया जाता है। यदि विग्रहगति में वर्तमान अशेष जीव प्रत्येकशरीर होते हैं ऐसा माना जाय तो प्रत्येक वर्गणायें अनन्त हो जावें, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, वे असंख्यात लोक प्रमाण होती हैं ऐसा अविरुद्ध भाषी आचार्यों के वचनों से जाना जाता है।

शंका :— विग्रहगति में शरीर नामकर्म का उदय नहीं होता, इसलिए वहाँ न तो प्रत्येकशरीरपना प्राप्त होता है और न साधारणशरीरपना ही प्राप्त होता है। इसलिये वे प्रत्येक शरीर, बादर और सूक्ष्म निगोद वर्गणाओं में से किन्हीं में भी अन्तर्भूत नहीं होती है।

समाधान :— यह दोष नहीं है, क्योंकि, विग्रहगति में बादर और सूक्ष्म निगोद नामकर्मों का उदय दिखाई देता है इसलिए वहाँ पर भी बादर और सूक्ष्म निगोद द्रव्यवर्गणायें उपलब्ध होती हैं। और इनसे अतिरिक्त जिन्होंने शरीरों को ग्रहण कर लिया है या नहीं ग्रहण किया है वे सब जीव प्रत्येकशरीर वर्गणावाले होते हैं। इसलिए प्रत्येकशरीर वर्गणायें असंख्यात लोकप्रमाण होती हैं यह सिद्ध होती है।

शंका :— एक बन्धनबद्ध वे जीव असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। यदि कहो कि यह वात किस प्रमाण से जानी जाती है तो इसका समाधान यह है कि ईषत्प्राग्भार पृथ्वी में बादर पृथ्वीकायिक जीव असंख्यात लोकप्रमाण होते हुए भी सबसे रस्तोक होते हैं। इनसे एक जलविन्दु में जलकायिक जीव असंख्यात जीव असंख्यातगुणे होते हैं। इनसे एक अंगारे में अग्निकायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं। इनसे एक जल के बुलबुले में वायुकायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं। इस प्रकार इस अल्पवहत्व सूत्र से यह वात जानी जाती है। इसलिए पल्योपम के असंख्यातवे भागप्रमाण एक बन्धनबद्ध जीवों के अवलम्बन से एक उत्कृष्ट प्रत्येकशरीर वर्गण होती है यह वात घटित नहीं होती है?

समाधान :— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, ईषत्प्राग्भार शिला में, एक जलविन्दु में, एक अंगारे में और जल के एक बुलबुले में अलग-अलग असंख्यात लोकप्रमाण जीवों के होने पर भी वहाँ मात्र तैजसकायिक पर्याप्त जीव ही एक बन्धनबद्ध उपलब्ध होते हैं।

शंका :— एक बन्धनबद्ध इतने ही जीव उपलब्ध होते हैं अधिक नहीं होते हैं यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान :— अविरुद्ध आचार्यों के वचनों से जाना जाता है और वे तैजसकायिकों में ही बहुत उपलब्ध होते हैं अन्यत्र नहीं उपलब्ध होते, इसलिए लता, दाह आदि में एक अंगारा

ही प्रधान किया है। वहाँ गुणितकर्माशिक जीव यदि वहुत होते हैं तो आवली के असंख्यात्वे भाग प्रमाण ही होते हैं। वाकी के सब गुणितकर्माशिक नहीं होते। यह सत्रहर्वीं वर्गणा है।

विशेषार्थ :- पहले एक जीव की अपेक्षा उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा कह आये हैं। यहाँ एक बन्धनवद्ध नाना जीवों की अपेक्षा यह वर्गणा बतलाई गई। जिनका शरीर पृथक्-पृथक् अर्थात् प्रत्येक होकर भी परस्पर जुड़ा होता है वे एक बन्धनवद्ध जीव माने गये हैं। ऐसे पृथ्वीकायिक जीव पल्य के असंख्यात्वे भागप्रमाण हो सकते हैं और अग्निकायिक जीव इनसे भी अधिक हो सकते हैं जो एक पिण्ड में बन्धवद्ध रहते हैं और इससे इन सबको मिलकर एक प्रत्येकवर्गणा बनती है। साधारण शरीर से इस प्रत्येक शरीर में बहुत अन्तर होता है। वहाँ शरीर एक ही होता है किन्तु यहाँ सबके अलग-अलग शरीर होते हैं। मात्र प्रत्येक शरीर एक-दूसरे से सम्बद्ध रहते हैं और इसी से इन्हें एक बन्धनवद्ध मानकर इनकी एक वर्गणा मानी गई है। एक तेजस्कायिक जीव के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर तथा इनके विस्रसोपचयों का जितना उत्कृष्ट संचय हो सकते हो उसे असंख्यात्वगुणित आवलीर्वा से गुणित करने पर या तत्प्रायोग्य असंख्यात्व से गुणित करने पर उत्कृष्ट प्रत्येकशरीर द्रव्यवर्गणा का प्रमाण आता है। यहाँ अन्तिम समयवर्ती नारकी के उत्कृष्ट संचय से आगे की प्रक्रिया द्वारा इसी वर्गणा के उत्पन्न करने की विधि कही गई है। यह नाना प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा होकर भी एक बन्धनवद्ध होने से एक प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा मानी गई है यह कथन का तात्पर्य है।

(18) ध्रुवशून्य वर्गणा :-

पत्तेयसरीदव्यवगणाणमुवर्ति ध्रुवसुण्णादव्य वगणा नाम। (92) (ध, पु, 14, पु, 83) प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा के ऊपर ध्रुवशून्य वर्गणा है। उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा में एक अंक के मिलाने पर दूसरी ध्रुवशून्य वर्गणा सम्बन्धी सबसे जघन्य ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा होती है। अनन्तर एक-एक अधिक के क्रम से आनुपूर्वी से सब जीवों से अनन्तगुणी ध्रुवशून्य वर्गणाओं के जाने पर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा उत्पन्न होती है। वह जघन्य वर्गणा से अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है? सब जीवों का असंख्यात्वां भागप्रमाण गुणकार है। यथा-सब जीवराशि को असंख्यात्व लोकप्रमाण शरीरों से भाजित कर पुनः आवली के असंख्यात्वें भाग से, असंख्यात्व लोकों से और एक जीव के औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर के द्रव्य से गुणित कर जो लब्ध आवे उसमें से एक क्रम करने पर उत्कृष्ट ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा होती है। पुनः इसे एक अधिक उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा से भाजित करने पर सब जीवराशि का असंख्यात्वां भाग आता है। इसलिए पहले कहा गया गुणकार ही होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। यह अठारवीं वर्गणा है। (18) एकान्तवादी दृष्टि के समान यह सदा काल शून्यरूप से अवस्थित है।

(19) बादर निगोद द्रव्यवर्गणा :-

ध्रुवसुण्णादव्यवगणाणमुवर्ति बादरणिगोददव्यवगणाणाम। (93) (ध, पु, 14, पु, 84) ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा के ऊपर बादर निगोद द्रव्यवर्गणा है। उत्कृष्ट ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर सबसे जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा होती है।

शंका - वह कहाँ दिखाई देती है?

समाधान - क्षीणकषाय के अन्तिम समय में।

किस प्रकार के क्षीणकषाय में होती है ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं - जो जीव क्षपित कर्माशिक विधि से आकर पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। अनन्तर गर्भ से लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त होने पर सम्यक्त्व और संयम को युगपत् ग्रहण करके पुनः कुछ क्रम पूर्वकोटि काल तक कर्म की उत्कृष्ट गुणश्रेणी निर्जरा करके सिद्ध होने के लिए अन्तर्मुहूर्त काल अवशेष रहने पर क्षपक श्रेणी पर आरोहण किया। अनन्तर क्षपक श्रेणी में सबसे उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा कर्म निर्जरा करके क्षीणकषाय हुए इस जीव के प्रथम में अनन्त बादर निगोद जीव मरते हैं। दूसरे समय में विशेष अधिक जीव मरते हैं। कितने विशेष अधिक जीव मरते हैं? प्रथम समय मरे हुए जीवों के प्रमाण में आवली के असंख्यात्वां भाग का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतने विशेष अधिक जीव मरते हैं। यह क्रम क्षीणकषाय के प्रथमसमय से लेकर आवलीपृथक्त्व काल तक चालू रहता है। इसके आगे के लगे हुए समय में असंख्यात्वगुण जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीण कषाय के अन्तिम समयत क असंख्यात्वगुणी जीव मरते हैं। गुणकार सर्वत्र पल्योपम के असंख्यात्ववें भाग प्रमाण है। विशेषाधिक मरने के अन्तिम समय में मरने वाले जीव के प्रमाण को तत्प्रायोग्य पल्योपम के असंख्यात्ववें भाग से गुणित करने पर गुणश्रेणी क्रम से मरने के प्रथम समय में मरे हुए जीवों का प्रमाण होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार आगे भी क्षीणकषाय के अन्तिम समय तक जानकर कथन करना। यह गुणकार प्रत्येक में मरने वाले जीवों का ही कहना चाहिए, पुलवी जीवों का नहीं।

शंका :- यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान :- आगे कहे जाने वाले चूलिका के 'खीणकसायपरिसमए आवलियाए असंखेज्जादिभागमेत्तिणोदाणं' इस सूत्र से जाना जाता है।

शंका :- निगोद किन्हें कहते हैं?

समाधान :- पुलवियों को निगोद कहते हैं।

अब यहाँ पर पुलवियों के स्वरूप का कथन करते हैं। यथा-स्कन्ध, अण्डर, आवास, पुलवी और निगोद शरीर ये पाँच होते हैं। उनमें से जो बादर निगोद का आश्रयभूत है, वहुत वक्खारों से युक्त है तथा वलजंतवणिय कच्छउड समान है ऐसे मूली, थूअर और

आर्द्ध आदि संज्ञा को धारण करने वाला रक्षण कहलाता है। वे रक्षण असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं, क्योंकि, बादर निगोद प्रतिष्ठित जीव असंख्यात लोकप्रमाण पाये जाते हैं। जो उन रक्षणों के अवयव हैं और जो वलंजु अकच्छउड के पूर्वापार भाग के समान हैं उन्हें अण्डर कहते हैं। जो अण्डर के भीतर स्थित है तथा कच्छउडअण्डर के भीतर स्थित वक्खार के समान हैं उन्हें आवास कहते हैं। अण्डर असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। तथा एक-एक अण्डर में असंख्यात लोकप्रमाण आवास होते हैं। जो आवास के भीतर स्थित हैं और जो कच्छउडअण्डरवक्खार के भीतर स्थित पिशवियों के समान हैं उन्हें पुलवि कहते हैं। एक-एक आवास में वे असंख्यात लोकप्रमाण होती हैं। तथा एक-एक आवास की अलग-अलग एक-एक पुलवी में असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर होते हैं जो कि औदारिक, तैजस और कार्मण पुद्गलों के उपादान कारण होते हैं और जो कच्छउडअण्डरवक्खारपुलवी के भीतर स्थित द्रव्यों के समान अलग-अलग अनन्तानन्त निगोद जीवों से आपूर्ण होते हैं। अथवा तीन लोक, भरत, जनपद, ग्राम और पुर के समान रक्षण, अण्डर, आवास, पुलवी और शरीर होते हैं, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

पुनः यहाँ पर क्षीणकषाय जीव के शरीर की रक्षण संज्ञा है, क्योंकि वह असंख्यात लोक प्रमाण अण्डरों का आधारीभूत है। वहाँ अण्डरों के भीतर स्थित हुए अनन्तानन्त जीवों में से शुक्लध्यान के द्वारा प्रति समय असंख्यातगुणे श्रेणी रूप से जीवों के मरने पर क्षीण कषाय के अन्तिम में मरने वाले जीव अनन्त होते हैं। इतने होते हुए भी पहले द्विचरम समय में मरने वाले जीवों से असंख्यात गुणे होते हैं। गुणकार क्या है? पल्योपम का असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका - क्षीणकषाय के अन्तिमसमय में पुलवियाँ आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती है ऐसा सूत्र में कहा गया है। यदि पूर्वोक्त गुणकार पुलवियों का होता है तो यह कथन घटित नहीं होता, क्योंकि, द्विचरम समय में मृत जीवों की आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियों को पल्योपम के असंख्यात भाग से गुणित करने पर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियाँ उपलब्ध होती हैं। एक-एक रक्षण में अंडर असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं। तथा एक-एक अंडर में आवास असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। और एक-एक आवास में पुलवियाँ असंख्यात लोकमात्र होती हैं।

इस प्रकार पहले कह आये हैं। इसलिए क्षीणकषाय के अन्तिम समय में आवली के असंख्यातवें भाग मात्र पुलवियाँ हैं यह वचन घटित नहीं होता है। वहाँ की पुलवियों का असंख्यात वहुभाग क्षीणकषाय गुणस्थान में नष्ट हो गया है यह कहना युक्त नहीं है, क्योंकि, अपने शरीर में स्थित निगोद जीवों को पल्योपम के असंख्यातवें भाग से भाजित कर वहाँ लब्ध एक भाग के नष्ट होने पर पुलवियों के असंख्यात वहुभाग का विनाश मानने

में विरोध आता है। अन्तिम समय में मरे हुए जीव द्विचरम आदि समयों में मरे हुए जीवों के असंख्यातवें भागप्रमाण होते हैं। यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, इस कथन का गुणश्रेणी क्रम से मरण प्रस्तुपण के साथ विरोध आता है।

समाधान :- यहाँ इस शंका का समाधान करते हैं। क्षीणकषाय जीव के शरीर में उत्कृष्ट और जघन्य पुलवियाँ आवली के असंख्यातवें भागमात्र ही होती है। एक वन्धनवद्ध पुलवियाँ असंख्यात लोकमात्र कहीं भी नहीं होती। यहाँ जघन्य का अधिकार होने से आवली के असंख्यातवे भागमात्र ही पुलवियाँ होती हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए। पूर्वोक्त वचन के साथ विरोध आता है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, क्षीणकषाय को छोड़कर अन्य रक्षण का अवलम्बन लेकर वहाँ कथन किया है और सब रक्षणों में पुलवियाँ असंख्यात लोकमात्र ही होती है ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि इस प्रकार के नियम को करने वाले सूत्र का व्याख्यान उपलब्ध नहीं होता।

अब पुलवियों का अवलम्बन लेकर कितने ही आचार्य निगोद जीवों के मरण क्रम का कथन करते हैं उसे बतलाते हैं। यथा-क्षीणकषाय के प्रथम समय में मरने वाली पुलवियाँ स्तोक हैं। दूसरे समय में मरने वाली पुलवियाँ विशेष अधिक है। तीसरे समय में विशेष अधिक है। इस प्रकार आवली पृथक्त्व काल जाने तक विशेष अधिक विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण आवली के असंख्यातवे भाग का प्रतिभाग स्वरूप है। इसके आगे विशेषाधिक के क्रम से मरण करने के अन्तिम समय तक संख्यातवें भाग अधिक है। अनन्तर गुणश्रेणी रूप से मरण करने के प्रथम समय में संख्यातगुणी मरण को प्राप्त होती है। इस प्रकार क्षीणकषाय के काल में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल शेष रहने तक संख्यागुणी मरण को प्राप्त होती है। इससे आगे क्षीणकषाय के अंतिम समय तक असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी मरण को प्राप्त होती है। जहाँ असंख्यातगुणी पुलवियों का मरण कहा है वहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवां भाग होना चाहिए, अन्यथा क्षीणकषाय के अन्तिम समय में आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियाँ उपलब्ध नहीं होती। इस विधि से जाकर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जो आवलि के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियाँ मरने से अवशिष्ट रहती है वे पीछे द्विचरम आदि समयों में नष्ट हुई पुलवियों से असंख्यातगुणी शेष रहती है। अन्यथा गुणश्रेणी मरण नहीं बन सकता, किन्तु यहाँ यह जो पुलवियों का आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार कहा है वह घटित नहीं होता। क्योंकि इस कथन से क्षीण कषाय के अन्तिम समय में नष्ट हुई पुलवियाँ पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होती है। कारण कि जघन्य परीतासंख्यातका विरलन कर और आवली के असंख्यातवें भाग के विरलित राशि के प्रत्येक एक के प्रति देकर परस्पर गुणा करने पर भी पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण की उत्पत्ति होती है।

शंका – ये निगोद जीव यहाँ क्यों मरण को प्राप्त होते हैं ?

समाधान – क्योंकि, ध्यान से निगोद जीवों की उत्पत्ति और उनकी स्थिति के कारण का निरोध हो जाता है।

शंका – ध्यान के द्वारा अनन्तानन्त जीवराशि का हनन करने वाले जीवों को निवृत्ति कैसे मिल सकती है ?

समाधान – अप्रमाद होने से ।

शंका – अप्रमाद किसे कहते हैं ?

समाधान – पाँच महाब्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति और समरस्त कषायों के अभाव का नाम अप्रमाद है।

शंका – प्राण और प्रणियों के वियोग का नाम हिंसा है। उसे करने वाले जीवों के अहिंसा लक्षण पाँच महाब्रत कैसे हो सकते हैं ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, वहिंसा हिंसा आच्छव रूप नहीं होती।

शंका – यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान – क्योंकि, वहिंसा का अभाव होने पर भी केवल अन्तरंग हिंसा से सिक्थ मत्स्य के बन्ध की उपलब्धि होती है।

जिसके बिना जो नहीं होता है वह उसका कारण है, इसलिए शुद्धनय से अंतरंग हिंसा ही हिंसा है, वहिंसा नहीं, यह बात सिद्ध होती है। यहाँ अन्तरंग हिंसा नहीं है, क्योंकि, कषाय और असंयम का अभाव है। कहा भी है... चाहे जीव जिओ चाहे मरो, अयलाचारपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले जीव के नियम से बन्ध होता है, किन्तु जो जीव समितिपूर्वक प्रवृत्ति करता है उसके हिंसा हो जाने मात्र से बन्ध नहीं होता। (2) सरों (वाण) की वर्षा होने पर जिस प्रकार दृढ़ कवचवाला व्यक्ति सरों से नहीं भिन्दता है उसी प्रकार षट्कायिक जीवों के मध्य में समितिपूर्वक गमन करनेवाला साधु पाप से लिप्त नहीं होता है। (3)

जहाँ पर अज्ञानी भ्रमण करता है वहीं पर हिंसा के परिहार की विधि को जानने वाला भी भ्रमण करता है, परन्तु वह अज्ञानी पाप से बँधता है और परिहार विधि का जानकर उससे मुक्त होता है। (4)

अहिंसा स्वयं होती है और हिंसा भी स्वयं ही होती है। यहाँ ये दोनों पराधीन नहीं हैं। जो प्रमाद हीन है वह अहिंसक है, किन्तु जो प्रमादयुक्त है वह सदैव हिंसक है। (5)

कोई प्राणी दूसरों के प्राणों से वियुक्त करता है फिर भी वह बंध से संयुक्त नहीं होता। तथां परोपघात से जिसकी स्मृति कठोर हो गई है, अर्थात् जो परोपघात का विचार करता है उसका कल्याण नहीं होता। तथा कोई दूसरे जीवों को नहीं मारता हुआ भी हिंसकपने को प्राप्त होता है। इस प्रकार है जिन ! तुमने यह अतिगहन प्रश्न का हेतु

प्रकाशित किया है, अर्थात् शान्ति का मार्ग बतलाया है। (6)

क्षीणकषाय के प्रथम समय से लेकर बादर निगोद जीव तब तक उत्पन्न होते हैं जब तक क्षीणकषाय के काल में उनका जघन्य आयु का काल शेष रहता है। इसके बाद नहीं उत्पन्न होते, क्योंकि उत्पन्न होने पर उनके जीवित रहने का काल नहीं रहता, इसलिए बादर निगोद जीव यहाँ से क्षीणकषाय के अन्तिम समय तक केवल मरते ही हैं। यहाँ क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जो आवली के असंख्यातरं भागप्रमाण पुलवियाँ हैं जो कि पृथक्-पृथक् असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीरों से आपूर्ण है उनमें स्थित अनन्तानन्त निगोद जीवों के जो अनन्तानन्त विस्सोपचय से युक्त कर्म और नोकर्म संघात हैं वह सबसे जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा है।

अब इस बादर निगोद द्रव्यवर्गणा के स्थानों का कथन करते हैं। यथा-यहाँ अनन्तानन्त जीवों के अपने विस्सोपचय के साथ औदारिक शरीर परमाणु-पुंज को पृथक् क्षपित करके पुनः उन्हीं सब जीवों के अपने विस्सोपचय सहित तैजसशरीर परमाणु पुंज को और अपने विस्सोपचय सहित कार्मण शरीर परमाणु पुंज को पृथक् स्थापित कर इन छह पुंजों के ऊपर परमाणुओं की वृद्धि कर स्थानों की उत्पत्ति का कथन करते हैं, एक अन्य जीव लो-जो क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर एक विस्सोपचय परमाणु से औदारिक शरीर के पुंज को अधिक करके क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है तो इसके यह अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि, अनन्तर पूर्व के स्थान से यहाँ एक परमाणु अधिक उपलब्ध होता है। पुनः एक अन्य जीव लो जो क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में दो विस्सोपचय पुंज को अधिक करके स्थित है तब उसके यह अन्य तीसरा अनुपरक्त स्थान होता है। पुनः एक अन्य तीन विस्सोपचय परमाणुओं से औदारिक शरीर विस्सोपचय पुंज को अधिक करके क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है उसके तब चौथा अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न होता है। पुनः एक अन्य जीव लो जो क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर जघन्य द्रव्य के ऊपर औदारिकशरीर पुंज में एक औदारिकशरीर परमाणु बढ़ाकर पुनः औदारिकशरीर विस्सोपचय परमाणुप्रमाण विस्सोपचयपुंज को बढ़ाकर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है उसके तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि, जीवों से अनन्तगुणे औदारिकशरीर अनन्तर पूर्व के स्थान के औदारिक विस्सोपचय पुंज के साथ इस स्थान

पुनः एक अन्य जीव लो जो क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर जघन्य द्रव्य के ऊपर औदारिकशरीर पुंज में एक औदारिकशरीर परमाणु बढ़ाकर पुनः औदारिकशरीर विस्सोपचय परमाणुप्रमाण विस्सोपचयपुंज को बढ़ाकर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है उसके तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि, जीवों से अनन्तगुणे औदारिकशरीर अनन्तर पूर्व के स्थान के औदारिक विस्सोपचय पुंज के साथ इस स्थान

का औदारिकशरीर पुज्ज में एक परमाणु अधिक उपलब्ध होता है।

पुनः इसके ऊपर एक औदारिक विस्रसोपचय परमाणु के बढ़ने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। दो विस्रसोपचय परमाणुओं के बढ़ने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन विस्रसोपचय परमाणुओं के बढ़ने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सब जीवों से अनन्तगुणे विस्रसोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने तक उत्तरोत्तर एक-एक परमाणु को बढ़ाते जाना चाहिए। इस प्रकार बढ़ाकर स्थित होने पर अनन्तर एक अन्य जीव लो, जो ओघ जघन्य द्रव्य को दो औदारिक परमाणुओं से और दो बार बढ़ाते हुए विस्रसोपचयों से अधिक करके क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार इस क्रम से तब तक बढ़ाते जाना चाहिए जब जाकर अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र औदारिकशरीर परमाणुओं की ओर सब जीवों से अनन्तगुणे उन्हीं के विस्रसोपचय परमाणुओं की वृद्धि हो जाती है। बढ़ाते हुए भी कितनी बार बढ़ाए ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि एक बादर निशोद जीव के जितने विस्रसोपचयन के साथ औदारिकशरीर परमाणु है उतनी बार बढ़ावे।

शंका – एक जीव दो जीवों के विस्रसोपचयसहित औदारिकशरीर पुज्ज का आधार करते हो सकता है?

समाधान – नहीं, क्योंकि, एक ही जीव में असंख्यात क्षपित कर्मशिक जीवों का औदारिकशरीर द्रव्य उपलब्ध होता है।

शंका – यदि एक जीव में असंख्यात जीवों का द्रव्य सम्भव है तो बादर निशोद जघन्य वर्णण सम्बन्धी अनन्त जीवों के औदारिकशरीर सम्बन्धी दो पुज्जों में जीव संबंधी औदारिकशरीर के दो अधिक करके पुनः तैजस शरीर के दो निश्चय से सम्भव है ऐसा क्यों नहीं ग्रहण करते?

समाधान – नहीं ग्रहण करते।

पुनः एक अन्य जीव लो, जो पहले बढ़ाते हुए द्रव्य के साथ औदारिकशरीर को अधिक करके पुनः तैजस शरीर के विस्रसोपचय पुज्ज में एक परमाणु को बढ़ाकर स्थित है तब उसके अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि, अनन्तर पूर्व के स्थान देखते हुए यहाँ एक परमाणु अधिक उपलब्ध होता है। पुनः पुर्वोक्त स्थान में तैजस शरीर विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन तैजस शरीर विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार एक से लेकर उत्तरोत्तर एक-एक परमाणु तब तक बढ़ाना चाहिए जब जाकर सब जीवों से अनन्तगुणे तैजसशरीर विस्रसोपचय परमाणुओं की वृद्धि हो जाती है।

अनन्तर एक अन्य जीव लो, जो औदारिकशरीर के दो पुज्जों में एक जीव सम्बन्धी

औदारिकशरीर के दो पुज्ज बढ़ाकर, तैजसशरीर को एक तैजस परमाणु के अधिक करके तथा एक तैजसशरीर के परमाणु से सम्बन्ध रखने योग्य और पहले के समान बढ़ाए हुए अनन्त परमाणुप्रमाण तैजसशरीर विस्रसोपचयों का बढ़ाकर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है तब उसके अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। कारण सुगम है। अनन्तर एक अन्य जीव लो, जो तैजसशरीर को एक विस्रसोपचय परमाणु अधिक करके स्थित है उसके तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः दो विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों की वृद्धि होने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों की वृद्धि होने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार एक तैजसशरीर परमाणु से सम्बन्ध योग्य सब जीवों से अनन्तगुणे परमाणुओं की वृद्धि होने तक उत्तरोत्तर एक-एक परमाणु बढ़ाना चाहिए। अनन्तर एक जीव लो, जो दो तैजस परमाणुओं से तैजसशरीर को अधिक करके दो तैजसशरीर परमाणुओं के योग्य विस्रसोपचय परमाणुओं से तैजसशरीर विस्रसोपचय पुज्ज का अधिक करके क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है तब उसके अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस क्रम से तैजसशरीर पुज्ज में अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र तैजसशरीर परमाणुओं की तथा सब जीवों से अनन्तगुणे विस्रसोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने तक ले जाना चाहिए। वृद्धि हुए भी कितने परमाणु वृद्धि को प्राप्त होते हैं ऐसा प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं कि एक बादर निशोद जीव के तैजस शरीर में विस्रसोपचय सहित जितने परमाणु होते हैं उतने परमाणु वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

पुनः एक अन्य जीव लो, जिसने इस प्रकार औदारिकशरीर और तैजस शरीर वृद्धि की है तथा जो कार्मण शरीर विस्रसोपचय पुज्ज में एक परमाणु अधिक करके अन्तिम समयवर्ती क्षीणकषायी हुआ है उसके तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन विस्रसोपचय पुद्गलों की वृद्धि होने पर चौथा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार एकोत्तर के क्रम से सब जीवों से अनन्तगुणी कार्मणविस्रसोपचय परमाणु बढ़ाने चाहिए। इस प्रकार जानकर कार्मण शरीर पुज्ज में अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र का कार्मणशरीर परमाणुओं की तथा सब जीवों से अनन्तगुणे विस्रसोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने तक ले जाना चाहिए, वृद्धि को प्राप्त होते हुए कितने वृद्धि को प्राप्त होते हैं ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि एक जीव में जितने कर्मपरमाणु और कार्मणशरीर विस्रसोपचय परमाणु पुद्गल होते हैं उतने परमाणु वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

अनन्तर एक अन्य जीव लो, जो पूर्व विधि से आकार क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जघन्य बादर निशोद वर्णण के ऊपर एक जीव को अधिक करके स्थित है। तब यह स्थान पुनः रुक्त है, क्योंकि पहले के अनन्तर पिछले स्थान के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरों के पुज्ज से यहाँ के उनके छह पुज्ज सदृश उपलब्ध होते हैं।

शंका – पहले के जीवों से सांप्रतिक वर्गणा सम्बन्धी एक जीव अधिक है इसलिए इस स्थान को अपुनरुक्त क्यों नहीं कहते ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, जीव की बंधनीय संज्ञा नहीं है। पुदगली की ही बंधनीय संज्ञा है, परन्तु जीव पुदगल नहीं हो सकता, क्योंकि, अमूर्त को मूर्तरूप होने में विरोध आता है। पुनः एक अन्य जीव लो, जो साम्प्रतिक वादर निगोद वर्गणा के ऊपर एक औदारिकशरीर विस्सोपचय परमाणु को बढ़ाकर क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित है तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। दूसरे परमाणु की वृद्धि होने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन विस्सोपचय परमाणु पुदगलों की वृद्धि होने पर तीसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। चार विस्सोपचय परमाणु पुदगलों की वृद्धि होने पर चौथा अनुपरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सब विस्सोपचय परमाणु पुदगलों की वृद्धि होने तक ले जाना चाहिए। होते हुए भी वे कितने होते हैं ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि एक औदारिकशरीर परमाणु के विस्सोपचय मात्र होते हैं। इस प्रकार बढ़ाकर स्थित हुआ अन्तिम समयवर्ती क्षीणकषाय स्थान अपुनरुक्त स्थान होता है। कारण सुगम है। इस प्रकार इस विधि से औदारिकशरीर के दो पुञ्ज तब तक बढ़ाने चाहिए जब तब सब जीवों से अनन्तगुणे विस्सोपचय परमाणु तथा अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भाग प्रमाण औदारिकशरीर सम्बन्धी परमाणु वृद्धि को नहीं प्राप्त हो जाते। ऐसा होते हुए भी वे कितने होते हैं ऐसा प्रश्न करने पर कहते हैं कि एक वादर निगोद जीव के औदारिकशरीर में जितने औदारिकशरीर के परमाणु और उसके विस्सोपचय परमाणु होते हैं तन्मात्र होते हैं। इसी प्रकार एक वादर निगोद जीव के द्वारा संचित हुए तैजसशरीर और कार्मणशरीर के चार पुञ्चप्रमाण द्रव्य के प्राप्त होने तक अपने अपने विस्सोपचय के साथ तैजसशरीर पुञ्चको और कार्मणशरीर पुञ्चको आनुपूर्वी क्रमसे बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार बढ़ाकर स्थित हुआ जीव तथा क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जघन्य वादर निगोद वर्गणा के दो वादर निगोद जीवों से अधिक करके क्षीणकषाय के अन्तिम समय में स्थित हुआ अन्य जीव समान है, क्योंकि, पूर्वोक्त स्थान में क्रम से में बढ़ाकर स्थित हुआ द्रव्य यहाँ के दो जीवों में उपलब्ध होता है।

पहले के जीव को छोड़कर तथा इसे ग्रहण कर इसके ऊपर पहले के समान एक अन्य जीव बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार स्थान और शास्त्र के अविरोध से उत्तरोत्तर एक-एक जीव के बढ़ाते हुए अनन्तानन्त कर्म और नोकर्म परमाणु पुदगलों से व्याप्त सब जीव प्रदेश है जिनके ऐसे पल्योपम के असंख्यात्में भाग प्रमाण जीव बढ़ाने चाहिए। इस प्रकार बढ़ाकर पुनः यहाँ के अनन्त जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मण परमाणु पुदगलों के क्रम से छह पुञ्च अपने सर्वोत्कृष्ट प्रमाण को प्राप्त होने तक बढ़ाने चाहिए।

शंका – अन्तिम समयवर्ती क्षीणकषाय जीव के यह जो उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा

होती है इसका स्वामी कौन जीव है ?

समाधान – जो गुणित कर्माशिक है और सबसे उत्कृष्ट शरीर अवगाहना से युक्त ऐसा अन्तिम समयवर्ती क्षीणकषाय जीव उक्त उत्कृष्ट वर्गणा का स्वामी है। यहाँ पर उत्कृष्ट वर्गणा की पुलवियाँ आवली के असंख्यात्में भागप्रमाण ही होती हैं, असंख्यात लोकप्रमाण नहीं होती, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है।

शंका – असंख्यात लोकप्रमाण पुलवियाँ कहाँ पर होती हैं ?

समाधान – मूली, महामत्य, थूहर और लतादिकार्य होती है।

एक-एक पुलवी में असंख्यात लोकप्रमाण निगोदशरीर होते हैं और एक-एक निगोद शरीर में अनन्तानन्त निगोद जीव होते हैं। परन्तु उस जीवों में आवलि के असंख्यात्में भाग प्रमाण जीव गुणितकर्माशिक होते हैं तथा वाकी के सब जीव गुणित घोतमाल होते हैं।

इस प्रकार बढ़ाकर स्थित हुए क्षीणकषाय के अन्तिम समय में और वृद्धि नहीं होती, क्योंकि वहाँ स्थित हुए जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर सर्वोत्कृष्ट भाव को प्राप्त हो गये हैं।

यह अन्तिम समयवर्ती क्षीणकषाय के उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा क्षीणकषाय के साथ ग्रहण करनी चाहिये, क्योंकि वह एक बन्धनबद्ध है।

शंका – क्षीणकषाय जीव निगोद पर्यायरूप नहीं है, इसलिए वह वादर निगोद वर्गणा होने में कोई विरोध नहीं आता।

यह एक स्पर्धक है।

अब दुसरे स्पर्धक का कथन करते हैं यथा-अन्य जीव सब प्रकार के प्रयत्न से क्षपित कर्माशिक विधि को करके सबसे जघन्य औदारिक शरीर की अवगाहना द्वारा क्षीणकषाय के द्विचरम समय में स्थित हुआ। इस प्रकार स्थित हुए इस जीव के आवलि के असंख्यात्में भाग मात्र पुलवियाँ होती हैं। एक-एक पुलवि में असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर होते हैं। यहाँ क्षपित कर्माशिक विधि से आए हुए जीव आवलि के असंख्यात्में भाग मात्र ही होते हैं, वाकी के सब जीव क्षपित घोलमाल ही होते हैं, क्योंकि, एक समय में द्वाग्रेन क्रिया करने वाले यदि वहुत जीव होते हैं तो आवलि के असंख्यात्में भाग प्रमाण ही होते हैं, इस प्रकार का नियम पाया जाता है। इन अनन्त जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मण परमाणु पुदगलों को तथा उनके अनन्तानन्त विस्सोपचय परमाणु पुदगलों को ग्रहण करके स्पर्धक का प्रारम्भ होता है, क्योंकि, प्रथम स्पर्धक को देखते हुए अनन्त स्थानों के अन्तराल से इसकी उत्पत्ति हुई है।

यहाँ दोनों स्पर्धकों के अन्तर प्रमाण का कथन करते हैं। यथा क्षीणकषाय के अन्तिम समय में सबसे जघन्य वादर निगोद वर्गणा के जीवों से उसी के अन्तिम समय में उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणा के जीव पल्योपम के असंख्यात्में भाग प्रमाण अधिक होते हैं।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान - अविरुद्ध भाषी आचार्यों के वचन से जाना जाता है। पुनः अनन्तानन्त कर्म और नोकर्म पुद्गलों से उपचित हुए इन जीवों को अलग करके पृथक् स्थापित करने पर अलग करने पर जो शेष वचता है वह जघन्य बादरनिगोदवर्गणा का प्रमाण होता है।

पुनः क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा के जीवों से उसी के द्विचरम समय में जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा के जीव विशेष अधिक होते हैं कितने विशेष अधिक होते हैं ? क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जघन्य बादर निगोद वर्गणा के अनन्तानन्त जीवों में पल्योपम के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उतने विशेष अधिक होते हैं। इस एक भाग को दूसरे स्पर्धक में से घटा देने पर उभयत्र शेष जीवों का प्रमाण समान होता है। यहाँ चरम समय में घटाए हुए जीवों के द्विचरम समय में घटाये हुए जीव अनन्तगुणे होते हैं, क्योंकि, चरम वर्गणा के जीवों से असंख्यातवें भागप्रमाण द्विचरम विशेष में सब जीवराशि के अनन्त प्रथम वर्गमूल उपलब्ध होते हैं। अतः पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण जीवों से युक्त अन्तिम विशेष से द्विचरम समय सम्बन्धी क्षीणकषाय का विशेष अनन्तगुणा होता है, इसलिए उस विशेष में असंख्यात लोकमात्र शरीर होते हैं। तथा एक-एक शरीर में अनन्तानन्त जीव स्थित होते हैं। इनमें से चरमविशेष जीवों के घटा देने पर जो शेष रहता है वह सब जीवराशि के अनन्त प्रथम वर्गमूल प्रमाण होता है। इतने अन्तर से उत्पन्न होने के कारण द्वितीय स्पर्धक हुआ है। यदि अन्तर नहीं माने तो एक ही स्पर्धक होवे, क्योंकि क्रमवृद्धि देखी जाती है। यह स्पर्धकों का अन्तर जीवों का ही होता है, बादर निगोद स्थानों का नहीं, क्योंकि, जघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान तक निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हुए उनका एक स्पर्धक को छोड़कर स्पर्धकान्तर नहीं होता। यदि दूसरे स्पर्धक का सद्भाव माना जाय ध्रुवशून्य वर्णणायें आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण या बहुत प्राप्त होती है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि इस प्रकार की उपलब्धि नहीं होती। इसलिए द्विचरम जघन्य वर्गणा अन्तिम उत्कृष्ट वर्गणा से असंख्यातगुणी हीन होती है, अतः उसी में इसका अन्तर्भव कहना चाहिए।

अब क्षीणकषाय के अन्तिम समयवर्ती क्षपक को ग्रहण छोड़कर क्षीणकषाय के द्विचरम समयवर्ती इस क्षपक को ग्रहण करके पुनः यहाँ रहने वाले सब जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरों के छह पुओं को पृथक्-पृथक् स्थापित करके सेवीय व्याख्यानाचार्य के द्वारा कही गई स्थानप्ररूपणा को बतलाते हैं यथा - तो कोई एक अन्य जीव क्षपित कर्माशिक विधि से आकर क्षीणकषाय के द्विचरम समय में एक-एक औदारिक शरीर के विस्त्रसोपचय परमाणु से अधिक करके स्थित हुआ तब अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। दोनों विस्त्रसोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन विस्त्रसोपचय परमाणु पुद्गलों के

बढ़ाने पर तीसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। चार विस्त्रसोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर चौथा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार प्रथम स्पर्धक में बढ़ाते हुए क्रम को ध्यान में रखकर सबसे जघन्य औदारिकशरीर परमाणुओं के अपने उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय के प्रमाण को प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए। पुनः सबसे जघन्य तैजसशरीर परमाणुओं के विस्त्रसोपचय अपने उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय के प्रमाण को प्राप्त होने तक इसी प्रकार बढ़ाने चाहिए। पुनः जघन्य कार्मणशरीर परमाणुओं के जघन्य विस्त्रसोपचय अपने उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय के प्रमाण को प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार बढ़ाने पर क्षीणकषाय के द्विचरम समय सम्बन्धी क्षपित कर्माशिक और क्षपित घोलमान विधि से आये हुए सब जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर अपने विस्त्रसोपचय रूप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

पुनः विस्त्रसोपचयों में वृद्धि नहीं होती, इसलिए एक अन्य जीव लो जो विस्त्रसोपचय के साथ औदारिकशरीर के एक परमाणु से पूर्वोक्त औदारिक शरीर को अधिक करके स्थित है तब सब जीवों से अनन्तगुणे स्थानों का अन्तर देकर यह स्थान उत्पन्न होता है। पुनः निरन्तर स्थान लाना चाहते हैं इसलिए पूर्वोक्त औदारिक शरीर पुञ्ज में से एक परमाणु विस्त्रसोपचय प्रमाण से हीन पूर्वोक्त विस्त्रसोपचय सहित एक परमाणु की वृद्धि करने पर निरन्तर रूप से अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है, किन्तु अन्तिम स्पर्धक में उत्पन्न हुए स्थानों को देखते हुए वह पुनरुक्त होता है। पुनः एक विस्त्रसोपचय परमाणु की वृद्धि होने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। वो परमाणुओं की वृद्धि होने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार अपने-अपने पहले क्रम किए गए सब जीवों से अनन्तगुणे विस्त्रसोपचय परमाणुओं के औदारिक शरीर विस्त्रसोपचय में बढ़ने तक बढ़ाते जाना चाहिए। पुनः पीछे बढ़ाए हुए परमाणुओं को विस्त्रसोपचयों से उत्कृष्ट करना चाहिए। ऐसा करने पर इतने ही अपुनरुक्त स्थान उपलब्ध होते हैं। पुनः इस क्रम से औदारिक शरीर पुञ्ज में उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय के साथ अभ्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र परमाणुओं की वृद्धि होने तक विस्त्रसोपचय सहित एक-एक औदारिक शरीर परमाणु को प्रवेश कराकर बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार जानकर छहों पुञ्ज अन्तिम समयवर्ती स्पर्धक जीवों के उत्कृष्ट स्थान प्रमाण को द्विचरम समय सम्बन्धी स्पर्धक जीवों के छह पुञ्ज प्राप्त होने तक आनुपूर्वी क्रम से बढ़ाना चाहिए। पुनः इस औदारिक शरीर के पुञ्ज के ऊपर एक परमाणु अधिक के क्रम से अपने विस्त्रसोपचय सहित अपुनरुक्त स्थानों को उत्पन्न करने के लिए अभ्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण परमाणु बढ़ाने चाहिए। बढ़ाते हुए कितने बढ़ाने चाहिए ऐसा पूछने पर कहते हैं कि एक बादर निगोद जीव विस्त्रसोपचय सहित जितने औदारिक परमाणु सम्भव हैं उतने बढ़ाने चाहिए।

अनन्तर एक अन्य जीव लीजिए जो पूर्वोक्त औदारिक शरीर के ८

औदारिक शरीर को अधिक करके तथा विस्त्रोपचय सहित एक परमाणु के द्वारा तैजसशरीर को अधिक करके अवस्थित है तब सब जीवों से अनन्तगुणे रथानों का अन्तर देकर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः निरन्तर स्थान चाहते हैं इसलिए इस आये हुए परमाणु को बुद्धि के द्वारा पृथक् स्थापित करके पुनः इसके जितने विस्त्रोपचय परमाणु है उतने विस्त्रोपचयों से रहित तैजसशरीर के पुञ्ज में पहले अलग किये गये परमाणु के बढ़ाने पर निरन्तर होकर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः एक विस्त्रोपचय परमाणु के बढ़ाने पर अन्य एक अपुनरुक्त स्थान होता है। दो विस्त्रोपचय परमाणुओं के बढ़ने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। तीन विस्त्रोपचय परमाणुओं के बढ़ने पर तीसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सब जीवों से अनन्तगुणे विस्त्रोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ने पर इतने ही अपुनरुक्त स्थान लब्ध होते हैं। पुनः इस प्रकार अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण तैजसशरीर के परमाणु और सब जीवों से अनन्तगुणे तैजसशरीर के विस्त्रोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने तक बढ़ाते जाने चाहिए। इस प्रकार बढ़ाते हुए वे कितने हैं ऐसा पूछने पर कहते हैं कि एक बादर निगोद जीवों के तैजसशरीर में जितने विस्त्रोपचय सहित परमाणु हैं वे उतने हैं।

पुनः एक अन्य जीव लीजिए जो पूर्वोक्त विधि से आकर क्षीणकषाय के द्विचरम समय में औदारिक और तैजसशरीर को पूर्वोक्त वढ़े हुए द्रव्य से अधिक करके तथा कार्मणशरीर को विस्त्रोपचय सहित एक कार्मण परमाणु से अधिक करके स्थित है तब सब जीवों से अनन्तगुणे रथानों का अन्तर देकर अन्य स्थान उत्पन्न होता है। पुनः निरन्तर स्थान चाहते हैं इसलिए इस आये हुए विस्त्रोपचय सहित एक परमाणु को बुद्धि से अलग स्थापित करके एक परमाणु विस्त्रोपचय प्रमाण से हीन कार्मणशरीर के पुञ्ज में पहले निकले हुए परमाणु के मिलाने पर एक परमाणु अधिक होकर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः एक कार्मण विस्त्रोपचय परमाणु के बढ़ने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। दो कार्मण विस्त्रोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सब जीवों से अनन्तगुणे विस्त्रोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने तकले जाना चाहिए। तब इतने ही अनुपरुक्त स्थान लब्ध होते हैं। पुनः इस प्रकार एक-एक विस्त्रोपचय सहित कर्म परमाणु का पुनः पुनः प्रवेश करकर कार्मणशरीर के पुञ्ज में अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र विस्त्रोपचय सहित कर्म परमाणुओं की वृद्धि होने तक ले जाना चाहिए। पुनः ये बढ़े हुए परमाणु कितने हैं? एक बादर निगोद जीव के कार्मणशरीर में जितने विस्त्रोपचय सहित कर्मपरमाणु हैं उतने हैं। इस प्रकार बढ़ाकर स्थित होने पर पुनः अन्य जीव क्षपितकर्माशिक विधि से आकर क्षीणकषाय के द्विचरम समय में बादर निगोद जीव से अधिक कर स्थित है तब पुनरुक्त स्थान होता है, क्योंकि, पूर्व क्रम से बढ़ाये हुए परमाणु यहाँ एक जीव में उपलब्ध होते

हैं। पुनः इसके ऊपर एक परमाणु के बढ़ाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार अन्य एक जीव के औदारिक तैजस और कार्मणशरीर के परमाणु अपने विस्त्रोपचय सहित प्रविष्ट होने तक पहले के समान बढ़ना चाहिए। अनन्तर पूर्व विधि से दूसरा जीव प्रविष्ट करना चाहिए। इस प्रकार इस क्रम से पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण जीव क्रम से प्रविष्ट करने चाहिए। इतनी विशेषता है कि क्षीणकषाय के अन्तिम समय में प्रविष्ट हुए जीवों से द्विचरम समय में प्रविष्ट हुए जीव विशेष अधिक होते हैं, क्योंकि, चरम और द्विचरम समयन्ती जीवों का विशेष यहाँ दिखाई देता है। विशेष का प्रमाण क्या है? अन्तिम समय में जितना विशेष होता है उसका असंख्यातवां भाग यहाँ विशेष का प्रमाण है। इस जीवों में एक परमाणु अधिक के क्रम से अपने उत्कृष्ट स्थान के प्राप्त होने तक छह पुञ्जों का आश्रय लेकर अन्य भी अपुनरुक्त स्थान उत्पन्न करने चाहिए। इस प्रकार जीव के पुराने परमाणु पुद्गलों में तत्काल प्रविष्ट हुए जीव परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर द्विचरम समय की बादर निगोद वर्गणा उत्कृष्ट होती है। पुनः यहाँ आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियाँ हैं। एक-एक पुलवी में असंख्यात लोक प्रमाण बादर निगोद शरीर हैं और एक-एक शरीर में अनन्तानंत जीव सम्भव हैं। पुनः इन जीवों में गुणितकर्माशिक जीव आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण ही है। बाकी के अनन्त सब जीव गुणितकर्माशिक और क्षपितकर्माशिक एक भी जीव नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट द्रव्य में उनका अस्तित्व होने में विरोध है। इस प्रकार मात्र इतने द्रव्य को ग्रहण कर दूसरा जीव स्पर्धक उत्कृष्ट होता है।

अब तीसरे स्पर्धक का कथन करते हैं। यथा-एक जीव सब प्रकार के प्रयत्न से औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर को क्षपितकर्माशिकरूप करके क्षीणकषाय के त्रिचरम समय में अवस्थित है तब जीवों से अन्तर होकर अन्य तृतीय जीव स्पर्धक की आदि होती है। अब यहाँ अन्तर के प्रमाण का कथन करते हैं। यथा-द्विचरम समय में क्षीणकषाय की जघन्य बादर निगोदवर्गणा से उसकी उत्कृष्ट द्रव्यवर्गणा विशेष अधिक होती है। विशेष का प्रमाण क्या है? पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण जीवों की जितनी संख्या है वह विशेष का प्रमाण है। पुनः यहाँ अधिक 'जीवों' के प्रमाण को निकला कर पृथक् स्थापित कर जो शेष रहे वह द्विचरम समय की जघन्य वर्गणा का प्रमाण होता है। पुनः इससे क्षीणकषाय की त्रिचरम समय की वर्गणा में जीव विशेष अधिक होते हैं। कितने अधिक होते हैं? द्विचरम समय की जघन्य वर्गणा को पल्य के असंख्यातवें भाग से खण्डित करने पर वहाँ एक खण्ड में जितने जीव होते हैं, उतने अधिक होते हैं। वहाँ कितने जीव हैं? अनन्त जीव है, क्योंकि, पल्य के असंख्यातवें भाग का अनन्त जीवों में भाग देने पर वहाँ अनन्त जीव उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र द्विचरम वर्गणा के उत्कृष्ट विशेष जीवों के निकाल देने पर शेष अनन्त जीव प्रमाण स्पर्धक का अन्तर होता है। निगोद शरीर असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं और

एक-एक निगोद शरीर में अनन्तानन्त जीव चौथे अन्तर में होते हैं। इतना अन्तर देकर तीसरे स्पर्धक की आदि होती है। पुनः यहाँ पूर्व विधि के अनुसार पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर के परमाणु पुद्गल अनन्तानन्त विस्सोपचयों के साथ बढ़ाने चाहिए। इस प्रकार बढ़ाने पर तीसरे स्पर्धक का उत्कृष्ट अन्तर होता है। इस प्रकार चौथे, पांचवें, छठे, सातवें, आठवें, नौवें, और दसवें आदि स्पर्धकों के अन्तर प्रमाण को तथा विस्सोपचय सहित परमाणु और जीवों की प्रवेश विधि को जानकर असंख्यात गुणश्रेणी मरण के प्रथम समय के प्राप्त होने तक उतास्ना चाहिए। इस प्रकार बढ़ाकर स्थित होने पर तब अन्य जीव क्षपित कर्मांशिक विधि से आकर विशेषाधिक मरण के अन्तिम समय में स्थित है तब जीवों से अन्तर होकर अन्य स्पर्धक उत्पन्न होता है। पुनः यहाँ अन्तर प्रमाण का कथन करते हैं। यथा-गुणश्रेणी मरण के प्रथम समय के जघन्य स्पर्धक से उसी का उत्कृष्ट स्पर्धक विशेष अधिक है। विशेषपल्य के असंख्यातवे भागमात्र जीव प्रमाण है।

शंका - आवली के असंख्यातवे भागमात्र स्पर्धकों में बढ़े हुए सब जीव पल्य के असंख्यातवे भागमात्र ही होते हैं यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान - अविरुद्ध आचार्यों के वचन से जाना जाता है। इसलिए यहाँ पर विशेष में एक निगोद शरीर भी नहीं है। इस अधिक द्रव्य को अलग करके पृथक् स्थापित करना चाहिए। असंख्यात गुणश्रेणी मरण के प्रथम समय के जघन्य स्पर्धक से विशेष अधिक मरण के अन्तिम समय का जघन्य स्पर्धक विशेष अधिक है। कितना अधिक है? गुणश्रेणी मरण के प्रथम समय के जघन्य स्पर्धकों पल्य के असंख्यातवे भाग से खण्डित करने पर जो एक खण्ड लब्ध आवें उतना अधिक है। इसमें से पहले के पल्य के असंख्यातवे भागमात्र जीवों के अलग कर देने पर जो शेष रहता है वह स्पर्धक का अन्तर होता है। उस अन्तर में असंख्यात लोक प्रमाण निगोद शरीर होते हैं और एक-एक निगोद शरीर में अनन्तानन्त जीव होते हैं। पुनः इतना मात्र अन्तर देकर विशेष अधिक मरण के अन्तिम समय के जघन्य स्पर्धक की आदि होती है। पुनः यहाँ के छह पुञ्च पहले के छह पुञ्च से अयंख्यातगुणे हीन होते हैं ऐसा समझ कर गुणश्रेणी मरण के प्रथम समय में उत्कृष्ट प्रमाण के प्राप्त होने तक एक परमाणु अधिक के क्रम से बढ़ाना चाहिए। पुनः इसके ऊपर एक औदारिक शरीर विस्सोपचय परमाणु बढ़ाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। दो परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर तीसरा अपुनरुक्त स्थान होता है इस प्रकार क्षपित कर्मांशिक विधि से आये हुए जीव के एक परमाणु के विस्सोपचय पुञ्च के प्रमाण तक वृद्धि होने तक एक अधिक के क्रम से बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार बढ़ाकर स्थित होने पर तब अन्य जीव पूर्व विधि से आकर विस्सोपचय सहित एक परमाणु से औदारिक शरीर को अधिक करके विशेष अधिक मरण के अन्तिम समय में स्थित है तब अन्य सान्तर स्थान उत्पन्न होता

है। पुनः निरन्तर अध्वान इच्छित होने पर एक परमाणु विस्सोपचय प्रमाण से न्यून अवस्था में विस्सोपचय संयुक्त एक परमाणु की वृद्धि होने पर निरन्तर होकर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः अन्य एक औदारिक शरीर विस्सोपचय परमाणु की वृद्धि होने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सब जीवों से अनन्तगुणे विस्सोपचय परमाणुओं की वृद्धि होने पर एक-एक विस्सोपचय परमाणु बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार वृद्धि होने पर सेचीयरूप से इतने ही अपुनरुक्त स्थान लब्ध होते हैं। इस प्रकार एक बादर निगोद जीव के औदारिक शरीर में जितने औदारिक शरीर के विस्सोपचय सहित परमाणु हैं उतने मात्र वृद्धि होने तक विस्सोपचय सहित एक-एक परमाणु बढ़ाना चाहिए। इस प्रकार शुद्धि होने पर पुनः तैजस और कार्मण शरीर के परमाणु विस्सोपचय सहित बढ़ाने चाहिए। पुनः पूर्व विधि से एक जीव का प्रवेश करना चाहिए। इस प्रकार पल्य के असंख्यातवे भागमात्र जीव बढ़ाने चाहिए। पुनः सब जीवों के परमाणु पुद्गलों के विस्सोपचय सहित बढ़ाने पर विशेष अधिक मरण के अन्तिम समय में उत्कृष्ट स्पर्धक होता है। पुनः यहाँ आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण पुलवियां हैं। एक-एक पुलवी में असंख्यात लोकप्रमाण निगोदशरीर है। एक-एक निगोद शरीर में अनन्तानन्त जीव हैं और एक एक जीव के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर के परमाणु विस्सोपचय सहित सब जीवों से अनन्तगुणे हैं। इतने मात्र द्रव्य को ग्रहण कर विशेष अधिक मरण के अन्तिम समय का स्पर्धक होता है। इस प्रकार उतारने पर आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण स्पर्धक लब्ध होते हैं। अब इससे नीचे उतारने पर एक ही स्पर्धक होता है, क्योंकि विशेष अधिक मरण के अन्तिम स्पर्धक के स्वयंभूरमण द्वीप के स्वयंप्रभू नगेन्द्र की वाहा दिशा में कर्म भूमि के प्रतिभाग में मूल, थूहर और लता आदिक में सदृश बादर निगोद वर्गणा हीन और अधिक उपलब्ध होती है। पुनः इसके सदृश वर्गणा को ग्रहण कर वहाँ मूली, थूवर और आद्रक आदिक में एक औदारिक विस्सोपचय परमाणु बढ़ाने पर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। दो परमाणुओं के बढ़ाने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार अनन्तानन्त विस्सोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर पूर्व विधि से अनन्तर एक औदारिक परमाणु विस्सोपचय सहित बनना चाहिए। इस प्रकार विस्सोपचय सहित औदारिक शरीर परमाणु अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भागमात्र होने तक बढ़ाने चाहिए। पुनः इसी क्रम से अनन्तानन्त विस्सोपचयसहित अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भागमात्र तैजस शरीर परमाणु बढ़ाने चाहिए। पुनः पूर्व विधि से कार्मणशरीर पुञ्च में सब जीवों से अनन्तगुणे विस्सोपचयसहित अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भागमात्र कर्मपरमाणु बढ़ाने चाहिए। इस प्रकार पूर्व विधि से एक जीव प्रविष्ट कराना चाहिए। पुनः उसी के औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर बढ़ाने चाहिए। इस प्रकार बढ़ाने पर अनन्तानन्त

बादर निगोद जीवों के प्रविष्ट होने पर एक निगोद साधारण शरीर प्रविष्ट होता है। असंख्यात लोक मात्र शरीरों के प्रविष्ट होने पर एक पुलवी प्रविष्ट होती है। पुनः विस्रोपचय सहित अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर परमाणु पुद्गलों के बढ़ाने पर एक जीव प्रविष्ट होता है। इस प्रकार अनन्तानन्त जीवों के प्रविष्ट होने पर एक साधारण शरीर प्रविष्ट होता है। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीरों के प्रविष्ट होने पर दूसरी पुलवी प्रविष्ट होती है। इस प्रकार तीसरी, चौथी और पांचवी आदि से लेकर जगश्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुलवियों की वृद्धि होने पर कर्मभूमि प्रतिभाग स्वयंभूरमण द्वीप की मूली के शरीर में एक बन्धनवद्ध जगश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियों को ग्रहण कर उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा होती है। अपनी जघन्य से उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा असंख्यात गुणि है। गुणकार क्या है? जगश्रेणी के असंख्यातवें भाग-प्रमाण गुणकार है। कितने ही आचार्य गुणकार आवली के असंख्यातवें भागप्राण होता है ऐसा कहते हैं, परन्तु वह घटित नहीं होता क्योंकि, उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा में निगोदों का (पुलवियों का) प्रमाण जगश्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र है इस चूलिकासूत्र के साथ विरोध आता है। और सूत्र विरुद्ध आचार्यों का वचन प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि, ऐसा होने पर अतिप्रसंग दोष आता है। निगोद शब्द पुलवियों का वाचक है ऐसा ग्रहण करके यह प्रस्तुपण की गई है। अब 'बादरनिगोदवगणाए जहणिण्याए आवलियाए असंख्येज्जदिभागमेत्तोणिगोदाणं' इस चूलिका सूत्र का कितने ही आचार्य इस प्रकार व्याख्यान करते हैं। यथा - 'णिगोदाणं' ऐसा कहने पर उसका अर्थ 'निगोद जीव' होते हैं, पुलवियां नहीं। 'आवलीयाए असंख्येज्जदिभागमेत्तो' ऐसा कहने पर धनावली के असंख्यातवें भाग प्रमाण गुणकार होता है ऐसा ग्रहण करते हैं। प्रत्येक शरीर उत्कृष्ट वर्गणा को धनवली के असंख्यातवें भाग से गुणित करने पर जघन्य बादर निगोद वर्गणा होती है यह उक्त कथन का तात्पर्य है, किन्तु यह व्याख्यान घटित नहीं होता, क्योंकि, 'सुहमणिगोदवगणाए जहणिण्याए आवलीयाए असंख्येज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं' यहाँ भी धनावली के असंख्यातवें भाग से उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा के गुणित करने पर जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा की उत्पत्ति का प्रसंग आता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, गुणकार अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है ऐसा आचार्य परम्परा से आये हुए उपदेश के बल से सिद्ध है अथवा 'आवलीयाए असंख्येज्जदिभागमेत्तो णिगोदाणं' इस प्रकार यहाँ पर निगोद शब्द अण्डों और आवासकों का वाचक लेना चाहिए, क्योंकि, ऐसा ग्रहण किये विना उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा में एक बन्धनवद्ध असंख्यात लोकमात्र पुलवियां पायी जाती हैं वह व्याख्यान नहीं बन सकती है। और स्कन्धों के अवयवरूप रस, रुधिर, तथा मांस रूप अण्डों का उससे पृथक् रूप से अवस्थान पाया नहीं जाता, जिससे एक स्कन्ध में अनेक

बन्धनवद्ध असंख्यात लोकप्रमाण पुलवियों की सम्भावना होते, इसलिए यही अर्थ प्रधान है ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इस अर्थ के ग्रहण करने पर अक्षय गुणश्रेणी मरण काल का उक्त गुणकार विरोध को नहीं प्राप्त होता है, क्योंकि, असंख्यात गुणित क्रम से मृत जीवों से अवशिष्ट रहे आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण निगोदों में भी असंख्यात लोकप्रमाण पुलवियां उपलब्ध होती हैं। इस प्रकार यह उन्नीसवीं वर्गणा कही गई है।

(20) ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा - (तृतीय)

बादरनिगोदववगणाणमुवरि ध्रुवसुण्णदव्यवगणा णाम ॥(94)

(ध, पु, 14, पु, 112)

बादरनिगोदवर्गणाओं के ऊपर ध्रुवशून्यवर्गणा होती है।

उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा में एक अंक के मिलाने पर तीसरी ध्रुवशून्यवर्गणा की सबसे जघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा होती है। पुनः इसके ऊपर प्रदेश अधिक के क्रम से सब जीवों से अनन्तगुणे स्थान जाकर तीसरी ध्रुवशून्यवर्गणा की सबसे उत्कृष्ट वर्गणा होती है। अपनी जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार है।

शंका - उत्कृष्ट बादर निगोदवर्गणा में जगश्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियां होती है। जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियां होती है। इसलिए उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा से नीचे सूक्ष्म निगोद जघन्य वर्गणा अन्तर के बिना होनी चाहिए?

समाधान - यहाँ उक्त शंका का परिहार करते हैं, बादर निगोद उत्कृष्ट वर्गणा की जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियों में स्थित जीवोंसे सूक्ष्मनिगोद जघन्य वर्गणा की आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियों में स्थित जीव असंख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि, बादर निगोद वर्गणा के शरीरों से सूक्ष्मनिगोद वर्गणा के शरीरों का गुणकार अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण पाया जाता है। अथवा वहाँ रहने वाले जीवों से यहाँ रहने वाले जीवों का गुणकार अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण उपलब्ध होता है। और यहाँ इसका कोई वाधक भी नहीं है, किन्तु साधक ही है, अन्यथा अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार नहीं बन सकता है। इस प्रकार यह वीसवीं वर्गणा कही।

(21) सूक्ष्मनिगोद वर्गणा :-

ध्रुवसूण्णदव्यवगणाणमुवरि सुहमणिगोदवगणा णाम ॥(95)

(ध, पु, 14, पु, 113)

ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणाओं के ऊपर सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है।

उत्कृष्ट ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर सूक्ष्मनिगोदद्रव्यवर्गणा होती

है। वह जल में, स्थल में और आकाश में सर्वत्र दिखलाई देती है, क्योंकि, बादर निगोद वर्गणा के समान इसका देशनियम नहीं है। इतनी विशेषता है कि यह सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा क्षपित कर्मांशिक विधि से और क्षपितघोलमान विधि से आये हुए सूक्ष्म निगोद जीवों के ही होते हैं, अन्य के नहीं, क्योंकि वहाँ जघन्य द्रव्य के होने में विरोध है। यहाँ भी आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण पुलवियाँ होती हैं। एक-एक पुलवी में असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर होते हैं और एक-एक निगोद शरीर में अनन्तानन्त जीव होते हैं। उन जीवों में क्षपित कर्मांशिक लक्षण से आये हुए जीव आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण ही होते हैं। शेष सब जीव क्षपित घोलमान होते हैं। इन अनन्तानन्त जीवों को औदारिक, तैजस और कार्मण शरीरों के कर्म, नोकर्म और विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों को ग्रहण कर सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है।

अब इसका कथन करते हैं। यथा—औदारिक शरीर में एक विस्रसोपचय परमाणु के बढ़ने पर दूसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार सब जीवों से अनन्तगुणे स्थान प्राप्त कर सब जीवों के औदारिक शरीर विस्रसोपचय के द्वारा उत्कृष्ट होने तक एक-एक विस्रसोपचय परमाणु बढ़ाना चाहिए। पुनः उन्हीं जीवों के तैजसशरीरों के ऊपर सब जीवों से अनन्तगुणे स्थान प्राप्त कर विस्रसोपचय के द्वारा उन जीवों के तैजस शरीर उत्कृष्ट होने तक एक-एक विस्रसोपचय परमाणु बढ़ाना चाहिए। पुनः उन्हीं जीवों के कार्मणशरीरों के ऊपर सब जीवों से अनन्तगुणे स्थान प्राप्त कर विस्रसोपचय के द्वारा उनके कार्मण शरीरों के उत्कृष्ट होने तक एक-एक विस्रसोपचय परमाणु बढ़ाना चाहिए। अनन्तर इन औदारिक शरीरों के ऊपर विस्रसोपचय के साथ बढ़े हुए एक परमाणु से युक्त अन्य जीव के सब जीवों से अनन्तगुणे स्थानों का अन्तर देकर यह अन्य स्थान होता है। पुनः निरन्तर स्थान इच्छित है। इसलिए इस विस्रसोपचय सहित एक औदारिक परमाणु की बुद्धि के द्वारा पृथक् रथापित करके पुनः एक परमाणु विस्रसोपचय मात्र से हीन पहले के औदारिक शरीर पुञ्ज में पहले निकाले हुए परमाणु के मिला देने पर एक परमाणु अधिक होकर अन्य अपुनरुक्त स्थान होता है। पुनः एक विस्रसोपचय परमाणु की वृद्धि होने पर अन्य अपुनरुक्त होता है। तीसरे विस्रसोपचय परमाणु के बढ़ने पर तीसरा अपुनरुक्त स्थान होता है। इस प्रकार एक-एक परमाणु अधिक के क्रम से सब जीवों से अनन्तगुणे औदारिक शरीर विस्रसोपचय परमाणु पुद्गलों के बढ़ने पर इतने ही अपुनरुक्त स्थान होते हैं। इस प्रकार बादर निगोद वर्गणा की बढ़ाने के विधि के अनुसार औदारिक, तैजस और कार्मणशरीरों के विस्रसोपचय सहित अभ्यांसे अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवे भागमात्र परमाणु पुद्गलों के बढ़ने पर एक सूक्ष्म निगोद जीव को प्रविष्ट करना चाहिए। इस प्रकार बादर निगोद वर्गणा के बढ़ाने की विधि के अनुसार अनन्तानन्त सूक्ष्म निगोद जीवों के प्रविष्ट होने पर एक

साधारण निगोद शरीर प्रविष्ट होता है। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण निगोदशरीरों के प्रविष्ट होने पर एक पुलवी प्रविष्ट होती है। इस प्रकार आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण पुलवियों के बढ़ने पर जल में सूक्ष्मनिगोदवर्गणा स्वरथान उत्कृष्ट होती है। पुनः इस सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के साथ महामत्त्य के शरीर में सूक्ष्मनिगोद वर्गणा समान लब्ध होती है। पुनः पहले की सूक्ष्मनिगोदवर्गणा को छोड़कर इसके समान महामत्त्य के शरीर की सूक्ष्मनिगोद वर्गणा को ग्रहण कर पुनः इसके ऊपर पूर्व विधि के अनुसार आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण पुलवियों की वृद्धि होने पर महामत्त्य के शरीर में एक बन्धनवद्ध छह जीवनिकायों के संघात में उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा दिखलाई देती है। यहाँ आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण घुलवियाँ हैं और एक-एक पुलवी के असंख्यात लोकप्रमाण निगोद शरीर में अनन्तानन्त जीव हैं। यहाँ गुणित कर्मांशिक लक्षण से आये हुए जीव आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण ही होते हैं, शेष सब जीव गुणित घोलमान होते हैं, क्योंकि, ऐसा स्वभाव है। अब जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा से लेकर उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा पर्यन्त सब जीवों से अनन्तगुणे निरन्तर स्थान प्राप्त होकर एक ही स्पृक होता है, क्योंकि मध्य में कोई अन्तर नहीं है। अब यहाँ के समस्त जीवों के औदारिक, तैजस और कार्मणशरीर के कर्म और नोकर्म विस्रसोपचय सहित सब परमाणुओं को ग्रहण करके उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होती है। यहाँ जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? पल्य का असंख्यातवा भाग गुणकार है। इस प्रकार यह इकीसवीं वर्गणा कही।

(22) चौथी ध्रुवशून्य वर्गणा -

सुहुमणिगोददव्ववगणाणमुवरि ध्रुवसुण्णदव्ववगणा णाम । (96)

(ध, पृ, 14, पृ, 116)

सूक्ष्मनिगोदद्रव्यवर्गणाओं के ऊपर ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा होती है।

उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदद्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर चौथी ध्रुवशून्यवर्गणा की सबसे जघन्य वर्गणा होती है। अनन्तर एक अधिक के क्रम से सब जीवों से अनन्तगुणे स्थान जाकर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा होती है। यह जघन्य से उत्कृष्ट असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? जगप्रतर का असंख्यातवा भाग गुणकार है जो कि असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है। इस प्रकार यह वाईसवीं वर्गणा कही।

(23) महास्कन्धद्रव्यवर्गणा :-

ध्रुवसुण्णवगणाणमुवरि महाखंधदव्ववगणा णाम ॥(97)

(ध, पृ, 14, पृ, 117)

ध्रुवशून्यवर्गणाओं के ऊपर महास्कन्धद्रव्यवर्गणा होती है।

उत्कृष्ट ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणा में एक अंक के मिलाने पर सबसे जघन्य महास्कन्ध

द्रव्यवर्गणा होती है। अनन्तर एक अधिक के क्रम से सबसे जीवों से अनन्तगुणे स्थान जाकर उत्कृष्ट महारकन्धद्रव्यवर्गणा होती है। यह जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण कितना है? सबसे जघन्य महारकन्ध वर्गणा में पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर जो लब्ध आवें उतना विशेष का प्रमाण है। यहां उपयोगी पड़ने वाली गाथायें। यथा -

अणुवर्गणा, संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा, अनन्ताणुवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुवस्कन्धवर्गणा, सान्तरनिरन्तरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, वादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, और महारकन्धवर्गणा। इनमें अणुवर्गणा एक है। संख्याताणु वर्गणा संख्याताणुवर्गणा है। असंख्याताणुवर्गणा असंख्यातलोकगुणी है। अनन्ताणुवर्गणा-सहित पाँच अग्राह्यवर्गणाओं का गुणकार अभव्यों से अनन्तगुणा है। (9) आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मणवर्गणा में अभव्यों से अनन्तगुणे जीव का भाग देने पर जो लब्ध आवें उतना जघन्य से उत्कृष्ट लाने के लिए विशेष का प्रमाण है। (10) ध्रुवस्कन्धवर्गणा, सान्तरनिरन्तरवर्गणा, और प्रथम ध्रुवशून्यवर्गणा में अपने जघन्य से उत्कृष्ट का प्रमाण लाने के लिए गुणकार का प्रमाण सब जीवों से अनन्तगुणा है। (11) प्रत्येक शरीरवर्गणा का गुणकार पल्य का असंख्यातवां भाग है। दूसरी ध्रुवशून्यवर्गणा में गुणकार अनन्तलोक है। स्थूलनिगोद वर्गणा का गुणकार आगे कहते हैं। (12) इसका गुणकार जगश्रेणी का असंख्यातवां भाग है। तीसरी शून्य वर्गणा का गुणकार अङ्गुल का असंख्यातवां भाग है। सूक्ष्मनिगोद वर्गणा में गुणकार पल्य का असंख्यातवां भाग है। चौथी शून्य वर्गणा का गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है। (13) इन सब वर्गणाओं के ये गुणकार अपने जघन्य से उत्कृष्ट भेद लाने के लिए जानने चाहिए। तथा महारकन्ध में अपने जघन्य से अपना उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग अधिक है।

नानाश्रेणीवर्गणा - अब नानाश्रेणी की प्रस्तुति करते हैं। यथा -

परमाणु पुद्गल वर्गणा से लेकर सान्तरनिरन्तरवर्गणा की उत्कृष्ट वर्गणा तक इन वर्गणाओं कि सदृशधनवाली वर्गणायें अनन्त पुद्गल वर्गमूलमात्र होती है। पुनः जघन्य प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणायें क्षपित कर्मांशिक लक्षण से आये हुए अयोग केवली के अन्तिम समय में वर्तमान काल में चार होती है। तथा उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणायें गुणित कर्मांशिक लक्षण से आये हुए अयोगोकेवली के अन्तिम समय में दो होती है। मध्यम प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणायें आठ प्राप्त होती है। सर्वोत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणायें बल्लरीदाह के समय या देवकृत झाड़ी में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होती है। वर्तमान काल में अजघन्य अनुत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणायें असंख्यात लोकप्रमाण प्राप्त होती है। वादर निगोद वर्गणायें

क्षीणक्षाय के अन्तिम समय में जघन्य चार, उत्कृष्ट दो और मध्यम आठ प्राप्त होती है। ओघ उत्कृष्ट वादरनिगोदवर्गणाएँ मूलक, थूर और लता आदिक में जगप्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होती है। सदृश धनवाली सबसे उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणायें पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण है। सबसे उत्कृष्ट वादर निगोद वर्गणायें जगप्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं ऐसा जो कहा है वह आगे कही जानेवाली यवमध्य प्ररूपना के साथ विरोध को प्राप्त होता है, क्योंकि, वहाँ पर प्रत्येक शरीर वर्गणायें, वादरनिगोदवर्गणायें और सूक्ष्मनिगोदवर्गणायें सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण ही होती है, ऐसा कथन किया है स्मै इस विषय में उपदेश को प्राप्त करके निर्णय करना चाहिए।

शंका - स्वयंभूस्मण समुद्र में वर्तमानकाल में यतः जगप्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण महामत्स्य दिखलाई देते हैं, अतः उत्कृष्ट वादरनिगोद वर्गणा की सदृश धनवाली वर्गणायें जगप्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, सब महामत्स्यों में उत्कृष्ट वादरनिगोदवर्गणा होती है ऐसा नियम नहीं है तथा जगप्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण गुणित कर्मांशिक जीवों का अभाव है, इसलिए भी जगप्रतर के असंख्यातवें भागप्रमाण उत्कृष्ट वादरनिगोद वर्गणायें नहीं हो सकती। अतः एक समय में गुणित कर्मांशिक जीव उत्कृष्टरूप से आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं अतः उत्कृष्ट सदृश धनवाली वर्गणायें आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण ही होती है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए।

अभव्यप्रायोग्य जघन्य स्थान में भी क्षपित कर्मांशिक लक्षण से आये हुए जीव आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण ही होते हैं। इसलिए यवमध्यप्ररूपना में कहा गया उपदेश प्रधान है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिए। अजघन्य अनुत्कृष्ट वादरनिगोद वर्गणाएँ वर्तमान काल में असंख्यात लोकप्रमाण उपलब्ध होती है। सबसे जघन्य सूक्ष्मनिगोद धनवाली वर्गणाएँ जल, स्थल और आकाश में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती है, परन्तु उत्कृष्ट सदृश धनवाली सूक्ष्मनिगोद वर्गणाएँ वर्तमान काल में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हुई महामत्स्य के शरीर में दिखलाई देती है। अजघन्य अनुत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोद वर्गणाएँ वर्तमान काल में असंख्यात लोकप्रमाण होती है, परन्तु महारकन्ध वर्गणा वर्तमान काल में एक ही महारकन्ध नामवाली होती है।

शंका - असंख्यात योजनों का अन्तर देकर स्थित हुए पुद्गलों का एकत्र कैसे हो सकता है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, एकवन्धनवद्ध सूक्ष्म पुद्गलरकन्धों से समवेत पुद्गलों का अन्तर नहीं पाया जाता।

अध्याय - 5

“२३ वर्गणाओं की उत्पत्ति”

१. अणु वर्गणा की उत्पत्ति :-

सब वर्गणायें परमाणु पुद्गलों से ही उत्पन्न हुई है, अतः सब वर्गणाओं की परमाणु पुद्गल द्रव्य वर्गणा यह संज्ञा है तथा उस वर्गणा के एकादि प्रदेश अतः विशेषण है, अतः एकप्रदेशी और परमाणु पुद्गल इन दोनों पदों का ग्रहण करना चाहिए।

स्कन्धों का विभाग होना भेद है। परमाणु पुद्गलों का समुदाय समागम होना संघात है। भेद को प्राप्त होकर पुनः समागम होना भेद संघात है। यह एक प्रदेशी परमाणु पुद्गल द्रव्य वर्गणा है क्या भेद से उत्पन्न होती है या संघात से उत्पन्न होती है या क्या भेद संघात से उत्पन्न होती है ?

उवरिल्लीण दवाणं भेदेण । (९९) (ध, पु, १४ पृ, १२१)

ऊपर के द्रव्यों के भेद से उत्पन्न होती है। द्विप्रदेशी आदि उपरिम वर्गणाओं के भेद से ही एक प्रदेशी वर्गणा होती है, क्योंकि, सूक्ष्म की स्थूल के भेद से ही उत्पत्ति देखी जाती है। संघात से और भेद-संघात से एकप्रदेशी परमाणु पुद्गल-द्रव्यवर्गणा नहीं होती है, क्योंकि इससे नीचे अन्य वर्गणाओं का अभाव है।

स्वतन्त्रता के सूत्र (मोक्षशास्त्र, तत्वार्थ सूत्र) में भी कहा है -

भेदादण् : १(२७)

भेदात् अणुरुत्पयते ।

The ultimative elementary particles (atom) are produced only by division of matter.

भेद से अणु उत्पन्न होता है ।

‘भेदसंघाताभ्यां उत्पद्यन्ते’ इस सूत्र के सामर्थ्य से स्कन्ध की उत्पत्ति सूचित होने से यह ज्ञात हो जाता है कि अणु भेद से उत्पन्न होता है, फिर भी इस सूत्र (भेदादण्) की रचना से यह अवधारणा किया जाता है कि अणु भेद से ही उत्पन्न होता है, भेद, संघात और भेद-संघात से स्कन्ध उत्पन्न होता है, ऐसा कहने पर अणु भेद से उत्पन्न होता है यह सिद्ध हो जाता है तथापि पुनः ‘भेदादण्’ यह इस अवधारणा के लिए बनाया गया है कि अणु की उत्पत्ति भेद से ही होती है न संघात से होती है और न भेद-संघात से ।

२. संख्याताणु वर्गणा की उत्पत्ति :

उवरिल्लीण दवाणं भेदेण है हेड्लीणं दवाणं संघादेण सत्थाणेण भेदसंघादेण । (१०१)

(ध.पु. १४ पृ. १२१)

ऊपर के द्रव्यों के भेद से और नीचे के द्रव्यों के संघात से तथा स्वरथान में भेद संघात से होती है।

अतः दो एक प्रदेशी परमाणुपुद्गलों के समुदायसमागम से द्विप्रदेशी वर्गणा होती है, इसलिए यह नीचे की वर्गणाओं के संघात से होती है। ऊपर की वर्गणाओं के भेद से भी होती है। यथा त्रिप्रदेशी वर्गणा में एक परमाणु पुद्गल के विरोधी गुण के उत्पन्न होने से भेद को प्राप्त होने पर द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है। चार प्रदेशी स्कन्ध से दो परमाणु पुद्गलों के विरोधी गुण के उत्पन्न होने से भेद को प्राप्त होने पर द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है। चार प्रदेशी स्कन्ध से दो परमाणु पुद्गलों के विरोधी गुणों के उत्पन्न होने से भेद को प्राप्त होने पर द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है। चार प्रदेशी स्कन्ध से तीन परमाणु पुद्गलों के भेद को प्राप्त होने पर द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है। इस प्रकार उपरिम सब वर्गणाओं के भेद से द्विप्रदेशी वर्गणा की उत्पत्ति कहनी चाहिए। त्रिप्रदेशी आदि वर्गणाओं के भेद से द्विप्रदेशी वर्गणा की उत्पत्ति होती है। ऐसा समझकर ‘ऊपर के द्रव्यों के भेद’ से यह वचन कहा है। एक प्रदेशी दो वर्गणाओं के समूदय समागम से द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है। इसलिए नीचे के द्रव्यों के संघात से यह वचन कहा है। द्विप्रदेशी दो स्कन्ध भेद को प्राप्त होकर जब पूर्व सम्बद्ध परमाणु के साथ या अन्य परमाणु के साथ समागम को प्राप्त होते हैं तब द्विप्रदेशी वर्गणा स्वरथान में भेद संघात से उत्पन्न होती है ऐसा कहा है।

शंका - द्विप्रदेशी वर्गणा भेद को प्राप्त होकर एकप्रदेशी वर्गणा होती है पुनः उन दो परमाणुओं के समुदायसमागम से उत्पन्न हुई द्विप्रदेशी वर्गणा नीचे के द्रव्यों के संघात से उत्पन्न हुई है इसलिए स्वरथान में भेद संघात से द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है ऐसा जो कहा है वह नहीं बनता है ?

समाधान - यहाँ इस शंका का परिहार करते हैं ।

यथा - अवयवों का विभाग उत्पन्न होकर वह अवयवों के संयोग का विनाश करता है। अनुत्पन्न होकर नहीं क्योंकि अहेतूक कार्य की उत्पत्ति होने में विरोध है इसलिए अवयवों के विभाग के उत्पन्न होने के समय ही संयोग का विनाश होना चाहिए क्योंकि विरोधी गुणों की उत्पत्ति होने पर संयोग का अवरथान होने में विरोध है। यदि कहा जाए कि अवयवों के संयोग के विनाश के समय ही एक प्रदेशी वर्गणा की उत्पत्ति होती है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक द्रव्य को विषय करने वाले विनाश और उत्पत्ति की युगपत् वृत्ति होने में विरोध है। यदि विरोध नहीं माना जाता है तो जो विनाश है वही उत्पत्ति हो जाएगी और जो उत्पत्ति है वह विनाश हो जायगा, इसलिए विनाश और उत्पत्ति के व्यवहार में संकर हो जायेगा, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि इन दोनों का सांकर्य दोष से रहित होकर व्यवहार उपलब्ध होता है इसलिए विभाग के समय में परमाणु वर्गणा की उत्पत्ति नहीं होती उस समय द्विप्रदेशी वर्गणा

का भेद ही होता है यह बात सिद्ध हुई। पुनः इन भेदों के प्राप्त हुए संघात से द्विप्रदेशी वर्गणा उत्पन्न होती है, इसलिए स्वरथान में भेदसंघात से द्विप्रदेशी वर्गणा की उत्पत्ति होती है। वह पहले के भंगों में अन्तर्भाव को नहीं प्राप्त होती है यह सिद्ध हुआ। अथवा द्विप्रदेशी वर्गणा के दो स्कन्ध भेद को प्राप्त होकर होने के समय में ही परस्पर में समागम को प्राप्त होकर क्रम से द्विप्रदेशी वर्गणायें उत्पन्न होती है। इसलिए भेद-संघात से उत्पत्ति कहनी चाहिए। यह अर्थपद आगे सर्वत्र कहना चाहिए।

(3-4) असंख्याणु वर्गणा से लेकर अनन्ताणु वर्गणा तक की उत्पत्ति -
उवरिल्लीणं दवाणं भेदेण हेट्रिल्लीणं दवाणं संघादेण सत्थाणेण भेदसंघादेण। (103)

(ध. पु. 14, पृ. 124)

ऊपर के द्रव्यों के भेद से नीचे के द्रव्यों के संघात से और स्वरथान की अपेक्षा भेद संघात से होती है।

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि पहले व्याख्यान कर आये हैं।

शंका :- नीचे की और ऊपर की वर्गणाओं के भेद-संघात से विवक्षित वर्गणाओं की उत्पत्ति क्यों नहीं कहते, क्योंकि भेद के समय विनाश को छोड़कर उत्पत्ति के अभाव के प्रति कोई विशेषता नहीं है?

समाधान - नहीं, क्योंकि वहाँ पर इस प्रकार के नयका अभाव है। अथवा भेद-संघात का इस प्रकार का अर्थ कहना चाहिए। यथा-भेद और संघात दोनों का संयोग स्वरथान कहलाता है। उसके विवक्षित होने पर ऊपर के नीचे के और विवक्षित द्रव्यों के भेदपूर्वक संघात से विवक्षित वर्गणा की उत्पत्ति देखी जाती है। इसे स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से उत्पत्ति कहते हैं।

शंका-सभी परमाणु संघात भेदपूर्वक ही होता है, इसलिए सभी वर्गणाओं की उत्पत्ति भेद-संघात से ही क्यों नहीं कहते?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि भेदसे अनन्तर जो संघात होता है उसे भेद-संघात कहते हैं। जो अन्तर से होता है उसकी यह संज्ञा नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर अव्यवस्था का प्रसंग आता है। इसलिए सब वर्गणाओं की उत्पत्ति भेद संघात से नहीं होती।

5-15 आहार वर्गणा से लेकर ध्रुवस्कन्ध वर्गणा तक की उत्पत्ति -
उवरिल्लीणं दवाणं भेदेण हेट्रिल्लीणं दवाणं संघादेण सत्थाणेण भेदसंघादेण। (105)

(ध. पु. 14 पृ. 125)

ऊपर के द्रव्यों के भेद से, नीचे के द्रव्यों के संघात से और स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से होती हैं।

16. सान्तर निरन्तर वर्गणा की उत्पत्ति

सत्थाणेण भेदसंघादेण। (107)

(ध. पु. 14. पृ. 125)

स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से होती है। यथा-प्रत्येक शरीर, बादर निगोद और सूक्ष्मनिगोद वर्गणाओं के भेद से यह वर्गणा नहीं होती, क्योंकि सचित्त वर्गणाओं का अचित्त वर्गणा रूप से परिणमन होने में विरोध है। यदि कहा जाए कि सचित्त वर्गणा के कर्म और नो कर्म स्कन्धों के उससे अलग होकर सान्तर निरन्तर वर्गणा रूप से परिणित होने पर उनके भेद से इस वर्गणा की उत्पत्ति होती है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनसे अलग होने के समय ही उनसे अलग हुए स्कन्धों को सचित्त वर्गणा होने में विरोध आता है। महास्कन्ध के भेद से इस वर्गणा की उत्पत्ति होती है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि महास्कन्ध से अलग हुए स्कन्ध अतः महास्कन्ध के भेद से अलग हुए हैं, अतः उनकी महास्कन्ध संज्ञा नहीं हो सकती और इसलिए उनका उससे भेद नहीं बन सकता। इस नयका अवलम्बन करने पर ऊपर की वर्गणाओं के भेद से यह वर्गणा नहीं होती है यह कहा गया है, परन्तु द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करने पर ऊपर की वर्गणाओं के भेद से भी यह वर्गणा होती है। ध्रुवस्कन्ध आदि के संघात से सान्तर निरन्तर वर्गणा नहीं होती है। क्योंकि यहाँ द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन लिया गया है। सान्तर निरन्तर वर्गणा एक ही है, उस रूप से ध्रुवस्कन्ध वर्गणा आदि का अनन्तर ही परिणाम का अभाव है। परन्तु पर्यार्थिक नयका अवलम्बन लेने पर नीचे की वर्गणाओं के संघात से भी यह वर्गणा होती है, क्योंकि उत्कृष्ट ध्रुवस्कन्ध वर्गणा में एक आदि परमाणु का समागम होनेपर सान्तरनिरन्तर वर्गणा की उत्पत्ति होने में कोई विरोध नहीं है। यह विपरीत कल्पना भी नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर सचित्त वर्गणा-रथानों की अनुत्पत्तिका प्रसंग आता है। सान्तरनिरन्तर वर्गणा का दूसरे प्रकार से परिणमन नहीं होता है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर ध्रुवशून्य वर्गणाओं के अनन्त होने का प्रसंग आता है। केवल स्वरथान में ही परिणमन होता है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जघन्य वर्गणा से एक परमाणु अधिक वर्गणा की उत्पत्ति होने में विरोध आता है दूसरे सान्तर निरन्तर वर्गणा का अभाव भी प्राप्त होता है इसलिए स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से ही यह वर्गणा होती है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। अथवा ऊपर की वर्गणायें टूट कर ध्रुवस्कन्ध आदि रूप से ही उनका पतन होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। तथा ध्रुवस्कन्ध आदि नीचे की वर्गणायें स्वरथान में ही समागम को प्राप्त होती है अथवा ऊपर की वर्गणाओं के साथ समागम को प्राप्त होती है क्योंकि ऐसा स्वभाव है, परन्तु सान्तरनिरन्तरवर्गणा स्वरथान में ही भेद से संघात से या तदूभय से परिणमन करती है इस बात का ज्ञान कराने के लिए 'भेद-संघात' से ऐसा कहा है।

17. प्रत्येक शरीर वर्गणा की उत्पत्ति -

सत्थाणेण भेदसंघादेण (110) (ध. पु. 14 पृ. 128)

स्वरथान की अपेक्षा भेद - संघात से होती है।

परमाणु वर्गणा से लेकर सान्तरनिरन्तर उत्कृष्ट वर्गणा तक इन वर्गणाओं के समुदय समागम से प्रत्येक शरीर वर्गणा नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तर वर्गणाओं का अपने स्वरूप को छोड़कर एक अधिक आदि उपरिम वर्गणा रूप में परिणमन करने की शक्ति का अभाव है।

शंका - आहारद्रव्य वर्गणा, तैजसशरीर द्रव्य वर्गणा और कार्मणशरीर द्रव्यवर्गणा के पुद्गल रक्तन्धों के योग और कषाय के वश से प्रत्येक वर्गणा रूप से बन्ध को प्राप्त होने पर उनसे अन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा की उत्पत्ति होती है अतः नीचे के द्रव्यों के संघात से प्रत्येक शरीरवर्गणा की उत्पत्ति क्यों नहीं कही जाती ?

समाधान - नहीं, क्योंकि प्रत्येक शरीर वर्गणा के समागम के बिना केवल नीचे की वर्गणाओं के समुदयसमागम से उत्पन्न होने वाली प्रत्येक शरीरवर्गणायें नहीं उपलब्ध होती। दूसरे योग के वश से एकवन्धन औदारिक, तैजस और कार्मण परमाणु पुद्गलरक्तन्ध अनन्तानन्त विस्रोपचयों से उपचित होते हैं, परन्तु वे सब सान्तर, निरन्तर आदि नीचे की वर्गणाओं में कहीं भी सदृशधनवाले नहीं होते, क्योंकि वे प्रत्येकवर्गणा के असंख्यातवे भाग प्रमाण होते हैं। वे प्रत्येक शरीर जघन्य वर्गणा के सदृश्य भी नहीं होते क्योंकि वे उसके असंख्यातवे भाग प्रमाण होते हैं। वे अलग रूप से वर्गणा संज्ञा को भी नहीं प्राप्त होते, क्योंकि जीव से अलग होने के काल में उनका एक वन्धन नहीं होता। इसलिए नीचे की वर्गणाओं के संघात से प्रत्येक शरीर वर्गणा नहीं उत्पन्न होती है यह सिद्ध हुआ।

उपर के द्रव्यों के भेद के बिना प्रत्येक शरीर वर्गणा उत्पन्न होती है, क्योंकि बादर निगोदवर्गणा और सूक्ष्मनिगोद वर्गणा के औदारिक तैजस और कार्मणवर्गणा रक्तन्धों के अधः स्थितिगलना के द्वारा गलित होने पर प्रत्येकशरीर वर्गणा को उल्लंघन कर उनका नीचे सदृशधनरूप सान्तरनिरन्तर आदि वर्गणा रूप से अवरथान उपलब्ध होता है।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान - स्वरथान की अपेक्षा भेदसंघात से ही प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है यह सूत्र अन्यथा बन नहीं सकता है इस से जाना जाता है।

शंका - भेद को प्राप्त होने के दूसरे समय में प्रत्येक शरीर वर्गणा रूप से उनका परिणमन होता है इसलिए उपरिम द्रव्यों के भेद से प्रत्येक शरीर वर्गणा की उत्पत्ति क्यों नहीं कहते ?

समाधान - नहीं, क्योंकि उपरिम वर्गणा से आये हुए परमाणु पुद्गलों से ही प्रत्येक शरीरवर्गणा की निष्पत्तिका अभाव है।

शंका - बादर निगोद वर्गणा से और सूक्ष्मनिगोद वर्गणा से एक जीव के प्रत्येकशरीर वालों में उत्पन्न होने पर ऊपर के द्रव्यों के भेद से प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणाकी उत्पत्ति क्यों नहीं कहते ?

समाधान - नहीं, क्योंकि ऊपर की वर्गणाओं के भेद का नाम ही विनाश है और बादरनिगोद वर्गणा तथा सूक्ष्मनिगोद वर्गणा में से एक वर्गणा नष्ट होती हुई प्रत्येक शरीरवर्गणा रूप से नहीं परिणमती, क्योंकि ऐसा होने पर प्रत्येक शरीर वर्गणायें अनन्त हो जाएगी। यदि कहा जाए कि असंख्यात लोकप्रमाण जीवों के द्वारा एक बादरनिगोद वर्गणा या सूक्ष्मनिगोदवर्गणा उत्पन्न होती है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस प्रकार उन वर्गणाओं के अनन्त होने का प्रसंभ आता है तथा अलग हुए एक जीव के बादर निगेदि वर्गणा के और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के अनन्तवें भाग प्रमाण द्रव्य का उस रूप से भेद भी नहीं बन सकता है। यदि कहा जाए कि महारक्तन्ध वर्गणा नष्ट होती हुई प्रत्येकशरीर वर्गणा रूप से परिणमन करती है सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि एक तो उसका सर्वकाल विनाश नहीं होता, दूसरे ऐसा मानने पर प्रत्येक शरीर वर्गणा के अनन्त होने का प्रसंभ आता है और तीसरे अचेतन का सचेतन रूप से परिणमन होने में विरोध है, इसलिए प्रत्येक शरीरवर्गणा उपरिम वर्गणाओं के भेद या संघात से नहीं उत्पन्न होती है यह सिद्ध हुआ, किन्तु स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से उत्पन्न होती है, क्योंकि प्रत्येक वर्गणा के अवांतर भेदरूप वर्गणाओं के समुदय समागम या असमागम से वर्गणा की उत्पत्ति देखी जाती है।

18. बादर निगोद वर्गणा की उत्पत्ति -

सत्थाणेण भेदसंघादेण (112) (ध. पु. 14, पृ. 130)

स्वरथान की अपेक्षा भेद - संघात से होती है। नीचे की वर्गणाओं के संघात से तो बादरनिगोद वर्गणा उत्पन्न होती नहीं, क्योंकि अचेतन वर्गणाओं के समुदयसमागम से सचेतन वर्गणाओं की उत्पत्ति होने में विरोध है। तथा असंख्यात लोकप्रमाण प्रत्येकशरीर वर्गणाओं के समुदयसमागम से अनन्तजीवर्गम् एक बादरनिगोदवर्गणा की उत्पत्ति होने में विरोध है। यह कहना उपरिम सचित्तवर्गणा के भेद से यह वर्गणा होती है, ठीक नहीं है, क्योंकि एक सूक्ष्मनिगोद वर्गणा के सब जीवों का युगपत् बादरनिगोदवर्गणा रूप परिणमन होने में विरोध है। तथा जो जीव सूक्ष्म निगोदों में से आकर बादरनिगोदों में उत्पन्न होते हैं उनके द्वारा आरम्भ की गई बादरनिगोदवर्गणा का अभाव है।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान - उपरिम वर्गणाओं के भेद से नहीं होती इस वचन से जाना जाता है।

महारक्तन्ध द्रव्यवर्गणा के भेद से बादरनिगोदवर्गणा नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि एक तो उसका विनाश नहीं होता। दूसरे अचित्त का सचित्त रूप से परिणमन होने में विरोध

है। इसलिए स्वरथान की अपेक्षा भेद संघात से ही बादर-निगोद वर्गणा होती है। सूक्ष्म निगोद में से या प्रत्येक शरीर में से आये हुए जीवों के द्वारा और बादरनिगोद जीवों के द्वारा एक-एक बादर निगोद वर्गणा निष्पन्न की जाती है यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शंका - अतः बादर निगोदों से सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोक्युणे हैं, अतः एक बादरनिगोद वर्गणा शुद्ध सूक्ष्म निगोद से आरम्भ होती है यदि ऐसा कहा जाय तो क्या दोष है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि, एक सूक्ष्म निगोदवर्गणा में स्थित जीवों के अनन्तत्वें भागमात्र जीवों का ही बादरनिगोदों में संचार देखा जाता है, अतः एक सूक्ष्मनिगोदवर्गणा एक बादरनिगोद वर्गणा का आरम्भ नहीं हो सकता।

(19) सूक्ष्म निगोद वर्गणा की उत्पत्ति -

सत्थाणेण भेदसंघादेण। (114) (ध. पु. 14 पृ. 132)

स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से होती है।

बादरनिगोद वर्गणाओं के संघात से एक सूक्ष्मनिगोदवर्गणा नहीं होती, क्योंकि एक सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में जितने जीव हैं उतने बादर निगोद जीवों के द्वारा आरम्भ की गई सूक्ष्मनिगोदवर्गणा का अभाव है।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान - नीचे की वर्गणाओं के संघात से नहीं होती, इस वचन से जाना जाता है।

अथवा बादरनिगोदों का सूक्ष्मनिगोद रूप से होने में विरोध हैं, इसलिए बादरनिगोद सूक्ष्मनिगोदवर्गणा का आरम्भ नहीं करते। जबकि सूक्ष्म बादर नहीं है और बादर सूक्ष्म नहीं है इसलिए सूक्ष्म निगोदों के द्वारा ही सूक्ष्मनिगोद द्रव्यवर्गणा आरम्भ की जाती है यह उक्त कथन का तात्पर्य है। बादर निगोद और प्रत्येक शरीर जीवों के मरकर सूक्ष्म निगोदों में उत्पन्न होने पर उनका बादर निगोदपना और प्रत्येक शरीरपना नहीं रहता, क्योंकि विरुद्ध परिणामों की युगपत् वृत्ति होने में विरोध है, यहाँ यह अर्थ प्रधान है। इसे प्रत्येक शरीर वर्गणा और बादरनिगोदवर्गणा में भी कहना चाहिए। महारकन्ध के भेद से भी सूक्ष्मनिगोदवर्गणा नहीं होती, क्योंकि पूर्वोक्त दोषों का प्रसंग आता है, किन्तु भेद-संघात से होती है। सूक्ष्मनिगोद के अवान्तर भेदरूप वर्गणाओं के भेद-संघात से सूक्ष्मनिगोद वर्गणा उत्पन्न होती है। यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

शंका - एक सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में एक विस्तरोपचय परमाणु के बढ़ने पर अन्य वर्गणा होती है, क्योंकि वहाँ एक परमाणु अधिक देखा जाता है। ऐसा नहीं मानने पर पहले कहे गये स्थानों का अभाव होता है, परन्तु ऐसा है नहीं इसलिए नीचे की स्थिति वाले द्रव्यों के समुदायसमागम से सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होनी चाहिए?

समाधान :- इस शंका का समाधान करते हैं - पर्यायार्थिक नय का यदि अवलम्बन

लिया जाय तो यह कहना युक्त है। फिर भी स्थानप्ररूपण में कोई दोष नहीं है क्योंकि वहाँ पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन लिया गया है इसलिए परमाणु की वृद्धि और हानि से वर्गणा में अन्यपना नहीं आता, किन्तु जीवों के समागम और भेद से सचित्तवर्गणा की उत्पत्ति होती है, इसलिए नीचे के द्रव्यों के समागम से सचित्तवर्गणायें नहीं उत्पन्न होती यह उक्त कथन का तात्पर्य है।

20. महारकन्ध वर्गणा की उत्पत्ति -

सत्थाणेण भेद संघादेण ॥ (116) ॥ (ध. पु. 14, पृ. 133)

स्वरथान की अपेक्षा भेद-संघात से होती है।

नीचे की वर्गणाओं के संघात से दूसरी महारकन्ध वर्गणा नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि वह सर्वत्र एक वर्गणारूप है। एक आदि परमाणु पुद्गलों के बढ़ने पर अन्य वर्गणा होती है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि, एक वर्गणा को छोड़कर वहाँ दूसरी वर्गणा नहीं पाई जाती, किन्तु वह भेद संघात से होती है, क्योंकि यहाँ पर पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन लिया गया है। यथा-महारकन्ध से एक आदि अनन्त परमाणु पुद्गलों के विलग होकर चले जाने पर भेद से अन्य महारकन्ध द्रव्यवर्गणा होती है। उसी में एक आदि अनन्त परमाणु पुद्गलों के आ जाने पर संघात से अन्य महारकन्ध द्रव्यवर्गणा होती है। तथा एक साथ उपचय और अपचय होने से भेद-संघात से महारकन्धद्रव्यवर्गणा होती है। इस प्रकार सर्वत्र तीन प्रकार से भेद-संघात की अर्थ प्ररूपणा करनी चाहिए। उपरिम वर्गणाओं के भेद से नीचे अपूर्व वर्गणा की उत्पत्ति भेद जनित की जाती है और नीचे की वर्गणाओं के समागम से सदृशधन रूप से अन्य वर्गणा की उत्पत्ति संघातज कही जाती है, परन्तु ये दोनों यहाँ पर नहीं हैं, क्योंकि यहाँ पर बहुत वर्गणाओं का अभाव है।

वर्गणा भागाभाग - (ध. पु. 14, पृष्ठ - 134)

शंका - सूत्रकार ने चौदह अनुयोगद्वारों में से दो अनुयोगद्वारों का कथन करके शेष वारह अनुयोगद्वारों का कथन किस लिए नहीं किया है। अजानकार होने से नहीं किया है यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि चौबीस अनुयोगद्वारारूप महारक्मप्रकृति प्राभृत के पासामी भगवान् भूतवलि को उनका अजानकार मानने में विरोध है। विरमरणशील होने से नहीं किया है यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अप्रमत्त का विरमरणशील होना सम्भव नहीं है।

समाधान - यह कोई दोष नहीं है क्योंकि पूर्व आचार्यों के व्याख्यान के क्रम का ज्ञान कराने के लिए शेष वारह अनुयोगद्वारों का कथन नहीं किया है।

शंका - अनुयोगद्वार वहीं पर उसके सकल अर्थ का कथन संक्षिप्त वचनकलाप के द्वारा किसलिए करते हैं?

समाधान - वचनयोग रूप आस्रव के द्वारा प्राप्त होने वाले कर्मों का निरोध करने

के लिए अनुयोगद्वार सकल अर्थ का संक्षित वचनकलाप के द्वारा कथन करते हैं।

इसलिए पूर्वोक्त दो अनुयोगद्वारों का कथन देशमर्षक है ऐसा जानकर शेष बारह अनुयोगद्वारों का कथन करते हैं। यथा—एकश्रेणीवर्गणा ध्रुवाधुवानुगम की अपेक्षा परमाणुपुद्गल द्रव्यवर्गणा क्या अध्रुव है? या क्या अध्रुव है? क्योंकि अतीत अनागत और वर्तमान काल में एकप्रदेशी परमाणुपुद्गल वर्गणा का विनाश नहीं होता।

शंका—ऐसा होने पर एक परमाणु का परमाणु रूप से सर्वदा अवस्थान प्राप्त होता है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि एक परमाणु के नष्ट होने पर भी तज्जातीय अन्य परमाणुओं के सम्भव होने से एकप्रदेशी वर्गणा के ध्रुव होने में कोई विरोध नहीं आता।

शंका—एक श्रेणीकी प्ररूपणा में नानाश्रेणिरूप परमाणुओं का ग्रहण कैसे करते हैं?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इसी परमाणु से एकश्रेणी का ग्रहण होता है ऐसा कोई नियम नहीं है।

द्विप्रदेशी वर्गणा से लेकर ध्रुवरकन्ध वर्गणा तक ये वर्गणायें क्या ध्रुव हैं या क्या अध्रुव है? यहाँ पहले के समान कथन करना चाहिए, क्योंकि ध्रुवत्व के प्रति कोई भेद नहीं है। जो सान्तरनिरन्तर वर्गणाएँ अशून्य रूप हैं वे अशून्य रूप से क्या ध्रुव हैं या क्या अध्रुव है? अध्रुव है, क्योंकि अशून्य रूप से उनका सदा काल अवस्थान नहीं रहता। सदृश धनवाले सब रक्तन्धों के विनष्ट होने पर वर्गणा का अभाव होता है तथा एक ही रक्तन्ध के रहने पर वर्गणा है ही ऐसा अर्थ यहाँ ग्रहण करना चाहिए। शून्य वर्गणाएँ शून्य रूप से क्या ध्रुव हैं या क्या अध्रुव है? अध्रुव है, क्योंकि शून्य का अर्थ है परमाणुओं से रहित वर्गणाएँ, किन्तु उनका शून्य रूप से सदा अवस्थान नहीं रहता। नीचे की वर्गणायें संघात से और ऊपर की वर्गणाएँ भेद से उस काल में शून्यवर्गणा को अशून्य रूप करती हैं यह उक्त कथन का तात्पर्य है। शून्य वर्गणाएँ और शून्य वर्गणाएँ भी वर्गणा देश की अपेक्षा ध्रुव हैं।

शंका—वर्गणा देश किसे कहते हैं?

समाधान—वर्गणाओं के सम्भव सामान्य को वर्गणा देश कहते हैं।

उस वर्गणा देश की अपेक्षा सब वर्गणाएँ सर्वदा है इसलिए ध्रुव है जो भव्यों के योग्य प्रत्येकशरीर वर्गणाएँ सयोगी और अयोगी जीवों के प्राप्त होती हैं वे शून्य रूप भी हैं और अशून्य रूप भी है क्योंकि सब जीवों से अनन्तगुणे सयोगी अयोगी प्रायोग्य प्रत्येक शरीर वर्गणास्थानों में से वर्तमान काल में संख्यात जीव ही उपलब्ध होते हैं। यह कहना कि संख्यात जीव वर्तमान काल में सब जीवों से अनन्तगुणे प्रत्येक शरीर वर्गण स्थानों को भर देंगे, ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होने में विरोध आता है। यहाँ जो वर्गणाएँ शून्य हैं, वे शून्य रूप से अध्रुव हैं, क्योंकि सर्वदा इस वर्गणा को शून्य रूप ही होनी चाहिए ऐसा कोई नियम

नहीं है। जो वर्गणाएँ अशून्यरूप हैं वे अशून्य रूप से अध्रुव हैं क्योंकि उन वर्गणाओं का एकरूप से अवस्थान नहीं रहता। अन्तिम वर्गणा को जगत्रेणी के असंख्यातवे भाग से अंगुल के असंख्यातवे भाग से पल्य के असंख्यातवे भाग से और जगप्रतर के असंख्यात भाग से गुणित करके और पल्य के असंख्यातवे भाग का भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिला देने पर सब वर्गणाओं का प्रमाण होता है। पुनः ध्रुवशून्य वर्गणा की वर्गणाशलाकाओं का भाग देने पर जो भाग लब्ध आवे उसका प्रमाण असंख्यात जगप्रतर होता है। इसका सब वर्गणाओं के प्रमाण में भाग देने पर ध्रुवशून्य वर्गणा प्रमाण होता है। इसलिए ध्रुवशून्यवर्गणाएँ सब वर्गणाओं के असंख्यातवे भाग प्रमाण हैं यह सिद्ध होता है। बादरनिगोद वर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवे भागप्रमाण है, क्योंकि बादरनिगोदवर्गणाओं का सब वर्गणाओं में भाग देने पर अंगुल के असंख्यातवे भाग से और पल्य के असंख्यातवे से गुणित साधिक जगप्रतर का असंख्यातावां भाग उपलब्ध होता है। बादर निगोद वर्गणा से आगे की ध्रुवशून्य वर्गणायें सब एकश्रेणीवर्गणाओं के कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यातवे भाग प्रमाण है, क्योंकि ध्रुवशून्य वर्गणाओं का सब वर्गणाओं में भाग देने पर पल्य के असंख्यातवे भाग से गुणित जगप्रतर का असंख्यातवाँ भाग उपलब्ध होता है। सूक्ष्मनिगोद वर्गणायें सब वर्गणाओं के प्रमाण में भाग देने पर जगप्रतर का असंख्यातवाँ भाग उपलब्ध होता है, सूक्ष्म निगोद वर्गणा से आगे की ध्रुवशून्य द्रव्य वर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भाग प्रमाण हैं? असंख्यतवैं भागप्रमाण है, क्योंकि सूक्ष्मनिगोदवर्गणाओं का सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण है? असंख्यातवे भागप्रमाण है, क्योंकि सूक्ष्मनिगोदवर्गणाओं का सब वर्गणाओं के प्रमाण में भाग देने पर पल्य के असंख्यातवे भाग से गुणित जगप्रतर का असंख्यातवाँ भाग उपलब्ध होता है। सूक्ष्मनिगोदवर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण है? असंख्यातवे भागप्रमाण है, क्योंकि सूक्ष्मनिगोदवर्गणाओं का सब वर्गणाओं के प्रमाण में भाग देने पर जगप्रतर का असंख्यातवाँ भाग उपलब्ध होता है। सूक्ष्मनिगोदवर्गणा से आगे की ध्रुवशून्यद्रव्यवर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण है? असंख्यातवे भागप्रमाण है क्योंकि शेष वर्गणाओं का सब वर्गणाओं के द्रव्य में भाग देने पर पल्य के असंख्यातवे भाग प्रमाण उपलब्ध होता है। महारकन्धद्रव्यवर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण है? असंख्यातवे भागप्रमाण है, क्योंकि महारकन्धद्रव्यवर्गणाओं का सब वर्गणाओं के प्रमाण भाग देनेपर पल्यका असंख्यातवाँ भाग उपलब्ध होता है अथवा चौथी ध्रुवशून्यवर्गणा की अन्तिम वर्गणा को पल्य के असंख्यातवे भाग से भाजित करने पर वहाँ एक खण्ड में जितने अंक उपलब्ध होते हैं उतनी महारकन्धएकश्रेणीवर्गणायें होती है ऐसा गुरु का उपदेश है।

नानाश्रेणीवर्गणाभागाभागानुगम की अपेक्षा महारकन्धनानाश्रेणीवर्गणायें नानाश्रेणी

सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण है क्योंकि महारक्न्धद्रव्यवर्गणा एक है। सूक्ष्मनिगोदनानाश्रेणीवर्गणायें सब नानाश्रेणीवर्गणाओं के कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण है, क्योंकि वर्तमान काल में असंख्यात लोकप्रमाण नानाश्रेणीसूक्ष्मनिगोदवर्गणाओं का नानाश्रेणी सब वर्गणाओं के प्रमाण में भाग देने पर अनन्त रूप उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार बादरनिगोदवर्गणाओं और प्रत्येक शरीरवर्गणाओं का भी कथन करना चाहिए, क्योंकि असंख्यात लोकप्रमाण वर्गणाओं के अस्तित्व की अपेक्षा इनमें पूर्व वर्गणाओं से कोई भेद नहीं है। सान्तरनिसन्तर नानाश्रेणीवर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण हैं? अनन्तवें भागप्रमाण है। इस प्रकार असंख्यातप्रदेशी वर्गणा के प्राप्त होने तक कथन करना चाहिए। असंख्यातप्रदेशी वर्गणायें सब वर्गणाओं के कितने भाग प्रमाण हैं। असंख्यात वहुभाग प्रमाण है। संख्यातप्रदेशी वर्गणायें और एकप्रदेशी वर्गणा सब वर्गणाओं के कितने भागप्रमाण हैं? असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि एकप्रदेशी वर्गणा के आयाम से द्विप्रदेशी वर्गण का आयाम विशेष हीन है। उसका प्रतिभाग क्या है? असंख्यात लोक उसका प्रतिभाग है। इस क्रम से भागहार के अर्धभाग तक जाकर द्विगुणी हानि होती है ऐसा गुरु का उपदेश है।

ध्रुवाध्वानुगम। (ध. पु. 14. पृ. 163)

एक श्रेणीवर्गणाअल्पवहुत्वानुगम की अपेक्षा परमाणुपुद्गलद्रव्यवर्गणा सबसे स्तोक है, क्योंकि उसका प्रमाण एक है? एक क्रम उससे संख्यातप्रदेशी द्रव्यवर्गणायें असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? एक क्रम उत्कृष्ट संख्यात गुणकार है। अपनी राशि के संख्यातवें भागप्रमाण अर्थात् असंख्यात लोक गुणकार है। प्रतिभाग क्या है? संख्यातप्रदेशी वर्गणायें प्रतिभाग है। उससे आहारद्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है? अपनी राशि का असंख्यातवां भाग गुणकार है। प्रतिभाग क्या है? असंख्यातप्रदेशी द्रव्यवर्गणायें प्रतिभाग है। अथवा गुणकार अभव्य से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण है। उससे तैजसशरीर द्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी है। गुणकार क्या है? अपनी राशिका अनन्तवां भाग गुणकार है। उसका प्रतिभाग क्या है? आहार द्रव्यवर्गणायें प्रतिभाग है। उससे भाषाद्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी है। उससे मनोद्रव्य वर्गणायें अनन्तगुणी है। उससे कार्मणद्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी है। सर्वत्र अपनी-अपनी पिछली एकश्रेणिद्रव्यवर्गणाओं का आगे की एकश्रेणी सब वर्गणाओं में भाग देने पर गुणकारराशि उत्पन्न होती है। असंख्यातप्रदेशी द्रव्यवर्गणा के आगे और आहारशरीरद्रव्यवर्गणा के पूर्व अनन्तप्रदेशी द्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी हैं, क्योंकि आगे स्थापित किये गये चार गुणकारों से पूर्व स्थापित किया गया अनन्तगुणा भागहार आहारवर्गणा से पूर्व अग्रहणद्रव्यवर्गणा के आयाम के उत्पन्न करने के लिए जघन्य परितानन्त के स्थापित किये गये गुणकार से अनन्तगुणा हीन उपलब्ध

होता है।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान - गुरु के उपदेश से जाना जाता है।

तैजस शरीर से पूर्व और आहारद्रव्यवर्गणा के आगे दूसरी अग्रहणद्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी हैं। तैजस शरीर से आगे और भाषावर्गणा के पूर्व तीसरी अग्रहणद्रव्यवर्गणा की सब एकश्रेणी वर्गणायें अनन्तगुणी हैं। भाषावर्गणा से आगे और मनोवर्गणा से पूर्व चौथी अग्रहणद्रव्यवर्गणा की सब एक श्रेणीवर्गणायें अनन्त गुणी हैं। मनोवर्गणा के आगे और कार्मणवर्गणा के पूर्व पाँचवीं अग्रहणद्रव्यवर्गणा की सब एकश्रेणीद्रव्यवर्गणायें अनन्तगुणी हैं। गुणकार सर्वत्र अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण हैं। पुनः ध्रुवरक्न्धद्रव्यवर्गणा की सब एकश्रेणीवर्गणायें अनन्तगुणी हैं। गुणकार क्या है? सब जीवों से अनन्तगुणा गुणकार है। उसका प्रतिभाग क्या है, पाँचवीं अग्रहणवर्गणायें प्रतिभाग है। अचित्तअध्रुवरक्न्धद्रव्यवर्गणा की सब एकश्रेणीवर्गणायें अनन्तगुणी हैं। गुणकार क्या है? सब जीवों से अनन्तगुणा गुणकार है। सान्तर-निरन्तरवर्गणा के आगे और प्रत्येकशरीरवर्गणा के पूर्व प्रथम ध्रुवशून्यवर्गणा की सब एकश्रेणीकाआकशप्रदेशवर्गणायें अनन्तगुणी हैं। गुणकार क्या है? सब जीवों से अनन्तगुणा गुणकार है। प्रत्येक शरीरवर्गणा की सब एकश्रेणीवर्गणायें असंख्यातगुणी हैं। गुणकार क्या है? पल्य का असंख्यतवां भाग गुणकार है। उसका प्रतिभाग क्या है? प्रथम ध्रुवशून्यवर्गणायें प्रतिभाग है। प्रत्येकशरीरवर्गणा के आगे और बादरनिगोदवर्गणा के पूर्व दूसरी ध्रुवशून्यवर्गणा की सब एकश्रेणीआकाशप्रदेशवर्गणायें अनन्तगुणी हैं। गुणकार क्या है? अनन्त लोक गुणकार है। यथा-एक बादर अस्तिकायिक पर्याप्त जीव को स्थापित कर पुनः इसके अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण औदारिशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर के परमाणुओं को सब जीवों से अनन्तगुणे अपने-अपने विस्रोपचयों से गुणित कर और एकत्र कर गुणकार रूप से स्थापित करने पर एक जीव का द्रव्यप्रमाण होता है। पुनः इसका पल्य के असंख्यातवे भागप्रमाण गुणकार स्थापित करने पर उत्कृष्टप्रत्येकशरीरवर्गणा होती है। पुनः एक बादरनिगोद जीव को स्थापित कर इसके पार्श्व में अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भागप्रमाण औदारिकशरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर परमाणुओं को सब जीवों से अनन्तगुणे अपने विस्रोपचयों से गुणित कर और एकत्र कर गुणकार रूप से स्थापित करने पर एक जीव का द्रव्य होता है। पुनः इस प्रकार बादरनिगोद जीव एक निगोद शरीर में सब जीव राशि के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ऐसा समझ कर असंख्यात लोक से भाजित सब जीवराशि से पहले के एक जीवद्रव्य के गुणित करने पर एक निगोदशरीर का द्रव्य होता है। पुनः उसे असंख्यात लोकप्रमाण एक बादरनिगोद वर्गणा

शरीरों से गुणित करने पर एक पुलवि का द्रव्य होता है। पुनः आवली के असंख्यातवे भागप्रमाण पुलविशलाकाओं से गुणित करने पर सबसे जघन्य बादरनिगोदवर्गणा होती है। पुनः इसमें से एक अंक के कम कर देने पर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा का प्रमाण होता है। पुनः इसमें उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा का भाग देने पर कर्म और नोकर्म के विस्त्रोपचय सहित उपरिम पुदगल पुञ्ज में से अधरस्तन पुदगलपुञ्ज सदृश है इसलिए निकालकर उपरिम आवली के असंख्यातवे भाग से गुणित असंख्यात लोकों से अधरस्तन असंख्यात लोकों के भाजित करने पर असंख्यात लोक लब्ध आते हैं। पुनः इन असंख्यात लोकों को पहले के पल्यके असंख्यातवे भाग से गुणित कर इनका सब जीवराशि में भाग देने पर अनन्त लोक आते हैं। पुनः इनसे सर्वोत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा के गुणित करने पर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यरूप से अधरस्तन सब ध्रुवशून्य वर्गणायें होती हैं।

यहाँ पर कितने ही आचार्य उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गण से उपरिमध्यवृत्त्वन्यएकश्रेणी असंख्यातगुणी है और गुणकार भी घनावली के असंख्यातवें भागप्रमाण है ऐसा कहते हैं, परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि संख्यात या असंख्यात जीवों से जघन्य बादरनिगोद वर्गण की उत्पत्ति नहीं हो सकती। आवली के असंख्यात वे भागप्रमाण पुलवियों के बिना जघन्य बादरनिगोदवर्गण नहीं उत्पन्न होती है, क्योंकि “बादरणिगोदवर्गणाएं जहाण्णियाए आवलियाए असंख्येज्जादिभागमेत्ता णिगोदाण” ऐसा सूत्र का निदेश है। एक-एक पुलवी में शरीरों के प्रमाण असंख्यात लोक है। एक-एक शरीर में अनन्तनानंत कर्म-नाकर्मपुद्गलभार से युक्त अनन्त निगोद जीव है, क्योंकि आत्मा का प्रत्येक देश अनन्त कर्मपरमाणओं से बद्ध है ऐसा वचन है इसलिए अनन्त लोक गुणकार है यह वचन ही ग्रहण करना चाहिए।

शंका - उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा के विस्त्रसोपचय का गुणकार चूकि अनन्त है और जघन्य वादरनिगोदवर्गणा विस्त्रसोपचय से जघन्य है, अतः गुणकार पल्य के असंख्यात्मेभागप्रमाण है यह घटित हो जाता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि इस प्रकार जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा से उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा के अनन्तगुणे प्राप्त होने का प्रसंग आता है, परन्तु ऐसा है नहीं क्योंकि गुणकार पल्य के असंख्यातवे भागप्रमाण ही हैं ऐसा गरु के उपर्युक्त से जाना जाता है।

शंका - जघन्य से उत्कृष्ट, विच्छसोपचय के प्राप्त होने में गुणकार पल्य के असंख्यातवे भागप्रमाण है यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान - पुर्वोक्त विस्तरोपचय अल्पबहुत्व से जाना जाता है। यथा-आदारिकशरीर के सब प्रदेशपिण्ड में जघन्य, विस्तरोपचय सबसे थोड़ा है। उससे उसी का उत्कृष्ट विस्तरोपचय असंख्यात-गुणी है। गुणकार क्या है? पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार है। उससे वैक्रियिकशरीर के सब प्रदेशपिण्ड में सबसे जघन्य विस्तरोपचय

असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? जगत्रेणी का असंख्यातवां भाग गुणकार है, उससे उसीका उत्कृष्ट विस्तोरपचय असंख्यात गुणा है, गुणकार क्या है?

पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार है। उससे वैक्रियिकशरीर के सब प्रदेशपिण्ड में सबसे जघन्य विस्त्रसोपचय असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। उससे उसी का उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? पल्यका असंख्यातवां भाग गुणकार है। उससे आहारकशरीर का सब प्रदेशपिण्ड में जघन्य विस्त्रसोपचय असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? जगश्रेणीका असंख्यातवा भाग गुणाकार है। उससे उसी का उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार है। उससे तैजसशरीर का सब प्रदेशपिण्ड में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवां भाग प्रमाण गुणकार है। उससे उसी की उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? पल्य के असंख्यातवे भागप्रमाण गुणकार है। उससे कार्मणशरीरका सब प्रदेशपिण्ड में जघन्य विस्त्रसोपचय अनन्तगुणा है। गुणकार क्या है? अभव्यों से अनन्तगुणा और सिद्धों के अनन्तवे भागप्रमाण गुणकार है। उससे उसी का उत्कृष्ट विस्त्रसोपचय असंख्यातगुणा है। गुणकार क्या है? पल्य के असंख्यातवे भागप्रमाण गुणकार है।

वादर निगोद्वर्गणा की सब एकश्रेणीवर्गणायें असंख्यातगुणी है। गुणकार क्या है? जगश्रेणी के असंख्यातवे भागप्रमाण गुणकार है।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान - “वादरनिगोदवगणाए उक्करिस्याए सेडिए असंख्येज्जदिभागमित्तो
णिगोदाण” इस चूलिका सूत्र से जाना जाता है। किन्तु ही आचार्य असंख्यात प्रतारावलिप्रमाण
गुणकार है ऐसा कहते हैं, परन्तु वह घटित नहीं होता, क्योंकि चूलिकासूत्र के साथ विरोध
आता है। यद्यपि विस्ससोपचयगुणकार की अपेक्षा गुणकार पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण
है, परन्तु यह प्रधान नहीं है, क्योंकि जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियों के गुणकार
की प्रधानता उपलब्ध होती है।

वादरनिगोदवर्गणाओं से आगे और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के पूर्व तीसरी ध्रुवशून्यवर्गणा की सब एकश्रेणीआकाशप्रदेश वर्गणायें असंख्यातमुणी है। गुणकार क्या है? अंगुल के असंख्यातवे भागप्रमाण गुणकार है, क्योंकि उत्कृष्ट वादरनिगोदवर्गणा के जीवों से जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के जीवों का गुणकार अंगुल के असंख्यातवे भागप्रमाण पाया जाता है।

यह सम्भव की अपेक्षा कहा है, परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा कथन करने पर सयोगी और अयोगीप्रायोग्य प्रत्येकशरीर वर्णणस्थानों में से अनन्त वर्णणायें शन्यरूप से अवस्थित

होनी चाहिए, क्योंकि तीनों ही कालों में सयोगी और अयोगी जीवों के द्वारा नहीं छुये गये अनन्त स्थान सम्भव है। तथा अभ्यों के योग्य जो प्रत्येकशरीरवर्गणायें शून्यरूप है वे शून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि शून्यरूप वर्गणाओं का भी उपरिम और अधस्तन वर्गणाओं के भेद-संघात के बाद में अशून्य रूप से अभाव पाया जाता है। यह भी सम्भव की अपेक्षा कहा है, परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा देखने पर शून्य वर्गणायें शून्यरूप से अवस्थित हैं, क्योंकि पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, देव, नारकी, सयोगी और अयोगी इन असंख्यात लोकप्रमाण सब जीवों के द्वारा अनन्तगुणे प्रत्येकशरीरवर्गणारथानों का व्याप्त करना सम्भव नहीं है। अशून्य वर्गणायें अशून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि प्रत्येकशरीरवर्गणाद्रव्यों का वृद्धि और हानि के बिना सर्वदा अवस्थान नहीं पाया जाता है। परन्तु वर्गणादेश की अपेक्षा सब प्रत्येक शरीर वर्गणायें ध्रुव हैं, क्योंकि सान्तरनिरन्तर वर्गणाओं के समान सब प्रत्येकशरीर वर्गण रथानों का किसी भी काल में शून्यपना नहीं पाया जाता।

वादरनिगोदवर्गणायें जो कि भव्यों के योग्य क्षीणकषाय गुणरथान में उपलब्ध होती हैं वे शून्यरूप होकर शून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि शून्य वर्गणाओं का शून्यरूप से सदा अवस्थान नहीं पाया जाता। यह सम्भव की अपेक्षा कहा है, परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा कथन करने पर शून्य वर्गणायें शून्यरूप से ध्रुव हैं, क्योंकि संख्यात क्षीणकषाय जीवों का सब जीवों से अनन्तगुणे खीणकषायप्रायोग्य वादरनिगोदरथानों में तीनों ही कालों में वृत्ति मानने में विरोध आता है तथा शून्य वर्गणायें शून्यरूप से अध्रुव भी है, क्योंकि कोई भी शून्य रथान किसी भी समय अशून्यरूप होकर उपलब्ध होते हैं। अशून्य वर्गणायें अशून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि क्षीणकषाय प्रायोग्य वादरनिगोदवर्गणाओं का सर्वदा अवस्थान नहीं पाया जाता। यदि उनका अवस्थान होता है तो किसी भी जीव को मोक्ष नहीं हो सकता है, क्योंकि क्षीणकषाय में वादरनिगोदवर्गणा के रहते हुए केवल ज्ञान की उत्पत्ति होने में विरोध है। अभ्यों के योग्य जो शून्य वर्गणायें हैं वे शून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि शून्य वर्गणाओं का भी उपरिम और अधस्तन वर्गणाओं के भेद-संघात से कालान्तर में अशून्यपना पाया जाता है। यह सम्भव की अपेक्षा कहा है, परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा कथन करने पर शून्य वर्गणायें ध्रुव भी हैं, क्योंकि असंख्यात लोकप्रमाण वादरनिगोदवर्गणाओं के सब जीवों से अनन्तगुणे सेंचीयरथानों में अतीत दग्लमें भी वृत्ति होने में विरोध है। खुलासा इस प्रकार है - एक अतीत समय में यदि असंख्यात लोकप्रमाण वादरनिगोदरथान पाये जाते हैं तो सब अतीत काल में कितने प्राप्त होंगे इस प्रकार फल से गुणित इच्छा को प्रमाण से भाजित करने पर अतीत काल से असंख्यात लोकगुण वादर निगोदवर्गणाओं में अशून्यरथान प्राप्त होते हैं। अन्य सब स्थान शून्य ही हैं। इसलिए शून्य वर्गणायें शून्यरूप

रो ध्रुव हैं।

शंका - विग्रहगति में विद्यमान वादरनिगोद जीव क्या वादरनिगोदवर्गणाओं में गर्भित है या प्रत्येकशरीरवर्गणाओं में गर्भित है? प्रत्येकशरीरवर्गणाओं में तो गर्भित हो नहीं सकते, क्योंकि एक तो निगोद जीवों को प्रत्येक शरीर जीव होने में विरोध है दूसरे प्रत्येक शरीरवर्गणाएँ असंख्यात लोकमात्र प्रमाण को छोड़कर अनन्त हो जायेगी। इसलिए वादर निगोदवर्गणा वर्तमान काल में अनन्त होनी चाहिए?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि विग्रहगति में भी एक बन्धन में वैधे हुए अनन्तानंत वादरनिगोद जीवों की एक वादरनिगोदवर्गणा बन जाती है। इसलिए वर्तमान काल में वादरनिगोदवर्गणाएँ असंख्यात लोकप्रमाण ही होती हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

शून्य वर्गणाएँ शून्यरूप से अध्रुव भी है, क्योंकि उपरिम और अधस्तन वर्गणाओं के भेद-संघात से शून्य वर्गणाएँ भी कालान्तर में अशून्यरूप होकर उपलब्ध होती हैं। अशून्य वर्गणाएँ अशून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि, वर्गणाओं का एक रूप से सदा अवस्थान नहीं पाया जाता, वर्गणादेश की अपेक्षा तो सब वर्गणाएँ ध्रुव हैं, क्योंकि अनन्तानन्त वर्गणाएँ सर्वदा उपलब्ध होती हैं।

सूक्ष्मनिगोदवर्गणाएँ शून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि, शून्य वर्गणाओं का सर्वदा शून्यरूप से ही रहना चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है। यह सम्भव की अपेक्षा कहा है। परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा कथन करने पर शून्य वर्गणाएँ शून्यरूप से ध्रुव भी हैं, क्योंकि वर्तमान काल में असंख्यात लोकप्रमाण सूक्ष्म निगोदवर्गणाओं के द्वारा पूरे अतीत काल में भी सब जीवों से अनन्तगुणे रथानों का पूरा करना सम्भव नहीं है। कारण वादरनिगोद जीवों के समान कहना चाहिए। वे अध्रुव भी हैं, क्योंकि उपरिम और अधस्तन वर्गणाओं के भेद-संघात से शून्य वर्गणाएँ भी कालान्तर में अशून्यरूप होकर उपलब्ध होती हैं। अशून्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणाएँ अशून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि सूक्ष्मनिगोद वर्गणाओं का अवस्थित रूप से अवस्थान नहीं पाया जाता।

शून्यरूप महारकन्धद्रव्यवर्गणायें शून्यरूप से अध्रुव हैं, क्योंकि, शून्य वर्गणाओं को शून्यरूप से ही रहना चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है। यह सम्भव की अपेक्षा निर्देश दिया है परन्तु व्यक्ति की अपेक्षा कथन करने पर शून्य वर्गणायें ध्रुव भी हैं, क्योंकि, अतीतकाल के प्रत्येक समय में एक-एक महारकन्धरथान के उत्पन्न होने पर भी जब अतीत काल में अतीत कालमात्र ही अशून्यरथान प्राप्त होकर शेष सब जीवों से अनन्तगुणे महारकन्ध रथायरथान होते हैं, क्योंकि, उनका शून्यरूप से अवस्थान पाया जाता है। वे अध्रुव भी हैं, क्योंकि भेद-संघात के द्वारा किसी भी काल में शून्य वर्गणायें भी अशून्यरूप होकर उपलब्ध होती हैं। अशून्य वर्गणा में अशून्यरूप से अध्रुव है, क्योंकि महारकन्ध वर्गणाओं का सर्वदा

एक रूप से अवरस्थान नहीं पाया जाता। इसी प्रकार नाना श्रेणिध्रुवाध्रुवानुगम का भी कथन करना चाहिए, क्योंकि, इससे उसमें कोई विशेषता नहीं है।

वर्णण - के जघन्य से उत्कृष्ट प्राप्त करने के उपाय

परमाणुवग्गणम्मि णा अवरुक्कस्सं च सेसगे अतिथ ।

गेज्ज महक्खंधाणं परमहियं सेसगं गुणियं ॥ (596)

सिद्धाण्ठिमभागो पडिभागो गेज्जगाण जेड्डठं ।

पल्लसंखेज्जदियं अंतिमखंधस्सजेट्ठठं ॥(597)

संखेज्जासंखेज्जे गुणागारो सो दु होदे हु अणंते ।

चत्तारि अगेज्जेसु वि सिद्धाण्ठमण्ठिमो भागो ॥(598)

जीववादोणं तगुणो ध्रुवादितिणं असंख्यभागो दु ।

पल्लस्स तदो तत्तो असंख्यलोगवहिदो मिच्छो ॥ (599)

सेढी सूई पल्ला जगपदरा संख्यभागगुणगारा ।

अप्पप्पणअवरादो उक्कस्से हाँति णियमेण ॥(600)

(गो. सा. जीवकाण्ड. पृ. 668)

परमाणु वर्णण में जघन्य व उत्कृष्ट का भेद नहीं है। शेष वर्णणाओं में जघन्य व उत्कृष्ट का भेद है। ग्रहणवर्णणाओं में उत्कृष्ट प्राप्त करने के लिए सिद्धों का अनन्तवां भाग प्रतिभाग है। अन्तिम महारक्कन्ध में उत्कृष्ट प्राप्त करने के लिए पल्य का असंख्यातवाँ भाग प्रतिभाग है। संख्यात परमाणु द्रव्यवर्णण में संख्यात गुणाकार है और असंख्यातप्रदेशी परमाणु द्रव्यवर्णण के गुणाकार असंख्यात है। अनन्त परमाणु द्रव्यवर्णण में और चार अग्रहण वर्णणाओं में सिद्धों का अनन्तवाँ भाग (अथवा अभव्यों से अनन्तगुणा) गुणाकार है। ध्रुव आदि तीन वर्णणाओं में गुणाकार जीवराशि से अनन्तगुणा है। उससे आगे की वर्णण में गुणाकार पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। उससे आगे की वर्णण में गुणाकार असंख्यात लोक से भाजित मिथ्यादृष्टि जीवराशि है। उससे आगे गुणाकार क्रम से श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग, सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग, पल्य का असंख्यातवाँ भाग और जगत्पतर का असंख्यातवाँ भाग है। जघन्य को गुणाकार से गुणा करने पर अपना-अपना उत्कृष्ट प्राप्त हो जाता है।

There is no minimum and maximum in the atom molecules (Parmanu-Vargana), but they are in the rest. In the (5) receivable (i.e. assimilation Ahara; electric-Taijasa; speech, Bhasha; mind (Mana;) and karmana molecules) and in the great molecule Maha-skandha, the maximum (is got) by adding (the proper quotient to the minimum). In the others, (it is got) by multiplication. (596)

For the maximum of the receivable (5 molecules) the divisor is an infinite part of (the total number of) liberated souls, and for the maximum of the last Great molecule (it is) an innumerable part of a Palya. (597)

In the numerable-(atom molecules) and in the innumerable - (atom molecules), the multiplier is (its maximum divided by its minimum), and that for the infiniteatom molecules and the 4 unreceivable molecules is the infinite part of the liberated souls. (598)

(The multiplier) for the three fixed (Dhruva, inter-non-inter Santara, Nirantara and indifferent Shunya molecules, (is) the infinite times (the total number of) the souls, and for the next (i.e. individual-body molecule Pratyek-sharira varganais) an innumerable part of a Palya, and then (for they fixed-indifferent molecule Dhruva shunya vargana) is (the number of) wrong (believing souls) divided by innumerable into innumerable spatial units of the universe. (599)

An innumerable part of the base line of universe (If agat-Shreni), linear finger (Suchiangula), Palya, and basic area of universe (Jagat Pratara) necessarily become multiplier of the minimum to (produce) the maximum (respectively of Gross common, Vadara Nigoda; indifferent, Shunya; finecommon, Suksma Nigoda; and sphere Nabho, molecules). (600)

नीचे की उत्कृष्ट वर्णण से ऊपर की जघन्य वर्णण के अन्तर :-

हेड्डिमउक्कस्सं पुण रुवहियं उवरिमं जहणं खु ।

इदि तेवीसवियप्पा पुग्गलदव्वा हु जिणदिङ्गा ॥ (601)

(गोम्मट सार जीवकाण्ड, पृ. 669)

पुद्गल द्रव्य की तेइस वर्णणाओं में अपने से नीचे की उत्कृष्ट वर्णण में एक अंक मिलाने से ऊपर की जघन्य वर्णण का प्रमाण होता है। ऐसा जिन (शुतकेवली) ने कहा है।

(From the second to the 23rd molecule) each is one more than the maximum of the one immediately preceding it. Thus matter substances with their 23 kinds have been described by the conqueror (Jina).

पुद्गल के छह भेद

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविषयकम्मपरमाणु ।

छविहभेयं भणियं पोगलवं जिणवरेहि ॥(602)

बादरबादर बादर बादरसुहमं च सुहमथूलं च ।

सुहमं चं सुहमसुहमं च धरादियं होदि छब्भेयं ॥(603)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 669)

1. पृथिवी, जल, 3. छाया, 4. चार इन्द्रियों का विषय, 5. कार्मणवर्गणा और, 6. परमाणु, श्री जिनेन्द्र ने पुद्गलद्रव्य के ये छह भेद कहे हैं ।

1. बादरबादर, 2. बादर, 3. बादर सूक्ष्म, 4. सूक्ष्मबादर, 5. सूक्ष्म, 6. सूक्ष्मसूक्ष्म, ये पृथिवी जल आदि की संज्ञा है ।

Earth, water, shade, objects of the four senses (touch, taste, smell and hearing), karmic matter, and an atom, (are examples of) the six divisions of matter substance as described by the conquerors.

(602)

Gross-gross (Vadara Vadara), Gross (Vadara), Gross-fine (Vadara sukhma), fine-gross Sukshma-Vadara, fine (Sukshma). and fine-fine (Sukshma-Sukshma) are the six kinds, of which) earth, etc., (in the last Gatha are examples). (603)

अन्य प्रकार के पुद्गल के भेद

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्वं भणंति देसोत्ति ।

अद्वं च पदेसो अविभागी चेव परमाणु ॥ (604)

(गो. सा. जीवकाण्ड. पृ. 670)

सकल व समरत पुद्गलद्रव्य स्कन्ध है, उस स्कन्ध का आधा देश है। स्कन्ध के आधे का आधा प्रदेश, परमाणु अविभागी है ।

(They) describe the molecule (Skandha as) complete all round (Sakala Samartha); its half as Dasha; half of its half as Pradesha; and (that which is) indivisible, as an atom (Parmanu). (604)

छहों द्रव्यों का कार्य अर्थात् उपकार

गदिटाणोग्नहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्मतियं ।

वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ॥(605)

अण्णोण्णवयारेण य जीवा वट्टंति पुगलाणि पुणो ।

देहादीणिवत्तणकारणभूदा हु णियमेण ॥(606)

आहारवग्नाणादो तिणि सरीराणि होंति उर्सासो ।

णिरसासोवि य तेजोवग्नाणखंधादु तेजगं ॥(607)

भासमणवग्नाणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो ।

अद्विहकम्मदवं होदित्ति जिणेहि णिद्विद्विं ॥(608)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 671)

धर्मादि तीन द्रव्य गति, स्थिति और अवगाह इन क्रियाओं के साधनभूत होते हैं। वर्तना क्रिया का साधनभूत नियम से काल द्रव्य है। जीव परस्पर एक दुसरे का उपकार करते हैं और पुद्गल द्रव्य नियम से शरीर आदि की रचना का कारणभूत है। आहार वर्गणा से तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास बनते हैं। तेजोवर्गणा रूप स्कन्ध से तैजस शरीर बनता है। भाषावर्गणा से वचन व मनोवर्गणा से द्रव्य मन की रचना होती है और कार्मण वर्गणाओं से आठ प्रकार के कर्म वंधते हैं, इस प्रकार जिन (श्रुतकेवली के द्वारा कहा गया है ।)

The auxiliary causes of the activity of motion and rest, and of occupying space are certainly the three media of motion, (Dharma), rest, Adharma, and space Akasha) and the auxiliary cause of the activity of alteration (Vartana) is necessarily time. (605)

(Mundane) souls undergo alteration as they affect each other. And matters (are necessarily the auxiliary) causes in the making of body, etc. (And matters, also affect each other.) (606)

By assimilative molecules (Ahara Vargana), the three (physical, fluid and assimilative or Aharak) bodies are (made), and also inhalation (and exhalation are caused.) And by the molecules of electric matter. the electric body (is formed). (607)

By the speech and Mind molecules respectively (are formed speech and Mind. And of Karmic (molecules) eight kinds of karmic matter are made. It has been said by the conquerors. (608)

अविभागी पुद्गल परमाणु के बन्ध के कारण

णिद्वतं लुक्खतं बंधस्स य कारणं तु एयादी ।

संखेज्जाऽसंख्जाणंतविहा णिद्वलुक्खगुणा ॥(609)

(गो. सा. जीवकाण्ड. पृ. 854)

वाह्य और अभ्यन्तर कारण के वशसे स्नेह पर्याय के प्रकट होने से स्नेहपन होना रिन्ध है। उसके भाव कों रिन्धता कहते हैं जिसका अर्थ चिक्कणता है। रुखापनसे रुक्ष है। उसका भाव रुक्षता है। उसका अर्थ चिक्कणतासे विपरीत होना है। जल तथा वकरी, गाय, भैंस, ऊटनी के दूध, घी आदि में रिन्धता व धूलि, रेत, वजरी आदि में रुक्षता हीनाधिक रुप से देखी जाती है। इसी तरह परमाणुओं में भी होती है। वह रिन्धता और रुक्षता द्व-यणुक

आदि पर्याप्त परिणमनरूप बन्धका और 'च' शब्द से बन्धके भेदनका कारण है। स्निग्धगुणरूप परिणत दो परमाणु के रुक्षगुणरूप परिणत दो परमाणु के और एक स्निग्ध तथा एक रुक्षगुणरूप परिणत परमाणु के परस्पर में मिलने रूप बन्ध के होने पर द्वयानुक स्कन्ध बनता है। इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी जानना। उनमें से रनेहगुण एक, दो, तीन, चार, संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रकार का होता है। इसी तरह रुक्षगुण भी होता है।

Smoothness and roughness (are) the causes of union (of atoms into molecules). The degrees (Guna or (Avibhaga Pratichheda) of smoothness and roughness (in matter are) of many kinds, from one to numerable, innumerable and infinite. (609)

एयगुणं तु जहणं णिद्वत्तं विगुणतिगुणसंखेज्जाऽ - ।

संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ॥(610)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 856)

स्निग्ध गुणकी पंक्ति में एक गुण स्निग्धताको जघन्य कहते हैं। उससे लेकर दो गुण, तीन गुण, संख्यात गुण, असंख्यात गुण और अनन्त गुण रूप स्निग्ध गुण होता है। इसी प्रकार रुक्षगुण भी जानना।

The minimum of smoothness (is) one degree (Guna Avibhaga Pratichheda) and (for the rest, we have) 2 degrees, 3 degrees, numberable, innumberable and infinite degrees, same of the quality of roughness. (610)

एवं गुणसंजुता परमाणु आदिवग्णम्हि ठिया ।

जोगदुगाणं बंधे दोषं बंधो हवे णियमा ॥(611)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 856)

इस प्रकार के स्निग्ध और रुक्षगुणों से संयुक्त परमाणु अणुवर्गाना में विद्यमान है। उनमें से योग्य दो परमाणुओं के बन्धस्थान प्राप्त होने पर उन्हीं दो का बन्ध होता है।

Thus atomes having (different) degrees (of smoothness and roughness) are found (only) in the first, Atom molecule (Anu-Vargaa). By the union, of two suitable (atoms), necessarily the fusion of two atoms (into one molecule) takes place. (611)

णिद्वणिद्वा ण बंज्जंति रुक्खरुक्खा यपोगला ।

णिद्वलुक्खा य बज्जंति रुवारुवी य पोगला ॥(612)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 856)

स्निग्ध और रुक्ष गुण के निमित्त से सर्वत्र बन्ध का प्रसंग प्राप्त होने पर अनिष्टगुणवालों के बन्ध का निषेध करते हुए बन्ध का विधान करते हैं कि स्निग्धगुण युक्त पुद्गलों के साथ स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलों का बन्ध नहीं होता। तथा रुक्ष गुण युक्त पुद्गलों के साथ रुक्ष गुण युक्त पुद्गलों का बन्ध नहीं होता। यह कथन सामान्य है। विशेष विधि कहेंगे। स्निग्ध गुण युक्त पुद्गलों के साथ रुक्षगुण युक्त पुद्गल बँधते हैं और उन पुद्गलों का नाम रुपी और अरुपी है।

Smooth with smooth and rough with rough do not unite (always). The smooth and rough atoms unite (i.e. where there is the difference of 2 degrees in the smooth and rough uniting atoms). The atoms are similar in degree (Rupi) and dissimilar (Arupi).

णिद्विदरोलीमज्जे विसरिसजादिस्स समगुणं एकं ।

रुवित्त होदि सण्णा सेसाणं ता अरुवित्त ॥(613)

(गो. सा. जीवकाण्ड पृ. 657)

स्निग्धगुण और रुक्षगुणों की पक्तियों के मध्य में विजाति के समानगुणवाले एक परमाणु को रुपी नाम से कहते हैं। शेष सब की अरुपी संज्ञा है।

Among the series of smooth and rough (atoms), an atom with equal degrees of smoothness and roughness is named Rupi, and the rest are Arupi.

दोगुणणिदाणुस्स य दोगुणलुक्खाणणुं हवे रुवी ।

इगतिगुणादि अरुवी रुक्खस्स वितं व इति जाणे ॥(614)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 857)

जिसका दुसरा गुण है या जिसमें दो गुण है उसे द्विगुण कहते हैं। उस दो गुण स्निग्धवाले परमाणु का दो गुण रुक्षवाला परमाणु रुपी कहलाता है। शेष एक, तीन आदि रुक्ष गुणवाले सब परमाणु अरुपी नामवाले होते हैं। इसी प्रकार दो गुण रुक्षवाले परमाणु का दो गुण स्निग्धवाला परमाणु रुपी है। शेष एक, तीन आदि गुणवाले सब स्निग्ध परमाणु अरुपी जानना।

From the point of view of atom with two degrees of smoothness, an atom with two degrees of roughness is (similar) Rapi and (an atom with) one, three and other degrees (dissimilar) Arupik now the same of rough also. (614)

णिद्वस्स णिद्वेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण
णिद्वस्स रुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा (615)

(गो. सा. जीवकाण्ड. पृ. 858)

स्निग्ध परमाणु का दो गुण अधिक स्निग्ध परमाणु के साथ बन्ध होता है। उसी प्रकार रुक्ष परमाणु का दो गुण अधिक रुक्ष परमाणु के साथ बन्ध होता है। स्निग्ध परमाणु का दो गुण अधिक रुक्ष परमाणु के साथ बन्ध होता है। उन स्निग्ध गुणवाले और रुक्ष गुणवाले परमाणुओं में जघन्य एक गुणवाले परमाणु को छोड़कर शेष समस्तिनिग्ध धारा और सम रुक्ष धारा में तथा विषम स्निग्ध धारा में अपने-अपने से अन्तरवर्ती दो अधिक स्निग्ध और रुक्ष गुणवाले परमाणुओं का बन्ध होता है। यहाँ इतना विशेष जानना कि सदृश गुणवाले रुपी का सदृश गुणवाले रुपी के साथ तथा समगुणवाले का विषम गुणवालों के साथ बन्ध नहीं होता। अर्थात् दो का दो गुणवालों के साथ या दो गुणवालों का पाँच गुणवालों के साथ बन्ध नहीं होता क्योंकि यहाँ दो अधिक गुण का अभाव है।

A smooth (atom) unites with a smooth (one) with 2 more (degress of smoothness); rough with rough having 2 more (degrees of roughness); smooth (atom unites) with rough (atom); and rough with smooth with 2 more degrees); (an atom) with minimum (viz-one degrees) being excepted. (The union is between degress) in an odd or even (series, as 3,5,7,9,11 etc. and 2,4,6,8,10 etc.) (615)

णिद्विदरे समविसमा दोत्तिग्निअदिदुउत्तरा हौंति ।
उभयेवि य समाविसमा सरिसिदरा हौंति पत्तेयं ॥(616)

(गो. सा. जीवकाण्ड, पृ. 859)

स्निग्ध और रुक्ष गुणवालों में से प्रत्येक में दो को लेकर दो गुण अधिक होने पर समपंक्ति और 3 को लेकर 2 गुण अधिक होने पर होती है वे दोनों ही सम और विषम रुपी और अरुपी होते हैं। जैसे स्निग्ध और रुक्ष सम अंकवाली पंक्तियों में दो का दो, चार का चार, छह का छह, आठ का आठ, नो का नो, ग्यारह का ग्यारह, बारह का बारह रुपी है इसी प्रकार संख्यात, असंख्यात, अनन्तगुण पर्यन्त जानना। विषम अंकवाली पंक्तियों में तीन का तीन, पाँच का पाँच, सात का सात, नो का नो, ग्यारह का ग्यारह, तेरह का तेरह, इसी तरह संख्यात, असंख्यात और अनन्तगुणवाले परमाणु परस्पर में रुपी है। इनके सिवाय शेष अरुपी हैं। प्रत्येक स्निग्ध और रुक्ष में रुपीका बन्ध नहीं होता है। तत्वार्थ सूत्र में भी कहा है कि गुणों की समानता में सदृशों का बन्ध नहीं होता। अरुपियों का बन्ध स्वस्थान में अर्थात् स्निग्ध का स्निग्ध के साथ, रुक्षका रुक्ष

के साथ ओर परस्थान में अर्थात् स्निग्ध का रुक्ष के साथ या रुक्षका स्निग्ध के साथ बन्ध होता है।

In the smooth and the other (i.e. rough degrees both) even (Sama) and odd (Vishama) (sereis) two, three, etc., increase by two (each). And in each of the two (smooth and rough) even and odd (series), there are similar (Rupi) and the pther (dissimilar Arupi). (616)

दोत्तिग्निअदिदुउत्तरागदे सणतरदुगाण दंधो दु ।
णिद्वुद्वे लुक्के वि तहा वि तहण्णुभयेवि सव्वत्थ ॥(617)

(गो. सा. जीवकाण्ड. पृ. 860)

स्निग्ध और रुक्ष में भी दो को आदि लेकर तथा तीन को आदि लेकर दो-दो बढ़ते जाते हैं। उनमें ऊपर के अनन्तर-वर्ती दो का बन्ध होता है। जैसे चार गुण स्निग्धवालोंका दो गुण स्निग्धवाले दो गुण रुक्षवालों के साथ तथा चार गुण रुक्ष वालों का दो गुण रुक्षवाले या दो गुण स्निग्धवाले के साथ बन्ध होता है। इसी तरह पाँच गुण स्निग्ध या पाँच गुण रुक्षवालों का तीन गुण स्निग्ध या तीन गुण रुक्षवालों के साथ बन्ध होता है। इस प्रकार एक अंशयुक्त जघन्य गुणवालों का भी बन्ध प्राप्त होने पर निषेध करते हैं कि जघन्य को छोड़कर स्निग्ध और रुक्ष दोनों में सर्वत्र बन्ध जानना।

Proceeding beyond (atoms of) 2,3 and more (degrees), union would occur (in case of) difference of 2 degrees, between (them) whether they be smooth or rough or both (smooth and rough). still an (atom of) minimum (degrees does not unite) anywhere. (617)

णिद्विदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्नि ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाणं खंदाणं ॥ (619)

(गो. सा. जीवकाण्ड. पृ. 861)

संख्यात, असंख्यात और अनन्तप्रदेशी रक्न्धों के मध्य में दो अधिक गुणवाले स्निग्ध रक्न्ध या रुक्ष रक्न्ध बन्ध के होने पर हीन गुणवाले रक्न्धको अपने रूप परिणामाते हैं। तत्वार्थ सूत्र में भी कहा है कि बन्धके होने पर अधिक गुणवाला परिणामक होता है।

In molecules of numerable, innumerable and infinite atoms, (the atoms) with greater degress of smoothness or other (i.e. roughness) when uniting, alter (atoms of) lesser (degree) to their own kind.) (619)

अध्याय - 6

जीवों के लिए भौतिक एवं रसायन तत्त्व की उपयोगिता

शरीरवाङ्मन : प्राणापाना : पुद्गलानाम् । (सूत्र, ७ तत्वार्थवार्तिकम्-॥ पृ. 125)
शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास पुद्गल के उपकार हैं।

शरीर के होने पर ही वचन आदि की प्रवृत्ति देखी जाती है अतः सर्वप्रथम शरीर को ग्रहण किया है। शरीर ही वचन आदि का अधिष्ठानभूत है, अतः शरीर के होने पर ही आधेयभूत वचन, मन, श्वासोच्छ्वास आदि की प्रवृत्ति होती है अतः शरीर सब में प्रधान है, ऐसा मानकर सर्वप्रथम शरीर को ग्रहण किया है। (1)

पुरुष (आत्मा) के हित की प्राप्ति का मूल कारण होने से शरीर के बाद वचन शब्द का प्रयोग किया है। शरीर के बाद वचन ग्रहण किया है, क्योंकि वचन ही पुरुष को हित में प्रवृत्ति कराते हैं। श्रोत्रान्द्रिय के द्वारा वचन पुरुष को हित में प्रवृत्ति कराते हैं। (2)

प्रश्न-चक्षु आदि इन्द्रियों भी आत्मा की उपकारक हैं अतः उन इन्द्रियों का भी इस सूत्र में ग्रहण करना चाहिए था।

उत्तर-ऐसा नहीं कहना, क्योंकि आगे के सूत्र में दिए गए 'च' शब्द से सभी इष्ट का समुच्चय हो जाएगा। वह 'च' शब्द इष्ट समुच्चय के लिए है। (3)

आत्मा प्रदेश रूप होने से चक्षु आदि का ग्रहण नहीं है, ऐसा भी नहीं है, क्योंकि द्रव्यान्द्रिय के ही पुद्गलपना है।

प्रश्न - उत्सेधांगुल के असंख्यातर्वे भाग प्रमाण आत्मप्रदेश ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से चक्षु इन्द्रिय आदि नाम वाले होते हैं, उन्हीं भावेन्द्रियों का यहाँ ग्रहण है पौद्गलिक इन्द्रियों का यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है।

उत्तर - चक्षु आदि इन्द्रियों आत्मप्रदेश रूप है अतः उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया है, यह बात नहीं है, क्योंकि अंगोपाङ्ग नामकर्म के उदय से रथी गई द्रव्यान्द्रियों पौद्गलिक हैं, वे आत्मा का उपकार करती हैं, इसलिये 'च' शब्द से उनका ग्रहण किया गया है। (4)

मन के भी अग्रहण का प्रसंग आता है। यदि ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम के कारण चेतनात्मक होने से चक्षु आदि इन्द्रियों का यहाँ ग्रहण नहीं किया होता तो मन भी चेतन है, अतः उसका ग्रहण नहीं होना चाहिए था, क्योंकि मन भी नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा से होता है। (5)

अनवस्थित होने से मन को ग्रहण नहीं किया है, यह तर्क भी उचित नहीं, क्योंकि अनवस्थित होने पर भी वह क्षयोपशम निमित्तक तो है ही।

प्रश्न - जैसे चक्षु आदि इन्द्रियों के आत्मप्रदेश नियत देश में होने से अपने नियत

प्रदेशों में अवस्थित है, उस प्रकार मन के आत्मप्रदेश नियत देश में अवस्थित नहीं है अतः मन को अनिन्द्रिय कहते हैं और इसलिये उस मन को पृथक् रूप से ग्रहण करना ठीक नहीं है ? अर्थात् जैसे ज्ञानावरण एवं वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न इन्द्रियों उन आत्मप्रदेशों में अवस्थित और नियत है, उसी प्रकार मन अवस्थित और नियत नहीं है, अतः मन अनिन्द्रिय है, उसको पुद्गलकृत उपकार मानना ठीक नहीं है तथा उस मन को पृथक् ग्रहण करना भी उपयुक्त नहीं है ?

उत्तर - अनवस्थित होने से मन को पृथक् ग्रहण करना उपयुक्त नहीं है। यह तर्क भी उचित नहीं है, क्योंकि अनवस्थित होने पर भी मन क्षयोपशमिक निमित्तक तो है ही अर्थात् नेत्रादि के सामन निश्चल नहीं होने पर भी पुद्गलद्रव्यकृत होने से उसका उपकार मानना उचित ही है तथा यह नियम है कि जहाँ-जहाँ उपयोग होता है वहाँ-वहाँ के अड्गुल के असंख्यातर्वे भाग प्रमाण आत्मप्रदेश मन के रूप से परिणीत हो जाते हैं। (6)

इसी प्रकार यदि आत्मपरिणाम होने से चक्षु आदि इन्द्रियों को यहाँ ग्रहण नहीं किया है तो वचन को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकि वचन भी ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं। (7)

"आत्मपरिणामों का अभाव होने से बाहर निकले हुए द्रव्य वचनों का ग्रहण है" ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि इनका वर्णन पूर्व में किया है। यदि कहो कि बाहर निकले हुए द्रव्यवचन पौद्गलिक हैं, वे आत्मपरिणाम (चेतन) नहीं होते हैं अतः उन द्रव्य वचनों का प्रतिपादन करने के लिए वचन का पृथक् ग्रहण किया गया है, तो हम ऐसा भी कह सकते हैं कि चक्षु आदि द्रव्यान्द्रियों पौद्गलिक हैं, वे चेतन के परिणाम (पर्याय) नहीं हैं, उनका संग्रह 'च' शब्द से करना चाहिए। इसलिये 'च' शब्द इष्ट समुच्चय अर्थ के लिए है, ऐसा कहना ठीक ही है। (8)

वचन वाले के ही मन होता है, अतः वचन के पश्चात् मन को ग्रहण किया है। जिस आत्मा के शरीरों और वचन होता है, उसी के मन हो सकता है, जिसके शरीर नहीं है और वचन वर्गाणाओं को वचन रूप परिणाम कराने का सामर्थ्य नहीं है, उसके मन नहीं हो सकता है अतः शरीर और वचन के बाद मन को स्थान दिया है, या मन शब्द का प्रयोग किया है। (9)

सर्व संसारी जीवों का कार्य होने से अन्त में श्वासोच्छ्वास को ग्रहण किया है, क्योंकि सभी संसारी जीवों का श्वासोच्छ्वास लक्षण कार्य है। (10) पुद्गल के लक्षण के लिए शरीर आदि का ग्रहण नहीं है - क्योंकि पुद्गल का लक्षण आगे कहेंगे।

प्रश्न - शरीर, वचन, मन, और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण पुद्गल का लक्षण यताने के लिए है, जीव के उपकार का प्रतिपादन करने के लिए नहीं है।

उत्तर - यहाँ पर सूत्र में शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास का ग्रहण पुद्गल

के लक्षण का प्रतिपादन करने के लिए नहीं है आत्मा के उपकार होने से उसके उपकार - प्रतिपादन के लिए हैं, क्योंकि पुद्गल का लक्षण तो आगे के सूत्र में कहेंगे। "पुद्गल का लक्षण तो व्यापी है, सारे पुद्गलों में पाया जायेगा, परन्तु शरीर वचन, मन आदि सर्व पुद्गलों से निर्मित नहीं है, मनोवर्गण, वचनवर्गण औरआहार वर्गणाओं से निर्मित हैं - इसलिये ये पुद्गल का लक्षण नहीं बन सकते। (11)

1. शरीर पौद्गलिक है इसका का कारण -

किसी (सर्वज्ञादि) के प्रत्यक्ष होने से इनका ग्रहण किया गया है, इनका उपदेश दिया गया है।

प्रश्न - धर्मादि के गमन निमित्त उपग्रहादि प्रयोजन का कथन करना तो उचित हैं, क्योंकि अप्रत्यक्ष धर्मादि के अधिगम में गति आदि हेतु हैं, परन्तु पुद्गल तो प्रत्यक्ष है, उसके उपकार का वर्णन करना अयुक्त हैं अर्थात् उसके उपकार के वर्णन से क्या लाभ है? क्योंकि जैसे कोई कहे कि सूर्य पूर्व में उदित होता है, पश्चिम में झूँवता है, गुड मधुर है - श्रृंगवेर (सौंठ) कट्टु है इत्यादि का वर्णन से क्या लाभ है? उनका प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है, उसी प्रकार पुद्गल का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है - उसके उपकार का वर्णन करने कोई प्रयोजन नहीं है।

उत्तर - यह तर्क उचित नहीं है कि प्रत्यक्ष होने से पुद्गल के उपकार का वर्णन नहीं करना चाहिए - क्योंकि किन्हीं के पुद्गल अप्रत्यक्ष भी हैं। जैसे - औदारिक, वैक्रियिक आहारक, तैजस और कर्माण। ये शरीर कर्म मूलतः सूक्ष्म होने से अप्रत्यक्ष हैं, उनके उदय से निर्मित औदारिक आदि कुछ रथूल शरीर प्रत्यक्ष हैं और कुछ अप्रत्यक्ष हैं, मन अप्रत्यक्ष है ही। वचन और श्वासोच्छ्वास कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष हैं - क्योंकि ये इन्द्रियों के विषय नहीं हैं अतः इन्द्रियों से अतीत हैं। इसलिए ये उपकार को स्पष्ट करने के लिए शरीरादि का उपदेश किया गया है। (12)

(1) शरीर पौद्गलिक - औदारिक आदि पौदलिक है। औदारिक (वनस्पति से लेकर पशु-पक्षी मनुष्यों के शरीर) वैक्रियिक (देव नारकिओं के शरीर) आहारक (शंका समाधान के लिए ऋद्धिधारी मुनि के सिर से निर्गत शरीर) तैजस शरीर (शरीर की आभा के लिए कारणभूत शरीर, विद्युतीय शरीर) कर्माण शरीर (आठों कर्म के कारणभूत शरीर) पौद्गलिक है।

कर्माण शरीर पौद्गलिक :- कर्माण शरीर पौद्गलिक नहीं है, ऐसा नहीं, क्योंकि उसका विपाक मूर्तिमान (पुद्गल) के संबंध के निमित्त से ही होता है।

शंका - अनाकार (आकार रहित) होने से कर्माण शरीर पौद्गलिक नहीं है, क्योंकि आकार वाले औदारिक आदि शरीर ही पौद्गलिक हैं, परन्तु कर्माण शरीर आकार रहित हैं अतः इसे पौद्गलिक कहना उचित नहीं है?

उत्तर - यद्यपि कर्माण शरीर आकार रहित है तथापि मूर्तिमान पुद्गलों के सम्बन्ध से अपना फल देता है, जैसे ब्रीहि (चावल) आदि धान्य, पानी, धूप आदि मूर्तिमान पुद्गलों के सम्बन्ध से पकता है इसलिये पौद्गलिक हैं, उसी प्रकार कर्माण शरीर भी गुड, कण्टक आदि मूर्तिमान् पुद्गल द्रव्यों के सम्बन्ध से पकता है, अर्थात् इष्टानिष्ट बाह्य सामग्री के निमित्त से कर्माण शरीर अपना फल देता है, अतः कर्माण शरीर पौद्गलिक है, क्योंकि कोई भी अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ के सम्बन्ध से नहीं पकता तथा अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थ से विपच्यमान दृष्टिगोचर नहीं होता। (14)

(2) वचन पौद्गलिक - पुद्गल के निमित्त होने से दोनों प्रकार के वचन पौद्गलिक हैं। वचन दो प्रकार के हैं। (1) द्रव्य वचन और (2) भाव वचन, दोनों ही पौद्गलिक हैं, क्योंकि दोनों ही पुद्गल के कार्य हैं अर्थात् पुद्गल के निमित्त से ही होते हैं। भाव वचन, वीर्यान्तराय और मति, श्रुतज्ञानावरण के क्षयोपक्षम तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय के निमित्त से होते हैं, अतः भावमन पुद्गल का कार्य होने से पौद्गलिक हैं, यदि वीर्यान्तराय और मति-श्रुतज्ञानावरण रूप पौदगलिक कर्मों का क्षयोपक्षम नहीं हो तो भावचन हो ही नहीं सकता। भाव वचन के सामर्थ्य वाले आत्मा के द्वारा प्रेर्यमाण पुद्गल वचन रूप से परिणीत होते हैं अर्थात्-आत्मा के द्वारा तालु आदि क्रिया से जो पुद्गल वर्गणाएँ वचनरूप परिणीत होती हैं, उसे द्रव्यवचन कहते हैं। श्रोत्रेन्द्रियक विषय होने से द्रव्यवचन भी पौद्गलिक हैं।

प्रश्न - यदि शब्द पौद्गलिक हैं तो एक बार ग्रहण होने के बाद उनका पुनः ग्रहण क्यों नहीं होता? अर्थात् एक बार उच्चारण करने के बाद वहीं शब्द पुनः सुनाई क्यों नहीं देता? (15)

उत्तर - विजली के समान असंहतत्व होने से पुनः गृहित नहीं होते हैं। जिस प्रकार चक्षु इन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध विजली द्रव्य एक बार चमक कर फिर शीघ्र ही विशीर्ण (नष्ट) हो जाता है अतः पुनः आँखों से दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा एक बार उपलब्ध (सुने गये) वचन संपूर्ण से शीघ्र विशीर्ण हो जाने से पुनः दुवारा नहीं सुनाई देते।

प्रश्न - यदि शब्द पौद्गलिक हैं तो चक्षु आदि के द्वारा शब्दों का ग्रहण क्यों नहीं होता? (16)

उत्तर - घाण के द्वारा ग्रहण करने योग्य होने पर गन्ध द्रव्य रसादि की अनुपलब्धि के समान चक्षु आदि के द्वारा गृहित नहीं होते हैं। जैसे घाणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य ग्रन्धद्रव्य के साथ अविनाभावी रूप, रस, स्पर्श आदि विद्यमान रहकर के भी सूक्ष्म होने से घाणेन्द्रिय के द्वारा उपलब्ध नहीं होते अर्थात् घाणेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं होते हैं, उसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय

के विषयभूत शब्द सूक्ष्म होने से चक्षु आदि शेष इन्द्रियों के द्वारा ग्रहीत नहीं होते।

शब्द पौदगलिक - शब्द को अमूर्तिक कहना उचित नहीं है, क्योंकि शब्द का मूर्तिमान पदार्थ के द्वारा ग्रहण, प्रेरणा और अवरोध देखा जाता है। शब्द अमूर्तिक है। 'अमूर्त' आकाश का गुण होने से यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि मूर्तिमान, पौदगलिक पदार्थों के द्वारा ग्रहण होता है। कर्णेन्द्रिय का विषय होने से मूर्तिमान ओतेन्द्रिय के द्वारा उसका ग्रहण होता है। जो अमूर्त होता है वह किसी मूर्तिमान इन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य नहीं होता। वायु के द्वारा प्रेरित रूई की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रेरित किया जाता है, क्योंकि विरुद्ध दिशा में स्थित व्यक्ति को वह शब्द सुनाई नहीं देता है, अर्थात् जिस तरफ की वायु होती है उधर की सुनाई देता है, वायु के प्रतिकूल होने से समीपस्थ को भी सुनाई नहीं देता। इससे अनुमान होता है कि शब्द प्रेरित है और यंत्र के द्वारा प्रेरित कर दूसरे देशों में भिजवाया भी जाता है। अमूर्त पदार्थ मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा प्रेरित नहीं होता। नल, बिल, रिकार्ड आदि में नदी के जल की तरह शब्द रोका भी जाता है, परन्तु अमूर्तिक पदार्थ मूर्तिमान किसी पदार्थ के द्वारा अवरुद्ध हुआ नहीं देखा जाता है। यहाँ कोई (वैशेषिक) कहता है कि ग्रहण, प्रेरणा और अवरोध इन हेतुओं से शब्द तो मूर्तिक नहीं हो सकता। श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य जो हेतु दिया है शब्द को मूर्तिक सिद्ध करने के लिये वह उपयुक्त नहीं है, क्योंकि श्रोत्र (कर्णेन्द्रिय) आकाश रूप है, अतः अमूर्त प्रकाश रूप श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा अमूर्त आकाश के गुणरूप शब्द को ग्रहण करने में क्या विरोध है? अमूर्त श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द का ग्रहण हो जाता है। वायु के द्वारा शब्द प्रेरित होता है ऐसा जो कहा है वह भी ठीक नहीं है, क्योंकि वायु के द्वारा शब्द प्रेरित नहीं होता, क्योंकि शब्द गुण है और गुण में क्रिया नहीं होती।

प्रश्न - शब्द में देशान्तर में जाने रूप क्रिया नहीं होती है तो देशान्तरस्थ पुरुष के द्वारा कैसे ग्राह्य होता है?

उत्तर - संयोग विभाग और शब्द से शब्द की निष्पत्ति होती है ऐसा कथन है, अतः नये-नये शब्द उत्पन्न होते हैं और उनका देशान्तरस्थ पुरुष के द्वारा ग्रहण होता है। जैसे दण्ड और भेरी के संयोग के उत्पन्न हुआ शब्द देशान्तर में सुनाई देता है। वेगवद् (वायु) द्रव्य के अभिघात से नए शब्द की उत्पत्ति नहीं होने पर शब्दों का ग्रहण नहीं होता अतः वायु शब्द के प्रेरक नहीं है अर्थात् शब्द मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा प्रेरित नहीं है। शब्द का अवरोध भी नहीं है, क्योंकि जो शब्द का अवरोध जैसा प्रतीत होता है वरन्तु: वह अवरोध नहीं है अपितु स्पर्शवान द्रव्य के अभिघात से दिशान्तर में शब्दान्तर का अनारंभ होने से एक दिशा में ही शब्द के उत्पन्न होने से अवरोध जैसा प्रतीत होता है, परन्तु मुख्य अवरोध नहीं है इसलिये शब्द अमूर्त है। इस प्रकार शब्द को अमूर्तिक सिद्ध करने वाले का आचार्य खण्डन करते हैं, क्योंकि श्रोत आकाशरूप नहीं है, क्योंकि अमूर्त आकाश कार्यान्तर को उत्पन्न करने की

शक्ति से रहित है। अदृष्ट के कारण (सहायता) से कार्य करता है अमूर्त आकाश यह विचारणीय विषय है कि यह अदृष्ट आकाश को संरक्षित करता है कि आत्मा को? अथवा शरीर के एकदेश को? वह अदृष्ट आकाश में तो संरक्षित कर नहीं सकता, क्योंकि वह अमूर्त हैं अन्य द्रव्य का गुण है और आकाश से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, शरीर से अत्यन्त भिन्न रूप से कल्पित, नित्य और निरंश आत्मा में संरक्षित कर नहीं किया जा सकता क्योंकि आत्मा में संरक्षित से उत्पन्न फलदान की असंभवता है और शरीर के एकदेश में भी अदृष्ट से संरक्षित नहीं आ सकते, क्योंकि अदृष्ट अन्य द्रव्य का गुण है और शरीर से उसका कोई संबंध नहीं है। अथवा मूर्तिमान् तैल आदि से श्रोत्र में अतिशय देखा जाता हैं तथा मूर्तिमान कील आदि से उसका विनाश देखा जाता हैं अतः मूर्तिमान पदार्थों के संबंध से जनित सम्पत्ति और विपत्ति के दर्शन से श्रोत्रेन्द्रिय को मूर्तिमान् ही समझना चाहिए। स्पर्शवान् द्रव्य के अभिघात से शब्दान्तर का उत्पन्न न होना ही हमारे लिए आकाश से रत्नों की वृष्टि होना है, क्योंकि इससे सिद्ध होता है कि शब्द मूर्तिमान हैं, स्पर्शवान द्रव्य के अभिघात से शब्द के मूर्तिपना आ जाता है, क्योंकि किसी भी अमूर्त पदार्थ का मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा अभिघात नहीं हो सकता। अतः मुख्य रूप से शब्द का अवरोध बन जाता है। (18)

मूर्तिमान पदार्थों के द्वारा अभिभूत-तिरस्कृत होने से भी शब्द को मूर्तिमान जानना चाहिये। जैसे सूर्य के प्रकाश से अभिभूत (तिरोभूत) होने वाले से तारा आदि मूर्तिक हैं, उसी प्रकार सिंह की दहाड़, हाथी की चिंघाड़ और भेरी का घोष आदि महान् शब्द के द्वारा शकुनि (पक्षियों) के मन्द शब्द तिरोभूत होते हैं तथा कांसी आदि के वर्तन गिरने पर उत्पन्न ध्वनि, ध्वनिअन्तर के आरंभ में हेतु होती है। अथवा गिरि-गहर-कूप आदि में शब्द करने पर प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है। पर्वत की गुफाओं आदि से टकराकर प्रतिध्वनि होती है। अतः शब्द मूर्तिक है।

प्रश्न-अमूर्तिक पदार्थों का भी मूर्तिमान् पदार्थों के द्वारा तिरोभाव देखा जाता है जैसे मूर्तिमान मदिरा के द्वारा अमूर्तिक विज्ञान (इन्द्रियज्ञान) का तिरोभाव देखा जाता है इसलिये मूर्तिमान पदार्थों से मूर्तिमान पदार्थों का हो अभिभव होता है यह निश्चय हेतु नहीं है।

उत्तर - मूर्तिक मदिरा के द्वारा इन्द्रियज्ञान का जो अभिभव देखा जाता है वह भी मूर्त से मूर्तिक का ही अभिभव है, क्योंकि क्षयोपशमिक ज्ञान इन्द्रियादि पुद्गलों के आधीन होने से पौदगलिक हैं, अन्यथा (यदि विज्ञान पौदगलिक नहीं हैं तो) आकाश के समान विज्ञान का भी मदिरा आदि के द्वारा अभिभव नहीं हो सकता था। अतः उपर्युक्त हेतुओं से शब्द पौदगलिक पर्याय। सिद्ध होता है। (19)

(3) मन पौदगलिक - तन्मय होने से दोनों ही मन पौदगलिक हैं। (मन दो प्रकार का हैं)- एक भावमन और दूसरा द्रव्यमन। ये दोनों ही मन पौदगलिक हैं, क्योंकि दोनों ही

मन पुद्गल से संबंधित हैं। लघि और उपयोग रूप भावमन हैं, वह पुद्गल निमित्तक और पुद्गल का अवलम्बन लेनेवाला होने से पौद्गलिक है अर्थात्-भावमन में भी ज्ञानावरणादि कर्म के क्षयोपक्षम रूप पुद्गल का अवलम्बन रहता है। गुण-दोष विचार और स्मरणादिरूप व्यापार में तत्पर आत्मा के अनुग्राहक ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम के लाभ के कारण वीर्य विशेष के संचय करने में समर्थ जो पुद्गल वर्णणाएँ मन रूप से परिणित होती है उनको द्रव्य मन कहते हैं, पुद्गल के निमित्त और अवलम्बन से रचित होने से द्रव्य मन तो पौद्गलिक ही है, आकाश का गुण नहीं है। (20)

इन्द्रिय के समान अनेकान्त होने से मन अर्थान्तर नहीं है। मन आत्मा से भिन्न अर्थान्तरभूत है, ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि जैसे इन्द्रियाँ आत्मा से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी है, उसी प्रकार मन में भी अनेकान्त हैं। अर्थात् मन भी आत्मा से कथंचित् भिन्न और कथाजित् अभिन्न है। जैसे वीर्यान्तराय और ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की अपेक्षा आत्मा के ही प्रदेश चक्षु आदि इन्द्रियरूप से परिणमन करते हैं, अतः आत्मा से इन्द्रियाँ भिन्न नहीं हैं और इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर आत्मा का नाश नहीं होता अतः इन्द्रियाँ आत्मा से कथंचित् भिन्न भी हैं इसलिए यह ऐकान्तिक नियम नहीं है कि इन्द्रियाँ आत्मा से सर्वथा भिन्न या अभिन्न हैं, स्याद्वाद है, कथंचित् भिन्न है, कथंचित् अभिन्न हैं, उसी प्रकार आत्मा ही ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के कारण ही मनरूप से परिणमन होने के कारण मन आत्मा से अभिन्न हैं और मन की निवृत्ति होने पर भी आत्मा का अवस्थान रहता है, नाश नहीं होता इसलिये आत्मा से मन भिन्न हैं, अर्थान्तरभूत हैं। (21)

मन अवस्थायी (स्थिर रहने वाला) है, ऐसी आशंका भी उचित नहीं है, क्योंकि अनन्तर समय में मन का नाश हो जाता है।

प्रश्न - मन अवस्थायी हैं अतः इसकी निवृत्ति नहीं होती ?

उत्तर - ऐसा कहना उचित नहीं है, क्योंकि अन्तर समय में ही इसका नाश हो जाता है, क्योंकि मन रूप से परिणित पुद्गल गुण-दोष विचार और स्मरणादि कार्य करके उसके अन्तर समय में ही मन रूप से नष्ट हो जाते हैं, आगे वे मन रूप से नहीं रहते। (22)

आदेश वचन से। यह ऐकान्तिक नहीं है कि मन अवस्थायी हैं कि अनवस्थायी ? द्रव्यदृष्टि से मन स्थायी है और पर्यायदृष्टि से अस्थायी भी। अतः मन न सर्वथा अवस्थित है और न सर्वथा अनवस्थित। (23)

असामर्थ्य होने से मन को एक द्रव्य कहना भी उचित नहीं है। कोई कहता है (वैशेषिक का सिद्धान्त है) कि मन एक स्वतन्त्र द्रव्य है वह अणु रूप है और प्रत्येक आत्मा से एक-एक सम्बद्ध है। कहा भी है, कि एक साथ आत्मा के अनेक प्रयत्न नहीं होते और न एक साथ सभी इन्द्रियज्ञानों की उत्पत्ति ही देखी जाती है अतः क्रम का नियमक एक मन है यह सिद्धान्त

ठीक नहीं है, क्योंकि मन परमाणु मात्र है और परमाणु मात्र होने से मन के इन्द्रियों के क्रम प्रवृत्ति के नियमक सामर्थ्य का अभाव है। परमाणु मात्र भी मन, आत्मा और इन्द्रियों से युक्त होकर स्व-प्रयोजन के प्रति व्यापार करता है इस कथन पर आचार्य विचार करते हैं कि परमाणु मात्र मन जब आत्मा और इन्द्रियों से सम्बद्ध होकर ज्ञानादि की उत्पत्ति में व्यापार करता है, तब वह आत्मा और इन्द्रिय से सर्वात्मा से सम्बद्ध होता है या एकदेश से ? सर्वात्मा से तो सम्बद्ध हो नहीं सकता, क्योंकि आत्मा और इन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न हैं अतः या तो अणुरूप मन इन्द्रियों से सर्वात्मा सम्बद्ध हो सकता है ? फिर आत्मा से ? आत्मा और इन्द्रिय दोनों से एक साथ सम्बद्ध होने में विरोध आता है, यदि कहो कि एकदेश आत्मा से सम्बद्ध है और एकदेश इन्द्रियों से सम्बद्ध है तो मन के प्रदेश भेद का प्रसंग आएगा, परन्तु मन को अणुरूप माना गया है इसलिये मन के प्रदेश मानना वैशेषिक को अनप्ति हैं। अथवा यदि आत्मा मन से सर्वात्मा सम्बन्ध करता हैं तो या तो मन अणुरूप होने से आत्मा को अणुरूप मानना होगा या आत्मा व्यापक होने से मन को भी आत्मा की तरह व्यापक मानना होगा। यदि आत्मा एकदेश से मन के साथ सम्बन्ध करता है (संयुक्त होता है) तो आत्मा के प्रदेश मानने होंगे। ऐसी दशा में आत्मा, मन, इन्द्रिय, पदार्थ इन चार का आत्मा, मन और पदार्थ इन तीन का तथा आत्मा और मन इन दो के सन्तुलित से उत्पन्न ज्ञान, सुख-दुःख आदि के प्रदेश-वृत्तिव होने से आत्मा के कुछ प्रदेश ज्ञानादि से युक्त होंगे तथा कुछ प्रदेश ज्ञानादि से रहित होंगे, जिन प्रदेशों में ज्ञानी के सुख आदि नहीं होंगे, उन प्रदेशों में आत्मलिङ्ग (चिन्ह वा आत्मास्वरूप) का अभाव होने से (वा आत्मा का निश्चय न होने के कारण) आत्मा का अभाव या अभाव के सर्वगतत्व का अभाव होगा तथा इन्द्रियों के साथ यदि मन को सर्वात्मा सम्बद्ध मानते हैं तो या तो मन के समान इन्द्रियाँ अणुरूप हो जायेंगी या फिर इन्द्रियों के सामान मन अणुरूपता को छोड़कर बड़ा हो जाएगा तो फिर आत्मा अणुरूप नहीं रहेगा। अर्थात् आत्मा या इन्द्रियों के साथ मन को एकदेश सम्बद्ध मान लेने पर मन परमाणु रूप नहीं हर पायेगा, उसके अनेक प्रदेश हो जायेंगे तथा वैशेषिक सिद्धान्त में गुण और गुणी में भेद स्वीकार किया गया है और मन को नित्य माना गया है अतः उसका संयोग और विभाग रूप परिणमन ही नहीं हो सकता, तब न तो मन का आत्मा के साथ संयोग हो सकेगा और न इन्द्रियों के साथ हो। यदि मन का संयोग विभागरूप परिणमन होता है, तो मन नित्य नहीं रहेगा और गुण-गुणी भी भिन्न नहीं हैं। जब मन अचेतन है तो उसे (मन को) इस आत्मा या इन्द्रिय से संयुक्त होना चाहिए, इन्द्रियान्तर का आत्मान्तर के द्वारा इससे सम्बद्ध नहीं होना चाहिए इस प्रकार के विवेक का अभाव होने से प्रतिनियत आत्मा और इन्द्रियों के संयोग का अभाव होगा। अर्थात् जब मन अचेतन है तो उसको इस प्रकार ज्ञान कैसे होगा कि आत्मा के वा इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध करे तथा अन्य के साथ नहीं करें।

शंका - जैसे कर्म अचेतन होते हुए भी जीव के साथ सम्बद्ध होते हैं और जीव के सुख-दुःखादि का कारण बनते हैं, उसी प्रकार अचेतन मन भी आत्मा और इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध कर लेगा।

उत्तर-यह कर्म का दृष्टान्त उचित नहीं है, क्योंकि कर्म पुरुष के परिणामों से अनुरंजित होने के कारण कथंचित् चेतन हैं और पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से कर्म कथंचित् अचेतन हैं। अतः यह कर्म का दृष्टान्त विषम है। मन के सूक्ष्म होने से चक्षुरादि के रूप ग्रहणत्व की योग्यता का अभाव है, क्योंकि अणुरूप मन के द्वारा चक्षु आदि के सम्पूर्ण रूप से अनधिष्टात्व (स्पर्श नहीं होता) है। अतः चक्षु आदि के जितने प्रदेश के अणु मन रूप संयुक्त होगा उतने-उतने प्रदेश में ही रूपादि का ग्रहण होगा अर्थात् अणुमन से संयुक्त चक्षुरादि से अर्थ का अवबोध हो सकेगा सर्वप्रदेशों से नहीं, परन्तु चक्षुरादि के द्वारा सर्वप्रदेशों से रूपादि का ग्रहण देखा जाता है इसलिए मन परमाणु रूप नहीं है। (24)

अचेतन होने से अणुमन आशुसंचारी भी नहीं है।

शंका - अणुमात्र भी मन आशुसंचारी है अतः सम्पूर्ण रूप से चक्षु आदि के साथ सम्बन्ध हो जायेगा।

उत्तर- अणुरूप मन को आशुसंचारी (शीघ्र संचार करने वाला) मानकः पूरी चक्षु आदि से सम्बन्ध मानना उचित नहीं है, क्योंकि अचेतन मन के बुद्धिपूर्वक क्रिया नहीं हो सकती। क्रियापरिणाम का अभाव होने से और अदृष्ट के कारन भी मन आशुसंचारी नहीं हो सकता।

प्रश्न :- जैसे पुरुष के द्वारा प्रेरित होकर अलातचक्र आशुसंचरण के कारण सर्वत्र उपलब्ध होता है उसी प्रकार अदृष्ट के कारण आणुमन का भी सर्वत्र भ्रमण हो जायेगा।

उत्तर- अदृष्ट की प्रेरणा से भी मन का इष्ट देश में आशुभ्रमण मानना ठीक नहीं है, क्योंकि इसमें क्रिया परिणाम का अभाव है। क्रियावान पुरुष से प्रेरित होकर ही अलातचक्र आदि शीघ्र गति से सर्वत्र गोलाकार रूप में उपलब्ध होते हैं, परन्तु आत्मा का गुण अदृष्ट तो स्वयं क्रियारहित है वह दूसरों की क्रिया का हेतु होता है यह आयुक्त है। इसका पूर्व में खण्डन किया है।

संयोग सम्बन्ध होने से आत्मा और मन का अनादि सम्बन्ध मानना भी उचित नहीं है।आत्मा और मन का स्वाभाविक अनादि सम्बन्ध मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि मन और आत्मा का संयोग सम्बन्ध है और मन को अणु मानने वालों के सिद्धान्त में तो अप्राप्तिपूर्वक प्राप्ति को संयोग कहा है, अतः मन का आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध नहीं हो सकता है। अर्हत् की (जैन धर्म की) दृष्टि से तो मन क्षायोपशमिक है अतः आत्मा के साथ मन का अनादि सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो सकता है। (27)

उसके परित्याग का विरोध है। यदि मन का आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध है तो

इन मन के परित्याग का विरोध होगा, अनादि सम्बन्ध होने से आत्मा के मन का सम्बन्ध नहीं छूटेगा, परन्तु एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के मन नहीं रहता है अतः मन का आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध नहीं है। (28)

अनेकान्त होने से कर्म का दृष्टान्त भी उपयुक्त नहीं है। प्रश्न-जैसे जीव और कर्मों का अनादि सम्बन्ध होने पर भी कर्म का परित्याग (नाश) होता है, उसमें कोई विरोध नहीं है, उसी प्रकार आत्मा के साथ मन का अनादि सम्बन्ध होने पर भी मन का परित्याग (नाश) होने में कोई दोष नहीं है। उत्तर - कर्म का दृष्टान्त उचित नहीं है, क्योंकि कर्म-व्यवस्था में अनेकांत हैं। यह ऐकान्तिक नियम नहीं है कि जीव और कर्मों का सम्बन्ध अनादि ही है, क्योंकि कर्मवन्ध-संतति की अपेक्षा कर्म का वन्ध अनादि होकर भी मिथ्यार्थन आदि कारणों के कारण समय-समय में कर्म वैधते रहते हैं अतः कर्मवन्ध समाप्त भी है। इसलिए मिथ्यादर्शनादि के प्रत्यनीक समयदर्शन, सम्यज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप करणों के प्रकर्ष होने पर उनका वन्ध छूट जाता है, इसमें कोई विरोध नहीं है पर मन में इस प्रकार अनेकान्त नहीं है। (29)

चेतन स्वभावत्व होने से इन्द्रियों मन की सहायता से सुख-दुःख का अनुभव नहीं करती।

प्रश्न - मन इन्द्रियों का सहकारी कारण है, क्योंकि जब इन्द्रियौं इष्ट-अनिष्ट विषयों में प्रवृत्त होती हैं तब मन के सन्निधान से ही वे सुख-दुःखादि का अनुभव करती है अतः इन्द्रियों के सहकारित्व के सिवाय मन का दूसरा व्यापार नहीं है।

उत्तर - मन को इन्द्रियों का सहकारी मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि इन्द्रियौं चेतना स्वभाव वाली हैं। वरस्तुतः गरम लौह पिण्ड के समान आत्मा का ही इन्द्रिय रूप से परिष्प्राप्त हुआ है, अतः चेतनरूप होने से इन्द्रियौं स्वयं सुख-दुःखादि का अनुभव करती है। यदि मन के बिना इन्द्रियौं स्वयं सुख-दुःख का अनुभव नहीं करती है तो एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय को भी सुख-दुःख का अनुभव नहीं होगा, क्योंकि उनके मन का अभाव है। (30) पृथक् उपकार के अनुपलंभ होने से मन का अभाव है, ऐसी आशंका भी उचित नहीं है, क्योंकि मन का गुण-दोष-विचार पृथक् उपकार देता जाता है।

प्रश्न - मन का पृथक् उपकार उपलब्ध नहीं होता है अतः मन नामक कोई वरतु नहीं है ?

उत्तर - यह प्रश्न उचित नहीं है, क्योंकि गुण-दोष-विचार आदि मन के स्वतंत्र कार्य दृष्टिगोचार होते हैं। मनोलब्धि वाले आत्मा के जो पुद्गल मनरूप के परिणित हुए हैं वे अन्धकार तिमिरादि वाह्य इन्द्रियों के उपघातक कारणों के सन्निधान होने पर भी गुण-दोष-विचार और स्मरणादि व्यापार में सहायक होते ही हैं अतः अन्तः कारण (अन्तरंग इन्द्रिय) मन का स्वतन्त्र अस्तित्व है। (31) विज्ञान में सामर्थ्य का

अभाव होने से मन विज्ञान नहीं है।

शंका - विज्ञान के सिवाया मन नामक अन्य वस्तु नहीं है। विज्ञान को ही किञ्चित् मन है ऐसा व्यपदेश (कथन) करते हैं। सो ही कहते हैं, छहों ज्ञानों की उत्पत्ति का जो समानन्तर अतीत अर्थात् उपादानभूत लक्षण है वह मन है अर्थात् - छहों ज्ञान के पूर्वज्ञान को मन कहते हैं (यह बौद्ध सिद्धान्त है)।

उत्तर - मन का पृथक् अस्तित्व न मानकर विज्ञान को मन कहना ठीक नहीं है क्योंकि पूर्व ज्ञान को जानने का उसमें सामर्थ्य नहीं है। जो विज्ञान वर्तमान को जानने में सामर्थ्य नहीं है, वह अतीतज्ञान का कारण कैसे बन सकता है, उसकी तो बात ही क्या करनी। क्षणिक वर्तमान विज्ञान पूर्व और उत्तर विज्ञानों से जब कोई सम्बन्ध नहीं रखता तब वह गुण-दोष-विचार और रमरणादि व्यापार में सहायक कैसे बन सकता है? क्योंकि यह स्मरण स्वयं अनुभूत पदार्थों का उसी को होता है 'जिसने अनुभव किया' अनुभूत अन्य के द्वारा अनुभूत पदार्थों का स्मरण नहीं हो सकता। क्षणिक एकान्त में स्मरण आदि का क्रम सम्भव नहीं है। सन्तान अवस्तुभूत हैं अतः उसकी अपेक्षा स्मरणादि की संगति वैठाना भी उचित नहीं है, क्योंकि पूर्वज्ञान रूप मन जब वर्तमान काल में अत्यन्त असत् हो जाता है तब वह गुण-दोष-विचार, रमरण आदि में सहायक कैसे बन सकता है। यदि बीज शक्ति रूप आलयविज्ञान को सद्-अवस्थित मानते हैं और उसका अवलम्बन गुण-दोष-विचार रमरणादि में सहायक होता है, ऐसा कहते हैं तो उस एक ही मन को कालान्तर अवस्थायी रवीकार कर लेने पर क्षणिकत्व पक्ष का लोप हो जाता है अर्थात् सर्व वस्तु क्षणिक है इस प्रतिज्ञा की हानि हो जाती है। यदि बीज रूप आलय-विज्ञान क्षणिक है, तो वह भी स्मरणादिका आलम्बन नहीं हो सकता। (बौद्ध मत के अनुसार मन की व्यवस्था नहीं बन सकती)। (32)

अचेतनत्व होने से प्रधान का विकार भी मन नहीं है।

प्रश्न - सांख्य कहता है - मन पौद्गलिक नहीं है अपितु प्रधान का विकार है। महान् अहंकार आदि भावों से परिणित प्रधान का कोई विकार विशेष मन है, ऐसा कहा जाता है।

उत्तर - मन को प्रधान का विकार मानना उचित नहीं हैं, क्योंकि जब प्रधान स्वयं अचेतन हैं तो उसका विकार भी तादात्मक होने से अचेतन ही होगा। जब प्रधान का विकार मन अचेतन है तब घट आदि अचेतन पदार्थ के समान गुण-दोष-विचार, रमरण आदि व्यापार में अचेतन मन सहायक नहीं हो सकता।

अथवा, जब मन विचार आदि का कारण है तो उसका कर्ता है प्रधान है कि पुरुष है? पुरुष तो मन का कर्ता हो नहीं सकता, क्योंकि पुरुष निर्गुण होने से सात्त्विक गुण-दोष-विचार का कर्ता हो नहीं सकता। प्रधान भी मन का कर्ता नहीं है, क्योंकि प्रधान अचेतन हैं और लोक में कोई अचेतन गुण-दोष-विचार आदि का कर्ता देखा नहीं गया। अर्थात् अचेतन

प्रधानमें गुण दोष-विचार-स्मरण आदि चेतन व्यापार नहीं हो सकते हैं। (33)

अथवा, उससे अत्यतिरेक होने से विचार आदि का अभाव है। सत्त्व, रज और तम की साम्य अवस्थारूप प्रधान से महान् अहंकार आदि विषमावस्था रूप विकार भिन्न हैं या अभिन्न। यदि सत्त्व, रज और तम की साम्य अवस्था रूप प्रधान से महान् अहंकारादि भिन्न उत्पन्न होते हैं तो कार्य और कारण के अभेद मानने का सिद्धान्त खण्डित हो जाता है। अथवा उस प्रधान से अहंकारादि अभिन्न उत्पन्न होते हैं तो केवल प्रधान ही अवशिष्ट रह जाता है, उससे भिन्न कोई परिणाम नहीं बचता अतः मन की निवृत्ति हो जायेगी।

(4) प्राणापान पौद्गलिक - कोष्ठ (उदर) की वायु को उच्छ्वास लक्षण प्राण कहते हैं। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपांग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा शरीर-कोष्ठ से जो वायु बाहर निकाली जाती है, उसको उच्छ्वास लक्षण प्राण कहते हैं (35)

बाह्य वायु को अभ्यन्तर करना अपान है। वीर्यान्तराय, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम और अंगोपांग नाम कर्म के उदय की अपेक्षा रखने वाले आत्मा के द्वारा जो बाह्य वायु भीतर ली जाती है-उस निःश्वास को अपान कहते हैं। ये श्वासोच्छ्वास (प्राणापान) आत्मा के जीवन में कारण होते हैं अतः इनके द्वारा पुद्गल आत्मा का उपकार करता है। (36)

इन सब का प्रतिघात देखा जाता है अतः ये सब मूर्तिक हैं। उन प्राणापान और वाङ् (वचन), तन, श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात आदि होने से इनको मूर्तिमान (पौद्गलिक) समझाना चाहिए। जैसे-भय के कारणों से तथा वजपात आदि के शब्दों के द्वारा मन का प्रतिघात और मदिरा आदि के द्वारा मन का अभिभव देखा जाता है। हाथ से मुख और नक का बंद कर देने पर श्वासोच्छ्वास का प्रतिघात और कंठ में कक्ष आदि के आ जाने से श्वासोच्छ वास का अभिभव देखा जाता है अतः मन और श्वासोच्छ्वास पौद्गलिक है, क्योंकि मूर्तिक पदार्थों के द्वारा अमूर्तिक पदार्थ के अभिघात और अभिभव (रुकावट) नहीं हो सकते। (37)

श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। इनके द्वारा आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है, क्योंकि प्राणापानादि कर्म आत्मा के कार्य हैं अतः आत्मा रूपी कारण के बिना श्वासोच्छ्वास रूपी कार्य नहीं हो सकता जैसे किसी यन्त्रमूर्ति की चेष्टाएँ उसके प्रत्योक्ता का अस्तित्व बताती हैं उसी प्रकार प्राणापानादि क्रियाएँ क्रियावान आत्मा की सिद्धि करती हैं। ये क्रियाएँ उस प्रवर्तक के नहीं होने पर अकर्मात् नहीं होती, क्योंकि ये क्रियाएँ नियमपूर्वक देखी जाती हैं। विज्ञान आदि के द्वारा भी ये क्रियाएँ नहीं हो सकी, क्योंकि विज्ञान आदि अमूर्तिक हैं अतः उनमें प्रेरणाशक्ति नहीं हो सकती। अचेतन होने के कारण रूपरक्षण कृत भी ये क्रियाएँ नहीं हैं। सभी पदार्थों को निरीहक मानकर सुख-दुःख प्राणापानादि क्रियाओं का लोप किया जाता है तो फिर पदार्थों के देशान्तर

आदि के अभाव का प्रसंग आयेगा। अर्थात् पदार्थों में क्रिया ही नहीं हो सकेगी।

प्रश्न - वायुधातु से देशान्तर में उत्पन्न ही क्रिया है, यह उपचार है, मुख्य क्रिया नहीं है। पदार्थों की उत्पत्तिकों ही क्रिया कहते हैं। यह सिद्धांत है? उत्तर-यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि जब वायुधातु भी निष्क्रिय हैं तो वह असमर्थ होने से अन्य पदार्थों के देशान्तर की उत्पत्ति कैसे करा सकेगी अर्थात् पदार्थों के देशान्तर की प्राप्ति में कारण कैसे बनेगी? क्षणिक होने से पदार्थ अनवस्थित हैं, अतः उनमें क्रिया नहीं होती, ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि आत्मा का क्षणिकत्व मानना अयुक्त है (35)

प्राणी का अंग होने द्वन्द्व समास करने पर एक वचन होना चाहिए यह आशंका भी उचित नहीं है, क्योंकि अंग-अंगी द्वन्द्व समास में भी एक वचन का अभाव पाया जाता है।

प्रश्न - शरीर वाङ्मनः प्राणापानाः यहाँ शरीर आदि को प्राणी का अंग होने से द्वन्द्व समास में एक वचन होना चाहिए।

उत्तर - शरीर आदि प्राणी का अंग होने से द्वन्द्व समास एकवचन होने की शंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि जहाँ प्राणी का अंग होता है वहाँ पर ही द्वन्द्वसमास में एकवचन होता है परन्तु जहाँ अंग-अंगीभाव होता है वहाँ द्वन्द्वसमास में एकवचन नहीं होता, क्योंकि यहाँ शरीर अंगी हैं और वचनादि अङ्ग है। अवयव और एकदेश में एकार्थवाची हैं अतः एकवचन का अभाव है। यहाँ शरीर मात्र अङ्ग है। इसलिए द्वन्द्वसमास में एकवचन नहीं है, अथवा वचन आदि अंग भी नहीं है, क्योंकि दांत आदि की तरह वचन आदि अवस्थित नहीं हैं, अर्थात्-अनवस्थित हैं। अतः अंग-आंगी-समास भी नहीं है। अथवा, सर्वसमाहार विषयक द्वन्द्वसमास में एकवद्भाव (एकवचन) होता है और समाहार द्वन्द्व एक प्राणी के अंग में होता है किन्तु यहाँ शरीर, वचन, मन आदि नाना प्राणियों के विवक्षित हैं इसलिए यहाँ सूत्र में शरीर वाङ् मनः प्राणापानाः यह वहवचन है, एकवचन नहीं हो सकता। (39)

पुद्गल शब्द का अर्थ पूर्व में कह चुके हैं। पुद्गल शब्द का अर्थ पूरण गलन वाला पदार्थ या जो पुरुष (आत्मा) के द्वारा कर्म और नोकर्म रूप से ग्रहण किया जाता है। इसका विशेष वर्णन पूर्व में किया है। (40)

उपग्रह का प्रकरण होने से यहाँ कर्ता में षष्ठी विभक्ति है। प्रकरण में आया हुआ उपग्रह शब्द भाव साधन है, अतः अनुकृत कर्ता में 'पुद्गलानां' यहाँ पर कर्ता अर्थ में षष्ठी विभक्ति जाननी चाहिए। इसलिए शरीर आदि परिणामों (पर्यायों) द्वारा पुद्गल आत्मा के उपकार का है, ऐसा अर्थ स्वयंमेव हो जाता है। यह कर्म से मलीमस आत्मा सक्रिय है, अतः वे शरीरदिकृत उपकार को बन्धपूर्वक स्वीकार करते हैं, उनका अनुभव करते हैं ऐसा कहा है। यदि आत्मा को सर्वथा निष्क्रिय एवं अत्यन्त शुद्ध आत्मा माना जाय तो शरीरादि के द्वारा बन्ध का अभाव हो जाने से शरीरकृत उपकार का अनुभव नहीं होगा तथा क्रिया के

हेतु शरीर कृत उपकार के अनुभव का अभाव होने से संसार का भी अभाव होगा और संसार के अभाव में मोक्ष कैसे होगा अर्थात् मोक्ष का सद्भाव भी नहीं हो सकेगा।

परिणाम विशेष से गृहित पुद्गल जैसे - शरीरवचन मन और श्वासोच्छ्वास रूप से चटुष्टय गमन, व्यवहरण चिन्तवन और श्वासोच्छ्वास रूप से जीव का उपकार करते हैं वैसे सुख आदि भी पुद्गल उपकार हैं।

सांसारिक सुख - दुःख भी पौद्गलिक

सुखदुःखजीवित मरणोपग्रहाश्च।

(सूत्र 20, तत्वार्थवार्तिक - II, पृ. 147)

सुख, दुःख, जीवित और मरण भी पुद्गल का उपकार है।

(1) सुख-वाहय कारणों के कारण और साता वेदनीय के उदय से जो प्रसन्नता होती है, उसे सुख कहते हैं। जब आत्मा से बद्ध साता वेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि वाहय कारणों से परिपाक को प्राप्त होता है तब आत्मा को जो प्रीति या प्रसन्नता होती है उसे सुख कहते हैं।

(2) दुःख - तथा असाता वेदनीय कर्म के उदय से आत्म परिणामों में संक्लेश होता है वह दुःख है। जब आत्मा से बद्ध आसाता वेदनीय कर्म द्रव्य, क्षेत्रादि वाहय कारणों से परिपाक को प्राप्त होते हैं तब आत्मा के जो संक्लेश परिणम होते हैं वह दुःख कहा जाता है अर्थात् साता वेदनीय के उदय को सुख और असाता वेदनीय के उदय को दुःख कहते हैं।

(3) जीवित - भव स्थिति में कारण भूत आयुकर्म द्रव्यसे सम्बन्धित जीव के प्राणापान लक्षण क्रिया का उपरम नहीं होना ही जीवित है। भवधारण में कारण आयु नाम का कर्म है। उस आयु कर्म के उदय से प्राप्त भवस्थिति को धारण करने वाले जीव के पूर्वोक्त प्राणापान (श्वासोच्छ्वास) क्रिया का चालू रहना उसका उच्छेद नहीं होना ही जीवित है।

(4) मरण - उस श्वासोच्छ्वास का उच्छेद ही मरण है। जीव के जीवित में कारणभूत श्वासोच्छ्वास का उच्छेद ही जीव का मरण है।

सारे प्रयत्न सुख के लिए है अतः आदि में सुख को ग्रहण किया है। सर्व प्राणियों के लिए प्रयत्न सुख के लिए होते हैं अतः सुख ग्रहण सर्वप्रथम किया है।

(5) सुख का प्रतिपक्षी होने से सुख के बाद दुःख का ग्रहण किया है। अप्रीति का कारण होने से सुख का प्रतिपक्षीभूत दुःख है, अतः सुख के बाद दुःख का कथन किया है।

(6) जीवन में सुख-दुःख दोनों होते हैं अतः सुख-दुःख के अनन्तर जीवन कहा है। जीवित प्राणी के ही सुख और दुःख होते हैं अतः सुख और दुःख के आधारभूत

- जीवित को ग्रहण किया है।
- (7) अन्त में प्राप्य होने से मरण को अन्त में कहा है। आयुक्षय के निमित्त से होने वाला मरण प्राणियों के द्वारा अन्त में प्राप्त होता है अतः उसको अन्त में कहा है। सुख-दुःख-जीवन-मरण रूप उपकार पुद्गलकृत हैं अर्थात् पुद्गल के संयोग से उत्पन्न कर्म के उदय से जीवन-मरण, सुख-दुःख होता है, कर्म के रहित मुक्तात्मा का न मरण हैं, न जीवन हैं न साता-असाता वेदनीयजन्य सुख-दुःख हैं, पुद्गल के निमित्त से होने के कारण वे पौद्गलिक कहलाते हैं।
- (8) स्व-उपग्रह को दिखाने के लिए उपग्रह का प्रकरण होने पर भी उपग्रह वचन को पुनः ग्रहण किया है।

प्रश्न - यहाँ उपग्रह का प्रकरण हैं कि शरीर वचन, मन, श्वासोच्छ्वास, सुख-दुःख, जीवन और मरण के द्वारा पुद्गल, जीवों का उपकार करते हैं। अतः पुनः इस सूत्र में उपग्रह शब्द का प्रयोग निरर्थक है।

उत्तर - यहाँ उपग्रह शब्द निरर्थक नहीं है। यद्यपि यहाँ उपग्रह का प्रकरण है फिर भी इस सूत्र में उपग्रह का ग्रहण पुद्गलों के स्वोपकार की सूचना करने के लिए है। जैसे धर्म, अधर्म और आकाश अन्य जीव और पुद्गलों का उपग्रह मात्र करते हैं वैसे पुद्गलों का उपकार नहीं करते हैं। पुद्गलों का स्व-उपकार भी हैं अर्थात् पुद्गल परस्पर पुद्गल का उपकार भी करते हैं इसलिए सूत्र में पुनः 'उपग्रह' शब्द का ग्रहण किया गया है। जैस-कांसी आदि का भरम, जलादि का कल्पकादि और लोहे आदि का जलादि उपकार करते हैं। अर्थात् कांसे को भरम से स्वच्छ किया जाता है, पानी में कल्पकफल डाल देने से पानी स्वच्छ हो जाता है, तलवार की धार करने के लिए या वस्त्र को, जमीन को स्वच्छ करने के लिए जल का प्रयोग किया जाता है, शरीर में पौद्गलिक कर्मों के उदय का उपशमन करने के लिए पौद्गलिक औषधि खाई जाती है, उससे रोग दूर होता है अतः पुद्गल: पुद्गल का उपकार करता है।

(9) मरण आत्मा का उपकार नहीं है, ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि दुःखी प्राणी को मरण भी प्रिय होता है।

शंका - अनिष्ट होने से मरण किसी को भी प्रिय नहीं हैं इसलिए मरण आत्मा का उपकार नहीं हो सकता ?

उत्तर - यद्यपि साधारणतया मरण किसी को भी प्रिय नहीं परन्तु-व्याधि-पीड़ा, शोकादि से व्याकुल प्राणी 'जिसको जीवन से घृणा हो चुकी है' उसको लोक में मरण भी प्रिय होता है। अतः मरण को भी उपकार श्रेणी में ले लिया है। (10)

दुःख के समान प्रयोजन प्रतिपादन करने का हेतु होने से मरण को भी उपकार कहा गया है। अथवा, यहाँ उपकार शब्द से इष्ट पदार्थ नहीं लिया गया है किन्तु पुद्गलों के

द्वारा होने वाले समस्त कार्य लिये गये हैं। पुद्गल के संयोग से आत्मा में जो-जो विकृति होती है, उसके लिए उपकार शब्द का प्रयोग है, इष्ट पदार्थ के लिए नहीं, जैसे-दुःख भी अनिष्ट हैं, परन्तु पुद्गलकृत प्रयोजन होने से दुःख का निर्देश किया है, वैसे ही पुद्गल का प्रयोजन बताने के किए मरण को उपकार माना है। (11)

लघव के लिए दोनों सूत्रों का एक सूत्र बताने की आशंका भी नहीं करनी चाहिए क्योंकि सन्देह की निवृत्ति के लिए पृथक्-पृथक् सूत्र की रचना की गई है।

शंका - 'शरीरवाङ्', मनः प्राणापाना, सुख-दुःखजीवित मरणोपग्रहाश्च पुद्गलानां' इन दोनों का एक सूत्र करने से सूत्र में लघुता आती हैं इसलिए इन दोनों का एक सूत्र करना चाहिए।

उत्तर - 'शरीरवाङ्', मनः तथा 'सुख-दुःख' इन दोनों का यदि एक सूत्र बनाते हैं तो सन्देह होता कि शरीरादि चार के क्रमशः सुख-दुःख आदि चार फल हैं, उस अनिष्ट आशंका की निवृत्ति के लिए पृथक् सूत्र की रचना की हैं तथा सुख-दुःख, जीवित-मरण आदि का सम्बन्ध उत्तर सूत्र में कथित जीवोपकारों से भी जुड़ता है, अतः पृथक्-पृथक् सूत्र ही बनाया गया है। (12)

एकान्तिक नित्य वा अनित्य पक्ष में विकार और अवरथान का अभाव होने से सुख-दुःखादि नहीं हो सकते। कथञ्चित् नित्यानित्य आत्मा के ही सुख-दुःखादि हो सकते हैं सर्वथा नित्य वा सर्वथा अनित्य आत्मा के सुख-दुःखादि हो सकते, क्योंकि नित्य पक्ष में विकार परिणमन नहीं और अनित्य पक्ष में अवरथान नहीं। जैसे-नित्य पक्ष में आत्मा पूर्व और उत्तर काल में सर्वथा एक जैसी बनी रहती हैं, अतः परिणामानन्तर संक्रान्ति लक्षण विकार का अभाव होने से सुख-दुःखादि की कल्पना ही नहीं हो सकती। आत्मा को सर्वथा अनित्य मानने वालों की आत्माके अवरथान का अभाव है अतः पूर्व-उत्तर काल न होने से अनित्य पक्ष में आत्मा के सुख दुःखादि उत्पन्न नहीं हो सकते, क्योंकि अवस्थित आत्मा के ही इष्ट अनिष्ट स्पर्श आदि का सन्निपात् होने पर सुख-दुःखादि उत्पन्न हो सकते हैं। वे सुख-दुःखादि अकर्मात् नहीं होते। अर्थात् ये क्रियायें विना कारण नहीं होती। सुख-दुःखादि कुशलाकुशल भावनापूर्वक होते हैं। कुशल और अकुशल भावनाएँ, पूर्वानुभूत की स्मृति और तत्पूर्वक (स्मृति पूर्वक) चेष्टाओं से संबंध रखती है और स्मृति आदि अनवस्थित (क्षणिक) आत्मा के हो नहीं सकती अर्थात् जिसके सिद्धान्त में आत्मा का निरन्वय नाश माना है उसके पूर्वानुभूत पदार्थ की स्मृति नहीं हो सकती, क्योंकि अनुभव करने वाले आत्मा का ही सर्वथा नाश हो जाने पर स्मरण किसका होगा, अनुभूत का ही स्मरण होता है, अनुभूत तथा दूसरे के द्वारा अनुभूत का स्मरण नहीं हो सकता। अतः नित्यानित्यात्मक

आत्मा के ही सुख-दुःखादि का निरूपण करना निर्देष हैं, अर्थात् युक्ति संगत हैं। (13)

विभिन्न जीवों की उत्पत्ति आदि

अनेकविध वनस्पतिकायिक जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया

(722)-आयुष्मान् ! मैंने सुना है, उन भगवान् श्री महावीर र्वामी न रहा था - इस तीर्थकर देव के शासन (निर्गम्य प्रवचन) में आहारपरिज्ञा नामक एक अध्ययन है, जिसका अर्थ (भाव) यह है - इस समग्र लोक में पूर्व आदि दिशाओं तथा उर्ध्व आदि विदिशाओं में सर्वत्र चार प्रकार के वीज काय वाले जीव होते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - अग्रवीज, मूलवीज, पर्ववीज एवं रकन्धवीज। (सूत्रकृतांग सूत्र, पृ. 108)

(723) (1) - उन वीज कायिक जीवों में जो जिस प्रकार के वीज से, जिस-जिस अवकाश (उत्पत्ति स्थान अथवा भूमि जल, काल, आकाश और वीज के संयोग) से उत्पन्न होने की योग्यता रखते हैं, वे उस उस वीज से तथा उस-उस अवकाश में उत्पन्न होते हैं। इस दृष्टि से कई वीज कायिक जीव पृथ्वीयोनिक होते हैं, पृथ्वी पर (उस वीज और अवकाश से) उत्पन्न होते हैं, उसी पर स्थित रहते हैं और उसी पर उनका विकास होता है।

इसलिए पृथ्वीक्योनिक, पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले और उसी पर स्थित रहने व बढ़ने वाले वे जीव (वीज-कायिक प्राणी) कर्म के वशीभूत होकर तथा कर्म के निदान (आदिकारण) से आकर्षित होकर वहीं (पृथ्वी पर ही) वृद्धिगत होकर नाना प्रकार की योनि वाली पृथ्वियों पर वृक्ष रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव नाना जाति की योनियों वाली पृथ्वियों के स्नेह (स्निघ्नता) का आहार करते हैं। वे जीव (स्वशरीर सन्निकृष्ट) पृथ्वी शरीर अप-शरीर (भौम या आकाशीय जल के शरीर) तेज़: शरीर, (अग्नि की राख आदि) वायु शरीर और वनस्पति शरीर का आहार करते हैं। तथा वे पृथ्वी जीव नाना-प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त (प्रासुक) कर देते हैं। वे आदि के अत्यन्त विध्वस्त (पूर्व जीव से मुक्त) उस शरीर को कुछ प्रासुक कुछ परितापित कर देते हैं, वे (वनस्पतिजीव) इन (पृथ्वीकायादि) के पूर्व - आहारित (पृथ्वीकायादि से उत्पत्ति के समय उसका जो आहार किया था, और स्वशरीर के रूप में परिणित) किया था, उसे अब भी (उत्पत्ति के बाद भी) त्वचास्पर्श द्वारा आहार करते हैं, तत्पश्चात् उन्हें स्वशरीर के रूप में विपरिणित करते हैं और उक्त विपरिणित शरीर को स्व स्वरूप (स्वसमान रूप) कर लेते हैं। इस प्रकार वे सर्व दिशाओं से आहार करते हैं।

उन पृथ्वीयोनिक वृक्षों के दूसरे (मूल, शाखा, प्रशाखा, पत्र, पुष्प फलादि के रूप में बने हुए) शरीर भी अनेक वर्ण अनेक गन्ध, नाना रस, नाना स्पर्श के तथा नाना संरथानों से संस्थित एवं नाना प्रकार के शारीरिक पुद्गलों (रस, वीर्य आदि) से विकुर्वित होकर बनते हैं। वे जीव कर्मों के उदय (एकेन्द्रिय जाति, स्थावरनाम, वनस्पति योग्य आयुष्य आदि कर्मों के

उदय) के अनुसार स्थावरयोनि में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थकरों ने कहा है।

(2) इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने पहले (वनस्पतिकाय का दूसरा भेद) बताया है, कि कई सत्त्व (वनस्पतिकाय जीव) वृक्ष में ही उत्पत्र होते हैं, अतएव वे वृक्षयोनिक होते हैं, वृक्ष में स्थित रह कर वहीं वृद्धि को प्राप्त होते हैं। (पूर्वोक्त प्रकार से) वृक्षयोनिक वृक्ष में उत्पन्न, उसी में स्थित और वृद्धि को प्राप्त करने वाले कर्मों के उदय के कारण वे (वनस्पतिकाय के अंगभूत) जीव कर्म से आकृष्ट होकर पृथ्वीयोनिकवृक्षों में वृक्षरूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन पृथ्वीयोनिक वृक्षों से उनके स्नेह (स्निघ्नता) का आहार करते हैं, तथा वे जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं। वे नाना प्रकार के त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त (प्रासुक) कर डालते हैं। वे परिविध्वस्त (प्रासुक) किये हुए एवं पहले आहार किये हुए, तथा त्वचा द्वारा आहार किये हुए पृथ्वी आदि शरीरों को विपरिणामित (पचा) कर अपने-अपने संमान स्वरूप में परिणित कर लेते हैं। वे सर्व दिशाओं से आहार लेते हैं। उन वृक्षयोनिक वृक्षों के नाना वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले, अनेक प्रकार के संरथानों (अवयवरचनाओं) से युक्त दूसरे शरीर भी होते हैं, जो अनेक प्रकार के शारीरिक (शरीरगत रस, वीर्य आदि) पुद्गलों से विकुर्वित (विरचित) होते हैं। वे जीव कर्म के उदय के अनुरूप ही पृथ्वीयोनिक वृक्षों में उत्पत्र होते हैं, यह श्रीतीर्थकर देव ने कहा है।

(3) इसके पश्चात् श्रीतीर्थकर देव ने वनस्पतिकायिक जीवों का अन्य भेद बताया है। इसी वनस्पतिक्यर्वग में कई जीव वृक्षयोनिक होते हैं, वे वृक्ष में उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थिति एवं वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वृक्ष में उत्पन्न होने वाले, उसी में स्थित रहने और उसी में संवृद्धि पानेवाले वृक्षयोनिक जीव कर्म के वशीभूत होकर कर्म के ही कारण उस वृक्ष में आकर वृक्षयोनिक जीवों में वृक्षरूप से उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन वृक्षयोनिक वृक्षों के स्नेह (स्निघ्नता) का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति के शरीर का भी आहार करते हैं। वे त्रस और स्थावर प्राणियों के शरीर को अचित्त (प्रासुक) कर देते हैं। परिविध्वस्त (प्रासुक) किये हुए, तथा पहले आहार किये हुए और पीछे त्वचा के द्वारा आहार किये हुए पृथ्वी आदि के शरीरों को पचा कर अपने रूप में मिला लेते हैं। उन वृक्षयोनिक वृक्षों के नाना वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले दूसरे शरीर (मूल, कन्द, रकन्धादि) होते हैं। वे जीव कर्मोंदय वश वृक्षयोनिक वृक्षों में उत्पन्न होते हैं।

(4) श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पतिकायिक जीवों के और भेद भी बताए हैं। इस वनस्पतिकायर्वग में कई जीव वृक्षयोनिक होते हैं, वे वृक्ष में ही उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थित रहते हैं, वृक्ष में ही संवृद्धित होते रहते हैं। वे वृक्षयोनिक जीव उसी में उत्पन्न, स्थित एवं सवृद्ध होकर कर्मोंदयवश उन-उन कर्मों के कारण वृक्षों में आते हैं और वृक्षयोनिक वृक्षों

में मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा (छाल) शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल एवं बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन वृक्षयोनिक वृक्षों के रनेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं।

वे जीव नाना प्रकार के त्रस और स्थावर जीवों के (सचित्त शरीर में से रस खींच कर उनके) शरीर को अचित्त कर देते हैं। फिर प्रासुक (परिविध्वस्त) हुए उनके शरीरों को पचा कर अपने समान रूप में परिणित कर डालते हैं। उन वृक्षयोनिक मूल, कन्द, स्कन्ध, (त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज रूप जीवों के और भी शरीर होते हैं, जो नाना वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श वाले तथा नाना प्रकार के पुद्गलों से बने हुए होते हैं। ये जीव कर्मोदय-वश ही वहाँ उत्पन्न होते हैं, यह तीर्थकरदेव ने कहा है।

(724) (1) - श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पति काय के अन्य भेद भी बताए हैं। इस वनस्पतिकाय जगत् में कई वृक्षयोनिक जीव वृक्ष में ही उत्पन्न होते हैं, वृक्ष में ही स्थित रहते एवं बढ़ते हैं। इस प्रकार उसी में उत्पन्न, स्थित और संवर्धित होने वाले वे वृक्षयोनिक जीव कर्मोदयवश तथा कर्म के कारण ही वृक्षों में आकर उन वृक्षयोनिक वृक्षों में 'अध्यारुह' वनस्पति के रूप में 'उत्पन्न होते हैं। वे (अध्यारुह) जीव वृक्षयोनिक वृक्षों के रनेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी से लेकर वनस्पति तक के शरीर का भी आहार करते हैं। यहाँ तक कि वे उन्हें अचित्त, प्रासुक एवं परिणामित करके अपने स्वरूप में मिला लेते हैं। उन वृक्षयोनिक अध्यारुह वनस्पति के नाना प्रकार के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले तथा अनेक विधि रचना वाले एवं विविध पुद्गलों से बने हुए दूसरे शरीर भी होते हैं। वे अध्यारुह वनस्पति जीव स्वकर्मोदयवश कर्मप्रेरित होकर ही वहाँ उस रूप में उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्रीतीर्थकरदेव ने कहा है। (2) श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पतिकाय के और भी भेद कहे हैं। इस वनस्पतिकायजगत् में अध्यारुहयोनिक जीव अध्यारुह में ही उत्पन्न होते हैं, उसी में स्थित रहते, एवं संवर्द्धित होते हैं। वे जीव कर्मोदय के कारण ही वहाँ आकर वृक्षयोनिक अध्यारुह वृक्षों में अध्यारुह के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन वृक्ष योनिक अध्यरुहों के रनेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी से लेकर वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं। वे त्रस और स्थावर जीवों के शरीर से रस खींच कर उन्हें अचित्त कर डालते हैं, फिर उनके परिविध्वस्त शरीर को पचा कर अपने रूप में परिणित कर लेते हैं। उन अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वनस्पतियों के अनेक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले, नाना संस्थान वाले, अनेकविधि पुद्गलों से बने हुए और भी शरीर होते हैं। वे जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के प्रभाव से ही अध्यारुहयोनिक अध्यारुहों में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थकर प्रभु ने कहा है।

(3) श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पतिकाय के और भी भेदों का प्रतिपादन पहले

किया है। इस वनस्पतिकायिक जगत् में कई अध्यारुहयोनिक प्राणी अध्यारुह वृक्षों में ही उत्पन्न होते हैं, उन्हीं में उनकी स्थिति और समृद्धि होती है। वे प्राणी तथा प्रकार के कर्मोदयवश वहाँ आते हैं और अध्यारुहयोनिक वृक्षों में अध्यारुह रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के रनेह का आहार करते हैं। उसके अतिरिक्त वे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति के शरीरों का भी आहार करते हैं। तथा वे जीव त्रस और स्थावरप्राणियों के शरीर से रस खींच कर उन्हें अचित्त, प्रासुक एवं विपरिणामित करके अपने स्वरूप में परिणित कर लेते हैं। उन अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के नाना वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थानों से युक्त, विविध पुद्गलों से रचित दूसरे शरीर भी होते हैं, स्वकृतकर्मोदयवश ही वहाँ उत्पन्न होते हैं, ऐसा श्रीतीर्थकर भगवान् ने कहा है।

(4) श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पतिकाय के और भी भेदों का निरूपण किया है। इस वनस्पतिकाय जगत् में कई जीव अध्यारुहयोनिक होते हैं। वे अध्यारुह वृक्षों में उत्पन्न होते हैं, तथा उन्हीं में स्थित रहते हैं और बढ़ते हैं। वे अपने पूर्वकृत कर्मों से प्रेरित होकर अध्यारुह वृक्षों में आते हैं और अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल एवं बीज के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे (पूर्वोक्तम्) जीव उन अध्यारुहयोनिक अध्यारुह वृक्षों के रनेह का आहार करते हैं। तदतिरिक्त वे पृथ्वी से लेकर वनस्पति तक के शरीरों का भी आहार करते हैं। वे जीव त्रस और स्थावर जीवों के शरीर से रस खींच कर उन्हें अचित्त कर देते हैं। प्रासुक हुए उस शरीर को वे विपरिणामित करके अपने स्वरूप में परिणित कर लेते हैं। उन अध्यारुहयोनिक वृक्षों के मूल से लेकर बीज तक के जीवों के नाना वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श एवं संस्थान से युक्त, अनेक प्रकार के पुद्गलों से रचित अन्य शरीर भी होते हैं। वे (पूर्वोक्त सभी जीव) स्व- स्व कर्मोदयवश ही इनमें उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थकर भगवान् ने कहा है।

(725) (1) - श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पतिकायिक जीवों के और भेद भी बताए हैं। इस वनस्पतिकायिक जगत् में कई प्राणी पृथ्वीयोनिक होते हैं, वे पृथ्वी से ही उत्पन्न होते हैं, पृथ्वी में ही स्थित होकर उसी में संवर्धन पाते हैं। इस प्रकार पृथ्वी में ही उत्पन्न, स्थित एवं संवृद्ध वे जीव स्वकर्मोदयवश ही नाना प्रकार की जाति (योनि) वाली पृथिव्यों पर तृणरूप से उत्पन्न होते हैं। वे तृण के जीव उन नाना जाति वाली पृथिव्यों के रनेह (स्त्रिनाथरस) का आहार करते हैं। वे पृथ्वी से लेकर वनस्पति तक के शरीरों का आहार करते हैं। त्रस- स्थावर जीवों के शरीरों के अचित्त, प्रासुक एवं स्वरूप में परिणित कर लेते हैं। वे जीव कर्म से प्रेरित होकर ही पृथ्वीयोनिक तृण के रूप में उत्पन्न होते हैं, इत्यादि सब वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए। यह सब श्रीतीर्थकर प्रभु ने कहा है।

(2) इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव पृथ्वीयोनिक तृणों में तृण रूप से

उत्पन्न होते हैं, वहीं स्थित रहते, एवं संवृद्ध होते हैं। वे जीव तृणयोनिक तृणों के शरीर का ही आहार ग्रहण करते हैं।

इत्यादि समस्त वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

(3) इसी तरह कई (वनस्पतिकायिक) जीव तृणयोनिक तृणों में (स्वकृत कर्मोदयवश) तृणरूप में उत्पन्न होते हैं, वहीं स्थित एवं संवृद्ध होते हैं। वे जीव तृणयोनिक तृणों के शरीर का ही आहार ग्रहण करते हैं। शेष सारा वर्णन पहले की तरह यहाँ भी समझ लेना चाहिए।

(4) इसी प्रकार कई (वनस्पतिकायिक) जीव तृणयोनिक तृणों में मूल, कन्द, रक्घ, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल एवं वीजरूप में (कर्मोदयवश) उत्पन्न होते हैं, वहीं स्थित रहते एवं संवृद्ध होते हैं। वे उन्हीं तृणयोनिक तृणों का आहार करते हैं। इन जीवों का शेष समस्त वर्णन भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

(726)-इसी प्रकार औषधिरूप में उत्पन्न (वनस्पतिकायिक) जीवों के भी चार आलापक (1) नानाविधि पृथ्वीयोनिक पृथ्वियों में औषधि विविध अन्नादि की पकी हुई फसल के रूप में, (2) पृथ्वीयोनिक औषधियों में औषधि के रूप में, एवं (3) औषधियोनिक औषधियों में औषधि के रूप में, एवं (4) औषधियोनिक औषधियों में (मूल से लेकर बीज तक के रूप में उत्पत्ति) और उनका सारा वर्णन भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

(727)-इसी प्रकार हरितरूप में उत्पन्न वनस्पतिकायिक जीवों के भी चार आलापक (1) नानाविधि पृथ्वीयोनिक पृथ्वियों पर हरित के रूप में, (2) पृथ्वीयोनिक हरितों में हरित के रूप में, (3) हरितयोनिक हरितों में हरित (अध्यारुह) के रूप में, एवं (4) हरितयोनिक हरितों में हरित (अध्यारुह) के रूप में एवं (5) हरित योनिक हरितों में मूल से लेकर बीज तक के रूप में एवं उनका सारा वर्णन भी पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

(728) श्रीतीर्थकरदेव ने वनस्पतिकाय के और भी भेद बताए हैं। इस वनस्पतिकाय जगत् में कई जीव पृथ्वीयोनिक होते हैं, वे पृथ्वी से उत्पन्न होते हैं, पृथ्वी पर ही रहते और उसी पर ही विकरित होते हैं। वे पूर्वोक्त पृथ्वीयोनिक वनस्पतिजीव स्व-स्वकर्मोदयवश कर्म के कारण ही वहाँ आकर उत्पन्न होते हैं। वे नाना प्रकार की योनि (जाति) वाली पृथ्वियों पर आर्य, वाय, काय, कहूण, कन्तुक, गोद्धणी, निर्वेहणी, सछत्रक, छत्रक, वासानी एवं क्रूर नामक वनस्पति के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे (पूर्वोक्त) जीव उन नानाविधि योनियों वाली पृथ्वियों के स्नेह का आहार करते हैं, तथा वे जीव पृथ्वीकाय आदि छहों काय के जीवों के शरीर का आहार करते हैं। पहले उनसे रस खीच कर वे उन्हें अचित्त-प्रासुक कर देते हैं, फिर उन्हें अपने रूप में परिणित कर लेते हैं। उन पृथ्वीयोनिक (विविध पृथ्वियों से उत्पन्न) आर्यवनस्पति से लेकर क्रूरवनस्पति तक के जीवों के विभिन्न

वर्ण, गन्ध रस, स्पर्श आकार-प्रकार और ढांचे वाले तथा विविध पुद्गलों से रचित दूसरे शरीर भी होते हैं। इन जीवों का एक ही आलापक होता है, शेष तीन आलापक नहीं होते।

(729)-श्रीतीर्थकरभु ने वनस्पतिकाय के और भी भेदों का निरूपण किया है। इन वनस्पतिकायजगत् में कई उदकयोनिक (जल में उत्पन्न होने वाली) वनस्पतियाँ होती हैं, जो जल में ही उत्पन्न होती है, जल में ही रहती और उसी में वढ़ती है। वे उदकयोनिक वनस्पति जीव पूर्वकृत कर्मोदयवश कर्मों के कारण ही उनमें आते हैं और नाना प्रकार की योनियों (जातियों) वाले उदकों (जलकायों) में वृक्षरूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव नानाप्रकार के जाति वाले जलों के स्नेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी जल, तेज, वायु और वनस्पतिकाय के शरीरों का भी आहार करते हैं। उन जलयोनिक वृक्षों के विभिन्न वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान वाले तथा विविध पुद्गलों से रचित दूसरे शरीर भी होते हैं। वे जीव स्वकर्मोदयवश ही जलयोनिक वृक्षों में उत्पन्न होते हैं। जैसे पृथ्वीयोनिक वृक्ष के चार भेदों के प्रत्येक के चार-चार आलापक बताए गए थे, वैसे ही यहाँ जलयोनिक वृक्षों के भी चार भेदों (वृक्ष, अध्यारुह वृक्ष, तृण और हस्ति) के भी प्रत्येक के चार-चार आलापक कहने चाहिए।

(730)-श्रीतीर्थकर भगवान् ने वनस्पतिकाय के और भेद भी बताए हैं। इस वनस्पतिकायजगत् में कई जीव उदकयोनिक होते हैं, जो जल में उत्पन्न होते हैं, वहीं रहते और वहीं संवृद्धि पाते हैं। वे जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण ही तथारूप वनस्पतिकाय में आते हैं और वहाँ वे अनेक प्रकार की योनि (जाति) के उदकों में उदक, अवक, घनक (काई) शैवाल, कलम्बुक, हड, कर्सेरुक, कच्छभाणितक, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगम्यिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कलहार कोकनद, अरविन्द, तामस्स, भिस, मृणाल, पुष्कर, पुष्कराक्षिभग के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव नाना जाति वालों जलों के स्नेह का आहार करते हैं, तथा पृथ्वीकाय आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं। उन जलयोनिक वनस्पतियों के उदक से लेकर पुष्कराक्षिभग तक जो नाम बताए गए हैं, उनके विभिन्न वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थान (अवयव-रचना) से युक्त एवं नानाविधि पुद्गलों से रचित दूसरे शरीर भी होते हैं। वे सभी जीव स्व-कृतकर्मानुसार ही इन जीवों में उत्पन्न होते हैं, ऐसा तीर्थकरदेव ने कहा है। इसमें केवल एक ही आलापक होता है।

(731)-(1) श्रीतीर्थकरदेव ने जीवों के अन्य भेद भी बताए हैं- इस वनस्पतिकायिक जगत् में कई जीव-पृथ्वीयोनिक वृक्षों में, कई वृक्षयोनिक मूल से लेकर वीजपर्यन्त अवयवों में, कई वृक्षयोनिक अध्यारुह वृक्षों में, कई अध्यारुह योनिक अध्यारुहों में कई अध्यारुहयोनिक मूल से लेकर वीजपर्यन्त अवयवों में, कई पृथ्वीयोनिक तृणों में, कई तृणयोनिक मूल से लेकर वीजपर्यन्त अवयवों में, इसी तरह औषधि और हरितों के सम्बन्ध में

तीन-तीन आलापक कहे गए हैं, (कई उनमें), कई पृथ्वीयोनिक आर्य कायसे लेकर कूट तक के वनस्पतिकायिक अवयवों में, 'कई उदकयोनिक वृक्षों में, वृक्षयोनिक वृक्षों में, तथा' वृक्षयोनिक मूल से लेकर बीज तक के अवयवों में, इसी तरह अध्यारुहों, तृणों, औषधियों और हरितों में (पूर्वोक्त तीन-तीन आलापक कहे गए हैं, (उनमें), तथा कई उदकयोनिक उदक, अवक से लेकर पुष्कराक्षिभगों में त्रस प्राणी के रूप में उत्पन्न होते हैं।

(2) वे जीव उन पृथ्वीयोनिक वृक्षों के, जलयोनिक वृक्षों के, अध्यारुहयोनिक वृक्षों के, एवं तृणयोनिक, औषधियोनिक, हरितयोनिक वृक्षों के तथा वृक्ष, अध्यारुह, तृण, औषधि, हरित, एवं मूल से लेकर बीज तक के तथा आर्य काय से लेकर कूट वनस्पति तक के एवं उदक अवक से लेकर पुष्कराक्षिभग वनस्पति तक के स्नेह का आहार करते हैं। वे जीव पृथ्वी आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं। उन वृक्षयोनिक, अध्यारुहयोनिक, तृणयोनिक, औषधियोनिक, हरितयोनिक, मूलयोनिक, कन्दयोनिक, से लेकर बीजयोनिक पर्यन्त तथा आर्य काय से लेकर कूटयोनिक पर्यन्त एवं अवक अवकयोनि से लेकर पुष्कराक्षिभगयोनिक पर्यन्त त्रसजीवों के नाना वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं संस्थान से युक्त तथा विविध पुद्गलों से रचित दूसरे शरीर भी होते हैं। ये सभी जीव स्वरचकर्मानुसार ही अमुक-अमुक रूप से अमुकयोनि में उत्पन्न होते हैं। ऐसा तीर्थकरदेव ने कहा है।

विवेचन - अनेकविध वनस्पतिकायिक जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि और आहार की प्रक्रिया-प्रस्तुत दस सूत्रों (722 से 731 तक) में शास्त्रकार ने वनस्पतिकाय जीव के बीज, वृक्ष आदि भेदों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि तथा आहार की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन किया है।

वनस्पतिकायिक जीवों के मुख्य प्रकार - वनस्पतिकायिक जीवों के यहाँ मुख्यतया निम्नोक्त भेदों का उल्लेख है - बीजकायिक, पृथ्वी-योनिकवृक्ष, वृक्षयोनिकवृक्षों में वृक्ष, वृक्षयोनिक वृक्षों से उत्पन्न मूल आदि से लेकर बीज तक, वृक्षयोनिक वृक्षों से उत्पन्न अध्यारुह, वृक्षयोनिक अध्यारुहों में उत्पन्न अध्यारुह, अध्यारुहयोनिकों में उत्पन्न अध्यारुह, अध्यारुहयोनिक अध्यारुहों में उत्पन्न मूल से लेकर बीज तक अवयव, अनेकविध पृथ्वीयोनिक तृण, पृथ्वीयोनिक तृणों में उत्पन्न तृण, तृणयोनिक तृणों में उत्पन्न तृण, तृणोनिक तृणों के मूल से लेकर बीज तक अवयव, तथा औषधि हरित, अनेकविध पृथ्वी में उत्पन्न आर्य, वाय से लेकर कूट तक की वनस्पति, उदकयोनिक वृक्ष (अध्यारुह, तृण औषधि तथा हरित आदि), अनेकविध उदकयोनि में उत्पन्न उदक से लेकर पुष्कराक्षिभग तक की वनस्पति आदि।

बीजकायिक जीव चार प्रकार के होते हैं - अग्रवीज (जिसके अग्रभाग में बीज हो, जैसे - तिल, ताल, आय, गेहूँ, चावल आदि), मूलबीज - जो मूल से उत्पन्न होते हैं

जैस अदरक आदि। पर्ववीज (जो पर्व से उत्पन्न होते हैं, जैसे ईख आदि) और स्कन्धबीज (जो स्कन्ध से उत्पन्न होते हैं, जैसे सलकी आदि)

उत्पत्ति के कारण - पूर्वोक्त विविध प्रकार की वनस्पतियों की योनि (मुख्य उत्पत्तिस्थान) भिन्न-भिन्न हैं। पृथ्वी, वृक्ष, जल बीज आदि में से जिस वनस्पति की जो योनि है, वह वनस्पति, उसी योनि से उत्पन्न कहलाती है। वृक्षादि जिस वनस्पति के लिए जो प्रदेश उपयुक्त होता है, उसी प्रदेश में वह (वृक्षादि वनस्पति) उत्पन्न होती है, अन्यत्र नहीं, तथा जिसकी उत्पत्ति के लिए जो काल, भूमि, जल आकाशप्रदेश और बीज आदि आपेक्षित है, उनमें से एक के भी न होने पर वह उत्पन्न नहीं होता। तात्पर्य यह है कि वनस्पतिकायिक विविध प्रकार के जीवों की उत्पत्ति के लिए भिन्न-भिन्न काल, भूमि, जल, बीज आदि तो वाह्य निमित्त कारण हैं साथ ही अन्तरंग कारण कर्म भी एक अनिवार्य कारण है। कर्म से प्रेरित हो कर ही विविध वनस्पतिकायिक जीव नानाविध योनियों में उत्पन्न होता है। कभी यह पृथ्वी से वृक्ष के रूप में उत्पन्न होती है, कभी पृथ्वी से उत्पन्न हुए वृक्षों से वृक्ष के रूप में उत्पन्न होती है, और कभी वृक्षयोनिक, वृक्ष के रूप में उत्पन्न होती है और वृक्षयोनिक वृक्षों से मूल, कन्द, फल, मूल त्वचा, पत्र, बीज, शाखा, वेल, स्कन्ध आदि रूप में उत्पन्न होती है। इसी तरह कभी वृक्षयोनिक वृक्ष से अध्यारुह आदि चार रूपों में उत्पन्न होती है। कभी नानायोनिक पृथ्वी से तृणादि चार रूपों में, कभी आषधि आदि चार रूपों में, तथा कभी हरित आदि चार रूपों में उत्पन्न होती है। कभी वह विविधयोनिक पृथ्वी से सीधे आर्य, वाय से लेकर कूट तक की वनस्पति के रूप में उत्पन्न होती है। कभी वह उदकयोनिक उदक में वृक्ष आदि चार रूप में उत्पन्न होती है, कभी उदक से सीधे ही उदक, अवक से लेकर पुष्कराक्षिभग नाम के वनस्पति के रूप में उत्पन्न होती है। यद्यपि पहले जिन के चार-चार आलापक बताए गए थे, उनके अन्तिम उपसंहारात्मक सूत्र (731) में तीन-तीन आलापक बताए गए हैं। इसका तत्व केवलिगम्य है।

अध्यारुह - वृक्ष आदि के ऊपर एक के बाद एक चढ़ कर जो उग जाते हैं, उन्हें अध्यारुह कहते हैं, इन अध्यारुहों की उत्पत्ति वृक्ष, तृण, औषधि एवं हरित आदि के रूप में यहाँ बताई गई है।

स्थिति, संवृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया-प्रस्तुत सूत्रों में पूर्वोक्त विविध वनस्पतियों की उत्पत्ति एवं संवृद्धि का वर्णन किया गया है, उसका प्रधान प्रयोजन है - इनमें जीव (आत्मा) का अस्तित्व सिद्ध करना। यद्यपि वौद्ध दर्शन में इन स्थावरों को जीव नहीं माना जाता, तथापि जीव का जो लक्षण है - उपयोग, वह इन वृक्षादि में परिलक्षित होता है। यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है कि जिधर आश्रय मिलता है, उसी ओर लता जाती है। तथा विशिष्ट अनुरूप आहार मिलने पर वनस्पति की वृद्धि और न मिलने पर कृशता-म्लानता आदि देखी

जाती है। इन सब कार्यकलापों को देखते हुए वनस्पति में जीवत्व सिद्ध होता है। चूंकि आहार के बिना किसी जीव की स्थिति एवं संवृद्धि (विकास) हो नहीं सकते। इसलिए आहार की विविध प्रक्रिया भी बताई है, जो वनस्पतिकायिक जीव जिस पृथ्वी आदि की योनि में उत्पन्न होता है वह उसी में स्थित रहता है, और उसी से संवर्धन पाता है। मुख्यतया वह उसी के रनेह (स्निधरस) का आहार करता है। इसके अतिरिक्त वह पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं वनस्पतिकाय के शरीर का आहार करता है। पूर्वोक्त वनस्पतिकायिक जीव जब अपने से संसृष्ट या सन्निकट किसी त्रस या स्थावर जीवों का आहार करते हैं, तब वे पूर्वभुक्त त्रस या स्थावर के शरीर को उसका रस चूसकर परीविध्वस्त (अचित्त) कर डालते हैं। (इस प्रकार के अनेक वृक्ष व वनस्पतियाँ पायी जाती हैं, जो मनुष्य व अन्य त्रस प्राणियों को अपने निकट आने पर खींच कर उसका आहार कर लेते हैं।) तत्पश्चात् त्वचा द्वारा भुक्त पृथ्वी आदि या त्रस शरीर को वे अपने रूप में परिणित कर लेते हैं। यही समस्त वनस्पतिकायिक जीवों के आहार की प्रक्रिया है। साथ ही यह भी जान लेना चाहिए कि जो वनस्पति जिस प्रकार के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाले जल, भूमि आदि का आहार लेती है, उसी के अनुसार उसका वर्णादि बनता है, या आकार-प्रकार आदि बनता है। जैसे आम एक ही प्रकार की वनस्पति होते हुए भी विभिन्न प्रदेश की मिट्ठी, जल, वायु एवं वीज आदि के कारण विभिन्न प्रकार के वर्णादि से युक्त, विविध आकार-प्रकार से विशिष्ट नानाशरीरों को धारण करता है। इसी प्रकार अन्य वनस्पतियों के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिए।

रनेह - प्रस्तुत प्रकरण में रनेह शब्द का अर्थ शरीर का सार, या स्निधत्तत्व। जिसे अमुक-अमुक वनस्पति कायिक जीव पी लेता है, या ग्रहण कर लेता है। (रनेह का अर्थ पुरुष और स्त्री के परस्पर गात्रसंरपर्श से जनित पदार्थ।) जब पुरुष का रनेह-शुक्र नारी के उदर में प्रविष्ट होकर नारी के ओज (रज) के साथ मिलता है, तब वह रनेह दूध और पानी की तरह परस्पर एकस्स हो जाता है, उसी रनेह को गर्भस्थ जीव सर्वप्रथम ग्रहण करता है।

नानाविध मनुष्यों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया -

(732) - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने अनेक प्रकार के मनुष्यों का स्वरूप बतलाया है। जैसे कि - कई मनुष्य कर्मभूमि में उत्पन्न होते हैं, कई अकर्मभूमि में और कई अन्तर्द्वीपों (56 अन्तर्द्वीपों) में उत्पन्न होते हैं। कोई आर्य हैं, कोई म्लेच्छ (अनार्य)। उन जीवों की उत्पत्ति अपने-अपने वीज और अपने-अपने अवकाश के अनुसार होती है। इस उत्पत्ति के कारण रूप पूर्वकर्मनिमित्त योनी में स्त्री-पुरुष का मैथुनहेतुक संयोग उत्पन्न होता है। (उस संयोग के होने पर उत्पन्न होने वाले वे जीव तैजस् और कार्मण शरीर द्वारा) दोनों के रनेह का आहार (ग्रहण) करते हैं, तत्पश्चात् वे जीव वहाँ स्त्रीरूप में, पुरुषरूप में और नपुंसकरूप में उत्पन्न होते हैं। सर्वप्रथम

(वहाँ) वे जीव माता के रज (शोणित) और पिता के वीर्य (शुक्र) का, जो परस्पर मिले हुए (संसृष्ट) कलुष (मलिन) और घृणित होते हैं, ओज-आहार करते हैं। उसके पश्चात् माता, जिन अनेक प्रकार की सरस वस्तुओं का आहार करती है वे जीव उसके एक देश (अंश) का ओज आहार करते हैं। **क्रमशः:** (गर्भ की) वृद्धि एवं परिपाक को प्राप्त वे जीव माता के शरीर से निकलते हुए कोई स्त्रीरूप में, कोई पुरुषरूप में, कोई नपुंसकरूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव बालक होकर माता के दूध और धी का आहार करते हैं। **क्रमशः:** वडे होकर वे जीव चावल, कुलमाष (उड्ड या थोड़ा भीगा हुआ मूँग) एवं त्रस स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति के शरीर का आहार करते हैं। फिर वे उनके शरीर को अचित्त करके उन्हें अपने रूप में परिणित कर लेते हैं। उन कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज, अन्तर्द्वीपज, आर्य और म्लेच्छ आदि अनेकविध मनुष्यों के शरीर नानावर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श एवं संस्थान वाले नाना पुद्गलों से रचित होते हैं। ऐसा तीर्थकर देव ने कहा है।

विवेचन - मनुष्यों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया-प्रस्तुत सूत्र में अनेक प्रकार के मनुष्यों की उत्पत्ति, आदि की प्रक्रिया का निरूपण किया गया है।

नारक और देव से पहले मनुष्यों के आहारादि, का वर्णन क्यों ? - त्रस जीवों के 4 भेद हैं - नारक, देव, तिर्यच और मनुष्य। इन चारों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इसके अतिरिक्त देव और नारक अल्पज्ञों द्वारा प्रलयक्ष नहीं दिखाई देते, अनुमान-आगम से जाने जाते हैं, इस कारण देव एवं नारक को छोड़कर यहाँ सर्वप्रथम मनुष्य के आहारादि का वर्णन किया गया है। देव और नारकों का आहार - नारक जीव अपने पापकर्मों का फल भोगनेवाले जीव है, जबकि देव प्रायः अपने शुभकर्मों का फल भोगनेवाले जीव हैं। नारक जीवों का आहार एकान्त अशुभपुद्गलों का होता है, जबकि देवों का आहार शुभपुद्गलों का होता है। देव और नारक दोनों ही ओज आहार को ग्रहण करते हैं क्वलाहार नहीं करते। ओज आहार दो प्रकार का होता है - पहला अनाभोगकृत, जो प्रतिसमय होता रहता है, दूसरा अभोगकृत, जो जघन्य चतुर्थभक्त से लेकर उत्कृष्ट 33 हजार वर्ष में होता है।

मनुष्य की उत्पत्ति की प्रक्रिया - जब स्त्री और पुरुष का सुरतसुर्येच्छा से संयोग होता है, तब जीव अपने कर्मानुसार स्त्री के गर्भ में उत्पन्न होता है। वह संयोग उस जीव की उत्पत्ति का कारण उसी तरह होता है, जिस तरह दो अरणि की लकड़ियों का संयोग (घर्षण) अन्निकैउत्पत्ति का कारण होता है। उत्पन्न होने वाला जीव कम्पिएरित होकर तैजस-कार्मणशरीर के द्वारा पुरुष के शुक्र और स्त्री के शोणित (रज) के आश्रय से उत्पन्न होता है।

स्त्री, पुरुष एवं नपुंसक की उत्पत्ति का रहस्य-शास्त्रकार ने इसके रहस्य के लिए दो मुख्य कारण बताए हैं - यथा वीज एवं यथावकाश। इसका आशय बताते हुए

वृत्तिकार कहते हैं - बीज कहते हैं - पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज को। सामान्यतया स्त्री, पुरुष या नपुंसक की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न बीज के अनुसार होती है। स्त्री का रज और पुरुष का वीर्य दोनों अविधरस्त हैं, यानी संतानोत्पत्ति की योग्यता वाले हो - दोषरहित हों और रज की अपेक्षा वीर्य की मात्रा अधिक हों तो पुरुष की, रज की मात्रा अधिक और वीर्य की मात्रा कम हो तो स्त्री की एवं दोनों समान मात्रा में हो तो नपुंसक की उत्पत्ति होती है।

55 वर्ष से कम उम्र की स्त्री की एवं 70 वर्ष से कम उम्र के पुरुष की अविधरस्तयोनी संतानोत्पत्ति का कारण मानी जाती है। इसके अतिरिक्त शुक्र-शोणित भी 12 मुहूर्त तक ही संतानोत्पत्ति की शक्ति रखते हैं, तत्पश्चात् वे शक्तिहीन एवं विधरस्तयोनी हो जाते हैं। इस भिन्नता का दूसरा कारण वताया है - 'यथावकाश' अर्थात् माता के उदर, कुक्षि आदि के अवकाश के अनुसार स्त्री, पुरुष या नपुंसक होता है। सामान्यतया माता की दक्षिण कुक्षि से पुरुष की एवं वामकुक्षि से स्त्री की तथा दोनों की कुक्षि से नपुंसक की उत्पत्ति होती है।

इसके अतिरिक्त स्त्री, पुरुष या नपुंसक होने का सबसे प्रधान कारण प्राणी का स्वकृत कर्म है। ऐसा सिद्धांत नहीं है कि स्त्री मर कर अगले जन्म में स्त्री ही हो, पुरुष मर कर पुरुष ही हो। यह सब कर्माधीन है। कर्मानुसार ही वैसे बीज और वैसे अवकाश का संयोग मिलता है।

स्थिति, वृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया - स्त्री की कुक्षि में प्रविष्ट होकर वह प्राणी स्त्री द्वारा आहार किए हुए पदार्थों के स्नेह का आहार करता है। उस स्नेह के रूप में प्राप्त माता के आहारांश का आहार करता हुआ, वह बढ़ता है। माता के गर्भ (उदर) से निकल कर वह बालक पूर्वजन्म के अभ्यासवश आहार लेने की इच्छा से माता का स्तनपान करता है। उसके पश्चात् वह कुछ और बड़ा होने पर स्तनपान छोड़कर दूध, दही, घृत, चावल, रोटी आदि पदार्थों का आहार करता है। उसके बाद अपने आहार के योग्य त्रस या स्थावर प्राणियों का आहार करता है। भुक्त पदार्थों को वह पचाकर अपने रूप में मिला लेता है। मनुष्य के शरीर में जो रस, रक्त, मांस, मेद (चर्बी), हड्डी, मज्जा और शुक्र में सात धातु पाए जाते हैं, वे भी उनके द्वारा किए गए आहारों से उत्पन्न होते हैं, जिनसे मनुष्य के नाना प्रकार के शरीर बनते हैं।

पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया (733)
- उसके पश्चात् तीर्थकर देव ने अनेक प्रकार के पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिक जलचरों का वर्णन इस प्रकार किया है, जैसे कि मत्त्यों से लेकर सुसुमार तक के जीव पंचेन्द्रिय जलचर तिर्यञ्च है। वे जीव अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार स्त्री और पुरुष का संयोग होने पर स्वरक्षर्मानुसार पूर्वोक्त प्रकार के गर्भ में उत्पन्न (प्रविष्ट) होते हैं। फिर वे जीव

गर्भ में माता के आहार के एकदेश को (आंशिक रूप से) ओज-आहार के रूप में ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वे क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर गर्भ के परिपक्व होने (गर्भावस्था पूर्ण होने) पर माता की काय ये वाहर निकल (पृथक् हो) कर कोई अण्डे के रूप में होते हैं, तो कोई पोत के रूप में होते हैं। जब वह अंडा फूट जाता है तो कोई स्त्री (मादा) के रूप में, कोई पुरुष (नर) के रूप में और कोई नपुंसक के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जलचर जीव वाल्यावस्था में आने पर जल के स्नेह (रस) का आहार करते हैं। तत्पश्चात् क्रमशः वडे होने पर वनस्पतिकाय तथा त्रस, स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। (इसके अतिरिक्त) वे जीव पृथ्वी आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं एवं उन्हें पचाकर क्रमशः अपने रूप में परिणित कर लेते हैं। उन मछली, मगरमच्छ, कच्छघ, ग्राह और घड़ीयाल आदि सुसुमार तक के जलचर पंचेन्द्रियतिर्यच जीवों के दूसरे भी नाना वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले, नाना आकृति एवं अवयव रचना वाले तथा नाना पुद्गलों से रचित अनेक शरीर होते हैं, यह भी तीर्थकरदेव ने कहा है।

734 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने अनेक जाति वाले स्थलचर चतुष्पद (चौपाये) तिर्यञ्चपंचेन्द्रिय के सम्बंध में वताया है, जैसे कि कई स्थलचर चौपाये पशु एक खुर वाले, कई दो खुर वाले, कई गण्डीपद (हाथि आदि) और कई (सिंह आदि) नख युक्त पदवाले होते हैं, वे जीव अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार उत्पन्न होते हैं। स्त्री-पुरुष (मादा और नर) का कर्मानुसार परस्पर सूरत - संयोग होने पर वे जीव चतुष्पद स्थलचरजाति के गर्भ में आते हैं। वे माता-पिता दोनों के स्नेह का पहले आहार करते हैं। उस गर्भ में वे जीव स्त्री, पुरुष या नपुंसक के रूप में होते हैं। वे जीव (गर्भ में) माता के ओज (रज) और पिता के शुक्र का आहार करते हैं। शेष सब वातें पूर्ववत् मनुष्य के समान समझ लेनी चाहिए। इनमें कोई स्त्री (मादा) के रूप में, कभी नर के रूप में और कोई नपुंसक के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव वाल्यावस्था में माता के दूध और घृत का आहार करते हैं। क्रमशः वडे होकर वे वनस्पतिकाय का तथा दूसरे त्रस-स्थावर प्राणियों का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे प्राणी पृथ्वी आदि ५ शरीर का भी आहार करते हैं। फिर वे आहार किए हुए पदार्थों को पचा कर अपने शरीर के रूप में परिणित कर लेते हैं। उन अनेक विध जाति वाले स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक चतुष्पद जीवों के विविध वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आकार एवं रचना वाले दूसरे अनेक शरीर भी होते हैं, यह भी तीर्थकर प्रभु ने कहा है।

735 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने अनेक प्रकार की जाति वाले उरपरिसर्प (छाती के बल सरक कर चलने वाले) स्थलचर, पंचेन्द्रिय, तिर्यचयोनिक जीवों का वर्णन किया है। जैसे कि सर्प, अजगर, आशालिक (सर्पिशेष) और महोरा (वडे साप) आदि उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीव हैं। वे जीव अपने-अपने उत्पत्ति योग्य

बीज और अवकाश के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। इन प्राणियों में भी स्त्री और पुरुष का परस्पर मैथुन नामक संयोग होता है, उस संयोग के होने पर कर्म प्रेरित प्राणी अपने-अपने कर्मानुसार अपनी-अपनी नियत योनी में उत्पन्न होते हैं। शेष वातें पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। उनमें से कई अंडा देते हैं, कई बच्चा (पोत द्वारा) उत्पन्न करते हैं। उस अंडे के फुट जाने पर उसमें से कभी स्त्री (मादा) होती है कभी नर पैदा होता है, और कभी नपुंसक होता है। वे जीव बाल्यावरथा में वायुकाय (हवा) का आहार करते हैं। क्रमशः बड़े होने पर वे वनस्पतिकाय तथा अन्य त्रस रथावर प्राणियों का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी के शरीर से लेकर वनस्पति के शरीर का भी आहार करते हैं, फिर उन्हें पचाकर अपने शरीर के रूप में परिणित कर लेते हैं। उन (पूर्वोक्त) उरः परिसर्प रथलचर पंचेन्द्रिय तिर्यचों के अनेक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आकृति एवं संस्थान (रचना) वाले अन्य अनेक शरीर भी होते हैं, ऐसा श्रीतीर्थकरप्रभु ने कहा है।

736 - इसके पश्चात् भुजा के सहारे से पृथ्वी पर चलने वाले (भुजपरिसर्प) अनेक प्रकार के रथलचर पंचेन्द्रिय तिर्यचयोनिक जीवों के विषय में श्रीतीर्थकर भगवान् ने कहा है। जैसे कि गोह, नेवला, सेह, सरट, सल्लक, सरथ, खोर, गृहकोकिला (घरोली-छिपकली), विषम्भरा, मूषक (चूहा), मंगुस, पदलातिक, विडालिक, जोध और चातुष्पद आदि भुजपरिसर्प हैं। उन जीवों की उत्पत्ति भी अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार होती है। उरः परिसर्पजीवों के समान ये जीव भी स्त्री-पुरुष-संयोग उत्पन्न होते हैं। शेष सब वातें पूर्ववत् जान लेनी चाहिए। ये जीव भी अपने किये हुए आहार को पचाकर अपने शरीर में परिणित कर लेते हैं। गोह से लेकर चातुष्पद तक (पूर्वोक्त) उन अनेक जाति वाले भुजसरिसर्प रथलचर तिर्यंपंचेन्द्रिय जीवों के नाना वर्णादि को लेकर अनेक शरीर होते हैं, ऐसा श्री तीर्थकरदेव ने कहा है।

737 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने अनेक प्रकार की जाति वाले आकाशचारी (खेचर) पंचेन्द्रिय तिर्यचों के विषय में कहा है। जैसा कि— चर्मपक्षी, लोमपक्षी, समुद्रपक्षी तथा विततपक्षी आदि खेचर तिर्यच पंचेन्द्रिय होते हैं। उन प्राणियों की उत्पत्ति भी उत्पत्ति के योग्य बीज और अवकाश के अनुसार होती है और स्त्री-पुरुष (मादा और नर) के संयोग से इनकी उत्पत्ति होती है। शेष वातें उरःपरिसर्प जाति के पाठ के अनुसार जान लेनी चाहिए। वे प्राणी गर्भ से निकल कर बाल्यावस्था प्राप्त होने पर माता के शरीर के स्नेह का आहार करते हैं। (वह पक्षिणी (मादा पक्षी) अण्डों पर अपने पंखों को फैलाकर बैठती है, और अपनी शरीर की ऊष्मा (गर्भी) के स्पर्श से आहार देकर बच्चे (अण्डे) को सेती है, जिससे वह क्रमशः बढ़ता है— परिपक्व होता है।) फिर क्रमशः बड़े होकर वनस्पतिकाय तथा त्रस-रथावर प्राणियों का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी आदि के

शरीरों का भी आहार करते हैं और उन्हें पचाकर अपने शरीर रूप में परिणित कर लेते हैं इन अनेक प्रकार की जातिवाले चर्मपक्षी आदि आकाशचारी पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के और भी अनेक प्रकार के वर्ण गन्ध, रस, स्पर्श, आकार एवं अवयवरचना वाले शरीर होते हैं, यह श्रीतीर्थकर देव ने कहा है।

विवेचन - पंचेन्द्रियतिर्यचों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहार की प्रक्रिया - प्रस्तुत पांच सूत्रों में पांच प्रकार के तिर्यच पंचेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहारादि की प्रक्रिया का निरूपण किया गया है। पंचेन्द्रियतिर्यच्च के 5 प्रकार ये हैं— जलचर, स्थलचर, उरःपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर। इन पाँचों के प्रत्येक के कतिपय नाम भी शास्त्रकार ने बताए हैं। शेष सारी प्रक्रिया प्रायः मनुष्यों कि उत्पत्ति आदि की प्रक्रिया के समान है। अन्तर इतना ही है कि प्रत्येक की उत्पत्ति अपने-अपने बीज और अवकाश के अनुसार होती है, तथा प्रथम आहार-ग्रहण में अन्तर है—

- (1) जलचर जीव सर्वप्रथम जन्म लेते ही अपकाय का स्नेह का आहार करते हैं।
- (2) स्थलचर जीव सर्वप्रथम माता-पिता के स्नेह का (ओज) आहार करते हैं।
- (3) उरः परिसर्प जीव सर्वप्रथम वायुकाय का आहार करते हैं।
- (4) भुजपरिसर्प जीव उरः परिसर्प के समान वायुकाय का आहार करते हैं।
- (5) खेचर जीव माता के शरीर की गर्भी (स्निघ्नता) का आहार करते हैं। शेष सब प्रक्रिया प्रायः मनुष्यों के समान है।

स्थलचर — एक खुरवाले घोड़े, गधे आदि, दो खुरवाले गाय, भैस आदि, गंडीपद (फलकवत् पैर वाले) हाथी, गेंडा आदि, नखयुक्त पंजे वाले— सिंह, वाघ आदि होते हैं।

खेचर — चर्मपंखी— चमचेड़, वल्लूली आदि, रोमपक्षी-हंस, सारस, बगुला आदि, विततपक्षी और समुद्रपक्षी-दाई द्वीप से वाहर पाये जाते हैं।

विकलेन्द्रिय त्रसप्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि और आहार की प्रक्रिया

- 738 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकर देव ने (अन्य जीवों की उत्पत्ति और आहार के सम्बन्ध में) निरूपण किया है। इस जगत् में कई प्राणी नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होते हैं। वे अनेक प्रकार की योनियों में स्थित रहते हैं, तथा विविध योनियों में आकर संवर्द्धन पाते हैं। नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न, स्थित और संवर्द्धित वे जीव अपने पूर्वकृत कर्मानुसार उन कर्मों के ही प्रभाव से विविध योनियों में आकर (विकलेन्द्रिय त्रस के रूप में) उत्पन्न होते हैं। वे प्राणी अनेक प्रकार के त्रस रथावर— पुद्गलों के सचित्त या अचित्त शरीरों में उनके आश्रित होकर रहते हैं। वे जीव अनेक विविध त्रस रथावर प्राणियों के स्नेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी से लेकर वनस्पति तक के शरीरों का भी आहार करते हैं। उन त्रस-रथावर योनियों से उत्पन्न और उन्हीं के आश्रित

रहने वाले प्राणियों के विभिन्न वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शवाले, विविध संस्थान (आकार तथा रचना) वाले और भी अनेक प्रकार के शरीर होते हैं, यह श्रीतीर्थकरदेव ने कहा है।

इसी प्रकार विष्टा और मूत्र आदि में कुरुलप विकलेन्द्रिय प्राणी उत्पन्न होते हैं और गाय भेंस आदि के शरीर में चर्मकीट उत्पन्न होते हैं। (मूत्र-मल आदि शरीर निःसृत अंगभूत तत्वों को तथा सचित्त मनुष्यों के पेट में तथा अन्य अवयवों में गिडोलिए, कैंचुए, कृमि, क्रोष्ट आदि उत्पन्न होते हैं।)

विवेचन - विकलेन्द्रिय ब्रस प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि और आहार की प्रक्रिया - प्रस्तुत सूत्र में विकलेन्द्रिय प्राणियों की स्थिति आदि के सम्बन्ध में निरूपण किया गया है।

विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति के स्रोत - मनुष्यों एवं तिर्यच पंचेन्द्रिय के सचित्त शरीर में पसीने आदि में जूँ लीख, चींचड (चर्मकिल) आदि सचित्त शरीर संस्पर्श से खटमल आदि पैदा होते हैं, तथा मनुष्य के एवं विकलेन्द्रिय प्राणियों के अचित्त शरीर (कलेवर) में कृमि आदि उत्पन्न हो जाते हैं। सचित्त अग्निकाय तथा वायुकाय से भी विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है। वर्षाक्रतु में गर्भी के कारण जमीन से कुरुंगुआ आदि संस्वेदज तथा मक्खी, मच्छर आदि प्राणियों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार जल से भी अनेक विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है। वनस्पतिकाय से भ्रमर आदि विकलेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। पंचेन्द्रिय प्राणियों के मलमूत्र, मवाद आदि में भी विकलेन्द्रिय जीव पैदा होते जाते हैं। सचित्त-असचित्त वनस्पतियों में भी धूण, कीट आदि उत्पन्न हो जाते हैं। ये जीव जहां-जहां उत्पन्न होते हैं, वहां-वहां के पार्श्ववर्ती या आश्रयदायी सचित्त या अचित्त प्राणियों के शरीरों से उत्पन्न मल, मूत्र, पसीना, रक्त, जल, मवाद, आदि का ही आहार करते हैं।

अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय, और पृथ्वीकाय के आहारादि का निरूपण

739 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने अन्यान्य प्राणियों के आहारादि का प्रतिपादन किया है। इस जगत् में नानाविध योनियों में उत्पन्न होकर कर्म से प्रेरित वायुयोनिक जीव अप्काय में आते हैं। वे प्राणी वहां अप्काय में आकर अनेक प्रकार के ब्रस और स्थावर प्राणियों के सचित्त तथा अचित्त शरीर में अप्कायरूप में उत्पन्न होते हैं। वह अप्काय वायु से बना हुआ (संसिद्ध) या वायु से संग्रह किया हुआ अथवा वायु के द्वारा धारण किया हुआ होता है। अतः वह (जल) ऊपर की वायु हो तो ऊपर, नीचे की वायु हो तो नीचे और तिरछी वायु हो तो तिरछा जाता है। उस अप्काय के कुछ नाम ये हैं - ओस, हिम (वर्फ), मिहिका (कोहरा का धुधं), ओला (गड़ा) हरतनु और शुद्ध जल। वे जीव अनेक प्रकार के ब्रस और स्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी

आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं। तथा पूर्वभुक्त ब्रस स्थावरीय आहार को पचाकर अपने रूप से परिणत कर लेते हैं। उन ब्रस-स्थावर योनि समुत्पन्न अवश्याय (ओस) से लेकर शुद्धोदक पर्यन्त जलकायिक जीवों के अनेक वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संस्थान आकार-प्रकार आदि के और भी अनेक शरीर होते हैं, ऐसा श्रीतीर्थकरदेव ने कहा है।

740 - इसके अनन्तर श्रीतीर्थकरप्रभु ने अप्काय से उत्पन्न होने वाले विविध जलकायिक जीवों का स्वरूप बताया है। इस जगत् में कितने ही प्राणी जल से उत्पन्न होते हैं, जल में ही रहते हैं, और जल में ही बढ़ते हैं। वे अपने पूर्वकृतकर्म के प्रभाव से जल में आते हैं और जल में जलरूप से उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन ब्रस-स्थावर योनिके जलों के स्नेह का आहार करते हैं। उसके अतिरिक्त वे पृथ्वी आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं, तथा उन्हें पचाकर अपने शरीर के रूप में परिणित कर लेते हैं। उन ब्रस-स्थावर योनिक उदकों के अनेक वर्णादि वाले दूसरे शरीर भी होते हैं, ऐसा श्रीतीर्थकरप्रभु ने कहा है।

741 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने जलयोनिक जलकाय के स्वरूप का निरूपण किया है। इस जगत् में कितने ही जीव उदक्योनिक उदकों में अपने पूर्वकृत कर्मों के वशीभूत होकर आते हैं तथा उदक्योनिक उदकजीवों में उदकरूप में जन्म लेते हैं। वे जीव उन उदक्योनिक उदकों के स्नेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे पृथ्वी आदि शरीरों का भी आहार ग्रहण करते हैं और उन्हें अपने स्वरूप में परिणत कर लेते हैं। उन उदक्योनिक उदकों के अनेक वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श एवं संस्थान वाले और भी शरीर होते हैं, ऐसा श्रीतीर्थकरप्रभु ग्रस्तित है।

742 इसके पश्चात् तीर्थकरदेव ने पहले उदक्योनिक ब्रसकाय के स्वरूप का निरूपण किया था कि इस संसार में अपने पूर्वकृत कर्म के उदय से उदक्योनिक उदकों में आकर उनमें ब्रस प्राणी के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन उदक्योनिवाले उदकों के स्नेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे पृथ्वी आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं। उन उदक्योनिक ब्रसप्राणियों के नाना वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से अन्य अनेक शरीर भी होते हैं, यह तीर्थकर प्रभु ने बताया है।

743 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकरदेव ने जीवों के आहार के सम्बन्ध में अन्य वातों की भी प्रस्तुपणा की है। इस संसार में कितने ही जीव पूर्वजन्म में (कृतकर्मवश नानाविधि योनियों में उत्पन्न होकर वहाँ किये हुए कर्मोदयवशात्, नाना प्रकार के ब्रस-स्थावर प्राणियों के सचित्त तथा अचित्त शरीर में अग्निकाय के रूप में उत्पन्न होते हैं। वे जीव उन विभिन्न प्रकार के ब्रसस्थावर प्राणियों के स्नेह का आहार करते हैं। इसके अतिरिक्त वे जीव पृथ्वी आदि के शरीरों का भी आहार करते हैं। उन ब्रस-स्थावर योनिक अग्निकायों के दूसरे और भी शरीर बताये गये हैं जो नाना वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान आदि के

होते हैं। शेष तीन आलापक (वोल) उदक के आलापकों के समान समझ लेने चाहिए।

744 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकदेव ने अन्य (जीवों के आहारादि के सम्बन्ध में) कुछ वातें बताई हैं। इस संसार में कितने ही जीव पूर्वजन्म में नाना प्रकार की योनियों में आकर वहाँ किये हुए अपने कर्म के प्रभाव से त्रस और स्थावर प्राणियों के सचित्त या अचित्त शरीरों में वायुकाय के रूप में उत्पन्न होते हैं। यहाँ भी वायुकाय के सम्बन्ध में शेष वातें तथा चार आलापक अग्निकाय के आलापकों के समान कह देने चाहिए।

745 - इसके पश्चात् श्रीतीर्थकर भगवान् ने (इस सम्बन्ध में) और भी वातें बताई हैं। इस संसार में कितने ही जीव नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होकर उनमें अपने किये हुए कर्म के प्रभाव से पृथ्वीकाय में आकर अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के सचित्त या अचित्त शरीरों में पृथ्वी, शर्करा (कंकर) या वालू के रूप में उत्पन्न होते हैं। इस विषय में इन गाथाओं के अनुसार इसके भेद जान लेने चाहिए -

पृथ्वी, शर्करा (कंकर) वालू (रेत), पत्थर, शिला (चट्टान), नमक, लोहा, रांगा (कठीर), तांबा, चांदी, शीशा, सोना और वज्र (हीरा), तथा हड्डाल, हींगलू, मनसिल, सासक, अंजन, प्रवाल (मूँगा), अभ्रपटल (अभ्रक), अभ्रवालूका ये सब पृथ्वीकाय के भेद हैं। गोमेदक रत्न, रुचकरत्न, अंकरत्न, स्फटिकरत्न, लोहिताक्षरत्न, मरकतरत्न, मसारग्ल, भुजपरिमोचरकरत्न तथा इन्दनीलमणि, चन्दन, गेरुक, हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रप्रभु, वैद्यर्य, जलकान्त एवं सूर्यकान्त, ये मणियों के भेद हैं। इन (उपर्युक्त) गाथाओं में उक्त जो मणि, रत्न आदि कहे गए हैं, उन (पृथ्वी से लेकर सूर्यकान्त तक की योनियों) में वे जीव उत्पन्न होते हैं। (उस समय) वे जीव अनेक प्रकार के त्रस-स्थावर प्राणियों के रन्हे का आहार करते हैं। (इसके अतिरिक्त) वे जीव पृथ्वी आदि शरीरों का भी आहार करते हैं। उन त्रस आर रथावरों में उत्पन्न पृथ्वी से लेकर सूर्यकान्तमणि पर्यन्त प्राणियों के दूसरे शरीर भी नाना वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संरथान आदि की अपेक्षा से बताए गए हैं। शेष तीन आलापक जलकायिक जीव के आलापकों के समान ही समझ लेने चाहिए।

विवेचन:- अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और पृथ्वीकाय के आहारादि कां निरूपण प्रस्तुत 7 सूत्रों (739 से 745 तक) में वनस्पतिकाय के अतिरिक्त शेष चार स्थावर जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि एवं आहारादि की प्रक्रिया का निरूपण किया गया है।

अप्काय के चार आलापक :- अप्कायिक जीवों के शास्त्रकार ने चार आलापक वताकर उनकी उत्पत्ति आहार आदि की प्रक्रिया पृथक्-पृथक् रूप से बताई है। जैसे कि :-

(1) वायुयोनिक अप्काय :- मेढ़क आदि त्रस तथा नमक और हरित आदि स्थावर प्राणियों के सचित्त-अचित्त नानाविध शरीरों में वायुयोनिक अप्काय के रूप में

जन्म धारण करते हैं। इनकी स्थिति, संवृद्धि और प्राथमिक आहारग्रहण का आधार वायुकाय है।

(2) अप्योनिक अप्काय :- जो पूर्वकृतकर्मानुसार एक अप्काय में ही दूसरे अप्काय के रूप में उत्पन्न होते हैं, वे अप्योनिक अप्काय कहलाते हैं। जैसे शुद्ध पानी से वर्फ के रूप में अप्काय उत्पन्न होता है शेष सब प्रक्रिया पूर्ववत् है।

(3) त्रस स्थावरयोनिक अप्काय :- ये प्राणी त्रस और रथावरों में उत्पन्न होते हैं उनकी भी शेष समस्त प्रक्रिया पूर्ववत् है।

(4) उदकयोनिक उदकों में उत्पन्न त्रसकाय :- उदकयोनिक उदकपानी, वर्फ आदि में कीड़े आदि के रूप में कई जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वे उसी प्रकार के होते हैं।

अग्निकाय और वायुकाय उत्पत्ति के चार-चार आलापक :- (1) त्रसस्थावरयोनिक अग्निकाय (2) वायुयोनिक अग्निकाय (3) अग्नियोनिक अग्निकाय और (4) अग्नियोनिक अग्नि में उत्पन्न त्रसकाय। इसी प्रकार (1) त्रसस्थावरयोनिक वायुकाय (2) वायुयोनिक वायुकाय (3) अग्नियोनिक वायुकाय एवं वायुयोनिक वायुकाय में उत्पन्न त्रसकाय।

त्रसस्थावरों से सचित्त-अचित्त शरीरों से अग्निकाय की उत्पत्ति :- हाथी, घोड़ा भैंस आदि परस्पर लड़ते हैं। तब उनके सींगों में से आग निकलती दिखाई देती है। तथा अचित्त हड्डियों की रगड़ से तथा सचित्त-अचित्त वनस्पतिकाय एवं पत्थर आदि में से अग्नि की लपेटें निकलती देखी जाती हैं।

पृथ्वीकाय की उत्पत्ति के चार आलापक :- पृथ्वीकाय के यहाँ मिट्टी से लेकर सूर्यकान्तरत्न तक अनेक प्रकार वताए हैं। पृथ्वीकाय की उत्पत्ति के सम्बन्ध में चार आलापक (1) त्रस-स्थावर प्राणियों के शरीर में उत्पन्न पृथ्वीकाय (2) पृथ्वीकाययोनिक पृथ्वीकाय (3) वनस्पतियोनिक पृथ्वीकाय, और (4) पृथ्वीकाययोनिक पृथ्वीकाय में उत्पन्न त्रस।

समुच्चयरूप से सब जीवों की आहारादि प्रक्रिया और आहारसंयम प्रेरणा :-

746 - उसके पश्चात् श्रीतीर्थकर देव ने जीवों के आहारादि के सम्बन्ध में और भी वातें कही हैं। समस्त प्राणी सर्वभूत, सर्वसत्त्व और सर्व जीव नाना प्रकार की योनियों में उत्पन्न होते हैं, वहीं वे स्थित रहते हैं, वहीं वृद्धि पाते हैं। वे शरीर से ही उत्पन्न होते हैं, शरीर में ही रहते हैं, तथा शरीर में ही वढ़ते हैं, एवं वे शरीर का ही आहार करते हैं। वे अपने-अपने कर्म का ही अनुसरण करते हैं, कर्म ही उस-उस योनि में उनकी उत्पत्ति का प्रधान निमित्त कारण है। उनकी गति और स्थिति भी कर्म के अनुसार होती है। वे कर्म के प्रभाव से ही सदैव भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त करते हुए दुःख के भागी होते हैं।

747 - हे शिष्यों ! ऐसा ही जानो, और इस प्रकार जानकर सदा आहारगुप्त,

ज्ञान-दर्शन-चरित्रसहित, समितियुक्त एवं संयमपालन में सदा यत्नशील बनो ।

विवेचन :- समुच्चयरूप से सर्वजीवों की आहारादि प्रक्रिया एवं आहार-संयम प्रेरणा:- प्रस्तुत सूत्र द्वय में अध्ययन का उपसंहार करते हुए समुच्चरूप से सभी जीवों के आहारादि का निरूपण किया गया है । मुख्यतया उत्पत्ति, स्थिति, संवृद्धि, आहार आदि का मुख्य कारण कर्म है । सभी जीव अपने-अपने कर्म से प्रेरित होकर उत्पन्न होते हैं, ईश्वर, काल आदि की प्रेरणा से नहीं । अतः साधक को आहार के सम्बन्ध में ज्ञान, दर्शन, चरित्र, संयम एवं आत्माराधना की दृष्टि से विचार करके निर्देष आहार-सेवन करना उचित है ।

ज्ञान, कर्म एवं कर्मफल चेतना -
परिणमदि चेदणाए आदा पुण चदेणा तिधाभिमदा ।
सा पुण णाणे कम्मे फलम्मि वा कम्मणो भणिदा ॥(123)

(प्रवचनसार, पृ. - 379)

जिस परिणाम से आत्मा परिणमन करता है, वह परिणाम क्या है - (आदा) आत्मा (चेदणाए) चेतना के स्वभाव रूप से (परिणामदि) परिणमन करता है (पुण) तथा (चेवणा तिधा अभिमदा) वह चेतना तीन प्रकार मानी गई है । (पुण) अर्थात् (सा) वह चेतना (णाणे) ज्ञान के सम्बन्ध में (कम्मे) कर्म या कार्य के सम्बन्ध में (वा कम्मणो फलम्मि) तथा कर्मों के फल में (भणिदा) कही गई है । हर एक आत्मा चेतना में परिणमन करता रहता है अर्थात् जो कोई भी आत्मा का शुद्ध या अशुद्ध परिणाम है वह सर्व ही परिणाम चेतना को नहीं छोड़ता है वह चेतना जब ज्ञान को विषय करती है अर्थात् ज्ञान को परिणिति में वर्तन करती है तब उसको चेतना ज्ञान कहते हैं । जब वह चेतना किसी कर्म के करने में उपयुक्त है तब उसे कर्म चेतना और जब वह कर्मों के फल की तरह परिणमन कर रही है तब उसे कर्मफल चेतना कहते हैं । इस तरह चेतना तीन प्रकार की होती है ।

वैज्ञानिक समीक्षा - इस गाथा से आचार्य श्री जीव का जो असाधारण भाव चेतना है उसका विशेष रूप से भेद पुरस्सर वर्णन कर रहे हैं । इसके पहले भी जीव की सिद्धि तथा उसके स्वरूप का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है । यहाँ से पुनः चेतनागुण को विशेषगुण इसलिए कह रहे हैं कि चेतना ही जीव का असाधारण भाव है । इसके कारण ही यह अन्य द्रव्यों से पृथक् होता है इस गुण के कारण ही जीव संसार अवस्था में सुख-दुःख का वेदन करता है और मोक्ष अवस्था में सुख का वेदन करता है । इस गुण के कारण ही जीव अन्य समरत द्रव्यों से श्रेष्ठ है, पूजनीय है । इसलिये इसका विशेष कथन यहाँ से प्रारम्भ कर रहे हैं । पंचाध्यायी में भी कहा है ।

जीवसिद्धि : सती साध्या सिद्धा साधीयसी पुरा ।
तत्सिद्धिलक्षणं वक्ष्ये साक्षात्तत्त्वब्धिसिद्ध्ये ॥ 191 ॥

पहले जीव की सिद्धि कह चुके हैं, इसलिये प्रसिद्ध है उसी को पुनः साध्य बनाते हैं अर्थात् सिद्धि करते हैं । जीव के ठीक-ठीक स्वरूप की प्राप्ति हो जाय, इसलिये उसका सिद्ध (प्रसिद्ध) लक्षण कहते हैं ।

स्वरूप चेतना जन्तोः सामान्यात्सदेकधा ।
सद्विशेषादपि द्वेधा क्रमात्सानाऽक्रमादिहा ॥ 192 ॥

जीव का स्वरूप चेतना है, वह चेतना सामान्य रीति से एक प्रकार है क्योंकि सामान्य रीति से सत्ता एक ही प्रकार है । तथा सत् विशेष की अपेक्षा से वह चेतना दो प्रकार है, परन्तु उसके दोनों भेद क्रम से होते हैं एक साथ नहीं होते हैं ।

एका स्याच्चेतना शुद्धा स्यादशुद्धा परा ततः ।
शुद्ध स्यादात्मनस्तत्त्वमस्त्यशुद्धाऽत्मकर्मजा ॥ 193 ॥

एक शुद्ध चेतना और दूसरी अशुद्ध चेतना है । शुद्ध चेतना आत्मा का निज रूप है और अशुद्ध चेतना आत्मा और कर्म के निमित्त से होती है ।

एकधा चेतना शुद्ध शुद्धास्येकविधत्त्वतः ।
शुद्धशुद्धोपलब्धित्वाज्ज्ञान त्वाज्ज्ञानचेतना ॥ 194 ॥

शुद्ध चेतना एक प्रकार है, क्योंकि शुद्ध एक प्रकार ही है । शुद्ध चेतना में शुद्धता की उपलब्धि होती इसलिये वह शुद्ध है और वह शुद्धोपलब्धि ज्ञान रूप है इसलिये उसे ज्ञान चेतना कहते हैं ।

अशुद्ध चेतना द्वेधा तद्यथा कर्म चेतना ।
चेतनत्वात्फलस्यास्य स्यात्कर्मफल चेतना ॥ 195 ॥

अशुद्ध चेतना के दो प्रकार है । एक कर्म चेतना, दूसरी कर्मफल चेतना । कर्मफल चेतना में फल भोगने की मुख्यता है ।

सामान्यतः : जीव जो अनुभूति, अनुभव, उपलब्धि, वेदना की शक्ति है उसे चेतना कहते हैं । यह चेतना कर्म से युक्त एवं कर्म से रहित होने के कारण विभिन्न रूप में परिणमन कर लेती है । जिस प्रकार आकाश एक होते हुए भी लोकाकाश, अलोकाकाश, घटाकाश, पटाकाश आदि रूप में वाह्य निमित्त के कारण भेद पड़ जाता है उसी प्रकार चेतना भी अनेक रूप परिणमन करती है, परन्तु यहाँ मुख्यतः चेतना के तीन भेद किये गये हैं (1) ज्ञान चेतना (2) कर्म चेतना (3) कर्मफल चेतना । मुख्य रूप से सिद्ध भगवान् शुद्ध ज्ञान चेतना का अनुभव करते हैं । सम्पूर्ण रथावरजीव अर्थात् पृथ्वीकायिक, जलकायिक, प्राणिकायिक, वायुकायिक और वनरपति कायिक जीव कर्म फल चेतना का अनुभव करते

हैं। द्वीन्द्रियादि त्रस जीव कर्म चेतना तथा कर्मफल चेतना का अनुभव करते हैं।

कुंद कुंद देव ने पचास्तिकाय में कहा भी है -

कम्माणं फलमेकको एकको कज्जं तु णाणमध एकको ।

चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण ॥३४॥

कोई चेतियता अर्थात् आत्मातो, अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है, और जिसका प्रभाव (शक्ति) अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है, ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा सुख-दुःख रूप 'कर्मफल' को ही प्रधानता: चेतते हैं, क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यान्तराय से कार्य करने का (कर्म चेतना रूप परिणमित होने का) सामर्थ्य नष्ट हो गया है।

कोई अन्य चेतियता अर्थात् आत्मा, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है ऐसे चेतक स्वभाव द्वारा भले ही सुख दुःख रूप कर्म फल के अनुभव से मिश्रित रूप से भी 'कार्य' (कर्म चेतना) को ही प्रधानता: चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने अल्पवीर्यान्तराय के क्षयोपशम से कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है।

अन्य चेतियता, अर्थात् आत्मा जो समर्त वीर्यान्तराय के क्षय से अनन्त वीर्य को प्राप्त है, सकल मोहकलंक धुल जाने के तथा समर्त ज्ञानवरण के विनाश के कारण समर्त प्रभाव अत्यन्त विकसित हो जाने से चेतक स्वभाव द्वारा कर्मफल निर्जरित हो जाने के और अत्यन्त कृतकृत्यपना हो जाने कारण अपने से अभिन्न स्वाभाविक सुखरूप ज्ञान को ही चेतते (अनुभव करते) हैं।

निर्मल शुद्ध आत्मा की अनुभूति को न पाकर अशुद्ध भावों से बांधा जो गाढ़ मोहनीय कर्म उसके उदय से प्राप्त जो अत्यन्त मलीन चेतना उसी से जिनके आत्मा की शक्ति ढक रही है ऐसा एक जीव समुदाय कर्मों के फलों को ही अनुभव करता है। दूसरी एक जीवराशि उसी ही मलीन चेतना से कुछ शक्ति को पाकर इच्छापूर्वक इष्ट या अनिष्ट के भेदरूप कर्म या कार्य का अनुभव करती है तथा एक जीव समुदाय विशुद्ध शुद्धात्मा की अनुभूति रूप भावना से कर्म कलंक को नाश करते हुए अपने शुद्ध चेतना के भाव से केवलज्ञान को अनुभव करता है। इस तरह यह चेतना तीन प्रकार की है - (1) कर्मफल चेतना (2) कर्म चेतना (3) ज्ञान चेतना।

सर्वे खलु कर्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं ।

पाणित्तमदिक्कतां णाणं विन्दन्ति ते जीवा ॥(३९)

(सर्वे स्थावरकाया:) सर्व स्थावर जीव समूह (खलु) वास्तव में (कर्मफल) कर्म फल को वेदते हैं, (त्रसा) त्रस (हि) वास्तव में (कार्ययुतम्) कार्य (कर्मचेतना) सहित कर्मफल को वेदते हैं और (प्राणित्वमतिक्रान्ताः) जो प्राणित्व का (प्राण का) अतिक्रम कर गये हैं (ते जीवोः) वे जीव ज्ञान को (विन्दन्ति) वेदते हैं।

चेतना है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है - ये एकार्थ है, क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एक अर्थ है। वहाँ स्थावर कर्म फल को चेतते हैं, त्रस कार्य (कर्म चेतना) को चेतते हैं, केवलज्ञानी ज्ञान को चेतते हैं।

सर्व ही प्रसिद्ध पृथ्वीकायिक, अपकायिक, अनिकायिक, वायुकायिक और वनरस्पति कायिक स्थावर एकेन्द्रिय जीव अप्रगट सुख दुःख का अनुभव रूप शुभ या अशुभ कर्म के फल को अनुभव करते हैं और द्वीन्द्रियादि त्रस जीव निर्विकार परम आनन्दमयी एक स्वभाव धारी आत्मा के सुख को नहीं अनुभव करते हुए उस कर्म फल को भी अनुभव करते हैं साथ में विशेष रागद्वेष रूप कार्य की चेतना भी रखते हैं तथा जो जीव विशेष शुद्धात्मानुभव की भावना से उत्पन्न जो परमानन्दमयी एक सुखामृतरूप समरसी भाव उसके बल से इन्द्रिय, बल, आयु, क्षरोच्छ्वास इन दश प्राणों का उन्नंघन कर गये हैं ऐसे सिद्ध परमात्मा ही मात्र केवल ज्ञान को अनुभव करते हैं।

स्थावरकाय जीव की चेतना शक्ति अल्प विकसित होने के कारण, वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम कम होने के कारण शक्ति की कमी होने से, ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्रोदय होने के कारण ज्ञान कम होने से तथा केवल स्पर्शन इन्द्रिय होने से वे पूर्वोपार्जित कर्म को केवल विवश होकर भोगने के लिए वाध्य होते हैं। इसलिए स्थावर जीव वाह्य सुख-दुःख से, प्रतिकूल वातावरण से स्वयं को बचाने के लिए अधिक सक्रिय नहीं हो पाता है। इसलिए इनमें केवल पूर्वोपार्जित कर्म को भोगने रूप प्रधानतः (मुख्यतः) कर्मफल चेतना हैं। अमृतचन्द्र सूरी ने पंचास्तिकाय की ३४ नम्बर गाथा की टीका में जो स्थावर जीवों के लिए 'सुख-दुःख रूपं कर्म-फलमेव प्राधान्येन चेतयंते' यह विशेषण दिया है। वह विचारणीय है। भले स्थावर जीव शक्ति की कमी से सुख-दुःख को विवश होकर भोगता है तथापि कुछ प्रतिक्रिया भी करता है। जैसे-जिधर पानी होता है उधर वृक्ष की जड़ फैलती है। जिधर प्रकाश होता है, उधर वृक्ष की शाखायें बढ़ती हैं। लाजवन्ती को छूने पर लाजवन्ती मुरझा जाती है। योग्य जलवायु से वृक्ष पत्तवित होता है और विपरीत वातावरण से वृक्ष मुरझा जाता है। मौलश्री वृक्ष सुन्दर स्त्री को देखकर काम चेतना से युक्त हो जाता है। अभी वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि यदि कोई वृक्ष को मारने के लिए जाता है तो वह भयभीत हो जाता है, पत्ते कान्ति रहित हो मुरझाने लगते हैं और कोई पानी देने जाता है तो वृक्ष प्रसन्न हो जाते हैं। संगीत सुनने से वृक्ष अधिक पुष्पफलादि देते हैं और प्रदूषित वातावरण में वृक्ष कम विधित होते हैं। इसी प्रकार अन्य स्थावर जीवों में भी कुछ प्रतिक्रियाएं होती हैं। इसलिए स्थावर जीव में मुख्यतः कर्मफल चेतना होते हुए भी गौणरूप से कर्म चेतना भी है।

त्रस जीवों के वीर्यान्तराय कर्म के कुछ क्षयोपशम से स्थावर जीव की अपेक्षा कुछ

शक्ति अधिक होने से इनके कर्मफल चेतना के साथ-साथ कर्म चेतना भी पायी जाती हैं। इसलिए त्रस, जीव में स्थावर जीव की अपेक्षा कुछ सक्रियता अधिक है। त्रस नामकर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणी के कुछ क्षयोपशम से स्थावर जीवों से इनमें कुछ अधिक ज्ञान रहता है। आत्म रक्षा के लिए इधर-उधर भाग सकते हैं इसलिए ये कर्मफल चेतना (अनुभव) के साथ-साथ कर्म चेतना से भी युक्त होते हैं।

जिन्होंने समर्त वीर्यान्तराय कर्म के क्षय से अनंतवीर्य को प्राप्त कर लिया है तथा समर्त ज्ञानावरणी आदि धातिकर्म एवं अधातिकर्म के क्षय से सिद्ध परमात्मा बन गये हैं ऐसे जीव ज्ञान चेतना का वेदन करते हैं।

पंचास्तिकाय की 39 नं. गाथा में जो “पाणित्तमदिककंताणां विंदति ते जीवा” का अर्थ करते हुए आचार्य जयसेन स्वामी ने कहा है “दशविध प्राणत्वमतिक्रांतः सिद्ध जीवास्ते केवलज्ञानं विंदति” अर्थात् जो पांच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और क्षासोच्छावास प्राण को अतिक्रांत (उल्लंघन) कर गये हैं ऐसे सिद्ध परमात्मा केवलज्ञान चेतना का अनुभव करते हैं। पंचाध्यायी में सम्यक्दृष्टि को भी ज्ञान चेतना का स्वामी कहा गया है -

अत्रात्मा ज्ञानशब्देन वाच्यस्तन्मात्रतः स्वयम् ।

सचेत्यतेऽन्या शुद्धः शुद्धा सा ज्ञानचेतना (196) पृ. 322

यहाँ पर ज्ञान शब्द से आत्मा समझना चाहिए, क्योंकि आत्मा ज्ञान रूप ही स्वयं है। वह आत्मा जिसके द्वारा शुद्ध जानी जावे उसी का नाम ज्ञान चेतना है।

अस्ति मत्यादि यज्ञानं ज्ञानावृत्त्युदयक्षतेः ।

तथा वीर्यान्तरायस्य कर्मणोऽनुदयादपि ॥(202)

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आदि जितने भी ज्ञान हैं, वे सभी अपने-अपने ज्ञानावरणीय कर्म के उदय का क्षय होने से होते हैं। साथ में वीर्यान्तराय कर्म का अनुदय भी अवश्यक है।

मत्याद्यावरणस्योच्चेः कर्मणोऽनुदयाद्यथा ।

दृढ़मोहस्योदयाभावात्मशुद्धोपलब्धिः स्यात् ॥(203)

जिस प्रकार आत्मोपलब्धि (आत्म प्रत्यक्ष) मतिज्ञानावरणी और वीर्यान्तराय कर्म के अनुदय से होती है उसी प्रकार दर्शन मोहनीय कर्म के भी अनुदय से होती है।

तद्यथासुखुदः रवादिरुपेणात्माऽस्ति तन्मयः ।

तदात्वेऽहं सुखी दुःखी मन्यते सर्वतो जगत् ॥(206)

यद्वा क्रुद्धोयमित्यादि हिनस्म्येनं हठाद्विषम् ।

न हिनस्मि वयस्य स्वं सिद्धं चेत्तत् सुखादिवत् ॥(207)

यह आत्मा सुख दुःखादि विकारों के होने पर स्वयं तन्मय हो जाता है। सांसारिक सुख मिलने पर समझता है कि मैं सुखी हूँ, दुःख होने पर समझता है कि मैं दुःखी हूँ इस

प्रकार सब वस्तुओं में ऐसी ही इसकी बुद्धि हो रही है। कभी-कभी ऐसे भाव भी करता है कि यह क्रोधी है मैं इस शत्रु को अवश्य ही मार डालूँगा तथा अपने मित्र को कभी नहीं मारूँगा इन वातों से यह वात सिद्ध होती है कि यह जगत् सुख दुःखादि का वेदन करने वाला है।

यस्माज्ज्ञानमया भावा ज्ञानिनां ज्ञाननिर्वृताः ।

अज्ञानमयभावानां नावकाशः सुदृष्टिसु ॥(231)

सम्यक्ज्ञानियों के ज्ञान से होने वाले अज्ञानात्वरूप भाव ही सदा होते हैं तथा सम्यक्दृष्टियों में अज्ञान से होने वाले अज्ञानमय भावों का स्थान नहीं है।

वैराग्यं परमोपेक्षाज्ञानं स्वानुभवः स्वयम् ।

तदद्वयं ज्ञानिनो लक्ष्म जीवन्मुक्त, स एव च ॥(232)

सम्यक्ज्ञानी, वैराग्य परम उदासीनता रूप ज्ञान तथा अपनी आत्मा का अनुभव स्वयं करता रहता है। वैराग्य परम उदासीनता और स्वानुभव ये ही दो चिन्ह सम्यक्ज्ञानी के हैं और वही ज्ञानी नियम से जीवन्मुक्त है।

अस्ति तस्यापि सददृष्टेः कस्यचिम्कर्म चेतना ।

अपि कर्म फले सा स्यादर्थतो ज्ञानचेतना ॥(275)

किसी-किसी सम्यक्दृष्टि के कर्मचेतना और कर्मफल चेतना भी होती है, परन्तु वारस्तव में यह ज्ञान चेतना ही है।

चेतनायाः फलं बधंस्तत्फले वाऽथ कर्मणि ।

रागाभावान्न बंधोस्य तस्मात्सा ज्ञानचेतना ॥(276)

चाहे कर्म चेतना हो अथवा कर्मफल चेतना हो दोनों का ही फल बन्ध है अर्थात् दोनों ही चेतनायें बन्ध करने वाली हैं। सम्यक्दृष्टि के राग का (अज्ञानभाव का) अभाव हो चुका है, इसलिए उसके बंध नहीं होता इसलिये वारस्तव में उसके ज्ञान चेतना ही है।

कोई यह शंका कर सकते हैं कि बंध तो दसवें गुणरथान तक होता है, क्योंकि वही भी सूक्ष्म लोभ का उदय है, फिर सम्यक्दृष्टि के लिये राग का अभाव से बंध का अभाव क्यों बतलाय गया है?

उत्तर - यद्यपि सम्यक्दृष्टि के राग होने से बंध होता है, परन्तु जिन मोहित अज्ञान परिणामों से मिथ्या दृष्टि के बन्ध होता है वैसा सम्यक्दृष्टि के नहीं होता। सम्यक्दृष्टि का राग मिथ्यात्वमिश्रित नहीं है इसलिये उसके उसका अभाव बताया गया है।

उपयोगविवक्षायां हेतुरस्यास्ति तदथा ।

अस्ति पंचेन्द्रियं कर्म कर्मस्थान्मानसं तथा ॥294॥

जितना-जितना आवरण हटता है उतना-उतना ज्ञान प्रकट होता है। यह ऊपर कह चुके हैं, परन्तु इतना होने पर भी वरतु का ज्ञान नहीं होता आत्मा के परिणाम जिस तरह

उन्मुख ऋजु होते हैं उसी का ज्ञान होता है इसी का नाम उपयोग है। इसी उपयोग की विवक्षा में पंचेन्द्रिय नाम कर्म और मानस कर्म ये दोनों होते हैं।

ज्ञान चेतना सिद्ध अवस्था में है, परन्तु सम्यक् दर्शन होने के बाद ज्ञान चेतना प्रारम्भ हो जाती है और यह चेतना उत्तरोत्तर विशुद्ध से विशुद्धतर होते-होते सिद्ध अवस्था में परम विशुद्ध हो जाती है। जिस प्रकार सम्यक्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सिद्ध अवस्था तक है, सिद्ध अवस्था में केवली के सम्यक्दर्शन परम विशुद्ध है जिसको परमावगाढ़ सम्यक्दर्शन कहते हैं, परन्तु यह सम्यक्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से उपशम, क्षय या क्षयोपयोग रूप से प्रारम्भ हो जाता है। यह विषय अगली 124 न. गाथा से भी कुछ स्पष्ट हो जाता है। “णाणं अद्विविष्यप्ण” “मत्यादि भेदेनाष्ट विकल्पं भवति” ज्ञान मति आदि के भेद से आठ प्रकार का है इसको पाठान्तर में कहा गया कि पदार्थों को जानने में जो विकल्प है वह ज्ञान-ज्ञान चेतना है।

स्वयं आचार्य श्री उपर्युक्त विषय आगे स्पष्ट करने वाले हैं। इसलिये यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहे।

तीनों चेतना का लक्षण एवं फल :-

**णाणं अद्विविष्यप्पो कर्मं जीवेण जं समारद्धं ।
तमणेगविदं भणिदं फलं त्ति सोक्खं व दुक्खं वा ॥ 124 ॥**

(णाणं अद्विविष्यप्पो) ज्ञान मति आदि के भेद से आठ प्रकार का है। अथवा (अद्विविष्यप्पो) पदार्थों के जानने में समर्थ जो विकल्प है (णाणं) वह ज्ञान या ज्ञान चेतना है। (जीवेण जं समारद्धं कर्मं) जीव के द्वारा जो प्रारंभ किया हुआ कर्म है (तमणेगविदं भणिदं) वह अनेक प्रकार का कहा गया है – इस कर्म कि चेतना सो कर्म चेतना है (वा सुक्खं व दुक्खं फलत्ति) तथा सुख या दुःख रूप फल में चेतना सो कर्म फल चेतना है।

ज्ञान को अर्थ का विकल्प कहते हैं। जिसका प्रयोजन यह है कि ज्ञान अपने और पर के आकार को झलकाने वाला दर्पण के समान ख्वपर पदार्थों को जानने में समर्थ है। वह ज्ञान इस तरह जानता है कि अनन्तज्ञान सुखादिरूप में परमात्मा पदार्थ हूँ तथा रागादि आस्रव को आदि लेकर सर्व पुद्गलादि द्रव्य मुझसे भिन्न है।

इसी अर्थ विकल्प को ज्ञान चेतना कहते हैं। इस जीव ने अपनी बुद्धिपूर्वक मन-वचन-काय के व्यापार रूप से जो कुछ करना प्रारंभ किया हो उसको कर्म कहते हैं। यही कर्म चेतना है। सो कर्म चेतना शुभपयोग, अशुभपयोग और शुद्धोपयोग से तीन प्रकार की कही गई है। सुख तथा दुःख को कर्म का फल कहते हैं इसको अनुभव करना सो कर्म फल चेतना है। विषयानुराग रूप जो अशुभपयोग लक्षण कर्म है, उसका फल अतिआकुलता को पैदा करने वाला नारक आदि का दुःख है। धर्मानुरागरूप जो शुभोपयोग लक्षण कर्म है

इसका फल चक्रवर्ती आदि के पंचेन्द्रियों के भौंगो को भोगना है। यद्यपि इसको अशुद्ध निश्चयनय से सुख कहते हैं तथापि यह आकुलता को उत्पन्न करने वाला होने से शुद्धनिश्चयजन से दुःखी ही है और जो रागादि रहित शुद्धोपयोग में परिणमन रूप कर्म है उसका फल अनाकुलता को पैदा करने वाला परमानंद मई एक रूप सुखामृत का स्वाद है। इस तरह ज्ञान चेतना कर्मचेतना और कर्मफल चेतना का स्वरूप जानना चाहिए।

वैज्ञानिक समीक्षा :- इस गाथा में आचार्य श्री ने तीनों चेतना की परिभाषा दी है। पूर्व गाथा में सामान्य रूप से चेतना का वर्णन किया था। मतिज्ञानादि आठ प्रकार के ज्ञान या पदार्थ को जानने में जो विकल्प रूप ज्ञान है उसको ज्ञान चेतना कहते हैं। अतः आध्यात्मिक दृष्टि से भेद विज्ञान को ज्ञान चेतना कहते हैं। बुद्धिपूर्वक मन, वचन, काय से जो जीव करता है उसे कर्म या कर्म चेतना कहते हैं। यह कर्म चेतना अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से तीन प्रकार की है। अशुभभाव सहित जो उपयोग है उसको अशुभोपयोग कहते हैं। शुभभाव सहित जो उपयोग है उसको शुभयोग कहते हैं। शुभभाव से युक्त शुभोपयोग है और शुद्ध भाव से युक्त शुद्धोपयोग है। पूर्वोपार्जित पुण्य या पाप के कारण जो सुख तथा दुःख प्राप्त होता है उसका अनुभव करना कर्म फल चेतना है। अशुभोपयोग से केवल दुःख ही दुःख मिलता है और शुभोपयोग से इंद्रिय जनित सांसारिक सुख मिलता है तथापि आध्यात्मिक दृष्टि से यह इंद्रिय जनित सुख दुःख स्वरूप है क्योंकि यह इंद्रिय जनित सुख कर्मोदय से प्राप्त होने के कारण भोग करते वक्त आसक्ति व अतृप्ति के कारण नवीन कर्म वंध के कारण होने से इन्द्रिय जनित सुख दुःख रूप ही है।

कर्माधीन अवस्थायें जीव के स्वभाव नहीं

**एसो त्ति र्णात्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिवत्ता ।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो ॥**

(प्रवचन गा.- 116, पृ.-355)

(एसोत्ति णत्थि कोई) कोई भी मनुष्यादि पर्याय ऐसी नहीं है जो नित्य हो (ण सहावणिवत्ता किरिया णत्थि) और रागादि विभाग स्वभाव से होने वाली क्रिया न होती हो ऐसा भी नहीं है अर्थात् रागादि रूप क्रिया भी अवश्य है। (किरिया हि अफला णत्थि) यह रागादि रूप क्रिया निश्चय से विना फल के नहीं होती हैं अर्थात् मनुष्यादि पर्याय रूप फल को देती है (जदि परमा धम्मो णिप्फलो) किन्तु उत्कृष्ट वीतरागधर्म मनुष्यादि पर्याय रूप फल देने से रहित है।

जैसे टंकोत्कीर्ण (टंकी से उकेरे के समान अमिट) ज्ञाता-दृष्टा एक स्वभाव रूप परमात्मा द्रव्य नित्य है वैसे इस संसार में मनुष्य आदि पर्यायों में से कोई भी पर्याय ऐसी नहीं है जो नित्य हो तब क्या मनुष्यादि पर्यायों को उत्पन्न करने वाली संसार की क्रिया भी नहीं

है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि मिथ्यादर्शन व रागद्वेषादि की परिणिति रूप सांसारिक क्रिया न होती हो, ऐसा नहीं है । ये मनुष्यादि चारों गतियाँ, क्योंकि कर्म (कार्य) है इसलिए इनको उत्पन्न करने वाली रागदि क्रिया अवश्य है । यह क्रिया शुद्धात्मा के स्वभाव से विपरीत होने से नर नारकादि विभाग पर्याय के स्वभाव से उत्पन्न हुई है तब क्या यह रागादि क्रिया निष्फल रहेगी ? मिथ्यात्वरागादि में परिणितरूप क्रिया यद्यपि अनन्त सुखादि गुणमयी मोक्ष के कार्य को पैदा करने के लिए निष्फल है तथापि नाना प्रकार के दुःखों को देने वाली स्वकार्य भूत मनुष्यादि पर्याय को पैदा करने के कारण फल सहित है, निष्फल नहीं है, इस रागादि क्रिया का फल मनुष्यादि पर्याय को उत्पन्न करना है । यह बात कैसे मालूम होती है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि यद्यपि वीतराग परमात्मा की प्राप्ति में परिणमन करने वाली क्रिया, जिसको आगम की भाषा में परम यथाख्यात चारित्र रूप परमधर्म कहते हैं, केवलज्ञानादि अनन्त चतुष्टय की प्रगटता रूप कार्य समयसार को उत्पन्न करने के कारण फल सहित है तथापि नर, नारक आदि पर्यायों के कारण रूप ज्ञानावरणादि कर्मवंधकों नहीं पैदा करती है इसलिए निष्फल है । इससे यह ज्ञात होता है कि नर, नारक आदि सांसारिक कार्य मिथ्यात्व रागादि क्रिया के फल है । अथवा इस सूत्र का दूसरा व्याख्यान किया जाता है जैसे शुद्ध निश्चय नय से यह जीव रागादि विभाव-भावों से नहीं परिणमन करता है वैसे ही अशुद्ध नय से भी नहीं परिणित करता है ऐसा जो सांख्यमत कहता है उसका निषेध इस गाथा में है, क्योंकि अशुद्धनय से जो जीव मिथ्यात्व व रागादि विभागों में परिणमन करते हैं उन्हीं को नर-नारक आदि पर्यायों की प्राप्ति है, ऐसा देखा जाता है ।

वैज्ञानिक समीक्षा – इस गाथा में आचार्यश्री ने कर्म सिद्धान्त तथा क्रिया - प्रतिक्रिया सिद्धान्त का वर्णन सूक्ष्म आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया है । जहाँ क्रिया होती है वहाँ अवश्य प्रतिक्रिया भी होती है ।

प्रसिद्ध सूक्ति है कि 'जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे' अर्थात् "जैसा विचार वैसा संसार" "जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" जैसी मति वैसी गति" के भावानुसार कर्म संचय होता है और कर्मानुसार संसार में विभिन्न गति को करके जीव विभिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न होता है ।

न्यूटन के तृतीय गति सिद्धान्त से भी क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्ध होता है -

To every action, there is an equal and opposite reaction. अर्थात् जहाँ क्रिया है वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया भी होती है एवम् प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपातीक्रिया होती है । इस प्रकार जिस जीव में जिस प्रकार भावात्मक क्रिया होती है, उस जीव में भावात्मक समानुपाती विपरीत क्रिया होती है । दूषित पापात्मक भाव क्रिया होने पर उसकी विपरीत समानुपाती प्रतिक्रिया अर्थात् नरक, तिर्यक्ष रूपी गति की उपलब्धि होती है । प्रशस्त पुण्यात्मक भावात्मक क्रिया के प्रतिफल स्वरूप देव-गति की उपलब्धि

होती है । परिशुद्ध पुण्य-पाप से रहित भावात्मक क्रिया होने पर उसकी प्रतिक्रिया फलस्वरूप सिद्ध गति की उपलब्धि होती है । यही वैज्ञानिक भावात्मक क्रिया-प्रतिक्रियात्मक विश्व का मूलभूत सिद्धान्त है ।

पावेण णिरिय तिरियं गुम्मई धम्मेण देव लोयं तु ।

मिस्सेण माणसतं दोण्णंपि खणोय णिवाणं ॥

पाप कर्म से नरक-तिर्यच गति, पुण्य से देव गति, पुण्य-पाप मिश्रण से मनुष्य गति एवं पुण्य-पाप दोनों के क्षय से पंचम गति, सिद्ध, गति प्राप्त होती है । द्रव्य कर्म साक्षात् पुद्गल होने से जड़ पर द्रव्य है, परन्तु द्रव्य कर्म रूपी पुद्गल से उत्पन्न राग- द्वेष, मोह, कामादिक भाव भी एक अपेक्षा से पौदगलिक है । कर्म से प्रेरित होकर जीव का संसार में विभिन्न प्रकार के अभिन्न गति के कारण यह विश्व रूपी रंगमंच में आध्यात्मिक दृष्टि से जड़-भौतिक वरन्तु ही नृत्य करती है, भगवान् आत्मा नहीं, क्योंकि शुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से भगवान् आत्मा का स्वभाव साक्षी स्वरूप, दर्शक स्वरूप ज्ञाता दृष्टा है । आध्यात्मिक रसिक आचार्य अमृतचन्द्र सूरी, अध्यात्मक अमृतकलश में नाटकीय पद्धति से बहुत ही सुंदर आलंकारिक भाषा में निम्न प्रकार बताते हैं -

अस्मिन्ननादिनि महत्यविवेक नाट्ये ॥

वर्णादिमान्नटति पुद्गल एव नान्यः ॥

रागादि पुद्गल विकार विरुद्ध शुद्ध ।

चैतन्य चातुमय मूर्तिरंय च जीवः ॥

इस विश्व रूपी रंगमंच में अभिनीत अनादि महान् अविवेक पूर्ण नाटक में वर्णादि युक्त पुद्गल ही अभिन्न गति के भावानुसार कर्म संचय होता है और वैभाविक विरुद्ध भावों से रहित शुद्ध चैतन्य धातुमय मूर्ति है ।

आचार्य कुंदकुंद देव ने भी नियमसार में नर-नारकादि पर्याय रूप कार्य का कारण वैभाविक रूप परिणाम कहा है । यथा -

णरणारय तिरियसुरा, पञ्जाया ते विभावमिदि भणिदा ।

कम्मोपाधि विवज्जिपञ्जाया ते सहावमिदि भणिदा ॥

नर, नारक, तिर्यच और देवरूप जो पर्यायें हैं वे विभाव पर्याय इस प्रकार कही गई हैं । कर्मों की उपाधी से रहित जो पर्यायें हैं वे स्वभाव पर्यायें इस प्रकार कही गई हैं । परिणाम (वैभाविक भाव) का परिणाम (फल) कर्म होता है और कर्म का परिणाम नर, नारकादि पर्याय एवं तद्जनित दुःख है । यदि वैभाविक परिणाम नहीं होगा तो उसका परिणाम स्वरूप कर्म भी नहीं होगा और कर्म जनित जो संसार परिणाम है वह भी नहीं होगा । इसलिए परम वितराग धर्म निष्फल है । यहाँ निष्फल का अर्थ सर्वथा किसी भी

प्रकार के रहित नहीं है अपितु कर्म जनित जो फल रूपी संसार है उससे रहित है ।

इसका रहस्य यह है कि धर्म संसाररूपी फल नहीं देता है, परन्तु मोक्ष रूपी फल देता है ।

आत्मानुशासन में गुण भद्र आचार्य ने कहा भी है -

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं ।

त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम् ॥

प्रतीहि भव्य प्रतिलोम् वृत्तिभिः ॥

ध्रुवं फलं प्रास्यसि तद्विलक्षणम् ॥(106)

हे भव्य ! तुने वार-वार मिथ्याज्ञान एवं राग-द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादिरूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों-सम्यज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों-के द्वारा तु निश्चय से उसके विपरीत फल-अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर ।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयतवान् ।

नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं कियप्यसौ ॥

हे भव्य ! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इन्द्रियमन, दान और ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत हो जा । वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समर्स्त विकल्पों से रहित है ।

आचार्य कुन्द कुन्द देव ने समयसार में भी संसार तथा संसार विरोध का कारण निम्न प्रकार से कहा है -

तेसि हेदू भणिदा अज्ज्ववसाणणि सव्वदरसीहिं ।

मिच्छंत अण्णाणं अविरदिभावो य जोगो यं ॥(199)

हेदू अभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसव णिरोहो ।

आसव भावेण विणा जायदी कम्मरस दु णिरोहो । (200)

कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं च जार्याद णिरोह ।

णोकम्म णिरोण य संसार णिरोहणं होदि । (201)

क्रिक प्रत सर्वज्ञ देव ने पूर्वोक्त राग - द्वेष और मोहरूप आचरणों के हेतु मिथ्यात्व अज्ञान, अविरति, और योग ये चार अध्यवसान कहे हैं । ज्ञानी जीव के इस हेतुओं का अभाव होने से नियम से आस्रव का निरोध हो जाता है और आस्रव भाव के न होने से कर्मों का भी निरोध हो जाता है । कर्म के अभाव से नोकर्म का निरोध हो जाता है और नोकर्म के रूप जाने से संसार का भी निरोध हो जाता है । मिथ्यादि पर्याय - कर्म का फल है ज्ञानी में परमाणु ग्रलीङ्घ । गमने में मनुष्यादि पर्याय - कर्म का फल है ।

कम्मं णामसमवक्खं समावमध अप्पणो सहावेण ।

अभिभूय णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥(117)

(अह) तथा (णामसमक्खंकम्मं) नाम-नाम का कर्म (सहावेण) अपने कर्म स्वभाव से अप्पणोसभावं आत्मा के स्वभाव को (अभिभूय) ढक कर (णरं तिरियं णेरइयं वा सुरं कुणदि) उसे मनुष्य तिर्यच, नारकी या देवरूप कर देता है । कर्मों से रहित परमात्मा से विलक्षण ऐसा कर्म है जिसकी भेले प्रकार नाम संज्ञा दी गई है । अर्थात् नाम कर्म जो नामरहित, गोत्र रहित परमात्मा से विपरीत है, अपने ही सहभावी ज्ञानावरणादि कर्मों के स्वभाव से शुद्ध बुद्ध एक परमात्मस्वभाव को आच्छादन कर उसे नर नारक तिर्यच या देवरूप कर देता है । यहाँ यह विशेष अर्थ है - जैसे अग्नि कर्ता होकर तैल के स्वभाव को तिरस्कार करके वत्ती के आधार से उस तैल को दीपक की शिखरूप में परिणमन कर देती है । जैसे कर्मरूपी अग्नि कर्ता होकर तैल के स्थान में शुद्ध आत्मा के स्वभाव को तिरस्कार करके वत्ती के समान शरीर के आधार से उसे दीपक की शिखा के समान नर, नारकादि पर्यायों के रूप से परिणमन कर देती है । इससे जाना जाता है कि मनुष्य आदि पर्याय निश्चय से कर्म जनित है ।

वैज्ञानिक समीक्षा - आचार्य श्री ने इस गाथा में कर्म की शक्ति तथा कर्म परामृत जीव की दुर्दशा का वर्णन बहुत ही सजीव रूप से किया है । जीव अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य, एवं ऊर्ध्वगमनत्व आदि अनंतगुण का अखंडपिण्ड होते हुए भी अनंत शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक दुःखों को सहन करता हुआ संसार में परिभ्रमण करने का कारण कर्म परत्रंता है । कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है ।

सो सव्वणाणदारिसी कम्मरयेण णियेणवच्छणो ।

संसारसमावणो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं ॥(167)

आत्मा स्वभाव से ही वस्तुमात्र को जानने वाला देखने वाला है, फिर भी वह अपने कर्म रूपी रज से आच्छादित है । अतः संसार को प्राप्त होता हुआ सर्व प्रकार से सम्पूर्ण वस्तुओं को जान नहीं रहा है । प्रमात्म प्रकाश में योगीन्दुदेव ने भी उपर्युक्त सिद्धान्त का वर्णन निम्न प्रकार से किया है -

अप्पा बुजभहि दव्वु तुहुं गुणपुणु दंसणु णाणु ।

पज्जय चऊ गई-भाव तणु कम्म विणिम्मिय जाणु ॥(58)

हे शिष्य ! तू आत्मा को तो द्रव्य जान और दर्शन ज्ञान को गुण जान, चार गतियों के भाव तथा शरीर को कर्मजनित विभाग पर्याय समझ ।

कम्मई दिढं-धण चिक्कणई गर्लवई वज्ज समाई ॥

णाण - वियक्खणु जीवडउ उप्पहि पाडाहे ताहै ॥(78)

आगे मिथ्यात्व से अनेक प्रकार उपार्जन किये जिस कर्मों से यह जीव संसार वन में भ्रता है, उस कर्मशक्ति को कहते हैं – ये ज्ञानावरणादि कर्म ज्ञानादि गुण से चतुर इस जीव को खोटे मार्ग में पटकते हैं। कैसे हैं वे कर्म वलवान् हैं, बहुत है विनाश करने को अशक्य है, इसलिए चिकने हैं, भारी हैं और वज्र के समान अभेद्य हैं।

नरादि पर्यायों में जीव के स्वभाव का तिरस्कार का कारण

णरणारथतिरियसुरा, जीवा खलु णामकम्मणिवत्ता ।

णहि ते लद्धसहावा परिणममाणासकम्माणि ॥ (118)

आगे शिष्य ने प्रश्न किया कि नरनारकादि पर्यायों में किस तरह जीव के स्वभाव का तिरस्कार हुआ है। क्या जीव का अभाव हो गया है? इसका समाधान आचार्य करते हैं - (णरणारथतिरिय सुरा) मनुष्य, नारकी, तीर्यञ्च और देव पर्याय में तिष्ठने वाले (जीवा) जीव (खलु) प्रगटपने (णाम कम्मणिवत्ता) नामकर्म द्वारा उन गतियों में रचे (जीवा) जीव की (णरणारथतिरिय सूरा) मनुष्य नारकी, तीर्यञ्च और देव पर्याय (खलु) प्रगटने (णामकम्मणिवत्ता) नाम कर्म द्वारा रची है। इस कारण (ते) वे जीव (सकम्माणि परिणममाता) अपने-अपने कर्मों के उदय में परिणमन करते हुए (लद्धसहावा ण हि) अपने स्वभाव को निश्चय से नहीं प्राप्त होते हैं। जीव नर नारकतिर्यञ्च देव इन चार प्रगट गति रूप होता है, क्योंकि ये गतियाँ अपने-अपने नर नारनारकादि नाम कर्म के द्वारा रची गई हैं। वे अपने-अपने उदय प्राप्त कर्मों के अनुसार सुख तथा दुःख को भोगते हुए अपने चिदानन्दमयी एक शुद्ध आत्म स्वभाव को नहीं पाते हैं। जैसे माणिक जडित सुवर्णकंकण में माणिक की मुख्यता है उसी तरह इन नरनारकादि पर्यायों में जीव-स्वभाव का तिरस्कार है। इससे जीव का अभाव नहीं हो जाता है। इसका यह भाव है जैसे जल का प्रवाह वृक्षों के सीधने में परिणमन करता हुआ चन्दन व नीम आदि वन के वृक्षों में जाकर उन रूप मीठा, कडुआ, सुगन्धित, दुर्गन्धित होता हुआ अपने जल के कोमल, शीतल, निर्मल स्वभाव को नहीं रखता है उसी तरह यह जीव भी वृक्षों के स्थान में कर्मों के उदय के अनुसार परिणमन करता हुआ परमानन्द रूप एक लक्षण सुखामृत का स्वाद तथा निर्मलता आदि अपने निज गुणों को नहीं प्राप्त करता है।

जीव के नित्य एवं अनित्य भाव

जायदी णेव ण णरसादि खणभंगसमुद्भवे जणे कोई ।

जो हि भवो सो विलओ संभवविलय त्ति ते णाणा ॥ (119)

(खणभंग समुद्भवे जणे) पर्यायर्थिक नय से क्षण-क्षण में नाश व उत्पन्न होता है ऐसे लोक में (कोईणेव जायदि णणससदि) द्रव्यार्थिक नय से कोई जीव न तो उत्पन्न होता है और न नाश होता है। कारण (जो हि भवो सो विलओ) जो निश्चय से उत्पत्ति रूप है

वही नाश रूप है। ते (संभव विलयत्ति णाणा) वे उत्पाद और नाश भिन्न-भिन्न हैं। क्षण-क्षण में जहाँ पर्यायर्थिक नय से अवरथा का नाश व उत्पाद होता है ऐसे इस लोक में कोई भी द्रव्यार्थिक नय से न नया पैदा होता है न पुराना नाश होता है। इसका कारण यह है कि पर्याय की अपेक्षा जो निश्चय से उपजे है वही नाश होय है। जैसे मुक्त आत्माओं का जो ही सर्व प्रकार निर्मल केवल ज्ञानादि रूप मोक्ष की अवरथा से उत्पन्न होना ऐसा ही निश्चय रलत्रयमयी निश्चय मोक्ष मार्ग की पर्याय की अपेक्षा विनाश होना है। वे मोक्ष पर्याय और मोक्ष मार्ग की पर्याय यद्यपि कार्य और कारण रूप से परस्पर भिन्न-भिन्न हैं तथापि इन पर्यायों का आधार रूप जो परमात्मा द्रव्य है सो वही है अन्य नहीं है। अथवा जैसे मिट्टी के पिंड के नाश होते हुए और घट के बनते हुए इन दोनों की आधारभूत मिट्टी वही है। अथवा मनुष्य पर्याय को नष्ट होकर देव पर्याय को पाते हुए इन दोनों को आधार रूप संसार जीव द्रव्य वही है। पर्यायर्थिक नय से विचार करे तो वे उत्पादन और व्यय परस्पर भिन्न-भिन्न हैं। जैसे पहले कही हुई वात में जो कोई मोक्ष अवरथा का उत्पाद है तथा मोक्ष मार्ग की पर्याय का नाश है ये दोनों ही एक नहीं हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न हैं। यद्यपि इन दोनों का आधाररूप परमात्मा द्रव्य भिन्न नहीं अर्थात् वही एक है। इससे यही जाना जाता है कि द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य में नित्यपता होते हुए भी पर्याय की अपेक्षा नाश है।

वैज्ञानिक समीक्षा – सतत परिणमनशील विश्व में कोई भी जीव द्रव्यरूप से नष्ट नहीं होता है तथापि पर्याय रूप से प्रतिसमय उत्पन्न होता है एवं विनाश होता है। संसार अवरथा में जीव और कर्म परतंत्रता के कारण जन्म लेता है, बढ़ता है, मरता है वे अशुद्ध पर्यायें हैं। तथापि संसार अवरथा में भी जीव द्रव्यरूप से न जन्म लेता है, न बढ़ता है, और न मरता है। इसी प्रकार कर्म निरपेक्ष मुक्त अवरथा में कर्म सापेक्ष जन्म-मृत्यु एवं वृद्धि नहीं होती, तथापि वहाँ भी शुद्ध द्रव्य में अगुरु-लघु गुण के कारण हर समय उत्पाद, व्यय एवं ध्रोव्य होता रहता है। इसीलिए संसार अवरथा में भी कोई जन्म लेने पर उसका उत्पन्न होना, बढ़ने पर वृद्धि होना या बढ़ा होना मानना एवं मरने पर विनाश होना मानना आध्यात्मिक दृष्टि से मिथ्या है, क्योंकि ये पर्यायें पुद्गल में होती हैं न कि जीव में। कहा भी है –

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा ।

नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले ॥

मेरी मौत नहीं है इस कारण मुझे कहाँ से किससे भय है? मेरे कोई रोग नहीं है इसलिए कहाँ से कैसे मुझे पीड़ा-दुःख है? मैं बालक नहीं हूँ मैं बुढ़ा नहीं हूँ मैं युवक-जवान नहीं हूँ। ये सब वातें पौद्गलिक शरीर में होती हैं।

यदि जीव को ज्ञान एवं भान हो जाएगा कि जीव का नाश पूर्ण रूप से नहीं होता है एवं पूर्ण रूप से उत्पाद भी नहीं होता है तो जन्म एवं मृत्यु में हर्ष विवाद नहीं होगा। भले कोई

एक पर्याय रूप से उत्पन्न हुआ है अथवा नाश हुआ है तथापि वह द्रव्यरूप में शाश्वतिक ही रहता है। पंचास्तिकाय में कुंदकुंद देव ने कहा भी है -

मणुसत्तणेण णटो देही देवो हवेदि इदरो वा ।

उभयत्थं जीवभावो ण णस्सदि ण जायदे अण्णो ।

मनुष्यत्व से नष्ट हुआ देही देव अथवा अन्य पर्याय रूप होता है, उन दोनों में जीव-भाव नष्ट नहीं होता और दूसरा जीव-भाव उत्पन्न नहीं होता।

सो चेव जादि मरणं जादि ण णाटो ण चेव उप्पणो ।

उप्पणो य विणटो देवो मणुसु त्ति पज्जाओ ॥

वही जन्म को और वही मृत्यु को प्राप्त करता है तथापि वह उत्पन्न नहीं होता और नष्ट भी नहीं होता, देव मनुष्यरूपी ऐसी पर्यायें उत्पन्न होती हैं और विनष्ट होती हैं।

एवं सदो विणासो असदो जीवस्स णाथ्यि उप्पादो ।

तावदिओ जीवाणं देवो मणुसो त्ति गदिणामो ॥

इस प्रकार जीव के सत् का विनाश और असत् का उत्पादन नहीं है, जीवों को देव मनुष्य ऐसा गतिनाम कर्म के उदय से उतने ही काल का होता है।

संसार की अनित्यता का हेतु :-

तम्हा दु णाथ्यि कोई सहावसमवटिदो त्ति संसारे ।

संसार पुण किरिया संसरमाणस्स दव्वरस्स ॥(120)

(तम्हादु) इसी कारण से (संसार) इस संसार में (कोई सहावसमवटिदोत्तिणाथ्यि) कोई वस्तु स्वभाव से स्थिर नहीं है। (पुण) तथा (संसरमाणस्स दव्वरस्स) भ्रमण करते हुए जीव द्रव्य की (क्रिया) क्रिया (संसारो) संसार है। जैसा पहले कह चुके हैं कि मनुष्यादि पर्यायें नाशवंत हैं इसी कारण से यह बात जानी जाती है कि जैसे परमानन्दमयी एक लक्षणधारी परम चैतन्य के चमत्काररूप परिणित शुद्धात्म स्वभाव स्थिर है, वैसा कोई भी जीव पदार्थ इस संसार रहित शुद्धात्म से विपरीत संसार में अवस्थित नित्य नहीं है। तथा विशुद्ध ज्ञान, दर्शन स्वभाव के धारी मुक्तात्मा से विलक्षण संसार में भ्रमण करते हुए इस संसारी जीव की जो क्रिया रहित शुद्धात्मा की परिणिति से विशुद्ध मनुष्यादि रूप का विभाग पर्याय में परिणमन रूप क्रिया सो ही संसार का स्वरूप है। इससे यह सिद्ध हुआ कि मनुष्यादि पर्याय स्वरूप संसार ही जगत् के नाश में कारण है।

वैज्ञानिक समीक्षा :- आचार्य श्री ने इस गाथा में कर्म परतंत्र जीव की अनित्यता, अस्थिरता, अनवस्थिता के बारे में प्रकाश डाला है। शुद्ध जीव तो कर्म परतंत्रता से रहित होने के कारण स्व-स्वभाव में निश्चल/स्थिर/अवस्थित रहता है, परन्तु संसारी जीव वायु से प्रेरित ध्वजा के समान चतु-र्गति रूपी संसार की चौरासी लाख योनि में अत्र-तत्र सर्वत्र

परिभ्रमण करता है। आध्यात्मिक दृष्टि से शुद्ध जीव स्वात्मा में स्थिर रहता है और आगम की दृष्टि से उर्ध्वगमनत्व शक्ति के कारण ऊपर-ऊपर गमन करता है। कहा भी है -

उर्ध्वं गौरवं धर्माणः जीवो इति जिनात्तमैः ।

अधोगौरवं धर्माणः पुद्गला इति चोदितम् ॥

सर्वज्ञ सर्वदर्शी जिनेन्द्र भगवान् ने जीव को उर्ध्वं गौरव (उर्ध्वं गुरुत्व) धर्मवाला बताया और पुद्गल को अधोगौरव (अधो गुरुत्व) धर्म वाला प्रतिपादित किया है। जीव की स्वाभाविक गति उर्ध्वं से उर्ध्वगमन करने की है।

पुद्गल (matter) की स्वाभाविक गति नीचे से नीचे की ओर है। कारण यह है कि जीव के अमूर्तिक (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, वजन से रहित) एवं रथानान्तरित रूप गति-क्रिया शक्ति से युक्त होने के कारण उसकी गति उर्ध्वगमन होना स्वाभाविक है। उदाहरणार्थ हाइड्रोजन गैस से भरे हुए वेलून को मुक्त करने पर वह वेलून धीरे-धीरे ऊपर ही गमन कहता है। यदि वह वेलून किसी कारण वश फटा नहीं तो वह गति करते-करते उस रथान तक पहुँचेगा। जहाँ तक वायुमंडल की तह में हाइड्रोजन ही हाइड्रोजन गैस है। हाइड्रोजन वेलून ऊपर स्वाभाविक गमन करने का कारण यह है कि हाइड्रोजन गैस हवा से 14 गुना हल्की होती है। जब हाइड्रोजन हवा से 14 गुना हल्की होने के कारण वह वेलून ऊपर ही ऊपर उड़ता है। तो शुद्ध जीव का, जो पूर्णतः वजन (भार) शून्य है, ऊपर गमन करना स्वाभाविक है। पुद्गल में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, भारादि के साथ-साथ रथानान्तरित गति-शक्ति शुक्त होने से पुद्गल का अधोगौरव स्वभाव होना भी स्वाभाविक है। यहाँ पर जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि जीव की स्वाभाविक गति उर्ध्वगमन स्वरूप है तो यह संसारी जीव विभिन्न प्रकारकी वक्रादि गति से विश्व के विभिन्न भाग में क्यों परिभ्रमण करता है? इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए अमृतचंद्र सूरि बताते हैं कि :-

अधस्तिकृत्थोर्ध्वं च जीवानां कर्मजा गतिः ।

उर्ध्वमेकं स्वाभावेन भवति क्षीणं कर्मणम् ॥

जीव की संसार अवस्था में जो विभिन्न गति होती है वह स्वाभाविक गति नहीं है। जीव की संसारवस्था में अधोगति, तिर्यक्गति, उर्ध्वगति का कारण कर्म जनित है। सम्पूर्ण कर्म से रहित जीव की केवल एक स्वाभाविक उर्ध्वगति ही होती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के गति सम्बन्धी प्रथम सिद्धान्त के अनुसार

"A body at rest will remain at rest and a body moving with uniform velocity in a straight line will continue to do so unless an external force is applied to it."

अर्थात् एक द्रव्य जो विराम अवस्था में है, वह विराम अवस्था में रहेगा तथा एक

द्रव्य जो सीधी रेखा में गतिशील है, वह गतिशील ही रहेगा, जब तक उस द्रव्य की अवस्था में परिवर्तन करने के लिए, कोई बाह्य बल न लगाय जाए। (एक द्रव्य तब तक स्थिर रहता है जब तक बाह्य शक्ति का प्रयोग उसके गतिशील करने में नहीं होता है तथा एक द्रव्य अविराम गति से एक सीधी रेखा में तब तक चलता रहता है, जब तक उस पर किसी बाह्य शक्ति का प्रभाव नहीं पड़ता है।)

कोई भी द्रव्य यदि किसी एक दिक् की ओर गति करता है, तो वह द्रव्य उस दिक् में अनन्तकाल तक अविराम, अपरिवर्तित गति से गति करता ही रहेगा, जब तक कोई विरोध शक्ति या द्रव्य उस गति का निरोध (विरोध) नहीं करेगा। दिक् अनन्त काल एवं शक्ति अक्षय होने से, जिस दिक् में एक द्रव्य गति करता है, वह द्रव्य उस दिक् के अनन्त आकाश की ओर अनन्तकाल तक गति करता ही रहेगा, परन्तु केन्द्राकर्षण शक्ति, बाह्य भौतिक या जैविक आदि विरोध शक्ति होने के कारण उस गति में परिवर्तन आ जाता है। जैसे एक गेंद को यदि उर्ध्व दिक् में फेंकते हैं तो वह कुछ समय के पश्चात् नीचे गिर जाती है। इसका कारण यह है कि गेंद को ऊपर फेंकने में जो शक्ति प्रयोग की गई थी, उससे वह ऊपर की ओर उठी थी, परन्तु पृथ्वी की केन्द्राकर्षण शक्ति के कारण उसमें परिवर्तन आया और कुछ समय के बाद उस गेंद की उर्ध्व गति में परिवर्तन होकर अधोगति हो गई। एक अन्य उदाहरण खेत से पक्षी उड़ाने वाले रस्सी के एक यन्त्र गोफन विशेष में पत्थर आदि रखकर रस्सी के दोनों छोरों को पकड़कर अपनी ओर धुमाते हैं। रस्सी के साथ-साथ पत्थर भी धुमता रहता है। कुछ समय के बाद रस्सी के एक छोर को छोड़ देते हैं जिससे वह पत्थर छूट कर सीधा दूर जाता है। जिस समय वह व्यक्ति रस्सी के दोनों छोर को पकड़कर धूमा रहा था, उस समय पत्थर उस व्यक्ति की धुमाव शक्ति से प्रेरित होकर आगे भागने का प्रयास करता था, परन्तु दोनों छोर को पकड़कर धूमाने के कारण वह पत्थर रस्सी के साथ-साथ वर्तुलाकार में धूमता रहता था। जब उस व्यक्ति ने रस्सी के एक छोर को छोड़ दिया तो वह पत्थर उस बंधन से मुक्त होकर आगे भागा। इसी प्रकार जीव की स्वाभाविक उर्ध्व गति होते हुए भी विरोधात्मक कर्म शक्ति से प्रेरित होकर कर्म संयुक्त संसारी जीव चतुर्गति रूपी संसार में परिभ्रमण कर रहा है, परन्तु जब वह कर्मवन्धों से मुक्त हो जाता है तब अन्य गतियों में से निवृत्त होकर स्वाभाविक उर्ध्वगति से गमन करता रहता है।

पयडिटिदि अणुभागप्पदेस बंधेहि सव्वादो मुक्को।

उटं गच्छदि सेसा विदिसा वज्जं गति जंति ॥

प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध, प्रदेश बन्ध से सम्पूर्ण रूप से मुक्त होने के बाद परिशुद्ध खतन्त्र शुद्धात्मा तिर्यच आदि गतियों को छोड़कर उर्ध्व गमन करता है।

जीव की वैभानिक परिणति तथा वैभाविक गति के कारण का उल्लेख करते हुए

आचार्य कुन्दकुन्द देव “प्रवचन सार” में निम्न प्रकार कहते हैं -

कर्मं णामसमकर्यं सभावमध अप्पणो सहावेण ।

अभिभूय णरं तिरिय णेरइयं वा सुरं कुणदि ॥(117)

(अथ) अव (नामसमायख्यं कर्म) ‘नाम’ संज्ञावाला कर्म (स्वभावेन) अपने स्वभाव से (आत्मनः स्वभावं अभिभूयं) जीव के स्वभाव का पराभव करके (नरं तिर्यञ्च नैरयिक वा सुरं) मनुष्य तिर्यञ्च, नरक अथवा देव (इन पर्यायों को (करोति) करता है।

यथाग्निः कर्ता तैलस्वभावं कर्मतापन्नमभिभूय तिरस्कृत्यं वर्त्याधारेण दीपरिखरूपेण परिणमति, तथा कर्माग्निः कर्ता तैलस्थानायं शुद्धात्मस्वभावं तिरस्कृत्यं वर्तीस्थानीयशरीरधारेण दीपशिखास्धानीयं नरनारकदिपर्यायरूपेण परिणमयति । ततो ज्ञायते मनुष्यादिपर्यायाः निश्चयेन कर्मजनिता इति ।

जैसे अग्नि कर्ता होकर तैल के स्वभाव का तिरस्कार करके वत्ती के आधार से तैल का दीपक की शिखा के रूप में परिणमन कर देती है, वैसे ही कर्मरूपी अग्नि कर्ता होकर तैल के स्थान में शुद्धात्मा के स्वभाव का तिरस्कार करके वत्ती के समान शरीर के आधार से उसे दीपक की शिखा के समान नर, नारकादि पर्यायों के रूप से परिणम कर देती है। इससे जाना जाता है कि मनुष्यादि पर्यायों निश्चय से कर्म जनित है।

नरनारकतिर्यक् सुरा जीवाः खलु नामकर्म निवृत्ताः ।

न हि ते लब्धस्वभावाः परिणममानाः स्वकर्माणि ॥(118)

(नरनारकतिर्यक् सुरा जीवाः) मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च और देव रूप जीव (खलु) वास्तव में (नामकर्मनिवृत्ताः) नाम कर्म से निष्पन्न है। (हि) वास्तव में (ते) वे जीव (स्वकर्माणि) अपने-अपने उपाजित कर्मरूप (परिणममानाः) से परिणत होते हुए। (न लब्धस्वभावाः) चिदानन्द स्वभाव को प्राप्त नहीं होते ।

जीवो आणाङ्ग- णिहणो परिणममाणो हु णव-णवं भावं ।

सामग्नीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छ ॥ (231)

जीव द्रव्य अनादि निधन है। किन्तु वह नवीन-नवीन पर्यायरूप परिणमन करता हुआ प्रथम तो अपनी सामग्री से युक्त होता है, पीछे कार्यों को करता है।

जीव द्रव्य अनादि और अनन्त है अर्थात् न उसकी आदि है और न अन्त है, परन्तु अनादि अनन्त होते हुए भी वह सर्वथा नित्य नहीं है, किन्तु उसमें प्रति समय नई-नई पर्याय उत्पन्न होती रहती है। नई-नई पर्यायों को उत्पन्न करने के लिए प्रथम वह जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव आदि रूप सामग्री से युक्त होता है फिर नई-नई पर्यायों को उत्पन्न करता है। जैसे कोई जीव देव पर्यायरूप परिणमन करने के लिए पहले समीचीन वृत्तों का धारण सामाजिक, धर्मध्यान आदि सामग्री को अपनाता है पीछे वर्तमान पर्याय को

छोड़कर देव पर्याय धारण करता है कोई जीव नारकी अथवा तिर्यच पर्यायरूप परिणमन करने के लिए पहले सात व्यसन, बहुत आरंभ बहुत पसिहाह, मायाचार कपट छल दंभ वगैरह सामग्री को अपनाता है, पीछे नारकी अथवा तिर्यच पर्याय धारण करता है। इस तरह अनादि निधन जीव में भी कार्यकारणभाव बन जाता है।

ईर्यापथकर्म :-

ईर्या का अर्थ योग है। वह जिस कार्मण शरीर का पथ, मार्ग, हेतु है वह ईर्यापथकर्म कहलाता है। योग मात्र के कारण जो कर्म वैधता है वह ईर्यापथकर्म है, यह उस कथन का तात्पर्य है।

वह छद्मस्थवीतरागों के और सयोगी केवलियों के होता है। वह सब ईर्यापथकर्म है। (24) (षट्खण्डागमःभाग नं 13 पृ 47)

'छद्मस्थवीयरायाण्' ऐसा कहने पर उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय जीवों का ग्रहण होता है, क्योंकि अन्य छद्मस्थ जीवों में वीतरागता नहीं पाई जाती। 'सयोगिकेवलीण्' इस वचन से जो छद्मस्थ निर्देश के साथ वीतराग होते हैं उनसे पृथग्भूत केवलियों का ग्रहण किया है। अब यहाँ ईर्यापथकर्म का लक्षण गाथाओं द्वारा कहते हैं। यथा -

अप्य बादर मअुवं बहुअं लहुक्खं च सुम्किलं चेव ।
मंद महव्ययं पि य सादव्यहियं च तं कम्मं ॥(2)॥
गहिदमगहिदं च तहा बद्धमबद्धं च पुट्ठपुड्डं च ।
उदिदाणुदिदं वेदिदमवेदिदं चेव तं जाणे ।
णिज्जरिदाणिज्जरिदं उदीरिदं चेव हेदि णायवं ।
अणूदीरिदं ति य पुणो इरियावहलक्खणं एदं ॥(4)॥

वह ईर्यापथकर्म अल्प है, बादर है, मृदु है, बहुत है, रुक्ष है, शुक्ल है, मन्द अर्थात् मधुर है, महान् व्ययवाला है और अत्यधिक सातरूप है ॥(2)।

उसे गृहीत होकर भी अगृहीत, बद्ध होकर भी अबद्ध, स्पष्ट होकर भी अरस्पष्ट, उदित होकर भी अनुदित और वेदित होकर भी अवेदित जानना चाहिए। (3)।

वह निर्जरित होकर भी निर्जरित नहीं है और उदिरित होकर भी अनुदिरित है। इस प्रकार यह ईर्यापथकर्म का लक्षण है। (4)।

यहाँ सर्वप्रथम पहली गाथा का अर्थ कहते हैं। यथा-जो कषाय का अभाव होने से स्थितिवन्ध के अयोग्य है, कर्मरूप रूप से परिणित होने के दूसरे समय में ही अकर्म भाव को प्राप्त हो जाता है, और स्थितिवन्ध न होने से मात्र एक समय तक विद्यमान रहता है, ऐसे योग के निमित्त से आये हुए पुद्गल स्वरूप में काल निमित्तक अल्पत्व देखा जाता है। इसीलिये ईर्यापथकर्म अल्प है, ऐसा कहा है।

शंका - जबकि ईर्यापथ कर्म कर्मरूप से एक समय तक अवस्थित रहता है, तब उसके अवस्थान का अभाव क्यों बतलाया ?

समाधान - नहीं, क्योंकि उत्पन्न होने के पश्चात् द्वितीयदि समयों की अवस्थान संज्ञा पायी जाती है। उत्पत्ति के समय को ही अवस्थान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसा मानने से उत्पत्ति के अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। यदि कहा जाय कि अनुत्पन्न वस्तु का अवस्थान बन जायेगा, सो भी वात नहीं है, क्योंकि अन्यत्र ऐसा देखा नहीं जाता। यदि उत्पत्ति और अवस्थान को एक कहा जाय सो भी वात नहीं है, क्योंकि ये दोनों पूर्वोत्तर कालभावी हैं, इसलिये इन्हें एक मानने में विरोध आता है। यही कारण है कि यहाँ ईर्यापथ कर्म के अवस्थान का अभाव कहा है।

आठों कर्मों के समयप्रबद्धप्रदेशों से ईर्यापथकर्म के समयप्रबद्धप्रदेश संख्यातगुणे होते हैं, क्योंकि यहाँ सातावेदनीय के सिवाय अन्य कर्मों का बन्ध नहीं होता। इसलिये ईर्यापथरूप में जो कर्मस्कन्ध आते हैं वे स्थूल हैं, अत ! उन्हें बादर कहा है।

शंका - ईर्यापथकर्म अनुभाग की अपेक्षा बादर होते हैं, ऐसा क्यों नहीं ग्रहण किया जाता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि यहाँ कषाय का अभाव होने से अनुभागबन्ध नहीं पाया जाता।

शंका - कार्मणस्कन्धों का कर्म रूप से परिणमन करने के समय में ही सब जीवों से अनन्तगुणा अनुभाग होना चाहिये, क्योंकि अन्यथा उनका कर्मरूप से परिणमन करना नहीं बन सकता ?

समाधान - यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ पर जघन्य अनुभागस्थान के जघन्य स्पर्धक से अनन्तगुणे हीन अनुभाग से युक्त कर्मस्कन्ध बन्ध को प्राप्त होते हैं, ऐसा समझकर अनुभागबन्ध नहीं है, ऐसा कहा है।

इसलिये एक समय की स्थिति का निवर्तक ईर्यापथकर्म बन्ध अनुभागसहित है ही, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए। और इसी कारण से ईर्यापथ कर्मस्थिति और अनुभाग की अपेक्षा (अल्प है ऐसा यहाँ कहा है)

ईर्यापथ कर्मस्कन्ध कर्कश आदि गुणों से रहित हैं व मृदु स्पर्श गुण से मुक्त होकर ही बन्ध को प्राप्त होते हैं, इसलिये ईर्यापथ कर्म को 'मृदु' कहा है।

कषाय सहित जीव के वेदनीय कर्म के समयप्रबद्ध से यहाँ वैधने वाला समयप्रबद्ध प्रदेशों की अपेक्षा संख्यातगुणा होता है, ऐसा देखकर ईर्यापथ कर्म को 'बहुत' कहा है।

शंका - बादर और बहुत में क्या अन्तर है ?

समाधान - 'बादर' शब्द कर्मस्कन्ध की स्थूलता को कहता है जबकि 'बहुत' शब्द

प्रदेशगत संख्या के बहुत्व का प्रतिपादन करता है, इसलिये इन दोनों में केवल शब्द भेद ही नहीं है, किन्तु अर्थभेद भी है। स्थूल बहुत संख्यावाला ही होना चाहिए, ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि स्थूल एरण्ड वृक्ष से, सूक्ष्म लोहे के गोले में एकरूपता अन्यथा बन नहीं सकती, इस युक्ति के बल से प्रदेश बहुत्व देखा जाता है।

ईर्यापथ कर्मस्कन्ध कक्ष है, क्योंकि पुदगलप्रदेशों में चिरकाल तक अवस्थान का कारण स्त्रिघट गुण का प्रतिपक्षभूत गुण उसमें स्वीकार किया गया है।

शंका - यहाँ पर रुक्ष गुण यदि इस प्रकार है तो ईर्यापथकर्म का स्कन्ध नहीं बन सकता, क्योंकि एकमात्र रुक्ष गुणवालों का परस्पर बन्ध नहीं होता।

समाधान - नहीं, क्योंकि वहाँ भी द्व्यधिक गुणवालों का बन्ध पाया जाता है?

शंका - गाथा में जो 'च' शब्द का निर्देश किया है उसका क्या फल है?

समाधान - ईर्यापथ कर्म के कर्मस्कन्ध अच्छीगन्धवाले और अच्छी कान्तिवाले होते हैं यह जताना 'च' शब्द का फल है।

ईर्यापथ कर्मस्कन्ध पांच वर्णवाले नहीं होते, किन्तु हंस के समान धवल वर्णवाले ही होते हैं, इस बात का ज्ञान कराने के लिये गाथा में 'शुक्ल' पद का निर्देश किया है।

यहाँ पर गाथा में आया हुआ 'चेव' शब्द का अन्वय प्रतिपक्ष गुण का निराकरण करने के लिये सर्वत्र करना चाहिए। ईर्यापथ कर्मस्कन्ध रस की अपेक्षा शक्कर से भी अधिक माधूर्य युक्त होते हैं, इस बात का ज्ञान कराने के लिए गाथा में 'मन्द' पद का निर्देश किया है।

शंका - यह किस प्रमाण से जाना जाता है?

समाधान - क्योंकि मन्द शब्द की मन्द शब्द के परिणाम रूप से उपलब्ध होती है। बन्ध को प्राप्त हुए परमाणु दूसरे समय में ही सामरस्त्य भाव से निर्जरा को प्राप्त होते हैं, इसलिये ईर्यापथ कर्मस्कन्ध महान् व्ययवाले कहे गये हैं। अथवा वे असंख्यात गुणश्रेणिनिर्जरा के अविनाभावी हैं, इसलिये उन्हें 'महान् व्ययवाला' कहा है।

यहाँ पर आया हुआ 'अपि' शब्द समुच्चय के अर्थ में जानना चाहिये।

देव और मनुष्यों के सुख से अधिक सुख का उत्पादक है, इसलिये ईर्यापथ कर्म को 'अत्याधिक सातारूप' कहा है।

शंका - यहाँ सुख का क्या लक्षण है?

समाधान - सब प्रकार की वाधाओं का दूर होना, यही प्रकृत में उसका लक्षण है।

इससे क्षीणकषाय और जिनों में भूख-प्यास आदि सब रोगों का अभाव कहा गया है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। कहा भी है -

लोक में जो काम सुख है और जो दिव्य महासुख है, वह वीतराग सुख के अनन्तवें

भाग के योग्य भी नहीं है।(9)

अब दूसरी गाथा का अर्थ कहते हैं। यथा-जल के वीच पड़े हुए तप्त लोहपिण्ड के समान ईर्यापथ कर्म-जल को अपने सब जीवप्रदेशों द्वारा ग्रहण करते हुए केवली जिन परमात्मा के समान कैसे हो सकते हैं? ऐसा पूछने पर उसका निर्णय करने के लिये यह कहा है कि ईर्यापथ कर्म गृहीत हो कर भी वह गृहीत नहीं है, क्योंकि वह सरागी के द्वारा ग्रहण किये गये कर्म के समान पुनर्जन्म रूप संसार फल को उत्पन्न करने वाली शक्ति से रहित है।

रेशम के किडे के समान ईर्यापथ कर्म से अपने को बांधने वाले जिन भगवान देव नहीं हो सकते, ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि बद्ध होकर भी वह बद्ध नहीं ही है क्योंकि दूसरे समय में ही उसकी निर्जरा देखी जाती है, और पहले के बांधे हुए कर्मों में भी उनके सहकारी कारण धातिया कर्मों का अभाव हो जाने से अन्य शरीर, संरथान और संहनन आदि को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं पाई जाती।

जो कर्मों से स्पृष्ट है वह देव कैसे हो सकता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि स्पृष्ट होकर भी वह स्पृष्ट नहीं है कारण कि ईर्यापथवन्ध का सत्वरूप से जिनेन्द्र भगवान के अवस्थान नहीं पाया जाता और पहले के सत्कर्म के स्पर्श को स्पर्श मानना ठीक नहीं है, क्योंकि उसका पतन हो रहा है।

शंका - यदि जिन भगवान् के सत्कर्म का पतन हो रहा है, तो उसका युवगत् पतन क्यों नहीं होता?

समाधान - नहीं, क्योंकि पुष्ट नदियों के समान बँधे हुए कर्म स्कन्धों के पतन को देखते हुए पतन को प्राप्त होने वाले उनका अक्रम से पतन मानने में विरोध आता है।

जिनेन्द्र देव के पंचेन्द्रिय, त्रिस, वादर, पर्याप्त, गोत्र आर आयु कर्म की उदय-उदीरणा पाई जाती हैं, इसलिये वे देव कैसे हो सकते हैं, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उनका कर्म उदीर्ण होकर भी उदीर्ण नहीं है, क्योंकि वह दग्ध गेहूँ के समान निर्वीजभाग को प्राप्त हो गया है।

शंका - ईर्यापथ कर्म का लक्षण कहते समय शेष कर्मों के व्यापार का कथन क्यों किया जा रहा है?

समाधान :- नहीं, क्योंकि ईर्यापथ के साथ रहने वाले शेष कर्मों में भी ईर्यापथत्व सिद्ध है। इसलिये उनके लक्षण में भी ईर्यापथ का लक्षण घटित हो जाता है।

असातावेदनीय का वेदन करने वाले जिनदेव आमय और तृष्णा से रहित कैसे हो सकते हैं, यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि असातावेदनीय वेदित होकर भी वेदित नहीं है, क्योंकि अपने सहकारी कारण रूप धातिकर्मों का अभाव हो जाने से उसमें दुःख को उत्पन्न करने की शक्ति मानने में विरोध आता है।

शंका - निर्वीज हुए प्रत्येक शरीर के समान निर्वीज हुए असातावेदनीय का उदय क्यों नहीं होता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि भिन्नजातीय कर्मों की समान शक्ति होने का कोई नियम नहीं है।

शंका - यदि असातावेदनीय कर्म निष्फल ही है तो वहाँ उसका उदय है, ऐसा क्यों कहा जाता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि भूतपूर्व नय की अपेक्षा से वैसा कहा जाता है। दूसरे सहकारी कारण रूप धाति कर्मों का अभाव होने से ही शेष कर्मों के समान असातावेदनीय कर्म न केवल निर्वीज भाव को प्राप्त हुआ हैं, किन्तु उदयरूप सातावेदनीय का बन्ध होने से और उदयागत उत्कृष्ट अनुभागयुक्त सातावेदनीय रूप सहकारी कारण होने से उसका उदय भी प्रतिहत हो जाता है। यदि कहा जाय कि बन्ध के उदयरूप रहते हुए सातावेदनीय कर्म की गोपुच्छा स्तिवुक का संक्रमण के द्वारा असातावेदनीय को प्राप्त होती होगी, से यह भी यात नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने में विरोध आता है।

शंका - यदि यहाँ स्तिवुक संक्रमण का अभाव मानते हैं तो साता और असाता की सत्त्व व्युच्छिति अयोगी के अन्तिम समय में होने का प्रसंग आता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि साता के बन्ध की व्युच्छिति हो जाने पर अयोगी गुणस्थान में साता उदय का कोई नियम नहीं है।

शंका - इस तरह तो सातावेदनीय का उदय काल अन्तर्मुहूर्त विनष्ट होकर कुछ कम पूर्व काटि प्रमाण प्राप्त होता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि सयोगी केवली गुणस्थान को छोड़कर अन्यत्र उदयकाल का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नियम ही स्वीकार किया गया है। अब तीसरी गाथा का अर्थ कहते हैं। यथा-निर्जरित होकर भी वह (ईर्यापथ कर्म) निर्जरित नहीं है, क्योंकि कथाय के सद्भाव में जैसी कर्मों की निर्जरा होती है वैसी अन्य अनन्त कर्मस्कन्धों की बन्ध के बिना निर्जरा होती है।

शंका - वहाँ सातावेदनीय का बन्ध है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि स्थितिवन्ध और अनुभाग बन्ध के बिना शुष्क भीतपर फेंकी गई मुट्रटीपर वालुका के समान जीव से सम्बन्ध होने के दूसरे समय में ही पतित हुए सातावेदनीय कर्म को बन्ध संज्ञा देने में विरोध आता है।

उदीरित होकर भी वह उदीरित नहीं है, क्योंकि बन्ध का अभाव होने से और जन्मान्तर को उत्पन्न करने की शक्ति का अभाव होने से उसमें निर्जरा का कोई फल नहीं देखा जाता।

अध्याय - 7

आठों कर्म के सविस्तार वर्णन

जीव एवं कर्म के अनादि सम्बन्धत्व

पयडी सील सहावो, जीवंगाणं अणाइसंबंधो ।
कणयोवले मलं वा, ताणत्थितं सयं सिद्धं ॥२॥

(गोम्मटसार कर्मकान्ड-२)

प्रकृति, शील और स्वभाव ये एकार्थवाची हैं। जिस प्रकार स्वर्ण-पाषाण में किट्टकालिमा का अनादि सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव शरीर (कार्मण) का अनादि काल से सम्बन्ध है। इन दोनों का अस्तित्व स्वयं सिद्ध है।

विशेषार्थ - प्रकृति का अर्थ शील या स्वभाव है, जैसे अग्नि का ऊर्ध्वगमन वायु का तिर्यग् गमन और जल का अधोगमन स्वभाव है, उसी प्रकार अन्य कारण निरपेक्ष जो होता है और जो अपने में होता है वह स्वभाव है। जीव का स्वभाव रागादिरूप परिणामने का और कर्म का स्वभाव तदरूप परिणामने का है। इनमें जीव का अस्तित्व अहं प्रत्यय से होता है तथा कर्म का अस्तित्व जीव में ज्ञान की वृद्धि और हानि से सिद्ध होता है क्योंकि आवरण कर्म के बिना तरतमता नहीं हो सकती है।

शंका - यदि कर्मोदय होने पर रागादि होते हैं और रागादि होने पर कर्मवन्ध होता है तो इतरेतराश्रय दोष आता है, क्योंकि रागादि बिना कर्मवंध नहीं होता और कर्मवंध व उदय बिना रागादिके नहीं होता।

समाधान - जीव और कर्मों का अनादिकाल से बन्ध चला आ रहा है दूसरे पूर्ववद्ध कर्मोदय से रागादि होते हैं और रागादि से अन्य नवीन कर्मवन्ध होता है। यदि वही कर्मवन्ध होता जो रागादि का कारण है तो इतरेतराश्रय दोष संभव होता किन्तु ऐसा है नहीं।

शंका - जीव अमूर्तिक है और कर्म मूर्तिक है। मूर्तिक-अमूर्तिक का बन्ध असंभव है, यदि मूर्ति-अमूर्तिक का बन्ध होने लगे तो आकाश आदि के भी कर्मवन्ध का प्रसंग प्राप्त होगा।

समाधान - जीव अमूर्तिक ही है ऐसा एकान्त नहीं है, कर्मवन्धरूप पर्याय की अपेक्षा व उससे संयुक्त होने के कारण जीव कथंचित् मूर्तिक है और शुद्ध स्वरूप की अपेक्षा नथंचित् अमूर्तिक है। कहा भी है

बंध पडि एयत्तं, लक्खणदो हवइ तास्स णाणत्तं ।

तम्हा अमुत्ति भावो, णेयंतो होई जीवरस्स ॥ इति ॥

- यद्यपि आत्मा बन्ध की अपेक्षा एक है, तथापि लक्षण की अपेक्षा वह भिन्न है अतः

जीव का अमूर्तिक भाव अनेकान्तरूप है। वह एक अपेक्षा से तो है और एक अपेक्षा से नहीं है।
अमृतचन्द्राचार्य ने भी कहा है -

“अमृतः स्वरूपेण जीवः पररुपावेशान्मूर्तोऽपि” “जीव स्वरूप से अमूर्त है तथापि पर आवेश से मूर्तिक है।” पुनश्च कहा है -

“अनादिवन्धनवन्धनत्वतो मूर्तानां जीवावयवानां मूर्तेण शरीरेण सम्बन्धं प्रति विरोधासिद्धेः” जीव के प्रदेश अनादिकालीन वन्धन से बद्ध होने के कारण मूर्त है। अतः मूर्त शरीर के साथ सम्बन्ध होने में कोई विरोध नहीं आता।

अणादिवन्धनबद्धस्स जीवस्स संसारावत्थाए अमूरत्ताभावादो “अनादिकालीन वन्धन से बद्ध रहने के कारण जीव का संसार अवस्था में अमूर्त होना संभव नहीं है।

संसारी जीव के कर्म के साथ संबंध के कारण

देहोदयेण सहितो, जीवो आहरदि कम्म णोकम्मं ।
पडिसमयं स्ववंगं, तत्त्वायस्पिंडओव्व जलं ॥३॥ गो.के.

- यह जीव औदारिक आदि शरीर नामकर्म के उदय से योग सहित होकर प्रतिसमय कर्म नो कर्म वर्गणा को सर्वांग से ग्रहण करता है, जैसे तपाया हुआ लोहे का गोला सर्वांग से जल को ग्रहण करता है।

विशेषार्थ - देह से मतलब है औदारिक, वैक्रियिक, अहारक, तैजस और कार्मण नामकर्म। इनमें से कार्मण नामकर्म के उदय से उत्पन्न योग से सहित जीव ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के कर्म को ग्रहण करता है। शेष शरीर नामकर्म के उदय से सहित जीव उस नामवाले नोकर्म को ग्रहण करता है।

प्रत्येक समय में बन्धने योग्य कर्म परमाणु
सिद्धाण्ठं तिमभागं अभव्वसिद्धाण्ठतगुणमेव
समयपबन्ध बधद्धि जोगवसादो दु विसरित्थं ॥४॥ (गो.क.प्र.)

- यह जीव सिद्ध जीवों के अनंतवेभाग तथा अभव्य जीवराशि जो जधन्य युक्तान्तर प्रमाण है, उससे अनंतगुणी वर्गणाओं वाले समयप्रबद्ध को प्रतिसमय बाँधता है तथा योगों का विशेषता से हीनाधिक रूप कर्म परमाणुओं को बाँधता है।

विशेषार्थ - जैसे अधिक शक्ति वाला चुम्बक अधिक लोहकणों को ग्रहण करता है और हीन शक्तिवाला चुम्बक अल्प लोहकणों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी योगशक्ति की हीनाधिकता से अल्प या अधिक कर्म परमाणुओं को ग्रहण करता है।

प्रदेश बन्ध

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशोष्वनंतानंतप्रदेशः ॥(२४)
(तत्वार्थवातिके, अ. ८ पृ. ५१०)

अपने नाम के अनुसार सभी भवों में योगविशेष से आनेवाले, आत्मा के सम्पूर्ण प्रदेशों में सूक्ष्म एकक्षेत्रावगाही अनन्तान्त कर्म पुद्गल प्रदेश बन्ध है।

सर्वेषु भवेषु सर्वतः ॥ (२)

सभी भवों में होने वाला सर्वतः कहा जाता है। (अन्यतः) भी देखा जाता है, इस प्रकार ‘तस्’ प्रत्यय करने पर सर्व भवों में होने वाला ‘सर्वतः’ ऐसा बनता है। इस ‘सर्वतः’ शब्द से काल का ग्रहण किया गया है। एक जीव के अतिक्रान्त अनंत भव और आगमी-स्थ्यात, असंख्यात एवं अनंत भव होते हैं। उन सर्व भवों में कर्मों का आस्रव होता है।

योगविशेषादिति वचनं निमित्तनिर्देशार्थम् । (३)

‘योगविशेष’ वचन निमित्त के निर्देश के लिये हैं। मन, वचन, काय रूप योग का लक्षण पूर्व में कह दिया गया है। परस्पर विशिष्य होता है वह विशेष है। योग विशेष मन, वचन, काय के निमित्त से कर्म रूप पुद्गलों का आगमन होता है, अतः इस ‘योग’ विशेष से निमित्त का (कर्मों के आने के कारण का) निर्देश किया गया है।

सूक्ष्मग्रहण ग्रहणयोग्यस्वभावप्रतिपादनार्थम् ॥(४)

सूक्ष्म का ग्रहण कर्म योग्य पुद्गलों के स्वभाव का प्रतिपादन करने के लिये हैं, अर्थात् कर्म रूप से ग्रहण करने योग्य पुद्गल सूक्ष्म है, स्थूल नहीं, इसका प्रतिपादन करने के लिये सूक्ष्म शब्द का प्रयोग किया है।

‘एकक्षेत्रावगाहवचनं क्षेत्रान्तरनिवृत्यर्थम्’ ॥ (५)

‘एक क्षेत्रावगाह’ वचन क्षेत्रान्तर की निवृत्ति के लिये हैं। आत्म प्रदेश और कर्म पुद्गल वर्गणाओं का अधिकरण (आक्षण क्षेत्र) एक ही है, भिन्न-भिन्न अधिकरण नहीं है। अतः भिन्न अधिकरण की निवृत्ति के लिये ‘एकक्षेत्रावगाह’ यह पद दिया गया है।

स्थिता इति वचन क्रियान्तरनिवृत्यर्थम् ॥ (६)

इस सूत्र में ‘स्थिति’ शब्द का प्रयोग क्रियान्तर की निवृत्ति के लिये है। स्थित ही कर्म भाव को प्राप्त होते हैं, चलते हुए नहीं। क्रियान्तर की निवृत्ति के लिये ‘स्थिता’ इस शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् स्थिता का तात्पर्य यह है कि स्थित पुद्गल, कर्म-भाव को प्राप्त होते हैं, चलते हुए नहीं। ‘सूक्ष्म’ शब्द के ग्रहण से कर्म के योग्य पुद्गलों के स्वभाव का निर्देश किया गया है। अर्थात् २ ३ प्रकार के पुद्गल वर्गणाओं में जो कर्म योग्य पुद्गल वर्गण है वही प्रदेश बन्ध में ग्राह्य है।

सर्वात्मप्रदेशविष्टि वचनमेकप्रदेशाद्योहार्थम् ॥(७)

‘सर्व आत्म प्रदेशों’ में ऐसा कहने पर एक प्रदेश आदि का निषेध किया गया है। एक, दो, तीन, चार आदि प्रदेशों में आत्मा के कर्म प्रदेशों की प्रवृत्ति नहीं है अपितू ऊपर, नीचे, वीच में सब जगह सर्वात्मप्रदेशों में व्याप्त होकर प्रत्येक आत्मप्रदेश में कर्म-पुद्गल

की स्थिति है, इस बात का ज्ञान कराने के लिये 'सर्वात्म प्रदेशेषु' यह कथन किया है। अर्थात् सर्वात्म प्रदेशों में कर्मवर्गणायें स्थित है। एक दो आदि में नहीं।

अनन्तानन्तप्रदेशवचनं प्रमाणान्तर्ख्यपोर्थम् ॥ (8)

'अनन्तानन्त प्रदेश' वचन का ग्रहण प्रमाणान्तर के निराकरण के लिये है। ये न तो संख्यात हैं, न असंख्यात हैं और न अनन्त हैं अपितु अनन्तानन्त हैं इसका प्रतिपादन करने के लिये 'अनन्तानन्त' शब्द का ग्रहण है। एक समय में आत्मा के साथ संबंध को प्राप्त करने वाले ये पुद्गल स्कन्ध अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण हैं। वे-घनांगुल के असंख्येय भाग रूप क्षेत्रवगाही एक, दो, तीन, चार संख्यात, असंख्यात समय की स्थिति वाली पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध और चार स्पर्श वाली तथा आठ प्रकार के कर्म रूप से परिणमन करने के योग्य पुद्गल वर्गणायें आत्मा के द्वारा, योगों के कारण आत्मसात् की जाती है, वह प्रदेशवन्ध है। इस प्रकार संक्षेप से प्रदेश वंध का वर्णन समझना चाहिये। तत्वार्थसार में कहा भी है -

घनांगुलरसासंख्येय भाग क्षेत्रवगाहीनः ॥(47) (अ 5)

एकद्विहत्यासंख्येय समयस्थितिकांस्तथा ।

उष्णरुक्षाहिमस्निग्धान्सर्व वर्णरसान्वित्तान् ॥ (48)

सर्वकर्म प्रकृत्यर्हान् सर्वेष्वपि भवेषु यत् ।

द्विविधान् पुद्गलरक्तन्धान् सूक्ष्मान् योगविशेषतः ॥ (49)

सर्वेष्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशकान् ।

आत्मासात्कुरुते जीवः स प्रदेशोऽभिधीयते ।

जो घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण एक क्षेत्र में स्थित है, जिनकी एक, दो, तीन आदि असंख्यात समयों की स्थिती है, जो उष्ण, रुक्ष, शीत और रन्गिन्ध स्पर्श से सहित हैं, समरत वर्णों और समरत रसों से सहित है, समरत कर्मप्रकृतियों के योग्य हैं, पुण्य और पाप के भेद से दो प्रकार के हैं, सूक्ष्म हैं, समरत भवों में जिनका वन्ध होता है तथा जो समरत आत्मप्रदेशों में अनन्तानन्त प्रदेशों को लिये हुए हैं ऐसे पुद्गलरक्तन्धों को (कर्मणवर्गण के परमाणु समूह को) यह जीव जो अपने अधीन करता है वह प्रदेशवन्ध कहलाता है।

सवेसिं चेव कर्माणं, पएसमग्मणन्तं ।

गणिठय-सत्ताईयं, अन्तो सिद्धाण्ड आहियं ॥(96)

(उत्तराध्ययन सूत्र पृ 359)

एक समय में ग्राहा बद्ध होने वाले सभी कर्मों का प्रदेशाग्रकर्म पुद्गल रूप द्रव्य अनन्त होता है। वह ग्रन्थिंग तत्वों से अर्थात् ग्रन्थि भेद न करने वाले अनन्त अभव्य जीवों

से अनन्त गुण अधिक और सिद्धों के अनन्तवें भाग जितना होता है।

इस गाथा में योग से प्रकृति एवं प्रदेश वंध एवं कषाय से स्थिति एवं अनुभाग वंध होता है ऐसा निर्देश कहा गया है। तो क्या स्थिति अनुभाग वंध के लिए अन्यान्य ग्रंथ में जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमादादि को कारण बताया गया है वे सब क्या मिथ्या हैं? अकिञ्चित्कर हैं? या धर्म द्रव्य जिस प्रकार गति हेतु में कारण है वैसे मिथ्यात्व कर्म वंध में उदासीन कारण है? नहीं, कदापि नहीं। इतना ही नहीं इस ग्रंथ में ही मिथ्यात्व को आस्रव के साथ-साथ प्रकृति प्रदेश, स्थिति, अनुभाग वंध के लिए कारण बताया है। मूल द्रव्य संग्रह का अन्त विश्लेषण करने से तथा उसकी संरक्षित टीका से यह प्रतिभासित हो जाता है। यथा

आस्रव वन्धे च मिथ्यात्व विरत्यादिकारणानि समानानि को विशेष इति चेत्, नैव-प्रथमक्षणे कर्मस्कन्धानामागमनमास्रव आगमानानंतर द्वितीय क्षणादौ जीवप्रदेशेष्ववरथाने वन्ध इति भेदः। यत एव योगकषायद्वचतुष्टयं भवति तत् एवं वन्ध विनाशार्थं योगकषायत्यागेन निजशुद्धात्मनि भावना कर्तव्येति तात्पर्यम् । (वृ. द्रव्य संग्रह पृ. 75)

शंका: - आस्रव और वंध के होने में मिथ्यात्व, अविरति आदि कारण समान है। इसलिये आस्रव और वंध में क्या भेद है?

शंका:- क्योंकि प्रथम क्षण में जो कर्म स्कन्धों का आगमन है, वह तो आस्रव है और कर्म स्कन्धों के आगमन के पीछे द्वितीय, तृतीय आदि क्षणों में जो उन कर्म स्कन्धों का जीव के प्रदेशों में स्थित होना हैं सो वंध है। यह भेद आस्रव और वंध में है। जिस कारण से कि योग और कषायों से प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग नामक चार वंध होते हैं उसी कारण से वंध का नाश करने के अर्थ योग तथा कषाय का त्याग करके अपने शुद्ध आत्मा में भावना करनी चाहिये। यह तात्पर्य है।

तत्वार्थ सूत्र आदि ग्रंथ से भी मिथ्यात्व को वंध का कारण बताया गया है। यथा

मिथ्यादर्शनाविरति प्रमादकषाययोगवन्धहेतवः । (1)

Wrong belief, non abstinence, negligence, passions and activities are the cause of bondage.

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये वन्ध के हेतु हैं।

"तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्यदर्शनम्" अर्थात् तत्वार्थ के श्रद्धान को सम्यग्यदर्शन कहते हैं। मिथ्यादर्शन इससे विपरीत है। अर्थात् "अतत्वार्थ श्रद्धानं मिथ्यादर्शनम्" अतत्वों का श्रद्धान करना या तत्वों का श्रद्धान नहीं करना मिथ्यादर्शन है। वन्ध प्रकरण में वन्धों के कारण बतलाते हुए मिथ्यादर्शन को पहले ग्रहण करने का कारण यह है कि मिथ्यादर्शन समरत वन्ध कारणों में से प्रधान एवं प्रथम कारण है। मिथ्यात्व को आगम शास्त्र में अनंत संसार का कारण होने से अनंत कहा गया है और उसके साथ रहने वाले क्रोध, मान, माया

और लोभ को अनंतानुवंधी कहा गया है। अनादि मिथ्यादृष्टि जब एक बार भी सम्यदर्शन को प्राप्त कर लेता है तब उसका अनंत संसार का विच्छेद हो जाता है केवल अधिक से अधिक अर्द्ध-पुद्गल परिवर्तन संसार रह जाता है। यदि वह चरम शरीरी हैं तो तद्भव में मोक्ष जाते हैं इसलिए समन्तभद्र खामी ने भी कहा है -

न सम्यक्त्वसमं किंचित्‌त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयेश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥(34)

(र. श्रावकाचार)

प्राणियों के तीन कालों और तीन लोक में भी सम्यदर्शन के समान कल्याणरूप और मिथ्यादर्शन के समान अकल्याण रूप अन्य वस्तु नहीं हैं। सम्यदर्शन प्राप्त होने के बाद अनेक पाप प्रकृतियों का बंध नहीं होता है। यथा

सम्यदर्शन शुद्धा नारकतिर्यनंपुसकस्त्रीत्वनि ।

दुष्कुलविकृताल्पायुदरिद्रितां च ब्रजन्ति नाप्यत्रितिका ॥ (35) (र. श्रावकाचार)

सम्यदर्शन से शुद्ध जीव ब्रत रहित होने पर भी नारक, तिर्यच, नंपुसक और स्त्रीपने को तथा नीच कुल, विकलांग अवस्था, अल्पायु और दरिद्रता को प्राप्त नहीं होता।

मिथ्यात्व गुणरथान के अंत में 16 पाप प्रकृतियों का बंध विच्छेद होता है। यथा

मिच्छतहुं डसंडाऽसंपत्ते यक्खथावरादावे ।

सुहूमतियं वियलिंदिय पिरयदुणिरस्याउगं मिच्छं ॥(95)

(गो. सा. कर्मकाण्ड)

1. मिथ्यात्व, 2. हुण्डकसंरथान, 3. नपुंसकवेद, 4. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन, 5. एकेन्द्रिय जाति, 6. स्थावर, 7. आतप, 8. सूक्ष्मदि तीन अर्थात् सूक्ष्म, 9. अपर्याप्त, 10. साधारण, विकलेन्द्रिय तीन अर्थात् 11. दो इन्द्रिय, 12. तीन इन्द्रिय, 13. चौ इन्द्रिय, 14. नरक गति, 15. नरकगत्यानुपूर्वी, 16. नरकायु ये सोलह प्रकृतियाँ हैं। मिथ्यात्व गुणरथान के अंत समय में इनकी बंध व्युच्छिति हो जाती है। अर्थात् मिथ्यात्व से आगे के गुणरथान में इनका बंध नहीं होता। परिणामादो बंधो परिणामो रागदोस मोह जुदो। असुहो मोह पयेसो सुहो व असुहो हवदि रागो ॥ (180)

परिणाम से बंध होता है, वह परिणाम राग द्वेष मोह युक्त है। मोह और द्वेष अशुभ है राग शुभ अथवा अशुभ होता है।

इस प्रकार से मिथ्यादर्शन आदि पांचों मिलकर या पृथक्-पृथक् बंध के हेतु है। खुलासा इस प्रकार है - मिथ्यादृष्टि जीव के पांचों ही मिलकर बंध के हेतु हैं। सासादन-सम्यदृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरत सम्यदृष्टि के आदि के चार बंध के हेतु हैं।

संयतासंयत के विरति और अविरति ये दोनों मिश्ररूप तथा प्रमाद, कषाय और योग ये बंध के हेतु हैं। अप्रमत्तसंयत आदि चार के योग और कषाय ये दो बन्ध के हेतु हैं। उपशांत, कषाय, क्षीणकषाय और संयोगकेवली इनके एक योग ही बन्ध का हेतु है। अयोगकेवली के बन्ध हेतु नहीं हैं। (स्वंत्रता के सूत्र, पृ 466)

आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने वारस अणुपेकर्वा में भावपरावर्तन रूप भाव संसार का वर्णन करते हुए कहा है।

सत्वे पयडिद्विदिओ अणुभाग पदे सबंधठाणाणिणि ।

जीवो मिच्छत्तवसा भमिदो पुण भाव संसारे ॥ (29) पृ. 16

इस भाव परावर्तन रूप संसार में मिथ्यात्व के वशीभूत जीव ने सभी (आठों) कर्मों के प्रकृतिबंध, स्थितिबन्ध, अनुभाग बंध और प्रदेश बन्ध के सभी स्थानों में वार-वार भ्रमण किया है। (दंसणमूलो धम्मो पृ 27)

उपरोक्त आगम के अकाट्य प्रमाण होते हुये भी कुछ व्यक्ति मिथ्यात्व को बंध के प्रकरण में अकिञ्चित्कर, उदासीन कारण या अधिकरण मानते हैं। यह मानना पूर्ण आगम विरुद्ध, कपोल-कल्पित, अविचारित-रम्य है। मिथ्यात्व आस्रवबंध में अकिञ्चित्कर नहीं है, परन्तु अतिकर है, उदासीन नहीं है पर प्रेरक कारण है, अधिकरण नहीं, अधिककरण है, ऐसी आगमोक्त युक्ति परक सिद्धि मेंने “दंसण मूलो धम्मो तहा संसार मूलहेदू मिच्छत्” में की है। विशेष जिज्ञासु उसका अध्ययन करें।

अरुपिश्वचक्षणि ॥ (12)

जो द्रव्य दिखाई देते हैं, वे रूप वाले हैं और जो रूप वाले हैं, वहीं दिखाई देते हैं। जो पदार्थ रूप वाले नहीं हैं वे नेत्र से नहीं देखे जा सकते। यही कारण है कि आत्मा आदि की संख्या नहीं जानी जा सकती, क्योंकि आत्मा आदि सूक्ष्म पदार्थ को नेत्र से दिखाई नहीं देते।

संस्काराभावे गुरुत्वात् पतनम् ॥ (18) पृ. 135

जब तीर में वेग नहीं रहता, तब वह बोझ के कारण गिर जाता है, क्योंकि सभी वस्तुएँ जिनमें भार होता है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से गिर जाती है। पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को संस्कार अर्थात् वेग ही रोके रखता है और जब वेग समाप्त हो जाता है, तब पृथ्वी का आकर्षण रोकने वाला कोई आधार नहीं रहता, इसलिए तीर को नीचे गिराना ही होता है।

विभवान्यहानाकाशस्तथा चात्मा ॥ (22)

आकाश विभु है क्योंकि उसका सम्बन्ध अवयव वाले प्रत्येक पदार्थ से है और विभु वही है जो सबसे बड़ा है। इसलिए आकाश को सबसे बड़ा मानना चाहिए।

द्रव्य कर्म एवं भाव कर्म का परस्पर जन्य जनकत्व भाव

आदा कम्मलिमसो परिणामं लहदि कम्मसंजुत्तं ।
तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामो ॥ (121)

(प्रवचनसार, पृ. 371)

(आदा कम्मलिमसो) आत्मा द्रव्य कर्मों से अनादि काल से मैला है। इसलिए (कम्मसंजुत्तं परिणामं) मिथ्यात्व आदि भाव कर्म रूप परिणाम को (लहदि) प्राप्त होता है। (तत्तो) उस मिथ्यात्व आदि परिणाम से (कम्मं सिलिसदि) पुद्गलकर्म जीव के साथ बंध जाता है (तम्हा) इसलिए (परिणामो) मिथ्यात्व व रागादि रूप परिणाम (कम्मं तु) ही भाव कर्म है अर्थात् द्रव्य कर्म के बन्ध का कारण है।

निश्चय नय से यह दोष रहित परमात्मा शुद्ध-शुद्ध एक स्वभाव वाला होने पर भी व्यवहार नय से अनादि कर्म बन्ध के कारण कर्मों से मैला हो रहा है। इसलिए कर्म रहित परमात्मा से विरुद्ध कर्मसहित मिथ्यात्व व रागादि परिणामों को प्राप्त होता है। इस परिणाम से द्रव्य कर्मों को बांधता है। और जब निर्मल भेद-विज्ञान की ज्योति रूप परिणाम में परिणामता है तब कर्मों से छुट जाता है, क्योंकि रागद्वेष आदि परिणाम से कर्म बंधता है। इसलिए राग आदि विकल्प रूप जो भाव कर्म या सराग परिणाम है सो ही द्रव्य कर्मों का कारण होने से उपचार से कर्म कहलाता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि राग आदि परिणाम ही कर्म बंध का कारण है।

समीक्षा :- जिस प्रकार वृक्ष से वीज होता है एवं वीज से वृक्ष होता है या पक्षी से अंडा होता है एवं अंडे से पक्षी होता है उसी प्रकार द्रव्यकर्म से भावकर्म होता है और भावकर्म से द्रव्यकर्म होता है। यह कर्म की जन्य जनकत्व परम्परा है। समयसार में आचार्य कुन्द कुन्द देव ने कहा भी है :-

जीव परिणामहेदु कम्मंत्त पोगला परिणमंति ।
पोगल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥(80) समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणामन करते हैं। इसी प्रकार देव को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष (परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थी) है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है तब देव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं ।
मंसवसारुहिरादि भावे उदयरग्मिसंजुत्तो ॥

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार वह उदाराम्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार मांस, रुधिर आदि भावों रूप में परिणामता है उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक देव (कर्म) रूप से परिणामन करता है।

भोजन के पहले खाद्य सामग्री, रोटी, भात, दाल आदि रूप में रहती है। भोजन करने के बाद वही खाद्य सामग्री खाने वाले के चर्चण, लार, पाचन शक्ति आदि के निमित्त से रस, रुधिर, मांस, मेद (चर्ची) अस्थि, मज्जा, वीर्य ओज आदि रूप परिणामित हो जाती है उसी प्रकार से कर्म वर्गणा जब तक जीव के योग और उपयोग को निमित्त प्राप्त करके आस्र एवं बन्ध रूप परिणामन नहीं करती है तब तक वह वर्गणा केवल भौतिक पुद्गलस्वरूप ही रहती है। जीव के योग एवं उपयोग को प्राप्त करके वही कर्म वर्गणा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, मोहनीय आदि कर्म रूप से परिणामन कर लेती हैं। जीव के योग एवं उपयोग को प्राप्त करने से पहले कर्म-वर्गणा जड़ रूप में रहती है एवं योग उपयोग रूपी जीव के शुभाशुभ निमित्त को प्राप्त करके देव रूप में परिणामन कर लेती है। इससे सिद्ध होता है कि देव भी पुरुषार्थ से जायमान (उत्पन्न) है। जैसे अण्डा से पक्षी। उसी प्रकार शुभाशुभ पुरुषार्थ भी पूर्वार्जित देव के कारण होता है। इसलिए कथञ्चित् पुरुषार्थ भी देव से जायमान है जैसे अण्डा से पक्षी जायमान है और पक्षी से अण्डा जायमान है, जैसे वीज से वृक्ष से वृक्ष से वीज उत्पन्न होता है उसी प्रकार कथञ्चित् कर्म (देव) से पुरुषार्थ एवं पुरुषार्थ से कर्म उत्पन्न होता है। अभ्य जीव के देव एवं पुरुषार्थ की परम्परा अनादि अनन्त होते हुए भी मोक्ष जाने वाले भव्यों की अपेक्षा वह अनादि शांत है। देव एवं पुरुषार्थ का परस्पर जन्य जनक का भाव बताते हुए आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी निम्न प्रकार बताते हैं -

भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि ।
ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भुदा दु कत्तारं । (60)

(पंचस्तिकाय)

निर्मल चैतन्यमयी ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवस्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है उससे उल्टे जो उदय में प्राप्ति कर्म है उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्य कर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं ऐसा होने पर भी जीव सम्बन्धी रागादि भावों का व द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्त्तापिना नहीं हैं तो भी वे रागादि भाव और द्रव्य कर्म दोनों विना उपादान कारण के नहीं हुए हैं किन्तु जीव सम्बन्धी रागादि भावों का उपादान कर्ता जीव

ही है तथा द्रव्य कर्मों का उपादान कर्ता कर्म वर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान में यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किये जाने पर जीव रागादि भावों का कर्ता नहीं है तथापि अशुद्धनिश्चय नय से जीव रागादिभावों का कर्ता है यह बात सिद्ध है -

जीव परिणामहेदुं कम्मतं पुगला परिणमंति ।
पुगलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि ॥ (80)
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे ।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोष्णंपि ॥ (81)

यद्यपि जीव के रागद्वेषी परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गालिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीव कर्म के गुण रागादिको स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता, किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

जीव एक द्रव्य होने के कारण उसमें अनंतगुण एवं पर्याय होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार जीव में ज्ञान, दर्शन, सुखादि गुण हैं उसी प्रकार वैभाविक गुण भी हैं। उस विभाग के कारण कर्मवन्ध होता है। यदि जीव में वैभाविक गुण नहीं होता तो वह विभाग रूप में परिणमन नहीं करता और वैभाविक परिणमन नहीं करने के कारण कर्म वन्ध भी नहीं होता, परन्तु संसारी अवस्था में कर्म वन्ध हैं। इससे सिद्ध होता है कि संसारी जीव के कर्म वन्ध हैं, परन्तु कर्म निरपेक्ष सिद्धावस्था में यह वैभाविक भाव कर्म के अभाव से वैभाविक रूप से कार्य करने में असमर्थ होता है। जिस प्रकार वीज में अंकुरित होने की शक्ति के होने पर भी वाह्य निमित्त को पाकर अंकुरित हो सकता है। अंकुर उत्पत्ति की शक्ति होते हुए भी वाह्य जल, वायु आदि निमित्त नहीं मिलने पर अंकुर उत्पत्ति नहीं होते हैं। इस प्रकार जीव की वैभाविक शक्ति के विषय में जान लेना चाहिए। अर्थात् वैभाविक शक्ति होते हुए द्रव्यकर्म एवं भावकर्म के सद्भाव से कर्म वंध होता है। तथा वैभाविक शक्ति होते हुए भी द्रव्य कर्म एवं भाव कर्म के अभाव से कर्म वंध नहीं होता है। इसलिए संसारवस्था में कर्म वन्ध होता है और मुक्तावस्था में कर्म वन्ध नहीं होता है। पंचाध्यायी में उपरोक्त सिद्धान्त का मार्मिक वर्णन किया है। यथा -

अस्ति वैभाविकी शक्तिः तस्तेषु गुणेषु च ।

जन्तोः संसृत्यवस्थायां वैकृतस्ति स्वहेतुतः । (950) पृ. 529

उन्हीं जीव के अनन्त गुणों में एक स्वतः सिद्ध वैभाविक नामा शक्ति है। वह शक्ति संसार अवस्था में अपने कारण से विकृत (विकारी) हो रही है।

यथावास्वच्छताऽदर्शे प्राकृतास्तिनिसर्गतः ।

तथाप्यस्यासंयोगाद्वैकृतास्त्यर्थतोपि सा ॥ (951)

जिस प्रकार दर्पण में स्वभाव से ही स्वच्छता (निर्मलता) सिद्ध है। तथापि सम्बन्ध होने से उसकी विकार अवस्था हो जाती है और वह विकार वास्तविक है।

वैकृतत्वेषि भावस्य न स्यादर्थान्तरं क्वचित् ।

प्रकृतौ य द्विकारित्वं वैकृतं हि तदुच्यते ॥ (952)

विकृत अवस्था होने पर भी पदार्थ कहीं बदल नहीं जाता है। प्रकृति में जो विकृति होती है उसे ही उसका विकार कहते हैं।

यथाहि वारुणीपानाद् बुद्धिर्नाऽबुद्धिरेव नुः ।

तत्प्रकारान्तरं बुद्धो वैकृतत्वं तदर्थसात् । (953)

जिस प्रकार मदिसा पीने से मनुष्य की बुद्धि-बुद्धि ही रहती है वह अबुद्धि (पदार्थान्तर) नहीं हो जाती है किन्तु बुद्धि में ही कुछ दूसरी अवस्था हो जाती है। जो बुद्धि की दूसरी अवस्था है वही उसकी वास्तविक विकृति है।

प्राकृतं वैकृतं वापि ज्ञानमांत्रं तदेव यत् ।

यावदत्रेन्द्रियायत्वं तत्सवं वैकृतं विदुः । (954)

स्वाभाविक ज्ञान हो अथवा वैभाविक ज्ञान हो सभी ज्ञान ही कहा जायेगा, क्योंकि ज्ञानपना दोनों ही अवस्थाओं में है, परन्तु इतना विशेष है कि जितना भी इन्द्रियों से ज्ञान होता है वह सब वैभाविक है।

अस्ति तत्र क्षतिर्नूनं नाक्षतिर्वास्त्वादपि ।

जीवस्यातीवदुःखित्वात् सुखस्योन्मूलनादपि । (955)

जीव की विकृत अवस्था में वास्तव में हानि है। विकृत अवस्था में जीव की वास्तव में कुछ हानि न हो ऐसा नहीं है क्योंकि विकृतावस्था में जीव को अत्यन्त दुःख होता है और इसका स्वाभाविक सुख गुण नष्ट हो जाता है।

अपि द्रव्यनयादेशात् टंकोत्कीर्णोस्ति प्राणभृत् ।

नात्मसुखे स्थितः कश्चित् प्रत्युतातीव दुःखवान् । (956)

यद्यपि द्रव्यार्थिक नय से यह जीव टांकी से उकेरे हुए पत्थर के समान सदा नित्य है तथापि पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से कोई संसारी जीव अपने सुख में स्थित नहीं है, किन्तु उल्टा अत्यन्त दुःखी है।

नांगीकर्तव्यमेवैतत् स्वस्वरूपे स्थितोस्ति ना ।

बद्धो वा स्यादबद्धो वा निर्विशेषादथाः मणिः । (957)

जिस प्रकार मणि मिलि हुई (कीचड आदि में) अवस्था में भी शुद्ध है और भिन्न

अवस्था में भी शुद्ध है। उसी प्रकार यह मनुष्य भी चाहे कर्मों से वंधा हुआ हो, चाहे मुक्त हो सदा अपने स्वरूप में स्थित है। ऐसा भी नहीं मानना चाहिए।

यतश्चैव स्थिते जन्तोः पक्षः स्यात् बाधितो बलात् ।

संसृतिर्वा विमुक्तिर्वा न स्याद्वा स्यादभेदसात् ॥ (958)

क्योंकि जीव को यदि सदा शुद्ध माना जाए तो वह मानना न्यायबल से बाधित है। जीव को सदा शुद्ध मानने से तो संसार सिद्ध हो सकता और न मुक्त ही सिद्ध हो सकता है। अथवा दोनों में अभेद ही सिद्ध होगा।

स्वस्वरूपे स्थितो ना चेत् संसारः स्यात्कुतो नयात् ।

हटाद्वा मन्यमानेस्मिन्निष्टत्वमहेतुकम् । (959)

यदि मनुष्य सदा अपने स्वरूप में ही स्थित रहे अर्थात् सदा शुद्ध ही बना रहे तो संसार किस नय से हो सकता है? यदि जीव को, हट पूर्वक ही विना विस्ती हेतु के शुद्ध माना जाय तो अनिष्टता का प्रसंग आता है उसे ही दिखाते हैं -

जीवश्चेत्सर्वतः शुद्धो मोक्षादेशो निरर्थकः ।

नेष्टमिष्टत्वमत्रापि तदर्थं वा वृथा श्रमः ॥ (960)

यदि जीव सदा शुद्ध है तो फिर मोक्ष का आदेश (निरुपण) व्यर्थ है और यह बात इष्ट नहीं है। क्यों इष्ट नहीं है? इसका उत्तर यहीं है कि मोक्ष के लिए जो श्रम किया जाता है वह सब व्यर्थ होगा।

सर्व विप्लवतेष्येवं न प्रमाणं न तत्फलम् ।

साधन साध्यभावश्च न स्याद्वा कारकक्रिया । (961)

जब मोक्ष व्यवस्था और उसका उपाय ही निरर्थक है तब न प्रमाण बनता है, न उसका फल बनता है न साधन बनता है, न साध्य बनता है न कारण बनता है और न ही क्रिया बनती है सभी का विप्लव (लोप) हो जाता है।

सिद्धमेतावताप्येवं वैकृता भावसन्ततिः ।

अस्ति संसारीजीवानां दुःख मूर्तिर्दुरुतरी । (962)

उपर्युक्त कथन से यह बात भली भांति सिद्ध हो चुकी है कि संसारी जीव के भावों की सन्तति विकृत है, दुःख की मूर्ति है और खोटे फलवाली है।

गीता में नारायण कृष्ण ने कहा है:-

न हि कश्चेत्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणः । (5) । पृ. 42

वास्तव में कोई एक क्षणभर भी कर्म किये विना नहीं रह सकता है। प्रकृति से उत्पन्न हुए गुण परवश पड़े प्रत्येक मनुष्य से कर्म कराते हैं।

कर्म में अपरिवर्तनशील (आवाधा) काल

कर्मसरुवेणागददद्वं, ण य एदि उदयरुवेण ।

रुवेणुदीरणस्स य, आवाहा जाव ताव हवे ॥ (914)

(गोम्मटसार कर्मकाण्ड पृ. 771)

अर्थः- कर्मस्वरूप से परिणित हुआ जो कार्मणद्रव्य जब तक उदय या उदीरणस्त्रूप नहीं होता तब तक का काल आवाधा कहलाता है।

विशेष :- कर्मवंध होने के पश्चात् जितने काल तक उदय व उदीरणस्त्रूप नहीं हो सके उस काल को आवाधाकाल कहते हैं। अर्थात् वह आवाधकाल दो प्रकार का है - (1) उदय आवाधाकाल (2) उदीरणाआवाधकाल।

उदयं पडि सत्तण्हं, आवाहा कोडिकोडि उवहीणं ।

वाससयं तप्पडिभागेण य सेसद्विदीणं च ॥ (915)

अर्थः- उदय की अपेक्षा आयु विना शेष सात मूल प्रकृतियों की एक कोडाकोडि-सागरस्थिति की आवाधा 100 वर्ष है। शेष स्थितियों की आवाधा भी इसी प्रतिभाग से जानना चाहिए।

विशेषार्थ :- एक कोडाकोडि-सागरस्थिति की आवाधा 100 वर्ष है तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय व अंतरायसम्यंधी 30 कोडाकोडि-सागरस्थिति की कितनी आवाधा होगी? इस प्रकार यहाँ प्रमाणराशि एक कोडाकोडिसागर, फलराशि 100 वर्ष और इच्छाराशि 30 कोडाकोडिसागर हैं सो फलराशि से इच्छाराशि को गुणाकार प्रमाणराशिका भाग देने पर $30 \text{ कोडाकोडिसागर} \times 100 \div \text{एक कोडाकोडिसागर} = 3000$ वर्ष की आवाधा होती है। इसी प्रकार मोहनीय कर्म की 70 कोडाकोडिसागर स्थिति सम्बधी आवाधा 7000 वर्ष होती है। नाम व गोत्र कर्म की 20 कोडाकोडिसागर प्रमाण स्थिति की आवाधा 2000 वर्ष होती है।

अंतोकोडाकोडिद्विदिस्स अंतोमुहृत्तमबाधा ।

संखेज्जगुणविहिणं, सव्वजहण्णद्विदिस्स हवे ॥ (916)

अर्थ :- अंतः कोडाकोडिसागर प्रमाण स्थिति की आवाधा अन्तर्मुहूर्त मात्र है तथा जघन्यस्थिति की आवाधा अंतर्मुहूर्त के संख्यातवे भाग है।

नित्यं परिमण्डलम् । (20) पृ 179

यह सम्पूर्ण जगत् गोल परमाणुओं से बना है, वे परमाणु नष्ट न होने वाले माने गये हैं, गोल वरतु में आकाश का रहना सिद्ध है तथा अवयव वाली वरतु में भी आकाश रहता है।

आयुकर्म – सम्बन्धी आवाधा

पुव्वाणं कोडितिभागादासंखेपअद्व वोत्ति हवे ।

आउस्स य अबाहा, ण द्विदिपडिभागामाउस्स ॥

अर्थः— आयुकर्म की आवाधा कोटिपूर्ववर्षके तृतीयभाग से असंक्षेपाद्वार्पर्यन्त जानना। आयुकर्म की आवाधा आयु के प्रतिभाग रूप नहीं होती।

विशेषार्थः— कोटिपूर्व वर्ष की आवाधा जिसका त्रिभाग है तो तीन पल्य की स्थिति की आवाधा कितनी होगी? इस प्रकार स्थिति का प्रतिभाग करके आयुकर्म की आवाधा का प्रमाण सिद्ध नहीं होता अतः जितनी भुज्यमान आयु अवशेष रहने पर परभव की आयु वंधे उतनी ही वध्यमान आयु की आवाधा का प्रमाण है। कर्मभूमि में आयु का त्रिभाग अवशेष रहने पर, भोग भूमि व देव नारकीयों में छह मास (1) अवशेष रहने पर आयुवंध की योग्यता होती है (2) अतः उत्कृष्ट आवाधा पूर्वकोटि वर्ष का तृतीय भाग जानना और जघन्य आवाध असंक्षेपाद्वा (क्षुद्रभव का संख्यातवां भाग) (3) अर्थात् जिससे थोड़ा-काल कोई न हो उतने प्रमाण है। (क्षुद्रभव आयुवाला अपनी आयु के अंतिम अपकर्वर्ष में आयु का वंध करता है उसकी आवाधा क्षुद्रभव के संख्यातवे भाग प्रमाण होती है।) इस प्रकार उदय की अपेक्षा आवाधा कही।

उदीरणा की अपेक्षा आवाधा

आवलियं आबाहा, उदिरणमासिज्ज सत्तकम्माणं ।

परभविय आउगस्स य, उदीरणा णत्थि पियमेण ॥

अर्थः— उदीरणा का आश्रयकर आयु के विना सातकर्मों की आवाधा आवलिमात्र है तथा परभव – सम्बन्धी आयु की उदीरणा नहीं होती है।

विशेषार्थः— वंध होने के पश्चात् आयु विना शेष कर्मों की उदीरणा आवलीकाल व्यतीत होने पर ही होती है। परभव की जो आयु वांधली है उसकी उदीरणा निश्चयसे नहीं होती है। अर्थात् वर्तमान आयु की तो उदीरणा हो सकती है, परन्तु वैधी हुई आगामी आयु की नहीं। यहाँ ऐसा अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि देव, नारकी, चरमशरीरी, भोगभूमिजके भुज्यमान आयु की उदीरणा नहीं होती। क्योंकि, इन देव, नारकी, चरमशरीरी, भोगभूमिज के भी आयु कर्म की उदीरणा तो अवश्य होती है पर उतने मात्र से अकाल मरण (कदलीघात) नहीं हो जाता। क्योंकि उदीरणा में किसी भी निषेक के, असंख्यातवे भाग प्रमाण (असंख्यात लोकवाँ भाग या पल्योपम का असंख्यातवां भाग) परमाणु ही अपकर्षित होते हैं तथा उदयावली में दिये जाते हैं, पूरा का पूरा निषेक नहीं (धवल 15/43) अतः मात्र उदीरणा होने से कहीं अकाल मरण थोड़े ही होता है। जवकी अकाल मरण (कदलीघात) में निषेक

पूरे की पूरे समाप्त हो जाते हैं, नियतकाल में जवकी अकाल मरण (कदलीघात) मानना ठीक नहीं। जैसे नरकायु की उदीरणा सब नारकीयों में होती है। विशेष इतना कि जिस नारक के नारक भव में आवली प्रमाण ही जीवन शेष है उसकी उदीरणा नहीं होती। देव आयु आदि में भी ऐसे ही कहना चाहिए (धवल 15/56-57 तथा जयधवला 14/34) इसी तरह भोगभूमि में भी मनुष्य तिर्यचायु की उदीरणा आवली कम तीन पल्य तक होती रहती है। मात्र अंतिम आवली में मनुष्यायु, तिर्यच आयु की उदीरणा नहीं होती। (धवल 15/63, धवला 15/120, 127, 57, 178 आदि तथा स.सि.पृ. 346 ज्ञानपीठ द्वितीय संस्करण) इसी तरह देव, चरम शरीरी में भी उदीरणा आयु कर्म की होती है, पर अकाल-मरण नहीं। गो. क. 441 में चारों आयु की उदीरणा बताई। उदीरणा का अर्थ अकाल मरण नहीं है।

(1) ज्ञानावरणीय कर्म :-

ज्ञान, अववोध, अवगम और परिच्छेद ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं। उस ज्ञान को जो आवरण करता है, वह ज्ञानावरणीय कर्म है।

शंका — ‘ज्ञानवरण’ नाम के स्थान पर “ज्ञान-विनाशक” ऐसा नाम क्यों नहीं कहा? (धवला-चूलिका - पृ. 6)

समाधान — नहीं, क्योंकि जीव के लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शन का विनाश नहीं होता है। यदि ज्ञान और दर्शन का विनाश माना जाय, तो जीव का भी विनाश हो जायगा, क्योंकि, लक्षण से रहीत लक्ष्य पाया नहीं जाता है।

शंका — ज्ञान का विनाश नहीं मानने पर सभी जीवों के ज्ञान का अस्तित्व प्राप्त होता है?

समाधान — ज्ञान का विनाश नहीं मानने पर यदि सर्व जीवों के ज्ञान का अस्तित्व प्राप्त होता है तो होने दो, उसमें कोई दोष नहीं है। अथवा अक्षर का अनन्तवां भाग नित्य-उद्घाटित अर्थात् आवरण रहित रहता है इस सूत्र के अनुकूल होने से सर्व जीवों के ज्ञान का अस्तित्व सिद्ध है।

शंका — यदि सर्व जीवों के ज्ञान का अस्तित्व सिद्ध है, तो फिर सर्व अवयवों के साथ ज्ञान का उपलम्भ होना चाहिए? अर्थात् ज्ञान के सभी भागों का या पूर्ण ज्ञान का सद्भाव पाया जाना चाहिए?

समाधान — यह कहना उपयुक्त नहीं, क्योंकि, आवरण किये गये ज्ञान के भागों का उपलम्भ मानने में विरोध आता है।

शंका — आवरण युक्त जीव में आवरण किये गये ज्ञान के भाग क्या है, अथवा नहीं है? यदि हैं, तो वे आवरित नहीं कहे जा सकते, क्योंकि सम्पूर्ण रूप से विद्यमान भागों के

आवरण मानने में विरोधे आता है। यदि नहीं है तो उनका आवरण नहीं माना जा सकता, क्योंकि, आवियमाण अर्थात् आवरण किये जाने योग्य पदार्थों के अभाव में आवरण के अस्तित्व का विरोध है?

समाधान - यहाँ उक्त आशंका का परिहार करते हैं - द्रव्यार्थिकन्यके अवलम्बन करने पर आवरण किये गये ज्ञान के अंश सावरण जीव में भी होते हैं, क्योंकि, जीव द्रव्य से पृथग्भूत ज्ञान का अभाव है, अथवा विद्यमान ज्ञान के अंश गे आवरण किये गये ज्ञान के अंशों का कोई भेद नहीं है।

शंका - ज्ञान के आवरण किए गए और आवरण नहीं किए गए अंशों के एकता कैसे हो सकती है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, राहु और मेंघों के द्वारा सूर्यमण्डल और चंद्रमण्डल के आवरित और अनावरित भागों के एकता पाई जाती है।

इस प्रकार उक्त व्यवस्था के होने पर आवियमाण और आवारकभाव बन जाता है, अर्थात् ज्ञान तो आवरण करने योग्य और कर्म-पुद्गल आवरण करने वाले सिद्ध हो जाते हैं। यदि उक्त व्यवस्था न मानी जायगी तो उसके अनुपलम्भका प्रसंग प्राप्त होगा, किंतु पर्यायार्थिकन्यका अवलम्बन करने पर आवियमाण ज्ञान-भाग सावरण जीव में नहीं होते हैं, क्योंकि, वे ज्ञान-भाग उक्त जीव में नहीं पाये जाते।

दूसरी बात यह है कि यह सूत्र पर्यायार्थिकन्यका अवलम्बन करके स्थित नहीं है, क्योंकि, उसमें आवियमाण और आवारक, इन दोनों के व्यवहार का अभाव है। किंतु यह सूत्र द्रव्यार्थिकन्यका अवलम्बन करके अवस्थित है, इसलिए यहाँ पर आवियमाण और आवारक भाव विरोध को प्राप्त नहीं होता है।

शंका - ज्ञान के आवियमाण किस लिए कहा है?

समाधान - अपने विरोधी द्रव्य के सन्निधान् अर्थात् सामीप्य होने पर भी जो निर्मलतः नहीं विनष्ट होता है, उसे आवियमाण कहते हैं, और दूसरे अर्थात् आवरण करने वाले विरोधी द्रव्य को आवारक कहते हैं। विरोधी कर्म द्रव्य के सन्निधान होने पर ज्ञान का निर्मल विनाश नहीं होता है, क्योंकि, वैसा मानने पर जीव के विनाश का प्रसंग आता है। इसलिए ज्ञान तो आवियमाण है और कर्मद्रव्य आंवारक है, ऐसा कहा गया है।

शंका - जीव द्रव्य से पृथग्भूत पुद्गलद्रव्य के द्वारा जीव का लक्षणभूत ज्ञान कैसे विनष्ट किया जाता है?

समाधान - यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जीव द्रव्य से पृथग्भूत घट, पट, स्तम्भ और अंधकार आदि पदार्थ जीव के लक्षण स्वरूप ज्ञान के विनाशक पाये जाते हैं।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान का आवरण करने वाला और प्रवाह स्वरूप से

अनादि-बंधन-बद्ध पुद्गल-स्कन्ध 'ज्ञानावरणीय कर्म' कहलाता है।

ज्ञानावरणीय कर्म की पाँच उत्तर प्रकृतियां हैं। (13)।

वे पाँच प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं - अभिनिवोधिक ज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मनः पर्यज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय। (14)।

अभिमुख और नियमित अर्थ के अवबोध को अभिनिवोध कहते हैं। रथूल, वर्तमान और अनन्तरित अर्थात् व्यवधान रहित अर्थों को अभिमुख कहते हैं। चक्षुरिन्द्रिय में रूप नियमित है, श्रोतेन्द्रिय में शब्द, घाणेन्द्रिय में गन्ध, जिह्वेन्द्रिय में रस, स्पर्शनेन्द्रिय में स्पर्श और नोइन्द्रिय अर्थात् मन में दृष्टि, श्रुत और अनुभूत पदार्थ नियमित हैं। इस प्रकार के अभिमुख और नियमित पदार्थों में जो वोध होता है, वह अभिनिवोध है। अभिनिवोध ही आभिनिवोधिक ज्ञान कहलाता है। यहाँ पर 'ज्ञान' यह विशेष्य पद है, क्योंकि, वह सामान्यरूप है। 'अभिनिवोधिक' यह विशेषण पद है, क्योंकि, वह अन्य ज्ञानों से व्यवच्छेद करता है। विशेषण दोनों पदों के देने पर भी पुनरुक्त दोष नहीं आता है।

वह अभिनिवोधिक ज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से चार प्रकार का है। विषय और विषयी के योग्य देश में प्राप्त होने के अनन्तर आद्य ग्रहण को अवग्रह कहते हैं। वाहरी पदार्थ विषय है, और इन्द्रियाँ विषयी कहलाती हैं। इन दोनों की ज्ञान उत्पन्न करने के योग्य अवस्था का नाम संपात है। विषय और विषयी के संपात के अनन्तर उत्पन्न होने वाला ज्ञान अवग्रह कहलाता है। वह अवग्रह भी दो प्रकार का है - अर्थात् अवग्रह और व्यञ्जनावग्रह। उनमें अप्राप्त अर्थात् अरपृष्ट अर्थ के ग्रहण करने को अर्थात् अवग्रह कहते हैं, जैसे चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप को ग्रहण करना। प्राप्त अर्थात् रूपृष्ट अर्थ के ग्रहण को व्यञ्जनावग्रह कहते हैं, जैसे स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा स्पर्श को ग्रहण करना। अवग्रह से ग्रहण किये गये अर्थ के विशेष ज्ञानने की आकांक्षा ईहा है। अर्थात् अवग्रह के द्वारा जो पदार्थ ग्रहण किया गया है, उसकी विशेष जिज्ञासा को ईहा कहते हैं। जैसे-किसी पुरुष को देखकर क्या यह भव्य है, अथवा क्या यह अभव्य है, इस प्रकार की विशेष परीक्षा करने को ईहाज्ञान कहते हैं। ईहाज्ञान संदेहरूप नहीं है, क्योंकि, ईहात्मक विचार-बुद्धि से संदेह का विनाश पाया जाता है। संदेह उपरित्तन, अवाय, ज्ञान से अधस्तन, तथा अन्तराल में प्रवृत्त होने वाली विचार-बुद्धि का नाम ईहा है।

ईहाज्ञान से जाने गये पदार्थ - विषयक संदेह का दूर हो जाना अवयव है। पहले ईहाज्ञान से क्या यह भव्य है, अथवा अभव्य है इस प्रकार जो संदेह रूपू बुद्धि के द्वारा विषय किया गया जीव है सो यह अभव्य नहीं है, भव्य ही है, क्योंकि उसमें भव्यत्व के अविनाभावी सम्यज्ञान, सम्यदर्शन और सम्यक्चारित्र गुण पाये जाते हैं, इस प्रकार से उत्पन्न हुए विश्वस्त ज्ञान का नाम अवाय है।

अवायज्ञान से निर्णय किये गये पदार्थ का कालान्तर में विस्मरण न होना धारणा है। जिस ज्ञान से कालान्तर अर्थात् आगामी काल में भी अविस्मरण का कारणभूत संस्कार जीव में उत्पन्न होता है उस ज्ञान का नाम धारणा है। अवग्रह आदि चारों ही ज्ञानों की सर्वत्र क्रम से उत्पत्ति नहीं होती है, क्योंकि, उस प्रकार की व्यवस्था पाई नहीं जाती है। इसलिए कहीं तो केवल अवग्रह ज्ञान ही होता है, कहीं अवग्रह और ईहा, ये दो ही ज्ञान होते हैं, कहीं पर अवग्रह, ईहा और अवाय ये तीनों भी ज्ञान होते हैं, और कहीं पर अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा, ये चारों ही ज्ञान होते हैं।

इस प्रकार के ज्ञान का जो आवरण करता है उसे आभिनिवेदिक ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

श्रुतज्ञान के आवरण करने वाले कर्म को श्रुतज्ञानावरणीय कहते हैं। उनमें इन्द्रियों से ग्रहण किये गये पदार्थ से उससे पृथग्भूत पदार्थ का ग्रहण करना श्रुतज्ञान है। जैसे - शब्द से घट आदि पदार्थों का जानना, अथवा धूम से अग्निका ग्रहण करना वह श्रुतज्ञान वीस प्रकार का है। जैसे पर्याय, पर्याय - समास, अक्षर, अक्षर-समास, पद, पद-समास, संघात, संघात-समास, प्रतिपत्ति, प्रतिपत्ति-समास, अनुयोग, अनुयोग-समास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृत-समास, प्राभृत-समास, वर्स्तु, वर्स्तु-समास, पूर्व और पूर्व समास।

क्षरण अर्थात् विनाश के अभाव होने से केवलज्ञान अक्षर कहलाता है। उसका अनन्तवां भाग पर्याय नाम का मतिज्ञान है। वह पर्याय नाम का मतिज्ञान केवलज्ञान के समान निरावरण और अविनाशी है। इस सूक्ष्म-निगोद-उद्धि अक्षर से जो श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है वह भी कार्य में कारण के उपचार से पर्याय कहलाता है। इस पर्याय श्रुतज्ञान से जो अनन्तवें भाग से अधिक श्रुतज्ञान होता है वह पर्याय-समास कहलाता है। अनन्तभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि और अनन्तगुणवृद्धि, इन छहों वृद्धियों के समुदायात्मक यह एक षड्वृद्धि होती है। इस प्रकार की असंख्यात लोकप्रमाण षड्वृद्धियां ऊपर जाकर पर्याय-समासनामक श्रुतज्ञान का अन्तिम विकल्प होता है। उस अन्तिम विकल्प को अनन्त रूपों से गुणित करने पर अक्षर नामक श्रुतज्ञान होता है।

शंका - उक्त प्रकार के इस श्रुतज्ञान की 'अक्षर' ऐसी संज्ञा कैसे हुई?

समाधान- नहीं, क्योंकि, द्रव्यश्रुत, - प्रतिवद्ध एक अक्षर की उत्पत्ति की उपचार से 'अक्षर' ऐसी संज्ञा है। इस अक्षर - श्रुतज्ञान के ऊपर एक एक अक्षर की ही वृद्धि होती है, अन्य वृद्धियां नहीं होती हैं, इस प्रकार आचार्य परम्परागत उपदेश पाया जाता है। कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि अक्षर-श्रुतज्ञान भी छह प्रकार की वृद्धि से बढ़ता है। किन्तु उनका

यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, समस्त श्रुतज्ञान के संख्यातवें भागरूप अक्षर-ज्ञान के ऊपर छह प्रकार की वृद्धियों का होना संभव नहीं है। अक्षर-श्रुतज्ञान से उपरिम और पद-श्रुतज्ञान से अधःस्तन श्रुतज्ञान के संख्यात विकल्पों की 'अक्षरसमास' यह संज्ञा है। इस अक्षर समास श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर ज्ञान के बढ़ने पर पद नाम का श्रुतज्ञान होता है।

(2) दर्शनावरणीय कर्म :-

आत्मा-विषयक उपयोग को दर्शन कहते हैं। यह दर्शन ज्ञानरूप नहीं है, क्योंकि, ज्ञान वाह्य अर्थों को विषय करता है। तथा वाह्य और अन्तर्गत विषयवाले ज्ञान और दर्शन के एकता नहीं है, क्योंकि, वैसा मानने में विरोध आता है। और न ज्ञान को ही दो शक्तियों से युक्त माना जा सकता है, क्योंकि, पर्याय के अन्य पर्याय का अभाव माना गया है। इसलिये ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक जीव मानना चाहिए। यह दर्शन आवरण करने के योग्य है, क्योंकि विरोधी द्रव्य के सन्निधान होने पर भी इसका निर्मूल से विनाश नहीं होता है। यदि दर्शनगुण का निर्मूल विनाश होने लगे तो जीव के भी विनाश का प्रसंग होता है, क्योंकि लक्षण के विनाश होने पर लक्ष्य के अवस्थान का विरोध है। दूसरी बात यह है कि ज्ञान और दर्शन के जीव का लक्षणत्व असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि दोनों के अर्थात् ज्ञान और दर्शन के अभाव मानने पर जीव द्रव्य का ही अभाव प्राप्त होता है।

शंका - यदि ज्ञान और दर्शन के अभाव होने पर जीव द्रव्य का ही अभाव प्राप्त होता है, तो होने दो? (धवला-चूलिका-पृ.-6)

समाधान - नहीं, क्योंकि, (स्व-परव्यवसायात्मक) प्रमाण के अभाव में प्रमेय स्वरूप शेष द्रव्यों के भी अभाव की आपत्ति आती है। कहा भी है -

ज्ञान-दर्शनलक्षणात्मक मेरा आत्मा एक शाश्वत (नित्य) है। शेष सर्व संयोगलक्षणात्मक भाव बाहरी है ॥2॥

(1) जो अशरीर है, जीवधनात्मक है अर्थात् शुद्ध जीवप्रदेशात्मक है, ज्ञान और दर्शन में उपयुक्त है वे सिद्ध हैं। इस प्रकार साकार और अनाकार यह सिद्धों का लक्षण है ॥2॥

(2) इस प्रकार के दर्शन गुण को जो आवरण करता है, वह दर्शनावरणीय कर्म है। अर्थात् जो पुद्ल-स्कन्ध मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों के द्वारा कर्मस्वरूप से परिणत होकर जीव के साथ समव्याप्तमन्वय योगों को प्राप्त है और दर्शनगुण का प्रतिवन्ध करने वाला है, वह दर्शनावरणीय कर्म है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृतियाँ हैं (15)

यह सूत्र द्रव्यार्थिकन्य का आश्रय लेकर स्थित है, क्योंकि उसमें समस्त विशेषों का

संग्रह किया गया है।

शंका - संग्रहनय से विशेष कैसे जाना जाता है?

समाधान - नहीं, क्योंकि बीज-बुद्धि वाले शिष्यों के संग्रहनय से विशेष का ज्ञान होने में कोई विरोध नहीं है।

पर्यायर्थिक नयवाले शिष्यों के अनुग्रह के लिये उत्तर सूत्र

उनमें निद्राकर्म प्रकृति के तीव्र उदय से जीव वृक्ष के शिखर पर, विषम भूमि पर, अथवा जिस किसी प्रदेश पर घुरघुराता हुआ या नहीं घुरघुराता हुआ निर्भर अर्थात् गाढ़निद्रा में सोता है। प्रचला प्रचला प्रकृति के तीव्र उदय से बैठा या खड़ा हुआ मुंह से गिरती हुई लार सहित तथा वार-वार कांपते हुए शरीर और शिर-युक्त होता हुआ जीव निर्भर सोता है। स्त्यानगृग्रस्ती के तीव्र उदय से उठाया गया भी जीव पुनः सो जाता है, सोता हुआ भी कुछ क्रिया करता रहता है, तथा सोते हुए भी बड़वड़ाता है और दांतों को कड़कड़ता है। निद्रा प्रकृति के तीव्र उदय से जीव अल्पकाल सोता है, उठाये जाने पर जल्दी उठ बैठता है और अल्प शब्द के द्वारा भी सचेत हो जाता है। प्रचलाकृति के तीव्र उदय से लोचन वालुका से भरे हुए के समान हो जाते हैं, सिर गुरु-भार को उठाये हुए के समान भारी हो जाता है और नेत्र पुनः पुनः उन्मीलन एवं निमीलन करने लगते हैं। निद्रा प्रकृति के उदय से गिरती हुआ जीव जल्दी अपने आपको सम्हाल लेता है, थोड़ा-थोड़ा कांपता रहता है और सावधान सोता है।

शंका - इन पांचों निद्राओं के दर्शनावरण संज्ञा कैसे हैं?

समाधान - नहीं, क्योंकि आत्मा के चेतन गुण को अपहरण करने वाले और सर्वदर्शन के विरोधी कर्म के दर्शनावरणत्व के प्रति कोई विरोध नहीं है।

शंका - दर्शन किसे कहते हैं?

समाधान - ज्ञान का उत्पादन करने वाले प्रयत्न से सम्बद्ध स्व-संवेदन, अर्थात् आत्मविषयक उपयोग को दर्शन कहते हैं। इस दर्शन में ज्ञान के उत्पादक प्रयत्न की पराधीनता नहीं है। यदि ऐसा न माना जाय तो प्रयत्न रहित, क्षीणावरण और अन्तरंग उपयोगवाले केवली के अदर्शनत्व का प्रसंग आता है।

उनमें चक्षुरिन्द्रिय-सम्बन्धी ज्ञान के उत्पन्न करने वाले प्रयत्न से संयुक्त स्वसंवेदन के होने पर मैं रुप देखने में समर्थ हूँ, इस प्रकार की संभावना के हेतू को चक्षुदर्शन कहते हैं। इस चक्षुदर्शन के आवरण करने वाले कर्म को चक्षुदर्शनावरणीय कहते हैं। चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों के और मन के दर्शन को अचक्षुदर्शन कहते हैं। इस अचक्षु दर्शन को आवरण करता है वह अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म है। अवधि के दर्शन को अवधिदर्शन

कहते हैं। उस अवधिदर्शन को जो आवरण करता है वह अवधिदर्शनावरणीय कर्म है। केवल यह नाम प्रतिपक्ष-रहित का है। प्रतिपक्ष-रहित जो दर्शन होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं। उस केवलदर्शन के आवरण करने वाले कर्म को केवलदर्शनावरणीय कहते हैं।

(3) वेदनीय कर्म :-

जो वेदन अर्थात् अनुभवन किया जाय, वह वेदनीय कर्म है।

शंका - इस प्रकार की व्युत्पत्ति के द्वारा तो सभी कर्मों के वेदनीयपने का प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान - यह कोई दोष नहीं क्योंकि, रुढ़ी के वश से कुशलशब्द के समान विवक्षित पुद्गल-पुंज में ही वेदनीय इस शब्द की प्रवृत्ति पाई जाती है। अर्थात् जिस प्रकार कुशल शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ कुश को लाने वाला होने पर भी उसका रुदार्थ 'चतुर' लिया जाता है, उसी प्रकार सभी कर्मों में वेदनीयता होने पर भी वेदनीयसंज्ञा एक कर्म विशेष के लिए रुढ़ है।

अथवा जो वेदना करता है, वह वेदनीय कर्म है। जीव के सुख और दुख के अनुभवन का कारण, मिथ्यात्व आदि पत्ययों के वश से कर्मरूप पर्याय से परिणत और जीव के साथ समवायसम्बन्ध को प्राप्त पुगद्दल-रक्न्ध 'वेदनीय' इस नाम से कहा जाता है।

शंका - उस वेदनीय कर्म का अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान - सुख और दुःखरूप कार्य अन्यथा हो नहीं सकते हैं, इस अन्यथानुपपत्ति से वेदनीयकर्म का अस्तित्व जाना जाता है। कारण से निरपेक्ष कार्य उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, अन्यत्र उस प्रकार देखा नहीं जाता है।

जीव दुखस्वाभावी नहीं है, क्योंकि, जीव के लक्षणस्वरूप ज्ञान और दर्शन के विरोधी दुःख को जीव का स्वभाव मानने में विरोध आता है। वेदनीय कर्म की दो प्रकृतियां हैं।

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो ही वेदनीय कर्म की प्रकृतियाँ हैं। (18)

साता यह नाम सुख का है, उस सुख को जो वेदन करता है, अर्थात् भोग करता है, वह सातावेदनीय कर्म है। असाता नाम दुख का है, उसे जो वेदन या अनुभवन करता है उसे असातावेदनीय कर्म कहते हैं।

शंका - यहाँ पर शंकाकार कहता है कि यदि सुख और दुःख कर्मों से होते हैं तो कर्मों के विनष्ट हो जाने पर जीव को सुख और दुख से रहित हो जाना चाहिये, क्योंकि उसके सुख और दुख के कारणभूत कर्मों का अभाव हो गया है। यदि कहा जाय कि कर्मों के नष्ट हो जाने पर जीव सुख से और दुख से रहित ही हो जाता है, सो कह नहीं सकते, क्योंकि जीवद्रव्य के निःस्वभाव हो जाने से अभाव का प्रसंग प्राप्त होता है। अथवा यदि

दुःख को ही कर्म-जनित माना जाय तो सातावेदनीय कर्म का अभाव प्राप्त होगा, क्योंकि, फिर उसका कोई फल नहीं रहता है ?

समाधान - यहां पर उपर्युक्त आशंका का परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है - दुख नाम की जो कोई भी वस्तु है वह असातावेदनीय कर्म के उदय से होती है, क्योंकि, वह जीव का रूपरूप नहीं है। यदि जीव का रूपरूप माना जाय तो क्षीणकर्मा अर्थात् कर्मरहित जीवों के भी दुख होना चाहिये, क्योंकि, ज्ञान और दर्शन के समान कर्म के विनाश होने पर दुःख का विनाश नहीं होगा, किन्तु सुख कर्म से उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि, वह जीव का स्वभाव है, और इसीलिये वह कर्म का फल नहीं है। सुख को जीव का स्वभाव मानने पर सातावेदनीय कर्म का अभाव भी प्राप्त नहीं होता, क्योंकि दुख-उपशमन के कारणभूत सुद्रव्यों के सम्पादन में सातावेदनीय कर्म व्यापार होता है इस व्यवस्था के मानने पर सातावेदनीय प्रकृति के पुद्गलविपाकित्व प्राप्त होगा, ऐसी भी आशंका नहीं करना चाहिये, क्योंकि दुःख के उपशम से उत्पन्न हुए, दुःख के अविनाभावी उपचार से ही सुख संज्ञा को प्राप्त और जीव से अपृथग्भूत ऐसे रूपरूप के कण का हेतु होने से सूत्र में सातावेदनीय कर्म के जीवविपाकित्व का और सूख-हेतुत्व का उपदेश दिया गया है। यदि कहा जाय कि उपर्युक्त व्यवस्थानुसार तो सातावेदनीय कर्म के जीवविपाकिपना और पुद्गलविपाकिपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नहीं, क्योंकि, यह बात हमें इष्ट है। यदि कहा जावे कि उक्त प्रकार का उपदेश प्राप्त नहीं है, सो भी नहीं, क्योंकि, जीव का अस्तित्व अन्यथा बन नहीं सकता है, इसलिये उस प्रकार के उपदेश के अस्तित्व की सिद्धी हो जाती है। सुख और दुःख के कारणभूत द्रव्यों का सम्पादन करने वाला दूसरा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि वैसा कोई कर्म पाया नहीं जाता।

जिसके उदय से जीव सुख और दुःख, इन दोनों का अनुभव करता है, उसके उदय का क्षय होने से वह सुख और दुःख से रहित हो जाता है।

4. मोहनीय कर्म :-

जिसके द्वारा मोहित हो, वह मोहनीय कर्म।

शंका - इस प्रकार की व्युत्पत्ति करने पर जीव के मोहनीयत्व प्राप्त होता है ?

समाधान - ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि, जीव से अभिन्न और 'कर्म' ऐसी संज्ञावाले पुद्गलद्रव्य में उपचार से कर्तृत्व का आरोपण करके उस प्रकार की व्युत्पत्ति की गई है।

अथवा, जो मोहित करता है, वह मोहनीय कर्म है।

शंका - ऐसी व्युत्पत्ति करने पर धतूरा, मदिरा और भार्या आदि के भी मोहनीयता प्रसक्त होती है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, यहां पर मोहनीयनामक द्रव्यकर्म का अधिकार है, अतएव कर्म के अधिकार में धतूरा, मदिरा और रत्नी आदि की संभावना नहीं है।

शंका - कर्म क्या वस्तु है ?

पोगलद्रव्यं । यदि एवं, तो सद्वपोगलाणं कम्मत्तं पसज्जदे ? ण, मिच्छत्तादिपच्चएहि जीवे संबद्धाणं जाइ-जरामरणादिकज्जकरणे समत्थाणं पोगलाणं कम्मत्तबुकगमादो । उत्तंच -

जीवपरिणामहेदू कम्मत्तं पोगला परिणमंति ।

ण य णाणपरिणदो पुण जीवो कम्मं समादियदि ॥३॥

जारिसओ परिणामो तारिसओ चेव कम्मबंधो वि ।

वथ्त्थसु विसम-समसण्णिदेसु अजङ्गप्पजोएण ॥४॥

मिच्छत्तादिपच्चएहि कोह-माण-माया-लोहादिकज्जकारित्तेण परिणदा पोगला जीवेण सह संबद्धा मोहनीयसण्णिदा होति त्ति जं उत्तं होदि ।

समाधान - कर्म पुद्गल द्रव्य है।

शंका - यदि ऐसा है तो सभी पुद्गलों के कर्मपना प्रसक्त होता है ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, मिथ्यात्व आदि बन्ध कारणों के द्वारा जीव में सम्बन्ध को प्राप्त, तथा जन्म, जरा और मरण आदि कार्यों के करने में समर्थ पुद्गलों के कर्मपना माना गया है। कहा भी है -

जीव के रागादि परिणामों के निमित्त से पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं, किन्तु ज्ञान-परिणत जीव कर्म को नहीं प्राप्त होता है ॥(3)॥

विषम और सम संज्ञावाली अर्थात् अनिष्ट और इष्ट वस्तुओं में आत्मसम्बन्धीयोग के द्वारा जिस प्रकार का परिणाम होता है, उस प्रकार का ही कर्म-बन्ध भी होता है ॥(4)॥

मिथ्यात्व आदि बन्ध-कारणों के द्वारा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कार्य करने की शक्ति से परिणत हुए पुद्गल जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होकर 'मोहनीय' संज्ञावाले हो जाते हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है।

मोहनीय कर्म की अद्वाईस प्रकृतियां हैं । (19)

वह उपर्युक्त मोहनीय कर्म दो प्रकार का है - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय है।

जो दर्शनमोहनीय कर्म है वह बन्ध की अपेक्षा एक प्रकार का है, किन्तु उसका सत्कर्म तीन प्रकार का है - सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, और सम्यामिथ्यात्व । (21)

दर्शन, रुचि, प्रत्यय, श्रद्धा, और स्पर्शन ये सब एकार्थ-वाचक नाम हैं। आप्त या आत्म में, आगम और पदार्थों में रुचि या श्रद्धा को दर्शन कहते हैं। उस दर्शन को जो मोहित करता है, अर्थात् विपरित कर देता है, उसे दर्शन मोहनीय कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय

से अनाप्त में आप्त-वृद्धि, और अपदार्थ में पदार्थ-वृद्धि होती है, अथवा आप्त-आगम और पदार्थों में श्रद्धान की अस्थिरता होती है, अथवा दोनों में भी अर्थात् आप्त-अनाप्त में, आगम-अनागम में और पदार्थ-अपदार्थ में श्रद्धा होती है, वह दर्शनमोहनीय कर्म है, यह अर्थ कहा गया है। वह दर्शनमोहनीय वंध की अपेक्षा एक प्रकार का है, क्योंकि मिथ्यात्व आदि वंध कारणों के द्वारा आने वाले दर्शनमोहनीय कर्म के रक्तधों का एक स्वभाव पाया जाता है।

शंका - वंध से एक प्रकार का दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्व की अपेक्षा तीन प्रकार का कैसे हो जाता है?

समाधान - यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, जांत से (चक्षिसे) दले गये कोदो में कोदो, तन्दुल और अर्ध-तन्दुल, इन तीन विभागों के समान अपूर्वकरण आदि परिणामों के द्वारा दले गये दर्शनमोहनीय की त्रिविधता पाई जाती है।

उनमें जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों की श्रद्धा में शिथिलता होता है वह सम्यक्त्वप्रकृति है।

शंका - उस प्रकृति का 'सम्यक्त्व' ऐसा नाम कैसे हुआ?

समाधान - सम्यग्दर्शन के सहचरित उदय होने के कारण उपचार से 'सम्यक्त्व' ऐसा नाम कहा जाता है।

जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों में अश्रद्धा होती है, वह मिथ्यात्व प्रकृति है। जिस कर्म के उदय से आप्त, आगम और पदार्थों में, तथा उनके प्रतिपक्षियों में अर्थात् कुदेव, कुशार्त्र और कुतत्वों में) युगपत् श्रद्धा उत्पन्न होती है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है।

शंका - आप्त, आगम और पदार्थों में संदेह किस कर्म के उदय से उत्पन्न होता है?

समाधान - सम्यग्दर्शन का घात नहीं करने वाले संदेह सम्यक्वप्रकृति के उदय से उत्पन्न होता है। किन्तु सर्व संदेह, अर्थात् सम्यग्दर्शन का सम्पूर्ण रूप से घात करने वाला संदेह, और मूढ़त्व मिथ्यात्व कर्म के उदय से उत्पन्न होता है।

शंका - दर्शनमाहनीय कर्म सत्त्व की अपेक्षा तीन प्रकार का है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान - आगम से और लिंग अर्थात् अनुमान से जाना जाता है कि दर्शनमोहनीय कर्म सत्त्व की अपेक्षा तीन प्रकार का है। विपरीत अभिनिवेश, मूढ़ता और संदेह, ये मिथ्यात्व के चिन्ह हैं। आगम और अनागमों में सम भाव होना सम्यग्मिथ्यात्व का चिन्ह है। आप्त, आगम और पदार्थों की श्रद्धा में शिथिलता और श्रद्धा की हीनता होना सम्यक्त्वप्रकृति का चिन्ह है।

जो चारित्रमोहनीय कर्म है वह दो प्रकार का है - कषाय वेदनीय और नोकषायवेदनीय। (22)

पापरूप क्रियाओं की निवृति को चारित्र कहते हैं। धातिया कर्मों को पाप कहते हैं। मिथ्यात्व, असंयम और कषाय, ये पाप की क्रियाएं हैं। इन पाप-क्रियाओं के अभाव को चारित्र कहते हैं। उस चारित्र को जो मोहित करता है, अर्थात् आच्छादित करता है, उसे चारित्र मोहनीय कहते हैं। वह चारित्रमोहनीय कर्म कषाय वेदनीय और नोकषायवेदनीय के भेद से दो प्रकार का है।

शंका - चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का ही है, यह कैसे सिद्ध होता है?

समाधान - चूंकि, कषाय और नोकषायों से पृथग्भूत तीसरे प्रकार का कोई कार्य नहीं पाया जाता, इससे जाना जाता है कि चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का है।

जो कषाय वेदनीय कर्म है वह सोलह प्रकार का है - अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन। (23)

जो दुखरूप धान्य को उत्पन्न करने वाले कर्मरूपी खेत की कर्षण करते हैं, अर्थात् फलवाले करते हैं, वे क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय हैं। क्रोध, रोष और संरम्भ, इनके अर्थ में कोई अन्तर नहीं है। मान, गर्व और स्तब्धत्व, ये एकार्थ वाचक नाम हैं। माया, निकृति, वंचना और अनुजुता ये पर्यायवाची शब्द हैं। लोभ और गृद्धि ये दोनों एकार्थक नाम हैं। अनन्त भवों को वांधना ही जिनका स्वभाव है वे अनन्तानुवन्धी कहलाते हैं। अनन्तानुवन्धी जो क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं वे अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं। जिन अविनष्ट स्वरूपवाले, अर्थात् अनादि परम्परागत क्रोध, मान, माया और लोभ के साथ जीव अनन्त भव में परिभ्रमण करता है उन क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों कि 'अनन्तानुवन्धी' संज्ञा है, यह अर्थ कहा गया है।

शंका - उन अनन्तानुवन्धी क्रोधादि कषायों का उदयकाल अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है, और स्थिति चालीस कोडाकोडी सागरोपमप्रमाण है। अतएव इन कषायों के अनन्तभवानुवन्धिता घटित नहीं होती है?

समाधान - यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इन कषायों के द्वारा जीव में उत्पन्न हुए संरकार का अनन्त भवों में अवरथान माना गया है। अथवा, जिन क्रोध, मान, माया, लोभों का अनुवन्ध (विपाक या सम्बन्ध) अनन्त होता है वे अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कहलाते हैं। इनके द्वारा वृद्धिग्रांत संसार अनन्त भवों में अनुवन्ध को नहीं छोड़ता है, इसलिये 'अनन्तानुवन्ध' यह नाम संसार का है। वह संसारात्मक अनन्तानुवन्ध जिनके होता है वे अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। ये चारों ही कषाय सम्यक्त्व और

चारित्र के विरोधक है, क्योंकि, वे सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनों को घातनेवाली दो प्रकार की शक्ति से संयुक्त होते हैं।

सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनों को घात करने वाले ये अनन्तानुवन्धी क्रोधादिक न तो दर्शनमोहनीय स्वरूप माने जा सकते हैं क्योंकि, सम्यक्त्वप्रकृति, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के द्वारा ही आवरण किये जाने वाले सम्यदर्शन के आवरण करने में फल का अभाव है। और न इन्हें चारित्रमोहनीयस्वरूप भी माना जा सकता है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायों के द्वारा आवरण किये गये चारित्र के आवरण करने में फल का अभाव है। इसलिये उपर्युक्त प्रकार से इन अनन्तानुवन्धी क्रोधादि कषायों का अभाव ही सिद्ध होता है। किन्तु उनका अभाव है नहीं, क्योंकि, सूत्र में इनका अस्तित्व पाया जाता है। इसलिये इन अनन्तानुवन्धी क्रोधादि कषायों के उदय से सासादन भाव की उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्ति से उनके दर्शनमोहनीयता और चारित्रमोहनीयता, अर्थात् सम्यक्त्व और चारित्र को घात करने की शक्ति का होना, सिद्ध होता है। तथा, चारित्र में अनन्तानुवन्धी चतुष्क का व्यापार निष्फल भी नहीं है, क्योंकि, अप्रत्याख्यानादि के अनन्त उदयरूप प्रवाह के कारणभूत अनन्तानुवन्धी कषाय के निष्फलत्व का विरोध है।

अप्रत्याख्यान संयमासमय का नाम है। उस अप्रत्याख्यान को जो आवरण करता है उसे अप्रत्याख्यानावरणीय कहते हैं। वह क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से चार प्रकार का है। प्रत्याख्यान, संयम और महाब्रत, ये तीनों एक अर्थवाले नाम हैं। प्रत्याख्यान को जो आवरण करते हैं वे प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय कहलाते हैं। जो सम्यक् प्रकार जलता है, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं।

शंका - इस संज्वलन कषाय में सम्यक्पना क्या है?

समाधान - चारित्र के साथ जलना ही इसका सम्यक्पना है। अर्थात् चारित्र को नहीं विनाश करते हुए ये कषाय उदय को प्राप्त होते हैं, यह अर्थ कहा गया है।

शंका - चारित्र को नहीं विनाश करने वाले संज्वलन कषायों के चारित्रावरणता कैसे बन सकती है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, ये संज्वलन कषाय संयम में मल को उत्पन्न करके यथाख्यात चारित्र की उत्पत्ति के प्रतिवंधक होते हैं, इसलिये इनके चारित्रावरणता मानने में कोई विरोध नहीं है।

ये संज्वलन कषाय भी क्रोध, मान, माया, और लोभ के भेद से चार प्रकार के हैं।

शंका - क्रोधादि को में प्रत्येक पद के साथ संज्वलन शब्द का उच्चारण किसलिये किया गया है?

समाधान - प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायों के समान संज्वलन कषायों के वंध और उदय के अभाव के प्रति प्रत्यासत्ति नहीं है, इस बात को बतलाने के लिये सूत्र में क्रोधादि प्रत्येक पद के साथ संज्वलन शब्द का उच्चारण किया गया है।

विशेषार्थ - सूत्र में क्रोधादि प्रत्येक पद के साथ संज्वलन शब्द के उच्चारण का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार चतुर्थ गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों कषायों की एक साथ ही वंध व्युच्छिति और एक साथ ही उदय व्युच्छिति होती है, तथा जिस प्रकार पंचम गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायों की एक साथ ही वंध व्युच्छिति और एक साथ ही उदय व्युच्छिति होती है, इस प्रकार से नवमें गुणस्थान में क्रोधादि चारों संज्वलन कषायों की एक साथ न तो वंध व्युच्छिति ही होती है और न उदय व्युच्छिति ही। किन्तु पहले वहाँ पर क्रोधसंज्वलन की वंध से व्युच्छिति होती है, पुनः मान संज्वलन की, पुनः माया-संज्वलन की, और सब से अन्त में लोभ संज्वलन की वंध-व्युच्छिति होती है। यही क्रम इनकी उदय व्युच्छिति का भी है। विशेषता केवल यह है कि सूक्ष्म लोभसंज्वलन कषाय की उदय व्युच्छिति दशवें गुणस्थान के अन्त में होती है। अतएव यह सिद्ध हुआ कि प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषायों के समान संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय की वंध व्युच्छिति और उदय व्युच्छिति की अपेक्षा प्रत्यासत्ति या समानता नहीं है। इसी विभिन्नता के स्पष्टीकरण के लिये सूत्रकार ने सूत्र में क्रोधादि प्रत्येक पद के साथ संज्वलन शब्द का प्रयोग किया है।

जो नोकषायवेदनीय कर्म है वह नौ प्रकार का है स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, हार्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्ता।

इस प्रकार ईषत् कषाय को नोकषाय कहते हैं, यह सिद्ध हुआ। इस विषय में यह उपयोगी श्लोक का अर्थ है -

भाव वस्तु के परिणाम को कहते हैं। दो वार प्रतिषेध उसी वस्तु की एकता का ज्ञान करता है। 'नो' यह शब्द स्व और पर के योग से विवक्षित वस्तु के एकदेश का प्रतिषेधक और विधायक होता है ॥ (9)

शंका - कषायों से नोकषायों के अल्पपना कैसे है?

समाधान - स्थितियों की, अनुभाग की और उदय की अपेक्षा कषायों से नोकषायों के अल्पता पाई जाती है।

शंका - नोकषायों का उदय-काल कषायों की अपेक्षा वहत पाया जाता है, इसलिये नोकषायों की अपेक्षा कषायों के अल्पपना क्यों नहीं मान लेते हैं?

समाधान - नहीं, क्योंकि, उदयकाल की अधिकता होने से चारित्र विनाशक

कषायों की अपेक्षा चारित्र में मल को उत्पन्न करने रूप फलवाले कर्मों के महत्ता नहीं बन सकती है।

(1) जो दोषों के द्वारा अपने आपको और पर को आच्छादित करती है उसे स्त्री कहते हैं। (2) जो महान कर्मों में शयन करता है, या प्रमत्त होता है उसे पुरुष कहते हैं। (3) जो न पुरुषरूप हो, और न स्त्रीरूप हो उसे नपुंसक कहते हैं। इस उपर्युक्त कथन का अभिप्राय यह है - जिन कर्म-स्कन्धों के उदय से पुरुष में आकांक्षा उत्पन्न होती है उन कर्म-स्कन्धों की 'स्त्रीवेद' यह संज्ञा है। जिन कर्म स्कन्धों के उदय से स्त्री के ऊपर आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'पुरुष वेद' यह संज्ञा है। (4) जिन कर्म स्कन्धों के उदय से ईटों अवाकी अम्नि के समान स्त्री और पुरुष, इन दोनों पर भी आकांक्षा उत्पन्न होती है उनकी 'नपुंसक वेद' यह संज्ञा है। हंसने को हारय कहते हैं। जिस कर्म स्कन्ध के उदय से जीव के हारय निमित्तक राग उत्पन्न होता है उस कर्म स्कन्ध की कारण में कार्य के उपचार से 'हारय' यह संज्ञा है। (5) रमने को रति कहते हैं, अथवा जिसके द्वारा जीव विषयों में आसक्त होकर रमता है उसे रति कहते हैं। जिन कर्म-स्कन्धों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावों में राग भाव उत्पन्न होता है, उनकी 'रति' यह संज्ञा है। (6) जिन कर्म स्कन्धों के उदय से द्रव्य, क्षेत्र काल और भावों में जीव के अरुचि उत्पन्न होती है उनकी 'अरति' यह संज्ञा है। (7) सोच करने को शोक कहते हैं। अथवा जो विषाद उत्पन्न करता है, उसे शोक कहते हैं। जिन कर्म-स्कन्धों के द्रव्य उदय से जीव के शोक उत्पन्न होता है उनकी शोक यह संज्ञा है। (8) भीति को भय कहते हैं। उदय में आये हुए जिन कर्म-स्कन्धों के द्वारा जीव के भय उत्पन्न होता है उनकी कारण में कार्य के उपचार से 'भय' यह संज्ञा है। (9) ग्लानि होने को जुगुप्सा कहते हैं। जिन कर्मों के उदय से ग्लानि उत्पन्न होती है उनकी 'जुगुप्सा' यह संज्ञा है।

शंका - इन कर्मों का अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान - प्रत्यक्ष के द्वारा पाये जाने वाले अज्ञान, अदर्शन आदि कार्यों की उत्पत्ति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्ति से उक्त कर्मों का अस्तित्व जाना जाता है।

5. आयुकर्म :-

जो भव-धारण के प्रति जाता है, वह आयुकर्म है। जो पुद्गल मिथ्यात्व आदि वंध-कारणों के द्वारा नरक आदि भवधारण करने कि शक्ति से परिणत होकर जीव में निविष्ट होते हैं, वे 'आयु' इस संज्ञावाले होते हैं।

शंका - उस आयुकर्म का अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान - देह की स्थिति अन्यथा हो नहीं सकती है, इस अन्यथानुपपत्ति से

आयुकर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

आयुकर्म की चार प्रकृतियाँ हैं। (25)

नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु ये आयुकर्म की चार प्रकृतियाँ हैं। (26)

(1) जिन कर्म-स्कन्धों के उदय से ऊर्ध्वर्गमन स्वभाव वाले जीव का नारक-भव में अवरथान होता है, उन कर्म-स्कन्धों की नर-कायु यह संज्ञा है। (2) जिन कर्म-स्कन्धों के उदय ऐ तिर्यच भव में जीव का अवरथान होता है उन कर्म-स्कन्धों की 'तिर्यगायु' यह संज्ञा है। इसी प्रकार मनुष्यायु और देवायुका भी स्वरूप कहना चाहिए।

शंका - जिस प्रकार घट पट और रत्नम् आदिक पर्यायों का अवरथान वैस्त्रसिक (स्वाभाविक) होता है उसी प्रकार नरक भव आदि पर्यायों के भी वैस्त्रसिक अवरथा होने पर क्या दोष है?

समाधान - नहीं, क्योंकि अकारण अवरथान मानने पर नियम में विरोध आता है। अर्थात् देव और नारकों का जघन्य अवरथान दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट भव सम्बन्धी अवरथान तीनीस सागरोपम है तिर्यच और मनुष्यों का जघन्य अवरथान अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अवरथान तीन पल्योपम है यह नियम नहीं घटित होता है। और इस नियम के अभाव में पुद्गलों के समान अनियम से अवरथान प्राप्त होगा।

शंका - पुद्गलों का अनियम से अवरथान कैसे हैं?

समाधान - पुद्गलों का एक दो तीन समयों को आदि करके उत्कर्षतः मेरुपर्वत आदि में अनादि अनन्तस्वरूप से एक ही आकार का अवरथान पाया जाता है।

इसलिए भव-सम्बन्धी अवरथान को सहेतुक होना चाहिए अन्यथा अन्य शरीर को गये हुए भी जीवों के नरकान्ति के उदय का प्रसंग प्राप्त होगा।

जाति आदि नाम-कर्म के विशेष वर्णन

जाई अविणाभावीतस्थवरउदयजो हवे काओ।

सो जिणमदम्मि भणियो पुढविक्कायादिष्ठभ्येयो॥ (181)

(गो, जीवकाण्ड पृ. 311)

जातिनाकर्म के उदय के अविनाभावी त्रस और स्थावर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न आत्मा की त्रसरूप और स्थावररूप पर्याय को काय कहते हैं। वह काय पृथिवीकाय अपाय तेजस्काय वायुकाय और वनरपतिकायके भेदसे छह प्रकार का जिनमत में कहा है। 'कायते' अर्थात् व्यवहारी पुरुषों कि द्वारा 'त्रस' 'स्थावर' इस प्रकार कही जाती है वह काय है। 'त्रस' धातुका अर्थ उद्गेग रूप किया है उससे त्रस शब्द निष्पन्न हुआ है और स्थान प्रिया से स्थावर शब्द निष्पन्न हुआ है, अतः त्रस और स्थावरका लक्षण निरुक्तिसिद्ध

है। अथवा 'चीयते' अर्थात् पुद्गलरकन्धों के द्वारा जो पुष्टि को प्राप्त हो वह काय है। अर्थात् औदारिक आदि शरीर। कायमें स्थित आत्मपर्याय को भी उपचार से काय कहते हैं। जातिनामकर्म, त्रसनामकर्म और स्थावरनामकर्म जीवविपाकी होने से उनका कार्य जीवपर्याय काय है वह व्यवहार सिद्ध है। पुद्गलविपकी शरीर नामकर्म के उदय का कार्य होने से यहाँ काय शब्द से शरीर का ही ग्रहण नहीं है।

स्थावर काय के पाँच भेद

पुढ़वी-आऊतेऊ-वाऊकम्मोदयेण तत्थेव ।

णियवण्णचउक्कजुदोताणं देहो हवेणियमा ॥ (182)

(गो, जीकाण्ड पृ. 312)

नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियों में एक स्थावर नामकर्म है और उसकी भी उत्तरप्रकृतियाँ पृथ्वी, अप्, तेज और वायु नामकर्म है। इस प्रकार नामकर्मकी इन उत्तरोत्तर प्रकृतियों के उदय से पृथिवीरूप, जलरूप, तेजरूप और वायुरूप पुद्गल स्कन्धों में अपने-अपने रूपरसगन्ध और रप्पर्शगुणों से युक्त उन जीवों के शरीर नियम से होते हैं। ऐसा होने पर वे जीव पृथिवीकायिक, तेजस्कायिक और वायुकायिक होते हैं। पृथ्वीकाय अर्थात् पृथिवीत्व विशिष्ट स्थावरपर्याय जिनके हैं वे पृथ्वीकायिक हैं। अप्काय अर्थात् अप्त्वविशिष्ट स्थावर पर्याय जिनके हैं वे अप्कायिक हैं। अथवा अप् जिनका काय अर्थात् शरीर है वे अप्कायिक हैं। तेजस्काय अर्थात् तेजस्त्व विशिष्ट स्थावर पर्याय जिनका है वे तेजस्कायिक हैं। अथवा तेज जिनका काय अर्थात् शरीर है वे तेजस्कायिक हैं। वायुकाय अर्थात् वायुत्वविशिष्ट स्थावर पर्याय जिनके हैं वे वायुकायिक हैं। अथवा वायु जिनका काय, अर्थात् शरीर है वे वायुकायिक हैं। तिर्यगति एकेन्द्रिय जाति औदारिकशरीर स्थावरकाय आदि नामकर्मकी प्रकृतियों के उदयको लेकर ही इस प्रकार की निरुक्ति होती है। जो जीव पूर्व पर्यायकों छोड़कर पृथ्वीकायिकरूप पर्यायकों धारण करने के अभिमुख होता हुआ जब तक विग्रहगति में वर्तमान है तब तक उसे पृथ्वीजीव कहते हैं। जिसने पृथ्वी को शरीर रूप से ग्रहणकर लिया है वह पृथ्वीकायिक है। जिस पृथ्वी में-से जीव निकल गया है वह पृथ्वीकाय है। इसी तरह अप्जीव अप्कायिक अप्काय, तेजोजीव तेजस्कायिक तेजस्काय, वायुजीव वायुकायिक वायुकाय इस प्रकार प्रत्येक के तीन-तीन भेद जानना।

5 प्रकार के शरीर बन्ध

जो शरीरबन्ध है वह पाँचप्रकार का है - औदारिकशरीर बन्ध, वैक्रियिकशरीरबन्ध, आहारकशरीरबन्ध, तैजसशरीरबन्ध और कार्मणशरीरबन्ध ॥ (44) (ध.पु. 14 पृ. 41)

इस प्रकार पाँच प्रकार का ही शरीरबन्ध होता है, क्योंकि इनसे पृथग्मूल दूसरा शरीरबन्ध नहीं उपलब्ध होता। अब एकादि संयोगरूप औदारिक शरीर के बन्ध विकल्पों को

उत्पन्न करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं -

औदारिक-औदारिकशरीरबन्ध ॥ (45)

औदारिक शरीर नोकर्मरकन्धों का अन्य औदारिकशरीर नोकर्मरकन्धों के साथ जो बन्ध होता है वह औदारिक औदारिकशरीरबन्ध है। इस प्रकार यह एकसंयोग से एक ही भंग होता है। अब द्विसंयोग भंग का कथन करने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं -

औदारिक-तैजसशरीरबन्ध ॥ (46)

औदारिक शरीर के पुद्गलों का और तैजसशरीर के पुद्गलों का एक जीव में जो परस्पर बन्ध होता है वह औदारिक-तैजसशरीरबन्ध है।

औदारिक-कार्मणशरीरबन्ध ॥ (47)

एक जीव में स्थित औदारिकरकन्धों का और कार्मणरकन्धों का जो परस्पर बन्ध होता है वह, औदारिक कार्मणशरीर बन्ध है 2.। औदारिकरकन्धों का वैक्रियिक और आहारशरीर के साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि औदारिक शरीररुरूप से परिणत हुए जीव में शेष दो शरीरों का अभाव पाया जाता है।

शंका-इसके वैक्रियिकशरीर का अभाव भले ही रहा आवे, क्योंकि, उसका देव और नारकियोंकेरी अस्तित्व देखा जाता है, विन्तु आहारशरीर तो मनुष्यों के ही होता है, इसलिए औदारिकशरीर के साथ आहारशरीर का सम्बन्ध होना चाहिए ?

समाधान - नहीं, क्योंकि, आहारकशरीर रूपसे परिणमन करने वाले जीवों के औदारिकशरीर का उदय नहीं होने से उसके साथ सम्बन्ध नहीं होता।

त्रिसंयोगी भंग-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरबन्ध ॥ (48)

एक जीव में निविष्ट हुए औदारिक शरीर, तैजसशरीर और कार्मणशरीर के स्कन्धों का जो परस्पर बन्ध होता है वह औदारिक-तैजस-कार्मणशरीरबन्ध है। इस प्रकार त्रिसंयोगी एक ही भंग होता है। वैक्रियिकशरीर के एकादिसंयोगी भंग :-

वैक्रियिक - वैक्रियिकशरीरबन्ध ॥ (49)

वैक्रियिक - तैजसशरीरबन्ध ॥ (50)

वैक्रियिक - कार्मणशरीरबन्ध ॥ (51)

वैक्रियिक - तैजस - कार्मणशरीरबन्ध ॥ (52)

आहारकशरीर के भंग :-

आहारक - आहारकशरीरबन्ध ॥ (53)

आहारक - तैजसशरीरबन्ध ॥ (54)

आहारक - कार्मणशरीरबन्ध ॥ (55)

आहारक - तैजस - कार्मणशरीरबन्ध ॥ (56)

तैजस - तैजसशरीरबन्ध ॥ (57)
 तैजसशरीर - कार्मणशरीरबन्ध ॥ (58)
 कार्मण - कार्मणशरीरबन्ध ॥ (59)
 वह सब शरीरबन्ध है ॥ (60)

यह पन्द्रह प्रकार का बन्ध शरीर बन्ध है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। जो शरीरीबन्ध है वह दो प्रकार का है - सादि शरीरीबन्ध और अनादि शरीरीबन्ध ॥ (61)

इस प्रकार शरीरीबन्ध दो प्रकार का ही होता है, क्योंकि अन्य प्रकार के शरीरी बन्ध होना असम्भव है।

जो सादि शरीरी बन्ध है वह शरीरी बन्ध के समान जानना चाहिए ॥ (62)

शरीरी जीव को कहते हैं। उसका जो औदारिक आदि शरीरों के साथ बन्ध होता है वह शरीरी बन्ध है। इसके भंगों का कथन, जिस प्रकार शरीर बन्ध के भंगों का कथन किया है उस प्रकार करना चाहिए। यथा-औदारिक-शरीर के साथ शरीरी का बन्ध, वैक्रियिकशरीर के साथ शरीरी का बन्ध, आहारकशरीर के साथ शरीरी का बन्ध तैजस शरीरी के साथ शरीरी का बन्ध कार्मण शरीर के साथ शरीरी का बन्ध और शरीरी के साथ शरीर का बन्ध।

शंका - यहाँ छठवाँ भंग कैसे बन सकता है?

समाधान - नहीं, क्योंकि, जो कर्म और नोकर्मोंका अनादि सम्बन्ध होने से मूर्तपनेको प्राप्त हुआ है और जिसके घनलोकप्रमाण जीवप्रदेश योग के वश से संकोच और विस्तार धर्मवाले हैं ऐसे जीव के अवयवों के परतन्त्र-लक्षण सम्बन्ध से छठे भंग की उत्पत्ति होने में कोई विरोध नहीं आता, इस प्रकार ये छह भंग हुए । ६।

औदारिक-तैजसशरीरों के साथ शरीरी का बन्ध, औदारिककार्मण शरीरों के साथ शरीरी का बन्ध और, औदारिक तैजस कार्मण शरीरों के साथ शरीरी का बन्ध, इस प्रकार औदारिक शरीरीकी विविक्षा होने पर तीन भंग होते हैं। वैक्रियिक और आहारक शरीरों के इसी प्रकार तीन तीन भंग कहने चाहिए। तैजस-कार्मण शरीरों के साथ शरीरीका बन्ध इस प्रकार तैजसशरीरीकी विविक्षा होने पर द्विसंयोगी एक ही भंग होता है। कार्मणशरीर में द्विसंयोगी भंग नहीं होता। इस प्रकार ये सोलह शरीरबन्ध होते हैं । । ६।

जो अनादिशरीरीबन्ध है। यथा जीवके आठ मध्यप्रदेशों का परस्पर प्रदेशबन्ध होता है यह सब अनादि शरीरीबन्ध है ॥ (63)

शंका : - जीके आठ मध्यप्रदेशों का जो बन्ध है वह अनादिशरीरीबन्ध है, यह ठीक है, किन्तु यह प्रयोगबन्ध नहीं है, क्योंकि, यह स्वाभाविक होता है?

समाधान :- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि दृष्टान्त द्वारा अनादि शरीरीबन्ध का यहाँ निर्देश किया है। जिस प्रकार जीव के आठ मध्यप्रदेशों का अनादिबन्ध होता है उसी

प्रकार शरीर का जो पूर्व काल की मर्यादा से रहित बन्ध है वह अनादि शरीरीबन्ध है, ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

शंका :- वह बन्ध क्या है?

समाधान :- शरीरीका कर्म और नोकर्म सामान्यके साथ जो बन्ध है वह अनादि शरीरीबन्ध है।

६. नाम कर्म :- इसका वर्णन पूर्व में सविस्तार हो गया है वहाँ से अवलोकन करे।

(७) गोत्र कर्म :-

जो उच्च और नीच कुल को ले जाता है वह गोत्रकर्म है। मिथ्यात्व आदि बंध कारणों के द्वारा जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त, एवं उच्च और नीच कुलों में उत्पन्न कराने वाला पुद्गल-स्वन्ध 'गोत्र' इस नाम से कहा जाता है।

गोत्रकर्म की दो प्रकृतियाँ हैं - उच्चगोत्र और नीचगोत्र । (45)

जिस कर्म के उदय से जीवों के उच्चगोत्र होता है, वह उच्च गोत्र कर्म है। गोत्र, कुल, वंश और संतान, ये सब एकार्थवाचक नाम हैं। जिस कर्म के उदय से जीवों के नीचगोत्र होता है, उसे नीचगोत्र नामकर्म कहते हैं।

संतानकमेणागयजीवायरणस्स गोदभिदि सण्णा ।

उच्चं णीचं चरणं, उच्चं णीचं हवे गोदं (13)

(गोमटसार कर्मकाण्ड पृ. 7)

अर्थ - संतान क्रम से चले आये जीव के आचरण को गोत्र कहते हैं। उच्च व नीच गोत्र होता है।

विशेषार्थ - "उच्च-नीचं गमयतीति गोत्रम्" अर्थात् जो उच्च और नीच का आचरण कराता है उसे गोत्र कहते हैं। तथेव- 'गमयत्युच्च-नीचकुलभिति गोत्रम्' अर्थात् जो उच्च और नीच कुल का ज्ञान कराता है अथवा उच्च या नीच कुल को प्राप्त कराता है उसे गोत्र कहते हैं। "न च निष्फलं गोत्रम् दीक्षायोग्यसाध्वाचाराणां साध्वाचारैः कृतसंवंधाना आर्यप्रत्ययाभिधानव्यवहारनिवन्धनानां पुरुषाणां सन्तानः उच्चेगोत्र तत्रोत्पत्तिहेतुकमाप्युच्चर्गोत्रम् । तद्विपरीतम् नीचेगोत्रम् ।" अर्थात् गोत्र कर्म निष्फल है, यह बात नहीं है, क्योंकि जिनका दीक्षायोग्य साधु आचार है, साधु आचारवालों के साथ जिन्होंने सम्बन्ध स्थापित किया है तथा जो 'आर्य' इस प्रकार के ज्ञान और वचन व्यवहार के निमित्त है उन पुरुषों की परम्परा को उच्चगोत्र कहा जाता है तथा उनमें उत्पत्ति का कारणभूत कर्म भी उच्चगोत्र है। उससे विपरित कर्म नीच गोत्र है। कुल परम्परा के आचरण के विषय में एक कहावत भी है -

सियार के एक बच्चे को बचपन से ही सिंहनी ने पाला। वह सिंह के बच्चों के साथ ही खेला करता था। एक दिन खेलते हुए वे सभी बच्चे किसी जंगल में गये। वहाँ उन्होंने हाथियों का समूह देखा, देखकर जो सिंहनी के बच्चे थे वे हाथी के सामने हुए, किन्तु वह सियार जिसमें अपने कुल का डरपोक पने का संरक्षक था हाथी को देखकर भागने लगा। तब वे सिंह के बच्चे भी अपना बड़ा भाई जानकर उसका अनुकरण करते हुए अपनी माता के पास लौट आये और उस सियार की शिकायत की कि इसने हमको शिकार से रोका तब सिंहनी ने उस सियार के बच्चे से एक श्लोक कहा, जो इस प्रकार है –

शुरोऽसि कृतविद्योऽसि दर्शनीयोऽसि पुत्रक !

यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो, गजस्तत्र न हन्यते ॥

अर्थ – हे पुत्र ! तू शूरवीर है, विद्यावान है, देखने में सुन्दर है, किन्तु जिस कुल में तु उत्पन्न हुआ है उस कुल में हाथी नहीं मारे जाते हैं। (अतः तू यहाँ से भाग जा नहीं तो तेरी जान नहीं बचेगी।)

भावार्थ रजोवीर्य का संरक्षक अवश्य आ जाता है, चाहे वह कैसे भी विद्यादिगुणों से सहित क्यों न हो, उस पर्याय में संरक्षक नहीं मिटता, क्योंकि जैसे रजवीर्य से शरीर-मस्तिष्क व मन का निर्माण होता है वैसे ही जीव के विचार होते हैं। खानपान व वाह्य वातावरण का भी प्रभाव विचारों पर पड़ता है।

(8) अन्तराय कर्म :-

जो दो पदार्थों के अन्तर अर्थात् मध्य में आता है, वह अन्तराय कर्म है। दान, लाभ भोग और उपभोग आदि को में विघ्न करने में समर्थ तथा स्व-कारणों के द्वारा जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त पुद्गल-स्वरूप 'अन्तराय' इस नाम से कहा जाता है। मूलप्रकृतियाँ इतनी अर्थात् आठ ही होती हैं, इस बात के ज्ञान कराने के लिए सूत्र में 'इति' यह शब्द प्रयुक्त किया गया है। इस विषय में यह उपयुक्त श्लोक का अर्थ है –

हेतु, एवं प्रकार आदि, व्यवच्छेद, विपर्यय, प्रादुर्भाव और समाप्ति के अर्थ में 'इति' शब्द को विद्वानों ने कहा है ॥५॥

इसलिए मूलप्रकृतियाँ आठ ही हैं।

शंका – यह कैसे जाना जाता है कि मूल प्रकृतियाँ आठ ही हैं ?

समाधान – आठ कर्मों के द्वारा उत्पन्न होने वाले कार्यों से पृथग्भुत कार्य पाया नहीं जाता, इससे जाना जाता है कि मूलप्रकृतियाँ आठ ही हैं।

अनन्तानन्त परमाणुओं के समुदाय के समागम से उत्पन्न हुई इन आठ प्रकृतियों के द्वारा एक जीव-प्रदेश पर सम्बन्ध अनन्त परमाणुओं के द्वारा अनादिस्वरूप से सम्बन्ध को प्राप्त अमूर्त भी यह जीव मूर्तत्व को प्राप्त होता हुआ आविद्ध कुलाल चक्र के

तुल्य, द्रव्य परिवर्तनादि सात प्रकार के संसारों में संसरण या भ्रमण करता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

अन्तरायकर्म की पाँच प्रकृतियाँ हैं – दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, परिभोगान्तराय और वीर्यान्तराय । (46)

जिस कर्म के उदय से दान देते हुए जीव के विघ्न होता है, वह दानान्तरायकर्म है। जिस कर्म के उदय से लाभ में विघ्न होता है, वह लाभान्तरायकर्म है। जिस कर्म के उदय से भोग में विघ्न होता है, वह भोगान्तरायकर्म है। जो वरस्तु एक बार भोगी जाती है वह भोग है, जैसे ताम्बूल, भोजन, पान आदि। जिस कर्म के उदय से परिभोग में विघ्न होता है, वह परिभोगान्तरायकर्म है। जो वरस्तु पुनः पुनः भोगी जाती है वह परिभोग है, जैसे स्त्री, वरत्र, आभूषण आदि। जिस कर्म के उदय से वीर्य में विघ्न होता है, वह वीर्यान्तरायकर्म है। वीर्य, बल, और शुक्र, ये सब एकार्थक नाम हैं।

प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियाँ :-

सादं तिण्णेवाऽ, उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी ।

देहा बंधणसंघादंगोवंगाङ् वण्णचओ ॥(41)॥

समचउरवज्जरिसहं, उवघादृणगुरुछकक समगमं ।

तसबारसद्वासद्वी, बादालमभेददो सत्था ॥(42)॥युम्मं॥

(गोमटसार कर्मकाण्ड, पृ.-31)

अर्थ – सातावेदनीय, तीन आयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, पाँचशरीर, पाँचवन्धन, पाँचसङ्घात, तीन अंगोपांग, वर्णचतुष्क, समचतुरसंस्थान, वर्जर्भभनाराचसंहनन, उपघातविना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्ताविहायोगति, त्रसआदि वारह ये अडसट प्रकृतियाँ भेदविवक्षा से हैं तथा अभेदविवक्षा से पुण्यप्रकृतियाँ 42 ही हैं।

विशेषार्थ – उपर्युक्त गाथामें कथित पुण्यप्रकृतियों में जो तीन आयु कही है वे तिर्यच, मनुष्य और देवायु जानना। वर्णचतुष्क में-वर्ण-गंध-रस और स्पर्श है, किन्तु यहाँ शुभरूप वर्णादि चतुष्क को ही ग्रहण करना। इनके भेद करने पर वर्ण 5, गंध 2, रस 5 और स्पर्श 8 इस प्रकार 20 भेद होते हैं सो यह कथन भेदविवक्षा से है, किन्तु अभेदविवक्षा में शुभरूप वर्णादि चार ही ग्रहण के योग्य हैं। उपघात के बिना अगुरुलघुषट्क अर्थात्

अगुरुलघु-परघात-उच्छ्वास-आतप और उद्योग से 5 प्रकृतियाँ जानना। त्रस आदि 12 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं – त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुखर, आदेय, यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थकर। भेद विवक्षा से तो 67 प्रकृतियाँ कही और अभेदविवक्षा से 42 प्रकृतियाँ कही सो इसका अभिप्राय यह है कि पाँच वंधन और 5

संघात, पाँच शरीरों के अविनाभावी हैं अतः उनकी पृथक् नहीं गिनने से 10 प्रकृतियाँ तो ये एवं वर्णादि की 20 में से सामान्य से वर्णचतुष्क कहने पर 16 प्रकृतियाँ वे कम हो गई। इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेद विवक्षा में 42 ही प्रकृतियाँ रहती एवं भेदविवक्षा से इन 26 का भी कथन होने से 68 प्रकृतियाँ हो जाती हैं। यहाँ पृथक्-पृथक् रूप से नाम गिनाकर पुण्य (प्रशस्त) प्रकृतियों का कथन किया गया है। इसी बात को एक संक्षिप्तसूत्र द्वारा तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वामी आचार्य ने कहा है “सातावेदनीय, शुभायु, नामकर्म की शुभप्रकृतियाँ तथा शुभगोत्र (उच्चगोत्र) ये पुण्यरूप हैं।”

अप्रशस्त प्रकृतियाँ :-

घादी णीचमसाद णिरयतिरियदुग जादी -
संठाणसंहदीणं चदुपणपणं च वणचओ ॥43॥
उवधादमसगमण थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥(44) युग्मं

अर्थ :- घातियाकर्म की 47 प्रकृतियाँ तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यचगति-तिर्यचगत्यानुपूर्वी, जाति 4, संस्थान 5, संहनन 5, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्तविधायोगति, स्थावरादि 10 ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। भेदविवक्षा से वन्धरूप 98 प्रकृतियाँ एवं उदयरूप 100 प्रकृतियाँ हैं। अभेदविवक्षा से वर्णादि की 16 प्रकृति घटाने पर वन्धरूप 82 और उदयरूप 84 प्रकृतियाँ हैं सा जानना।

विशेषार्थ :- यहाँ अप्रशस्तप्रकृतियों में घातिया कर्मों कि प्रकृतियाँ कही गई सो घातियाँ कर्म तो अप्रशस्तरूप हैं। उनकी 47 प्रकृतियाँ ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, मोहनीय 28 और अन्तराय की 5 हैं। तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगति, नरकगत्यानपूर्ती, तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4 जाति, समचतुरस्रसंस्थान विना न्यग्रोधमण्डलादि 5 संस्थान, वज्र्जर्भनाराच विना वज्रनाराचादिक 5 संहनन, अशुभवर्ण-गन्ध-रस-रप्ति, उपघात, अप्रशस्तविधायोगति स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःखर, अनादेय और अयशरकीर्ति इस प्रकार वर्णादि का 16 कम करने से उदयापेक्षा 84 प्रकृतियाँ तथा घातिया कर्म की 47 में से सम्यमित्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति कम कर देने से बन्धापेक्षा 82 प्रकृतियाँ अप्रशस्तरूप कही हैं। भेदविवक्षा से वर्णादि की 16 मिलने पर बन्धापेक्षा 98 एवं उदयापेक्षा सम्यमित्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति मिलने से 100 प्रकृतियाँ पापरूप (अप्रशस्त) कही हैं।

अनन्तानुवन्धी आदि कषायों का कार्य

पढमादिया कसाया सम्मतं देससयलचारितं ।

जहखादं घादंति य गुणामा होंति सेसावि ॥(45)

अर्थ :- पहली अनन्तानुवन्धी कषाय सम्यक्त्व को घातती है, दूसरी अप्रत्याख्यान कषाय देशचारित्र को तीसरि प्रत्याख्यान कषाय सकलचारित्र को और चौथी सज्जवलन कषाय यथाख्यात चारित्र को घातती है। अतः इनके गुणों के अनुसार ही इनके नाम भी हैं।

विशेषार्थ :- अनन्त संसार का कारण होने से मिथ्यात्व अनन्त है, उसके साथ जो सम्बन्ध करे वह अनन्तानुवन्धी है। अप्रत्याख्यान ईषत् संयम-देशसंयम को घातती है। प्रत्याख्यान सकलसंयम नहीं होने देती तथा संज्वलन- ‘सम’ -एकरूप होकर जो संयम के साथ प्रकट हो रहे वह संज्वलनकषाय है। इसी प्रकार शेष नव नो कषाय और ज्ञानावरणादी भी सार्थक नामवाले हैं।

कषायों का वासनाकाल

अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संखऽसंखणंतभवं ।

संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण । (46)

अर्थ :- संज्वलन का वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त है, प्रत्याख्यान कषाय का एकपक्ष, अप्रत्याख्यान का छहमहिना तथा अनन्तानुवन्धी का संख्यात-असंख्यात और अनन्तभव है।

विशेषार्थ :- उदय का अभाव होते हुए भी कषाय का संरक्षक जितने काल तक रहे उसका नाम वासनाकाल है। जैसे-किसी पुरुष को क्रोध का उदय हुआ उस समय वह किसी कार्य में लग गया तो उसका वह क्रोध मिट गया। अब उसके क्रोध का उदय तो नहीं है, किन्तु वासना (संरक्षक) विद्यमान है, क्योंकि उसने जिस पर क्रोध किया उसके प्रति मन में उसके क्षमाभाव नहीं है। इसी प्रकार सभी कषायों का वासनाकाल जानना चाहिए। पुद्गलविपाकी भौतिकी प्रकृतियाँ -

दहादि फासंता पण्णासा णिमिणतावजुगलं च ।

थिरसुहपत्तेयदुगं अगुरुतियं, पोगल विवाई । (47) ।

अर्थ :- शरीरनाम कर्म से स्पर्शननाकर्मपर्यन्त 50 प्रकृतियाँ और निर्माण, आताप, स्थिर, शुभ तथा प्रत्येक, इनके युगल, अगरुलघु आदि तीन ये 62 प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं।

विशेषार्थ :- शरीर 5, बन्धन 5, संघात 5, संस्थान 6, अंगोपांग 3, संहनन 6, वर्ण 5, गन्ध 2, रस 5, रप्ति 8 ये 50 तथा निर्माण-आताप-उद्योत-स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, अगरुलघु, उपघात और परघात ये सर्व 62 प्रकृतियाँ पुद्गलविपाकी हैं, क्योंकि पुद्गल (शरीर) में ही इनका फल पड़ता है, जैसे शरीरनामकर्म के उदय से पुद्गल शरीररूप परीणमन करता है।

भवविपकी-क्षेत्रविपाकी एवं जीवविपाकी प्रकृतियाँ -

आजुणि भवविवाई खेत्तविवाई य आणुपुव्वीओ ।

अडुत्तरि अवसेसा जीवविवाई मुणेयव्वा । (48)

अर्थ :- चारों आयु भवविपाकी तथा चारों आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी है। इनका उदय विग्रहगति में ही होता है। जीवविपाकी प्रकृतियाँ 78 हैं, क्योंकि जो जीव की नरकादि पर्याय को उत्पन्न कराने में कारण हैं वे जीवविपाकी कहलाती हैं।

जीवविपाकी प्रकृतियाँ :-

वेदणियगोदघादीणेकावण्णं तु णामपयडीणं ।

सत्तावीसं चेदे अट्ठत्तरि जीवविवाई । (49) ।

अर्थ :- वेदनीय की दो, गोत्र की दो, घातिया कर्म की 47 (ये 51 प्रकृतियाँ और), नामकर्म की 27 ये सर्व 78 प्रकृतियाँ ‘जीवविपाकी हैं।

विशेषार्थ :- वेदनीय कर्म पुद्गलविपाकी भी है, क्योंकि वह बाह्यसामग्री मिलाता है। ‘जीवपोग्गम विवाइतं सादावेदणीयस्स पावेदि त्ति चेण, इट्टत्तादो’ यदि कहा जावे कि सातवेदनिय कर्म को जीवविपाकी और पुद्गलविपाकीपना प्राप्त होता है, सो भी कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह तो इष्ट है।

जीवविपाकी प्रकृतियों में कही गई नामकर्म की 27 प्रकृतियाँ -

तित्थयरं उस्सासं बादरपज्जत्तसुस्सरादेज्जं ।

जसतसविहायसुभगदु चउगइ पणजाइ सगवीसं । (50)

अर्थ :- तीर्थकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्ति, आपर्याप्ति, सुख्वर-दुःख्वर, आदेय-अनादेय, यशरकीर्ति, अयशरकीर्ति, त्रस-स्थावर, प्रशस्त-अप्रशस्तविहायोगति, सुभग-दुर्भग, चारगति, पाँचजाति ये नामकर्म की 27 प्रकृतियाँ हैं।

उन 27 प्रकृतियों को दूसरे प्रकार से कहते हैं -

गदि जादी उस्सासं विहायगदि तसतियाण जुगलं च ।

सुभगादिचउज्जुगलं तित्थयरं चेदि सगवीसं । (51)

अर्थ :- चारगति, पाँचजाति, उच्छ्वास, विहायोगति, त्रस-बादर-पर्याप्ति-सुभग-सुख्वर-आदेय और यशरकीर्ति के युगल तथा तीर्थकर ये नामकर्म की 27 प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं।

कर्मों के सहायक कर्मद्रव्य (नो कर्म द्रव्य)

जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव और भाव जिस प्रकृति के उदयस्वरूप फल में कारणभूत हों वह द्रव्य-क्षेत्र आदि उन-उन प्रकृति के नोकर्म द्रव्यकर्म समझना।

मूलप्रकृतियों के नो कर्म -

पडपडिहारासिमज्जा आहार देह उच्चणीचंगं ।

भंडारी मूलाण णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥69॥

(गोमटसार कर्मकाण्ड पृ.-41)

अर्थ :- ज्ञानावरणकर्मका नोकर्मद्रव्य वरत्र है तथा शेष सातकर्मों के क्रम से प्रतिहार, तलवार, मद्य, आहार, शरीर, ऊँच-नीचशरीर और भण्डारी ये आठ प्रकार जानने।

विशेषार्थ :- ज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य वस्तु के चारों और लगा हुआ वरत्र है जो वस्तु के ज्ञान को नहीं होने देता। दर्शनावरणकर्म का नोकर्मद्रव्य द्वारा पर नियुक्त द्वारापाल है, जो राजा के समान निजात्मरूप आत्मा का अवलोकन नहीं होने देता। अर्थात् अन्तर्मुख चित्प्रकाश को नहीं होने देता। वेदनीयकर्म का नोकर्म शहद लपेटी तलावार है जो वेदनीय कर्मदय के लिये सुख-दुख का कारण है। मोहनीय का नोकर्म मद्य है जो मोहनीय के उदय के लिये जीव के सम्यग्दर्शनादि गुणों को घातता है। आयु का नोकर्म चार प्रकार का आहार है, जो शरीर के बल का कारण होने से शरीर में स्थिति का कारण है। नामकर्म का नोकर्म औदारिकादि शरीर है। गोत्रकर्म का नोकर्मद्रव्य ऊँच-नीच शरीर है जो गोत्रकर्म के उदय के लिए ऊँच-नीच कुल को प्रकट करता है। अन्तराय कर्म का नोकर्म द्रव्य भण्डारी है जो अंतराय कर्मदय के लिये भोग-उपभोग रूप वस्तु में विध्न करता है।

ज्ञानारण के उत्तरभेदों के नोकर्म :-

पडविसयपहुदि दव्वं मदिसुदवाधादकरणसंजुत्तं ।

मदिसुदवोहाणं पुण णोकम्मं दवियकम्मं तु ॥ (70)

अर्थ :- वस्तु स्वरूप को ढकने वाले वरत्रादि पदार्थ मतिज्ञाना वरण के नोकर्म है। इन्द्रियविषयादि ज्ञातानावरण के नोकर्म है जो श्रुतज्ञान को नहीं होने देते।

ओहिमणपज्जवाणं पडिघादाणिमित्तसंकिलेसयरं ।

जं बज्जटरं तं खलु णोकम्मं केवले णात्थि ॥ (71)

अर्थ :- अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानका घात करने वाले संकलेशपरिणामों को उत्पन्न करने वाली वाह्य वस्तु अवधि-मनःपर्यय ज्ञानावरण का नोकर्म-द्रव्य है। केवलज्ञानावरण का नोकर्म द्रव्य नहीं है।

विशेषार्थ :- केवलज्ञान क्षायकि है उसको रोकने वाली संकलेश कारक कोई वस्तु नहीं है। अवधि और मनःपर्यय-ज्ञानावरण क्षायोपशमिकज्ञान हैं। अतः इनके नोकर्म हैं। दर्शनावरण की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म :-

पंचण्णं णिद्वाणं माहिसदहिपहुदि होदि णोकम्मं ।

वाधादकरपडादी चक्खुअचक्खुण णोकम्मं ॥ (72)

अर्थ :- पाँच निद्रारूप दर्शनावरण के नोकर्म-द्रव्य भैंस का दही आदि वस्तुएँ हैं,

चक्षु-अचक्षुदर्शनावरण के नोकर्मद्रव्य व्याघातकारक पट आदि वस्तुएँ हैं।

अवधि-केवल दर्शनावरण एवं वेदनीय के उत्तरभेदों का नोकर्मद्रव्य :-

ओही केवल दंसणणोकम्मं ताण णाण भंगो य ।

सादे दरणोकम्मं इडुणिडुणणपाणादि ॥ (73)

अर्थ :- अवधि-दर्शनावरण और केवलज्ञानावरण का नोकर्मद्रव्य अवधिज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण के समान जानना तथा सातावेदनीय का नोकर्मद्रव्य इष्ट अन्नपानादि तथा असाता वेदनीय का नोकर्मद्रव्य कर्म अनिष्ट अन्नपानादि है। मोहनीय कर्म की उत्तरप्रकृतियों के नोकर्म :-

आयदणाणायदणं सम्मे मिच्छे य होदि णोकम्मं ।

उभयं सम्मामिच्छे णोकम्मं होदि णियमेव ॥ (74)

अर्थ :- सम्यक्त्वप्रकृति के नोकर्म द्रव्य जिन आयतन हैं। तथा मिथ्यात्व के नोकर्मद्रव्य छह अनायतन हैं। आयतन व अनायतन ये दोनों मिश्रितरूप से सम्यमिथ्यात्वप्रकृति के नोकर्मद्रव्य हैं। ये नियम से इनके नोकर्म हैं।

विशेषार्थ :- जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, जिनागम, शास्त्रज्ञ, सुतप और सुतपर्खी ये छह आयतन तथा कुदेव, कुदेवमंदिर, कुशास्त्र, कुशास्त्रज्ञ, कुतप कुतपर्खी ये छः अनायतन हैं।

कषायों के नोकर्म :-

अणणोकम्मं मिच्छत्तायदणादि हु होदि सेसाणं ।

सगसगजोग्मं सत्थं सहायपहुदि हवे णियमा ॥ (75)

अर्थ :- अनन्तनुवंधी के नोकर्म छः अनायतन आदि हैं। शेष कषायों के नियम से नियम से नोकर्मद्रव्य, देशचरित्र-सकलचरित्र तथा यथार्थात्तचारित्र के धातककाव्य-नाटक-कोकशास्त्रादि अथवा पापी लोगों की सड़गति है।

नोकषायों के नोकर्म :-

थीपुं संठसरीरं ताणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु ।

वेलंबको सुपुतो हस्सरदीणं च णोकम्मं ॥ (76)

अर्थ :- स्त्रीवेद का नोकर्म स्त्री का शरीर, पुरुषवेद का नोकर्म पुरुष का शरीर और नपुंसकदेव का नोकर्म नपुंसक का शरीर है। हास्य का नोकर्म विदूषकादि (हंसी मजाक करने वाले जोकर), रति का नोकर्म गुणवान् पुत्र है, क्योंकि गुणीपुत्र पर अधिक प्रीति होती है।

इठड्हाणिडुविजोग-जोगं अरदिस्समुदसुपुत्तादी ।

सोगस्स य सिंहादी णिंदिद दव्वं च भयजुगले ॥ (77)

अर्थ :- अरति का नोकर्म इष्टवियोग-अनिष्ट संयोग हैं शोक का नोकर्म सुपुत्रिदि का मरण, भय का नोकर्म सिंहादि भयकर वस्तुएँ तथा जुगुप्सा का नोकर्म निंदित वस्तु है। आयुकर्म एवं गतिनामकर्म के नोकर्म :-

णिरयायुस्स अणिड्वाहारो सेसाणमिडु मण्णादी ।

गदिणोकम्मं दव्वं चउग्मादीणं हवे खेत्तं ॥ (78)

अर्थ :- नरकायु का नोकर्म अनिष्ट आहार है। शेष तीन आयु का नोकर्म इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले अन्नपानादि है और सामान्य से चारों गतियों का नोकर्म चारिंगतिरूप क्षेत्र अर्थात् योनिस्थान है।

नामकर्म के उत्तरभेदों के नोकर्म :-

णिरयादीण गदीणं णिरयादी खेत्तयं हवे णियमा ।

जाईए णोकम्मं दव्विदियपोगलं होदि ॥ (79)

अर्थ :- नरकादि चार गतियों का नोकर्म नियम से नरकादि गतियों का अपना-अपना क्षेत्र (योनिस्थान) है। (यद्यपि गतियों का उदय नारक आदि पर्यायों में निर्मित हैं तथापि वे पर्याय अन्यत्र नहीं होती इसलिये उनका नोकर्म उन-उनका क्षेत्र ही होना चाहिए। इसके लिये गाथा में नियम शब्द दिया है।) तथा जातिकर्म का नोकर्म द्रव्येन्द्रियरूप पुद्गल की रचना है।

एइंदियमादीणं सगसगदव्विदियाणि णोकम्मं ।

देहस्स य णोकम्मं देहुदयजयदेहखंधाणि ॥ (80)

अर्थ :- एकेन्द्रियादि पाँचजाति के नोकर्मद्रव्य अपनी-अपनी द्रव्येन्द्रियाँ हैं तथा शरीरनामकर्म के नोकर्म शरीरनामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए अपने-अपने शरीर की रक्तधरूप पुद्गलवर्गणाएँ जानना चाहिए।

ओरालियवेगुव्विय आहारयतेजकम्मणोकम्मं ।

ताणुदयजचउदेहाकम्मे विसंसंचयं णियमा ॥ (81)

अर्थ :- औदारिक-वेक्षिक-आहारक-तैजसशरीरनामकर्म के नोकर्स अपने-अपने उदय से प्राप्त हुई शरीर वर्गणाएँ हैं। कार्मणशरीर का नोकर्मद्रव्य विस्त्रोपचय (कर्मरूप होने योग्य वर्गण) है।

बंधणपहुदि समणियसेसाणं देहमेव णोकम्मं ।

णवरि विसेसं सगखेत्तं आणुपुव्वीणं ॥ (82)

अर्थ :- शरीर बंधन नामकर्म से लेकर जितनी पुद्गलविपाकी प्रकृतियाँ हैं, उनका तथा शेष जीवविपाकी प्रकृतियों का नोकर्मद्रव्य कर्मशरीर ही है, (क्योंकि इनके द्वारा किया गया पुद्गल रूप भाव और जीवभाव तथा सुखादि

रूप कार्य का उपादान कारण शरीर सम्बंधी वर्गणा ही है ।) क्षेत्रविपाकी रूप जो चार आनुपूर्वी है, उनका नोकर्म अपना-अपना विग्रहगतिरूप क्षेत्र ही है, इतना विशेष जानना चाहिए ।

थिरजुम्मस्स थिराथिररसरुहिरादीणि सुहजुगस्स सुहं ।

असुहं देहावयवं सरपरिणदपोग्लाणि सरे ॥ (83)

अर्थ :- स्थिरप्रकृति का नोकर्मद्रव्य अपने-अपने स्थान पर स्थित रहने वाला रस- रुधिरादि है और अस्थिरप्रकृति का नोकर्म अपने-अपने स्थान से चलायमान अर्थात् परिणमनरूप रस रुधिरादिक है । शुभप्रकृति का नोकर्म शरीर के सुंदर अर्थात् नाभि से ऊपर के अवयव है । तथा अशुभप्रकृति का नोकर्म शरीर के अशुभ अर्थात् नाभि से नीचे के अवयव है । स्वरनामकर्म का नोकर्म सुख्वर-दुःखरूप से परिणमित भाषा-वर्गणरूप पुद्गलरक्तन्ध है ।

गोत्र तथा अन्तराकर्म के उत्तरभेदों के नोकर्म :-

उच्चस्सुच्चं देहं णीचं नीचस्स होदि णोकम्मं ।

दाणादिचउक्काणं विघगणगपुरिसपहुदि हु ॥ (84)

अर्थ :- उच्चगोत्र का नोकर्मद्रव्य परम्परागत (साधु आचरण) कुल में उत्पन्न हुआ शरीर है । तथा इससे विपरीत नीचगोत्र का नोकर्म है । दानादि चार अन्तरायों का नो कर्म दानादि में विघ्न करने वाले पर्वत, नदी, पुरुष, स्त्री आदि जानना चाहिए ।

विरियस्स य णोकम्मं रुक्खाहारादिबलहरं दव्वं ।

इदि उत्तरपयडीणं णोकम्मं दव्वकम्मं तु ॥ (85)

अर्थ :- वीर्यान्तराय का नोकर्म रुक्खआहार आदि बलनाशक पदार्थ है । इस प्रकार उत्तरप्रकृतियों के नोकर्मद्रव्य का कथन किया ।

नोआगमभावकर्म :-

णो आगमभावो पुण सगसगकम्मफलसंजुदो जीवो ।

पोग्लविवाईयाणं णत्थि खु णोआगमो भावो ॥ (86)

अर्थ :- जिस कर्म का जो फल है उसको भोगते हुए जीवों को ही उस-उस कर्म का नोआगमभावकर्म जनना चाहिए । पुद्गल विपाकी प्रकृतियों का नोआगमभावकर्म नहीं है ।

विशेषार्थ :- पुद्गल विपाकीप्रकृतियों का उदय होने पर शेष सातावेदनीय आदि प्रकृतियों के सहयोग के बिना सुखादिक की उत्पत्ति नहीं हो सकती । इसी कारण पुद्गल विपाकी प्रकृतियों के नोआगमभावकर्म नहीं कहे । इस प्रकार सामान्य कर्म के भेदों (मूल और उत्तरप्रकृतिरूप) में नाम-स्थापना-द्रव्य और भाव ये चार निक्षेप कहकर उनके यथार्थरूप का वर्णन किया ।

अध्याय - 8

आधुनिक विज्ञानानुसार परमाणु

परमाणु हमारे चारों तरफ विद्यमान है, परमाणु रूपी ईटों से ही पदार्थों का निर्माण होता है और पदार्थों के सामान्य गुण परमाणुओं के गुणों पर ही निर्भर करते हैं ।

परमाणु के आकार का अन्दाजा देने के लिए हम कह सकते हैं कि नमक का कण सामान्य परमाणु से लगभग दस लाख गुना बड़ा है । इससे तात्पर्य यह है कि नमक कण का व्यास परमाणु के व्यास से लगभग दस लाख गुणा बड़ा है । निस्सन्देह नमक कण में परमाणुओं की संख्या दस लाख से कही अधिक होती है । कण में परमाणुओं की एक दूसरे के ऊपर रखी लगभग दस लाख परते होती है । प्रत्येक परत में दस लाख पंक्तियां होती हैं और प्रत्येक पंक्ति में दस लाख परमाणु होते हैं । इसलिए कण में इनकी कुल संख्या $10^0 \times 10^6 \times 10^6$ लाख होती है । शायद आप इतनी बड़ी संख्या का पूरा तात्पर्य नहीं समझते । वास्तव में दस लाख कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं है । यह तो हजार का केवल हजार गुना है । फुटबाल की कल्पना कीजिए । यह नमक कण से एक हजार गुणा बड़ा है । कण का हजारावाँ भाग कितना होगा ? देखिये जीवाणु कण के हजारवें भाग के बराबर होते हैं । शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी द्वारा आप उन्हें देख भर सकते हैं । परमाणु जीवाणु के हजारवें हिस्से के बराबर होता है और तथाकथित इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी परमाणुओं को लगभग दृश्य बना देता है । फुटबाल, नमक कण, जीवाणु और परमाणु-जरा इन चार वस्तुओं का ध्यान कीजिये । इनमें से प्रत्येक वस्तु अपने से पहले वाली वस्तु के हजारवें भाग के बराबर है । इस प्रकार आप देखते हैं कि परमाणु आखिरकार बहुत ज्यादा छोटे नहीं हैं ।

प्रत्येक ठोस वस्तु में परमाणु किसी न किसी प्रकार जुड़े रहते हैं । झूलते पुल को थामने वाले अपेक्षया पतले इस्पाती केवलों का यदि आप ध्यान करें तो आप अनुभव करेंगे कि केवल के परमाणु बहुत ही प्रबल वलों से जुड़े होंगे । यह कहने का कोई लाभ नहीं कि वे किसी प्रकार की गोंद से जुड़े हैं । गोंद स्वयं परमाणुओं से बनी हैं । इसलिए यह स्पष्टीकरण सन्तोष प्रद नहीं है । हमें गोंद की जरूरत नहीं वरन् किसी ऐसे अभौतिक बल की जरूरत है जो दो परमाणुओं के बीच की जगह से कार्यशील रहती हों । हम सब इस प्रकार के एक बल-गुरुत्व बल से परिचित हैं । ठोस पदार्थ में दो परमाणुओं के मध्य गुरुत्व बल की गणना करना सरल है । यह बल बहुत ही थोड़ा निकलता है । यदि इस्पाती केवल के परमाणु केवल गुरुत्व बल से ही जुड़े रहते तो केवल अपने भार का वहन भी न कर पाती ।

आकाश में कार्यशील होने वाले अन्य किन बलों से हम परिचित हैं ? हम सब विद्युत् और चुम्बकत्व को जानते हैं । प्रबल चुम्बक अपने वजन से कई गुणा भार उठा

सकता है। किसी खुशक दिन घर्षण से विद्युत् मुक्त की गई प्लास्टिक की पतली पर्णी से भी ऐसा ही किया जा सकता है। एक ही प्रकार के किसी बल द्वारा इन दोनों के ठोस पदार्थों के परमाणुओं के जुड़े रहने की सम्भावना हो सकती है। वास्तव में परमाणु को जोड़े रखनेवाला लगभग सारा का सारा बल केवल विद्युत् बल ही निकलता है।

विद्युत् आवेश परमाणु मिलाये रखने का काम कैसे करते हैं इसकी सीधी सी मिसाल के लिए नमक का ध्यान करिये। रसायन शास्त्री इसे सोडियम क्लोराइड कहते हैं। धनावेशी सोडियम और ऋणावेशी क्लोरिन परमाणुओं के बराबर की संख्या में मिलने से नमक बनता है। नमक के परमाणु विशेष प्रकार के वर्गों वाले नमूने में व्यवस्थित रहते हैं। पड़ोसी परमाणुओं के विरोधी आवेशों में होने वाले आपसी आकर्षण बल से ये परमाणु जुड़े रहते हैं। सामान्यतः पुरे परमाणु में विद्युत् आवेश नहीं होता। अपने आप में सोडियम अथवा क्लोरिन परमाणु विद्युतीय दृष्टि से उदारीन होते हैं। इनमें ऋणात्मक और धनात्मक, दोनों प्रकार की विद्युत् बराबर और परस्पर संतुलित मात्रा में होती हैं। परन्तु जैसा कि बाद में स्पष्ट किया जायगा, क्लोरीन परमाणु के निकट आने पर सोडियम परमाणु धनावेशी हो जाता है और क्लोरीन परमाणु ऋणात्मक आवेश ग्रहण कर लेता है।

अलग-अलग प्रकार के परमाणु कितने हैं? यह तो इस पर निर्भर करता है कि आप भेद कितने सूक्ष्म आधार पर करते हैं। यदि आप रासायनिक तरीकों से विभिन्न प्रकार के परमाणुओं में भेद करना चाहते हैं तो उत्तर है - लगभग एक सौ (असल में ध्यान यह रखना चाहिए की सही-सही संख्या न बतायी जाय, क्योंकि, शायद अभी-अभी कोई नया ही परमाणु खोज लिया गया हो)। जिस पदार्थ में केवल एक प्रकार के ही परमाणु होते हैं वह तत्त्व कहलाता है और इस समय लगभग 100 तत्त्व ज्ञात हैं। क्लोरीन को तत्व इसलिए माना जाता है, क्योंकि हम रासायनिक दृष्टि से एक क्लोरीन परमाणु का दूसरे क्लोरीन परमाणु से भेद नहीं कर सकते।

अधिक जटिल तरीकों से यह पता चला है कि क्लोरीन में दो प्रकार के परमाणु होते हैं। इनके वजन में लगभग 6 प्रतिशत अन्तर होता है। समान रासायनिक गुणों परन्तु अलग-अलग वजन वाले दो प्रकार के परमाणुओं को समरस्थानिक कहते हैं। अत्यन्त श्रमसाध्य विधियों से उन्हें अलग-अलग करना सम्भव हैं ताकि किसी नमूने में सभी (अथवा लगभग सभी) परमाणु भारी अथवा हल्की किरम के रह जाएं। दूसरी तरफ सोडियम परमाणु सारे के सारे एक समान होते हैं। स्वर्ण, एल्यूमीनियम और फॉस्फोरस आदि कुछ परमाणु ऐसे हैं जिनकी केवल एक किरम का ही अस्तित्व है। इसके विपरीत कई तत्वों के दो से अधिक समरस्थानिक होते हैं। इस क्षेत्र में रिकार्ड टीन का है - यह दस प्रकार के समरस्थानिकों - अर्थात् अलग वजन के दस प्रकार के परमाणुओं का मिश्रण है। अतएव यदि आप पुनः पूछें

कि परमाणु कितने प्रकार के हैं और इस बार सभी समरस्थानिकों कि गणना भी की जाय तो उत्तर होगा लगभग तीन सौ।

परन्तु एक जटिलता है जिसका अभी उल्लेख नहीं हुआ। बहुत से अस्थिर परमाणु हैं जिनमें से अधिकांश प्रकृति में तो नहीं पाये जाते, परन्तु जिन्हें परमाणु भट्टियों अथवा साइक्लोट्रॉनों द्वारा कृत्रिम रूप से बनाया जा सकता है। ये हैं विघटनाभिक समरस्थानिक जिनके बारे में आजकल हम इतना कुछ सुनते हैं। यदि हम इन्हें भी शामिल कर लें तो अलग-अलग प्रकार के ज्ञात परमाणुओं की संख्या एक हजार तक पहुँच जाती है। परन्तु यह याद रखने योग्य है कि सभी समरस्थानिक विघटनाभिक नहीं होते। ज्ञात समरस्थानिकों में से एक तिहाई समरस्थानिक (Isotope) स्थायी होते हैं। विश्व का अधिकांश भाग इन्हीं स्थायी समरस्थानिकों से बना है।

अणु - अब आपको थोड़ी जानकारी इस बारे में दी जायगी कि परमाणु हमारे चारों और से समान्य पदार्थ कैसे बनाते हैं। हम प्रारम्भ इस सुविदित तथ्य से करते हैं कि अधिकांश ठोस पदार्थ ज्यादा गर्म किए जाने पर पिघल जाते हैं।

ऐसा क्यों होता है? आपको सम्भवतः ज्ञात होगा कि ऊष्मा का कुछ सम्बन्ध परमाणुओं की गति-अनियमित गति-से होता है। आप किसी वस्तु को रगड़कर अथवा उस पर बारम्बार हथौड़े की चौटाँ करके गर्म कर सकते हैं। गर्म करके हम परमाणुओं की गति और तेज कर देते हैं। काफी प्रबल हो जाने पर गति अन्ततः पड़ोसी परमाणुओं को बाँधे रखनेवाले आकर्षण बल पर हावी हो जाती है। तब उन परमाणुओं की स्थिति निश्चित नहीं रहती तथा पदार्थ पिघल जाता है। जब गति बहुत प्रबल हो जाती है तो परमाणु विलकुल ही अलग-अलग हों जाते हैं। तब हम कह सकते हैं कि पदार्थ का वाष्पन प्रारम्भ हो गया है।

यह सब विलकुल सही तो केवल तभी हैं जब पदार्थ ऐसे हों जिनमें परमाणु स्वतन्त्रतापूर्वक विचरते हों, परन्तु अधिकांश पदार्थों में परमाणुओं की प्रवृत्ति काफी सीमा तक स्थायी, गुच्छों के रूप में रहने की होती है। इन गुच्छों को अणु कहते हैं। (जैन परमाणु विज्ञान के अनुसार यह अणु नहीं है, परन्तु अणुओं के समूहभूत रूप हैं।) मिसाल के तौर पर जल अणुओं से बना है। प्रत्येक अणु में ऑक्सीजन का एक परमाणु और हाइड्रोजन के दो परमाणु होते हैं। प्रत्येक अणु परिवार की भांति होता है जो सुख-दुख दोनों में ही उस समय भी जब ऊष्मा की गति इतनी प्रबल होती है कि अणु को वाष्प के रूप में द्रव से बाहर भी फेंक दें, इकाई बना रहता है। केवल बहुत ऊँचे तापमान पर ऊष्मा द्वारा पैदा की गति इतनी प्रबल होती है कि जल अणु विघटित हो जाते हैं।

कई अणुओं में केवल दो परमाणु होते हैं। ये एक समान भी हो सकते हैं। मिसाल

के तौर पर ऑक्सीजन के अणु में दो ऑक्सीजन परमाणु होते हैं। अन्य अणु कहीं अधिक जटिल हैं। शर्करा के एक अणु में कार्बन के 12 ऑक्सीजन के 11 और हाइड्रोजन के 22 अणु होते हैं। जब शर्करा के ये बड़े अणु जल में घुलाये जाते हैं तो वे अपेक्षया धीमी गति से हिलते हैं (बड़े होने के कारण) और छोटे तथा फुर्तीले जल अणुओं के रास्ते में आ जाते हैं। यही कारण है कि शर्करा घोल चाशनी सा होता है और शुद्ध जल की भाँति नहीं वह सकता। शर्करा पिघलाई जा सकती है, परन्तु यदि इसे और गर्म किया जाय तो इसका वाष्पीकरण नहीं होता, क्योंकि इसके अणु इतने बड़े होते हैं कि उड़ नहीं सकते। इसकी बजाय, अणुओं का विघटन हो जाता है और शर्करा पहले भूरी तथा ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के बाहर निकल दिये जाने पर जब केवल कार्बन वच जाता है तो अन्त में काली हो जाती है।

परन्तु इससे कहीं बड़े अणुओं का अस्तित्व हैं और पिछले दशक में उन पर एक विशाल उद्योग का निर्माण हुआ है। मिसाल के तौर पर ऐसी पॉलिथीलीन हैं जिनसे पारदर्शी पटल अथवा कटोरे, बीकर और ब्रश इत्यादि पारदर्शी तथा कुछ लचकिली वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। इसमें लम्बे अणु होते हैं। जो कानखजूरे की तरह दिखाई देते हैं। कार्बन परमाणुओं की लम्बी शृंखला होती हैं जिसके प्रत्येक कार्बन परमाणुओं से दो हाइड्रोजन परमाणु दोनों टांगों की भाँति जुड़े रहते हैं। पालिथिलीन उन लम्बे अणुओं का ताना बना है - ठीक वैसे ही जैसे की फेल्ट उनी रेशों का ताना बना है। ऊँचे तापमानों (250 फारनहाइट अथवा इसके करीब) पर अणु एक-दूसरे की जकड़ से निकल सकते हैं और तब इस प्रकार पालिथिलीन् चाशनी जैसे द्रव्य में पिघल जाती है परन्तु कमरे के तापमान में तो जकड़ इतनी ढीली ही होती है कि पालिथिलीन् में चमड़े जैसे लचकीलेपन का अपना विशिष्ट गुण पैदा हो जाता है। वेकेलाइट जैसे अन्य प्लास्टिकों में ऐसी अणु शृंखलाएँ होती हैं कि उनके अनुगम की कोशिश करने पर एक के बाद दुसरी शाखा निकलती रहती है। निस्सन्देह वेकेलाइट के किसी टुकड़े में आप बिना शृंखला छोड़े एक परमाणु से दुसरे परमाणु तक पहुँच सकते हैं। दूसरे शब्दों में वेकेलाइट कार्बन शृंखलाओं का जंगल है। ये सब शृंखलाएँ एक बड़े अणु की शाखें हैं। यही कारण है कि वेकेलाइट को पिघलाया नहीं जा सकता। परन्तु यदि इसे ज्यादा गरम कर दिया जाय तो यह झुलस जाता है।

आपने देखा होगा कि अभी तक पदार्थों के यांत्रिक गुणों उनके पिघलने वाष्पन तथा कुछ उनके रासायनिक व्यवहार के बारे में ही उल्लेख हुआ है, परन्तु अनेक प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर परमाणु कि भीतरी संरचना को समझे बिना नहीं दिया जा सकता। सोडियम धातु और क्लोरीन गैस क्यों हैं? सोडियम लेम्प पीला और निअॉन लेम्प लाल रंग का प्रकाश क्यों पैदा करता है? निअॉन रासायनिक यौगिक क्यों नहीं बनाता?

दरअसल बात यह है कि परमाणु संरचना के बारे में हमें जो कुछ जानते हैं उसका अधिकांश भाग शीशे की नलियों और विशेष रूप से सुपरिचित निअॉन साइन नलीयों के भीतर होने वाली प्रक्रिया के अध्ययन से ज्ञात हुआ है। ऐसी नलीयाँ सो वर्षों पूर्व केवल मनोरंजन की दृष्टि से ही बनाई गई थी, परन्तु शीघ्र ही यह पता चल गया कि विद्युत् धारा के अध्ययन के लिये वे अत्यन्त उपयुक्त हैं। केवल मात्र इस विशेषता के कारण भी कि आप शीशे के भीतर धारा को देख सकते हैं। गतिशील विद्युत्-एक दिशा में प्रवाहित धनावेशी विद्युत् अथवा विपरीत दिशा में प्रवाहित ऋणावेशी विद्युत् अथवा दोनों ही विद्युत् धारा हैं। नली में गैस विसर्जन के दौरान् हमें एक साथ दोनों धारायें मिलती हैं। यदि नली में गैस काफी घनी हुई तो धनात्मक और ऋणात्मक कण गैस अणुओं से टकराते रहते हैं। ये दोनों धारायें भीड़ वाली पटरी पर चल रहे पैदल चलने वालों की भाँति एक-दूसरे में मिलती हैं, परन्तु यदि नली को पम्प किया जाय ताकि उसमें बहुत थोड़ी गैस ही बचे तो ये दोनों धारायें कुछ सीमा तक स्वतन्त्र हो जाती हैं। तब उनका अलग-अलग अध्ययन करके यह पता लगाना सम्भव होता है कि किन कणों से वनी है।

इलेक्ट्रॉन

ऐसा करने पर ऋणात्मक धारा बहुत हल्के कणों से युक्त पाई गई थी। इन कणों को 'इलेक्ट्रॉन' नाम दिया गया है। ये सब बराबर होते हैं और एक जितना ऋणावेश वहन करते हैं। शायद यह कहना भ्रामक है कि वे आवेश 'वहन' करते हैं इससे प्रतीत होता है मानो यह आवेश किसी भार के समान है, जिसे इलेक्ट्रॉन अपनी इच्छा के अनुसार उतार सकता है। यदि हम शुद्ध ऋणावेश शुद्ध ऋणात्मक विद्युत् परमाणु के रूप में इलेक्ट्रॉन की कल्पना करें तो वह अधिक सत्य होगा। इलेक्ट्रॉन के अत्यन्त हल्के होने से भी इस धारणा को बल मिलता है। इलेक्ट्रॉन का वजन सबसे हल्के परमाणु (हाइड्रोजन) के वजन के लगभग दो हजार वे अथवा विल्कुल सही-यही 1837 वे भाग के बराबर होता है।

सभी गैसों के विद्युत् विसर्जनों में इलेक्ट्रॉन पाए जाते हैं। उष्मा, प्रकाश किरणों और एक्स-किरणों की, सहायता से ये इलेक्ट्रॉन ठोस पदार्थों से भी निकाले जा सकते हैं। इस शताब्दी ने इलेक्ट्रॉनों के नियन्त्रित उपयोग पर आधारित अनेक बड़े उद्योगों का उदय होते देखा है-आप जरा रेडियों, राडार, टेलीविजन, स्वतः नियंत्रण व्यवस्था आदि के बारे में तो सोचिये, परन्तु हमें विषयान्तर नहीं करना, अभी तो हमारा सम्बन्ध इसी तथ्य से है कि सब प्रकार के पदार्थों और इसलिये सब प्रकार के परमाणुओं में इलेक्ट्रॉन विद्यमान है।

यदि हम उनमें से एक इलेक्ट्रॉन हटा दे तो परमाणु का क्या होता है? इलेक्ट्रॉन में क्योंकि ऋणावेश होता है अतएव हमारे धनावेशी परमाणु रह जायगा। ठीक यही चीज हम विद्युत् विसर्जन नली की धनात्मक धारा में पाते हैं। गैस के प्रत्येक परमाणु और अणु

पर धनावेश होता है। यह इलेक्ट्रॉन के अवेश के बराबर, परन्तु उससे विरोधी आवेश होता है। कभी-कभी हम ऐसा परमाणु भी पाते हैं जिन पर इससे दो या तीन गुना आवेश होता है। स्पष्टतः वे दो या तीन इलेक्ट्रॉन खो चुके होते हैं, परन्तु यह किन्हीं भी अर्थों में परमाणु 'विखण्डन' नहीं है। ऐसे परमाणु को अस्थायी रूप से हानी पहुँचाती है। वह शीघ्र ही खोये इलेक्ट्रॉनों के स्थान पर नये इलेक्ट्रॉनों को पा लेता है। इसके बाद वह परमाणु ठीक पहले जैसा हो जाता है।

एक परमाणु में कितने इलेक्ट्रॉन होते हैं? यह तो परमाणु विशेष की, रसायनिक प्रकृति पर निर्भर करता है। जब आप हाइड्रोजन में से विद्युत् विसर्जन गुजारते हैं तो आपको ऐसे हाइड्रोजन परमाणु मिलते हैं जो एक इलेक्ट्रॉन खो चुके होते हैं। हाइड्रोजन परमाणु इससे ज्यादा इलेक्ट्रॉन कभी नहीं खोता। अतएव हाइड्रोजन परमाणु में शायद कम ही इलेक्ट्रॉन होता है। हीलियम में हमें ऐसे परमाणु मिलते हैं जिनमें एक या दो-इससे अधिक नहीं इलेक्ट्रॉन कम होते हैं। और यह क्रम इस प्रकार चलता है। परमाणु में इलेक्ट्रॉन कितने हैं यह बताने के कई तरीके हैं। हमें पता चलता है कि प्रत्येक रासायनिक तत्त्व में इलेक्ट्रॉनों की निश्चित संख्या होती है। मिसाल के तौर पर सोडियम परमाणु में 11 क्लोरीन परमाणु में 17 और र्वर्ण परमाणु में 79 परमाणु होते हैं। प्रकृति में सबसे अधिक (92) इलेक्ट्रॉन युरेनियम परमाणु में पाये जाते हैं, परन्तु 100 से भी अधिक इलेक्ट्रॉनों वाले परमाणु कृत्रिम रूप से बनाये जा चुके हैं।

यदि सारे इलेक्ट्रॉन हटा दिये जाएँ तो परमाणु का क्या बचा रहता है? शायद आप सोचे कि धनावेशी पदार्थ का खण्ड बच जायेगा जिसमें कुछ सूराख होगें, जैसे सूराख तलवे में से किशमिश निकाल लिए जाने पर बन जाते हैं। परन्तु सत्य कहीं अधिक चौका देने वाला है। यदि आप सारे इलेक्ट्रॉन हटा दे तो पदार्थ का छोटा सा खण्ड बच। रहता है। जो मूल परमाणु का कई हजारवाँ भाग होता है। परन्तु इसका वजन लगभग पूरे परमाणु के वजन के बराबर ही होता है। क्योंकि इलेक्ट्रॉनों का भार नहीं के बराबर ही होता है। अतएव इस परमाणु 'नाभिक' का घनत्व बहुत ही अधिक होता है। यदि नमक का कण ऐसे घने पदार्थ से बना हो तो उसका वजन सैकड़ों टन होगा।

परमाणु लगभग सारा-का-सारा बिल्कुल खाली जगह है। इसके मध्य में वह छोटा-सा-नाभिक होता है और इसके चारों ओर कुछ इलेक्ट्रॉन होते हैं जो और भी छोटे-छोटे होते हैं। यदि आप किसी परमाणु को अरब गुना बड़ा कर सके तो यह फुटबाल के बराबर आकर का होगा। परमाणु के आयतन में तैरते धुलिकणों की भांति-नाभिक और इलेक्ट्रॉन देखने के लिये भी आपको आवर्धक लैंस की जरूरत होगी।

इसके बावजुद कई दृष्टियों से परमाणु रबड़ के गेंद की भांति व्यवहार करता है।

यह कैसे सम्भव है? यह कैसे हो सकता है कि खाली जगह का कुछ क्षेत्र, जिसे मैं थोड़े से कर्ण हो, रबड़ गेंद की तरह व्यवहार करें।

एक दृष्टि से क्षेत्र वास्तव में खाली नहीं है। इसमें प्रवल-विद्युत् क्षेत्र विद्यमान है। विद्युत् क्षेत्र कोई भौतिक वस्तु नहीं, बल्कि आकाश में विद्युत् तनाव की अवस्था विशेष है। यहाँ पर यह तनाव धनावेशी नाभिकों और ऋणावेशी इलेक्ट्रॉनों में होता है। दो परमाणु जब परस्पर निकट आने लगते हैं तो उनके विद्युत् क्षेत्र एक-दूसरे पर अति व्याप्त होने लगते हैं, इससे जटिलता बढ़ जाती है, परन्तु यह गणना की जा सकती है कि वहाँ क्या होता है। शुरू में तो परमाणु एक दुसरे को आकर्षित करते हैं, परन्तु जब वे काफी निकट आ जाते हैं तो प्रवल प्रतिकर्षण पैदा हो जाता है और वे अलग-अलग धकेल दिये जाते हैं। अपने विद्युत् क्षेत्रों की परस्पर क्रिया के कारण ही वे रबड़ के गेंद की भांति व्यवहार करते हैं।

हम पुनः अकेले परमाणु का निरीक्षण करते हैं। विद्युत् क्षेत्र इलेक्ट्रॉनों को नाभिक की ओर खीचने का प्रयास करता है और इस प्रकार उन्हें वह निकालने से रोकता है। परन्तु खीच कर नाभिक में पहुँच जाने से उन्हें क्या चीज रोकती है? आम तौर पर यह कहा जाता है कि इलेक्ट्रॉन छोटे-छोटे उपग्रहों के समान हैं जो नाभिक के गिर्द ऐसे धुमते हैं मानो वह छोटासा सूर्य हो, परन्तु केवल यही काफी नहीं है। भौतिक के सामान्य नियमों के अनुसार इलेक्ट्रॉन अनिश्चित समय तक नाभिक के गिर्द धुमते नहीं रह सकते। वे धीरे-धीरे भीतर की ओर सर्पित गति से बढ़ते हुए अंत में नाभिक से जा टकरायेंगे। यदि यह सत्य हो जाता तो बहुत पहले ही सब परमाणु ढह चुके होते। यदि वे पुनः किसी तरह फुलाये भी जाते तो भी परमाणु हमें विघटन की विभिन्न अवस्थाओं में मिलते, परन्तु कई तरीकों से यह दिखाया जा सकता है कि एक प्रकार के परमाणुओं का आकार बिल्कुल बराबर होता है। इसका एक प्रमाण तो यह है कि परमाणुओं का आकार बराबर न होता तो वे कभी नियमित वर्गाकार नमूनों में ऐसे व्यवस्थित रूप में न होते जैसे कि खड़ों में होते हैं।

तथ्य यह है कि 19 वीं शताब्दी के भौतिक नियम, जो दैनिक जीवन और खगोल विज्ञान में हमें बहुत काम देते हैं, परमाणुओं जैसी छोटी वस्तुओं पर लागू नहीं होते। इस शताब्दी के प्रथम 25 वर्ष क्वांटमवाद के नियमों की खोज और उनके सही-सही रूप देने के कार्य ने ही वैज्ञानिकों को व्यस्त रखा। गैलिलियों और न्यूटन के बाद भौतिकी सम्बन्धी धारणाओं में महानतम क्रांति का प्रतिनिधित्व यही नियम करते हैं।

क्वांटमवाद

वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के कुछ ही पहले 1899 में जर्मन के मेक्स प्लांक ने इस दिशा में पहला कदम उठाया। उस समय सैद्धान्तिक भौतिकविद् उष्मा विकिरण के

तथ्यों-मिसाल के तौर पर यह तथ्य की गर्म पिण्ड 500 सेंटिमीटर पर लाल होकर चमकने लगता है - की व्याख्या करने के प्रयत्न में बड़े जोर से जुटे हुए थे। प्लांक ने यह समझ लिया था कि तत्कालिन सिद्धान्तों की ऐसी मामूली तथ्यों का स्पष्टीकरण में असमर्थता, परमाणु और पदार्थ के बारे में हमारी संकल्पनाओं में थोड़ा परिवर्तन करके ही दूर नहीं की जा सकती। आधारभूत गलती तो विकिरण सम्बन्धी हमारी संकल्पना में है। इसका तात्पर्य था विकिरण ऊर्जा एक अविछिन्न द्रव्य की भाँति है जिसके असंख्य भाग किये जा सकते हैं।

प्लांक ने यह समझ लिया था कि असंख्य भागों में बांटे जाने की सम्भावना ही से अनेक पार न की जा सकने वाली कठिनाईयाँ पैदा होना अवश्यमभावी हैं। इसलिये उसने यह कल्पना करने का साहसपूर्ण कदम उठाया कि विकिरण ऊर्जा में परिमित पार्सल होते हैं। उसने इन पार्सलों को क्वांटा नाम दिया।

विकिरण के तत्कालीन सिद्धान्तों के अनुसार इस संकल्पना को उचित नहीं ठहराया जा सकता और कई वर्ष तक उसकी और कोई ध्यान नहीं दिया गया। यह संकल्पना के तैयार भवन में मनमाना योग प्रतित होता था। प्लांक की संकल्पना को गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करने वाले प्रथम व्यति थे आइंस्टाइन। उन्होंने 1905 में एक शोध पेपर में दिखाया कि तथाकथित प्रकाश विद्युत् प्रभाव प्लांक की परिकल्पना के पक्ष में विल्कुल स्वतन्त्र और अत्यन्त प्रबल प्रमाण प्रस्तुत करता है। आइंस्टाइन को 16 वर्ष के बाद इसी शोध पेपर नोबल पुरस्कार मिला था। इसके बाद अन्य प्रमाणों ने धीरे-धीरे यह भावना मजबूत कि की इस परिकल्पना में कुछ सच्चाई है, जरुर !

डेन्मार्क के भौतिकविद् नील बोहर ने, 1913 में सर्वप्रथम क्वांटम सिद्धान्त परमाणुओं पर लागू कियें। ज्वालाओं में पड़े परमाणु अथवा निअॉन नलियों में होने वाले विद्युतीय विसर्जनों जैसे विसर्जन कई शुद्ध रंगों में प्रकाश उत्सर्जित करते हैं। ये स्पेक्ट्रम में रेखाओं के रूप में पहचाने जाते हैं। अनेक परमाणुओं की विशिष्ट स्पेक्ट्रम रेखायें ठीक-ठीक ज्ञात थीं, परन्तु कोई नहीं जानता था कि उनका कारण क्या बताया जाय। यहाँ तक सरलतम परमाणु हाइड्रोजेन की वर्णक्रम रेखाओं का भी कारण नहीं बताया जा सका था। यद्यपि हाइड्रोजेन की वर्णक्रम रेखाओं का नमूना एक सरल गणितिय नियम के अनुसार बनता है। बोहर ने पाया कि चौंका देने वाली कुछ मान्यताओं से हाइड्रोजेन स्पेक्ट्रम का उचित कारण बताया जा सकता है। एक मान्यता यह थी कि इलेक्ट्रॉन नाभिक के चारों और निश्चित कक्षाओं में ही घुम सकते हैं मानो वे पटरियों पर दौड़ रहे हों। दूसरी यह है कि वे एक कक्षा से दूसरी छोटी कक्षा में कूद सकते हैं। तब वे ऊर्जा अंतर को प्रकाश क्वांटा के रूप में उत्सर्जित करते हैं।

बोहर को यह भली प्रकार ज्ञात था कि ये मान्यतायें भौतिकी के स्वीकृत नियमों के

प्रतिकूल हैं। साथ ही ये मान्यताएँ अपने आप में भी पूर्णतया संगत नहीं। वह तो केवल परमाणु का एक प्रतिरूप (मॉडल) बनाने का प्रयास कर रहा था। उसका विचार था कि उस समय परमाणु की वास्तविक प्रकृति पूरी तरह समझ में आनी कठिन थी। पंद्रह वर्ष बाद परमाणुओं का संगत क्वांटम सिद्धान्त अस्तित्व में आया। परन्तु यह सिद्धान्त मूलतः गणितिय है और कल्पना के सामने लगभग कोई भी चित्र नहीं प्रस्तुत करता। यदि यह परमाणु के इलेक्ट्रॉनों को क्वांटमवाद के अनुसार चित्रित करने का प्रयत्न करे तो तरंगों की कुछ विशिष्टताओं से युक्त छित्र बादल का चित्र उभर आता है। इस सबकी कल्पना करना अत्यन्त कठीन है। सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ चित्र नाभिक के चारों और दौड़ते हुए इलेक्ट्रॉन की कल्पना ही प्रस्तुत करती है। यद्यपि हम जानते हैं कि जैसे किसी व्यक्ति का कुछ रेखाएँ खींचकर बनाया गया रखेच वास्तविक व्यक्ति का केवल अपरिष्कृत चित्र होता है वैसे ही उक्त कल्पना भी परमाणु का रखेच मात्र ही है।

परमाणुओं का क्वांटम सिद्धान्त - (भौतिक में संगठन एवं विघटन) जिसे प्रायः तरंग यात्रिकी (वेव मैकेनिक्स) भी कहते हैं - यद्यपि अमूर्त तथा गणितिय है तथा परमाणु की आकृति का अस्पष्ट चित्र ही प्रस्तुत करता है, परन्तु मूर्त समरया पर लागू करने पर इसमें विल्कुल अस्पष्टता नहीं रहती। दर असल जिन थोड़ी सी मान्यताओं पर यह सिद्धान्त आधारित है उन्हें स्वीकार कर लेने के बाद परमाणु का कोई भी ऐसा गुण नहीं जिसकी गणना उक्त मान्यताओं के आधार पर न की जा सके।

इसके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं। क्वांटम सिद्धान्त हमें बताता है कि दस इलेक्ट्रॉनों वाला परमाणु बहुत स्थायी तथा अपने आप में पूर्ण होगा। यह तथ्य इस बात का स्पष्टीकरण करता है कि दस इलेक्ट्रॉनों वाली निअॉन गैस को रसायनशास्त्री "राजसी गैस" क्यों कहते हैं। यह गैस अन्य तत्वों से यौगिक नहीं बनाती। एक अन्य राजसी गैस आर्गन है। इसके 18 इलेक्ट्रॉन होते हैं। अब फ्लोरीन के 18 से एक कम 17 इलेक्ट्रॉन होते हैं। इस कारण क्लोरीन में ऐसे परमाणुओं से मेल करने की प्रवृत्ति प्रबल होती है जिनमें एक इलेक्ट्रॉन फालतु होता है। मिसाल के तौर पर सोडियम के साथ - जिसमें 11 अर्थात् निअॉन से एक अधिक इलेक्ट्रॉन होते हैं। क्लोरीन का परमाणु सोडियम परमाणु से मिलते ही तत्काल उसका एक इलेक्ट्रॉन मांग लेता है। इलेक्ट्रॉन खो देने के कारण सोडियम परमाणु धनावेशी और क्लोरीन परमाणु ऋणावेशी होता है। अतएव ये दोनों एक दुसरे को आकर्षित करके सोडियम क्लोराईड (अथवा नमक) बनाते हैं।

क्वांटम सिद्धान्त में कोई भी यह गणना कर सकता है कि परमाणु विन्यास कैसा है। वे कितने अलग अलग हैं तथा लवण बनाने पर मिसाल के तौर पर सोडियम व क्लोरीन के लवण का निर्माण होने पर - कितनी ऊर्जा मुक्त होती है। ये गणनायें आम

तौर पर इतनी जटिल होती है कि बिना ज्यादा दिक्कत के मात्रा मापी जा सकती हो तो कोई इन गणनाओं को करने का कष्ट नहीं करेगा, परन्तु सिद्धान्त को परखने की दृष्टि से वे वहमूल्य हैं। काफी गणनायें की जा चुकी हैं कि जिससे हमें विश्वास हो चुका है कि यह सिद्धान्त सभी तथ्यों के अनुकूल है।

एक और मिसाल लीजिये : सोडियम धातु क्यों है ? इसका कारण यही है कि प्रत्येक सोडियम परमाणु में एक इलेक्ट्रॉन फालतु होता है। ठोस सोडियम के किसी भी खण्ड में वे "खुले" इलेक्ट्रॉन सर्वत्र निर्वाधता से घूम सकते हैं। इसी कारण सोडियम इतना बढ़ीया सवाहक कंडक्टर होता है। धातुओं का सबसे विशिष्ट गुण संवाहन ही है। सोडियम वाष्प से भरी गैस विसर्जन नलियों (सुविदित सोडियम लैम्पों) के प्रकाश का इतना बढ़िया स्रोत होने का रहस्य भी यही इलेक्ट्रॉन है। ऐसे लैम्पों में विद्युत धारा मुख्यतः इलेक्ट्रॉन ही वहन करते हैं। वाष्प को इतना घना बना दिया जाता है कि वे इलेक्ट्रॉन सोडियम परमाणु से टकराते रहते हैं। ऐसी टक्करों से परमाणु प्रायः उत्तेजित हो जाता है। परमाणु का खुला इलेक्ट्रॉन अगली बढ़ी कक्षा में धकेल दिया जाता है। इलेक्ट्रॉन शीघ्र ही वापिस अपनी सामान्य कक्षा में आ जाता है। इस दौरान वह-सोडियम परमाणु में- पीले रंग के प्रकाश का उत्सर्जन करता है। मानव चक्षु पीले प्रकाश के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। यही कारण है कि विद्युत् शक्ति को प्रकाश में बदलने में सोडियम परमाणु विशेष रूप से उपयुक्त है। दूसरे परमाणुओं में इलेक्ट्रॉनों की अधिकांश कुदानें लाल, नीला तथा मानव चक्षु को न दिखने वाला परावैगनी प्रकाश पैदा करती है।

सोडियम नाभिक में 11 इलेक्ट्रॉनों के आवेश के बराबर धनात्मक आवेश होता है। नाभिक आवेश उदासीनिकरण के वास्ते चारों और 11 इलेक्ट्रॉन रखने कि प्रवृत्ति रहेगी। नाभिक स्थायी कोड है। इलेक्ट्रॉन तो मात्र हल्का परिधान है जिन्हें नाभिक अपने विद्युत् आवेश को छुपाने के लिए ओढ़ लेता है।

प्रोटॉन व न्यूट्रॉन :- यदि आप नाभिकों को 10 खरब गुना बड़ा कर सके तो यह जौ के कणों की भाँति छोटे-छोटे लगभग 48 इंच व्यास वाले मनकों के गुच्छों की भाँति दिखाई देगा। कई मनकों पर विद्युत् आवेश होगा और कईयों पर नहीं परन्तु इसके अतिरिक्त वे वजन और आकार में लगभग एक समान होते हैं। धनात्मक विद्युत् आवेश वाले मनके 'प्रोटॉन' तथा विद्युत् आवेश से रहित मनके 'न्यूट्रॉन' कहलाते हैं। कोई मनका ऋणावेशी नहीं होता।

नाभिक के प्रोटॉनों की संख्या हर परमाणु की रासायनिक प्रवृत्ति पर निर्भर करती है। प्रोटॉन का विद्युत् आवेश इलेक्ट्रॉन के विद्युत् आवेश के बिलकुल बराबर परन्तु विरोधी प्रकृति का होता है। इसलिए नाभिक अपने चारों तरफ उतने ही इलेक्ट्रॉन एकत्र

करेगा जितने उसके भीतर प्रोटॉन होंगे। मिसाल के तौर पर कार्बन नाभिक में छह प्रोटॉन होते हैं और सामान्यतः यह छह इलेक्ट्रॉनों से घिरा रहता है। इसके विपरीत न्यूट्रॉनों की संख्या का परमाणु की रासायनिक प्रकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार तत्त्व के समरस्थानिकों के अस्तित्व का स्पष्टीकरण न्यूट्रॉनों द्वारा हो जाता है। मिसाल के तौर पर कार्बन परमाणु के छह प्रोटॉनों के साथ छह या सात न्यूट्रॉन हो सकते हैं इसीलिए कार्बन के दो समरस्थानिक कार्बन 12 व कार्बन 13 होते हैं।

कार्बन नाभिकों में सदा छह या सात ही न्यूट्रॉन क्यों होते हैं। प्रकृति में पाँच अथवा आठ न्यूट्रॉनों वाले समरस्थानिक क्यों नहीं होते। उसका उत्तर यह है कि ऐसे नाभिक अस्थायी होते हैं।

न्यूट्रॉन - जैसा की पहले बताया गया है। स्वयं को प्रोटॉन में और प्रोटॉन, न्यूट्रॉन में परिवर्तित कर सकता है यदि ऐसा करते समय नाभिक ऊर्जा मुक्त करे तो ऊर्जा मुक्त करने की यह इच्छा नाभिक की उदारता प्रतीत होती है, परन्तु वास्तव में घड़ी को चलते रहने के लिए उसकी कमानी द्वारा ऊर्जा मुक्त करने की प्रवृत्ति अथवा चित्र के खूटी से गिर कर शोर के रूप में ऊर्जा पैदा करने की प्रवृत्ति से ज्यादा उल्लेखनीय यह प्रवृत्ति नहीं। किसी भी भौतिक व्यवस्था में न्यूनतम ऊर्जा अवरथा में रहने की प्रवृत्ति होती है। और परमाणु नाभिक में यह अवरथा तभी पैदा होती है जब प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों का आपसी अनुपात सही हो। हल्के नाभिकों में यह अनुपात एक-एक का होता है। इसी से हमें कार्बन 12 मिलता है जिसमें न्यूट्रॉनों और छह प्रोटॉन होते हैं। स्थिरता नष्ट किये विना एक अतिरिक्त न्यूट्रॉन तो घुसाया जा सकता है, परन्तु दो नहीं। इसी कारण कार्बन 14 स्थिर नहीं होता। यह अपना एक न्यूट्रॉन प्रोटॉन में बदलकर नाइट्रोजन 14 वन जाता है। अब सात प्रोटॉनों और सात न्यूट्रॉनों वाली नाइट्रोजन 14 स्थिर होता है। दूसरी और केवल पाँच न्यूट्रॉनों वाला कार्बन 11 इसके विपरीत कारण से अस्थिर होता है। उसमें एक प्रोटॉन अधिक होता है। प्रोटॉन कुल मिलाकर न्यूट्रॉनों की अपेक्षा कम स्वीकार्य होते हैं, क्योंकि विद्युत् आवेश से युक्त होने के कारण वे एक-दूसरे को प्रतिक्रिष्ट करते हैं। इसलिए कार्बन 11 अपने एक प्रोटॉन को न्यूट्रॉन में बदल देता है और इस प्रकार स्थिर समरस्थानिक वोरोन 11 वन जाता है।

अब तक इन अस्थिर नाभिकों की लगभग 700 किमी खोजी जा चुकी हैं। इन नाभिकों को विघटनाभिक कहते हैं क्योंकि विघटीत होने पर वे विकिरण पैदा करते हैं। न्यूट्रॉन प्रोटॉन में बदलता है तो नवजात प्रोटॉन के आवेश की प्रतिपूर्ति के लिए एक इलेक्ट्रॉन का भी सृजन हो जाता है। विपरीत रूपान्तरण प्रोटॉन से न्यूट्रॉन धनावेशी इलेक्ट्रॉन उत्पन्न करता है। अल्प आयु वाला यह धनावेशी कण सामान्य स्थिर पदार्थ में नहीं पाया

जाता। विघटनाभिक समरथानिक में एक टिपिकल नमूने में प्रति सेकण्ड लाखों नाभिकों का रूपान्तरण होता है। इससे उत्पन्न हो सब दिशाओं में जाने वाली इलेक्ट्रॉन की बौछार बीटा विकिरण कहलाती है। इसके अतिरिक्त रूपान्तरण के बाद प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों को प्रायः अपनी अंतिम स्थितियों में बैठना होता है। इस प्रक्रिया में और अधिक ऊर्जा युक्त होती है। यह ऊर्जा भेदक एक्स-किरणों के रूप में उत्सर्जित होती है और जिसे इस सन्दर्भ में गामा किरणें कहते हैं।

बीटा और गामा दोनों प्रकार की किरणें तो गाइगर गणित तथा वैसे संयंत्रों से मापी जा सकती है और इस प्रकार हम विघटनाभिक समरथानिकों के गुणों का अध्ययन कर सकते हैं। यदि आप ताजा तैयार किया हुआ कार्बन 11 गाइगर गणित के निकट रखे तो शुरू में किलक बहुत तेज सुनाई देंगे (प्रत्येक टिक, किलक एवं इलेक्ट्रॉन के आगमन की सूचक होती है) परन्तु कुछ मिनट बाद आप देखेंगे कि गणक क्रमशः धीमा होता जाता है। 20 मिनट बाद कम होकर तेजी आधी रह जाएगी। इस निष्कर्ष पर मत कुदिये कि अगले 20 मिनट बाद गणना बंद हो जायगी। यह संख्या आधी अथवा पूरी संख्या की चौथाई रह जायगी। यही क्रम, अर्थात् प्रत्येक 20 मिनट बाद आधी संख्या रह जाना, अनिश्चित काल तक जारी रहेगा। हम इसे यह कहकर व्यक्त करते हैं कि कार्बन 11 की अर्ध आयु 20 मिनट है। इस अवधि में उसकी विघटनाभिकता आधी रह जाती है। दूसरी और कार्बन 14 की अर्ध आयु कहीं अधिक - लगभग 6000 वर्ष है। इन सात सो के लगभग विघटनाभिक समरथानिकों में से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट अर्ध आयु होती है। यह अर्ध आयु सैकण्ड के अंश से लेकर लाखों वर्ष की अवधि तक हो सकती है। भौतिकविद के लिये तो ये सब समरथानिक रोचक हैं परन्तु स्वभावतः जीव विज्ञान शास्त्री कार्बन फारफोरस, आयोडीन, लोहा इत्यादि उन तत्वों के समरथानिकों के प्रति ही उत्सुक होता है। ये तत्व जीव विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। मिसाल के तौर पर वह किसी जैवी रचना में कार्बन की गतिविधि के प्रदर्शन के लिये कार्बन 14 के विकिरण का इस्तेमाल करता है। यह ठीक वैसे ही है जैसे किसी पर्वतीय क्षेत्र का कृषक गाय की गतिविधि का पता रखने के लिये कुछ गउओं के गलों में घण्टी बांध देता है। कुछ विघटनाभिक समरथानिक कैंसर चिकित्सा में विकिरण के स्रोत के रूप में अथवा अन्य अनेक प्रकार के वैज्ञानिक और औद्योगिक कामों में इस्तेमाल किये जाते हैं।

पहले उल्लेख किया जा चुका है कि इन सब रूपान्तरणों में ऊर्जा मुक्त होती है। मुक्त ऊर्जा की मात्रा काफी भिन्न-भिन्न होती है, परन्तु रसायनिक रूपान्तरणों में मुक्त होने वाली ऊर्जा की मात्रा से सामान्यतः यह मात्रा लाखों गुना अधिक होती है। इसी कारण नाभिकिय ऊर्जा (अथवा जैसा कि आम तौर पर कहा जाता है परमाणु ऊर्जा) के प्रति

इतना आकर्षण है। थोड़े से पदार्थ से बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा निकाली जा सकती है। मिसाल के तौर पर हजार टन कोयले से प्राप्त होने वाली ऊर्जा एक और युरेनियम से पैदा की जा सकती है, परन्तु युरेनियम से ही क्यों? क्योंकि, दरअसल, अधिकांश परमाणु विघटनाभिक ऊर्जा स्रोत के रूप में विल्कुल निरूपयोगी है?

इसका कारण तो केवल यही है कि प्रकृति में पायें जाने वाले अधिकांश नाभिक स्थिर होते हैं। वे पहले ही निम्नतर ऊर्जा अवरथा में होते हैं अतएव उनमें ऊर्जा मुक्त करने के प्रवृत्ति नहीं होती। उनकी स्थिरता मापने के लिये हम तथा-कथित् संयोजी ऊर्जा अर्थात् ऊर्जा की उस मात्रा का जिससे नाभिक को एक-एक प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन में विघटित किया जा सके, इस्तेमाल कर सकते हैं। यदि हमने नाभिक सूची में कार्बन और आक्सीजन जैसे हल्के परमाणु नाभिकों से स्वर्ण तथा यूरेनियम जैसे भारी परमाणु नाभिकों की ओर चले तो हम देखेंगे कि शुरू में संयोगी ऊर्जा बड़ी तेजी से मोटे-तौर पर नाभिक के वजन के अनुपात में बढ़ती है, परन्तु सूची के मध्य से आगे संयोगी ऊर्जा इतनी तेजी से नहीं बढ़ती। इसका मुख्य कारण नाभिक के धनावेशी प्रोटॉनों की पारस्परिक प्रतिकर्षण है। प्रोटॉन जितने ही ज्यादा होंगे प्रतिकर्षण बल उतना ही प्रबल होगा। इस कारण युरेनियम नाभिक में अपने से आधे नाभिक के मुकाबले में, प्रोटॉनों और न्यूट्रॉनों का बंधन कम मजबूत है। इसी कारण युरेनियम नाभिक में छोटे नाभिकों में विघटित होने की प्रवृत्ति रहती है।

आप पूछ सकते हैं कि यदि युरेनियम नाभिक में ऐसी प्रवृत्ति है तो वह विघटित हो ही क्यों नहीं जाता। इसका कारण भी वही है जिस कारण तरवीर सामान्यतः हुक से नीचे नहीं गिर जाती है। तरवीर तभी गिरेगी यदि इसे हल्के धक्कों से हिलाया जाय-अर्थात् इसे थोड़ी देर के लिए इतना उठा दिया जाय कि यह हुक से अलग हो जाय। इसलिए नाभिक को खण्डित करने से पूर्व उसकी ऊर्जा बढ़ानी आवश्यक है। ऊर्जा वृद्धि से युरेनियम नाभिक का रूप बदल कर अण्डाकार हो जाता है। इसके बाद अण्डे के दो सिरों पर स्थित प्रोटॉन-गुच्छे एक-दूसरे को इजना प्रतिकर्षित कर लेते हैं कि नाभिक और भी लम्बा हो जाता है। वह वीच में से पतला होकर अन्तः दो भागों में बट जाता है।

युरेनियम नाभिक को हम हल्के-हल्के धक्कों में हिलाते केसे हैं? परमाणु विखण्डन की पहली विधि का विकास रदरफोर्ड ने किया था। उसने तेज गति वाले हल्के नाभिकों और हाइड्रोजन व हीलियम के नाभिकों प्रोटॉनों और एल्फा कणों से पदार्थों पर बौछार शुरू की। निस्संदेह आप परमाणु नाभिक का निशाना नहीं ले सकते, परन्तु यदि आप लाखों परमाणु गोलियों का इस्तेमाल करे तो वे कुछ अवश्य मार करेंगी। नाभिकों की संरचना के बारे में जानकारी के लिए यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण तकनीक है। साइक्लोट्रॉन आदि

बड़ी मशीनें इस काम के लिये बनायी गई हैं, परन्तु ऊर्जा के विशाल स्रोत के रूप में आवेश युक्त कणों की बौछार किसी काम की नहीं क्योंकि (जैसा कि हम देख चुके हैं) अधिकांश गोलियाँ चाल खो देने से जाया हो जाती हैं और जो थोड़ी-सी निशाने पर मार करती भी है वहुत ही कम ऊर्जा पैदा करती हैं। दूसरी ओर विद्युत् आवेश से रहित होने के कारण न्यूट्रॉन पदार्थ में आसानी से फस जाते हैं और नाभिक से जा टकराते हैं इसलिए वे आदर्श गोलियाँ हैं, परन्तु 1932 तक ये खोजे नहीं जा सके थे। और यूरेनियम विखण्डन की खोज से पूर्व 1939 तक काफी मात्रा में न्यूट्रॉन उपलब्ध न थे। न्यूट्रॉन के संघटन से धक्का खाकर जब यूरेनियम नाभिक दो भागों में वटता है तो यह कुछ न्यूट्रॉन मुक्त करता है। इसलिये शृंखला अभिक्रिया शुरू करने के लिये प्रारम्भ में आपको एक न्यूट्रॉन की ही जरूरत होती है। इस शृंखला अभिक्रिया में उपयोगी अथवा विनाशक मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है।

आइन्स्टाइन के प्रसिद्ध समीकरण : $E = (mc^2)$ या $E=mc^2$

इस समीकरण का अर्थ है कि जब भी कोई भौतिक तन्त्र 'ई' ऊर्जा उत्सर्जित करता है तो इसके द्रव्यमान में 'एम' मात्राएँ कमी होती है और क्योंकि सी² प्रकाश का गति का अपनी गति से गुणन फल-बड़ी भारी संख्या है, इसलिए थोड़े-से द्रव्यमान के परिवर्तन से बहुत अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है। घड़ी चलने अथवा कोयला जलने आदि सुपरिचित आम प्रक्रियाओं में मुक्त हुई ऊर्जा इतनी कम होती है कि द्रव्यमान में हुआ परिवर्तन मापा नहीं जा सकता, परन्तु नाभिकीय रूपान्तरणों में जहां भारी मात्रा में ऊर्जा मुक्त होती है, द्रव्यमान परिवर्तन निश्चित रूप से मापा जा सकता है। यूरेनियम विखण्डन में दोनों नये नाभिकों के कुल वजन में मूल युरेनियम नाभिक के वजन के हजारवें हिस्से के वजन के बराबर कमी होती हैं। यह अंतर ऊर्जा में बदल जाता है। यदि कभी हम यह सीख पाये कि द्रव्यमान पुरे को पुरा ऊर्जा में कैसे बदला जा सकता है तो हम आज की अपेक्षा हजार गुना ऊर्जा प्राप्त का सकेंगे। आइन्स्टाइन का समीकरण यह बताता है कि अधिकतम ऊर्जा की यही सीमा है।

चार हाईड्रोजन नाभिकों के संगलित होकर हीलियम नाभिक में बदलने से, उतने ही वजन के यूरेनियम के विखण्डन से प्राप्त होने वाली ऊर्जा से दस गुना ऊर्जा प्राप्त होती है। परन्तु संलयन शृंखला अभिक्रिया प्राप्त करनी कहीं अधिक कठिन है। बड़े पैमाने पर संगलन प्राप्ति का एकमात्र उपाय अत्यधिक ऊँचे तापमानों का प्रयोग ही नजर आता है। ये तापमान अधिकतम गर्म भट्टियों तथा अत्यन्त गर्म विद्युतीय स्फुल्लिंगों के तापमान से भी कहीं ऊँचे होते हैं। तारों के केंद्र में ऐसे तापमान हैं अवश्य और वहां हीलियम नाभिक का निर्माण बड़े पैमाने पर हो रहा है। सूर्य का ताप ऐसे ही पैदा होता है। पृथ्वी पर हम

तथाकथित एच-वर्मों में विस्फोटक संलयन अभिक्रिया पैदा करने में सफल हो गए हैं, परन्तु हम अभी तक सही नहीं जान पाये कि उपयोगी ऊर्जा कैसे प्राप्त की जा सकती है। यह बहुत ही कठिन कार्य और इस पर काफी काम किया जा रहा है। यदि हम सफल हो जाते हैं तो हमें विजलीधरों के लिये ईंधन की चिन्ता न रहेंगी, क्योंकि हाईड्रोजन तो पृथ्वी में आम पाये जाने वाले तत्वों में से हैं।

नाभिकों के भीतर इतनी विशाल ऊर्जाओं का उदगम कैसे होता है? वास्तव में इसे हम नहीं जानते। हम इतना ही जानते हैं कि प्रोटॉन और न्यूट्रॉन एक-दूसरे को प्रबलता से आकर्षित करते हैं। एक न्यूट्रॉन को नाभिक से निकालने के लिये लगभग 100 पौँड वल की जरूरत पढ़ती है। हम यह भी जानते हैं कि ये वल मेरोनों-इलेक्ट्रॉनों और प्रोटॉन के मध्यवर्ती वजन वाले कणों-के अस्तित्व से सम्बद्ध हैं। ये कण नाभिकीय कणों में टक्करों के दौरान कभी-कभी पैदा हो जाते हैं। इनका अध्ययन करने के लिये भौतिकविदों में स्क्रिप्टॉन नाम की बड़ी मशीने बनायी हैं। इस अध्ययन से हम तेज गति, थोड़ी आयु वाले कणों के नये विश्व में प्रविष्ट हुए हैं। इन कणों के आपसी तथा हमारे दैनिक विश्व से सम्बन्धों को अभी हमने समझना ही शुरू किया है। (आधुनिक परमाणु भौतिकी ओटो, आर, फ्रिश)

विखण्डन :-

अखंड वर्ष पहले जब विश्व के तत्व-शायद विस्फोट करते हुए किसी तारे के केन्द्र में-अस्तित्व में आये होंगे तो अलग-अलग किरण के बहु से नाभिकों का सृजन हुआ होगा। इनमें से कई स्थायी थे और उनका अस्तित्व बना रहा। इन्हीं नाभिकों से हमारा संसार बना। यूरेनियम और थोरियम जैसे कुछ तत्वों की अर्ध आयु अखंड वर्ष से भी अधिक थी, परिणाम-स्वरूप उनका अब भी अस्तित्व बना हुआ है। उनके साथ ही थोड़ा समय अस्तित्व में रहने वाले तत्व (रेडियम, पोलोनियम इत्यादि) भी हमें उपलब्ध हैं। यूरेनियम थोरियम जैसे तत्वों के क्षय होने से थोड़ी आयु वाले ये तत्व निरन्तर पैदा होते रहते हैं, परन्तु अधिकांश मूल नाभिक अस्थायी थे और मिनटों, दिनों अथवा शताब्दियों में गायब हो जाते थे।

जुलियट क्युरिज की खोज ने इसी लुप्त विघटनाभिक समरथानिकों के विश्व का द्वार खोला था। परन्तु यह तो केवल पिछला द्वार था। सामने के द्वार का पता एनरिको फर्मी ने लगाया। उसे यह सुझा कि भारी तत्वों के चारों ओर के सुदृढ़ विद्युतीय अवरोध को भेदने के लिये चाड़विक के न्यूट्रॉनों को गोलियों के रूप में इस्तेमाल क्यों न किया जाय? आवेश रहित होने के कारण न्यूट्रॉन अवरोध, की उपेक्षा करेंगे। और जब न्यूट्रॉन किसी नाभिक में घुसेगा तो अवश्य ही उस तत्व को नयी विघटनाभिक जाति में रूपान्तरित कर देगा।

फर्मी सैद्धान्तिक भौतिकविद् के रूप में पहले ही विख्यात था। यह विचार सूझने पर उसने प्रयोगकर्ता बनने का निर्णय किया। रोम स्थित अपनी प्रयोग शाला में कुछ युवक सहायकों के साथ वह इस काम में जुट गया। उन्हें सफलता जल्दी ही मिल गई और वह थी भी चकित कर देने वाली। शीघ्र ही इटालियन पढ़ सकने वाले भौतिक विदों की माँग बढ़ गई। उनका काम अपने उत्सुक साथियों के लिए "रिकेरका साईटिफिका" के ताजे से ताजे समाचार का अनुवाद करना होता था। इस पत्रिका में फर्मी और उसके सहयोगी अपने परिणाम प्रकाशित करते थे। कुछ मास के भीतर ही उन्होंने नये रेडियमआईसोटोपों का खजाना पैदा कर दिया। जिस तत्व पर भी उन्होंने न्यूट्रॉनों की बौछार की उसके एक या अधिक विघटनाभिक समरस्थानिक (Radio isotope) बने। उन्होंने अनेक हैरतंगेज घटनाएँ खोजी। मिसाल् के तौर पर उन्होंने पता लगाया कि पानी में से गुजार कर न्यूट्रॉनों की गति धीमी की जा सकती है और इससे गोलियों के रूप में उनका प्रभाव कम होने की बजाय हजारों गुना बढ़ जाता है। रेडियम की खोज के बाद से इतनी छोटी अवधि में और ऐसे मामूली औजारों से इतनी अधिक खोज नहीं की गई थी।

क्या इससे परमाणु शक्ति की प्राप्ति की सम्भावना बढ़ गई? प्रत्यक्ष रूप से तो नहीं। सच है कि लगभग प्रत्येक न्यूट्रॉन निशाने पर बैठता और तब प्रायः अपने से कई गुना अधिक ऊर्जा मुक्त करता, परन्तु एक न्यूट्रॉन बनाने के लिए अभी तक कई हजार आवेश युक्त कणों को जाया करना पड़ता था। इसलिये 1937 तक भी लार्ड रदर फोर्ड जैसे दूरदृष्टि वाले व्यक्ति का यही कहना था कि भविष्य में कभी भी नाभिकीय ऊर्जा के बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किये जाने की सम्भावना बहुत कम है।

बड़ा धूमावदार रास्ता पार करने के बाद ही विकास की वह स्थिति पहुँची जिससे नाभिकीय विखण्डन की खोज हो सकी।

यूरेनियम से बाद के विल्कुल नये और प्रकृति में न पाये जाने वाले रासायनिक तत्वों के निर्माण का विचार फर्मी की कल्पना को प्रज्ञवलित किये हुए था। उसके प्रयास सफल प्रतीत होने लगे। यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों की बौछार करने पर उसे ज्ञात हुआ कि ऐसे अनेक विघटनाभिक पदार्थ पैदा किये जा सकते हैं जिनके रासायनिक गुण सभी निकटवर्ती तत्वों के अलग होते हैं। वर्लिन और पेरिस में यह काम आगे चलाया गया तो अधिकधिक संख्या में विघटनाभिक पदार्थ मिलते गए। बिना उचित प्रमाण के ही इन तत्वों को यूरेनियम से आगे के तत्व मान लिया गया था। इनकी संख्या और जटिल आचरण विल्कुल अप्रत्याशित तथा किंकर्तव्यविमूढ़ बना देने वाला था।

लिजे माइट्नर ने जब मुझसे इसका जिक्र किया तो पहले तो मैं उसकी बात सुनने को ही तैयार न हुआ। बेरियम के नाभिक का वजन यूरेनियम के नाभिक के वजन से करीबन

आधा होता है, मुझे यह समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे एक न्यूट्रॉन के संघटन से यूरेनियम नाभिक का आधा भाग अलग हो सकता है। यूरेनियम नाभिक खिंचते-खिंचते बीच में से पतले होकर अंत में दो भागों में बंट जाते थे। पहले तो हमें ख्याल आया कि यूरेनियम नाभिक इतना मजबूत है कि ऐसा होना सम्भव नहीं, परन्तु इसके प्रोट्रानों के आपसी विद्युतीय प्रतिकर्षण से अवश्य नाभिक विघटन की प्रवृत्ति पैदा होनी चाहिये थी। थोड़ी गणना के पश्चात् हमें विश्वास हो गया कि ऐसे भारी नाभिक में बलों का अत्यन्त नाजुक संतुलन होगा। इसलिये संतुलन बिगड़ने के लिये शायद एक न्यूट्रॉन का संघटन ही काफी हो। बीच में पतला होने के बाद विभाजन होना-वैसा ही तरिका है जिससे सजीव सेल विभजित होते हैं। जीवविज्ञानशरक्ती (biologist) इसे विखण्डन कहते हैं। अतएव जब हॉन और रस्ट्रास के परिणामों पर लिजे माइट्नर और मैने अपनी व्याख्या प्रकाशित की तो हमने "नाभिकीय-विखण्डन" शब्द इस्तेमाल किया।

नाभिकीय विखण्डन से परमाणु ऊर्जा की उत्पत्ति :-

परमाणु ऊर्जा परमाणु के अंदर से उसकी सबसे अंदरूनी घनी कोर अथवा नाभिक में से (तथा विशेष रूप से यूरेनियम जैसे कुछ भारी तत्वों के नाभिकों में से) आती है। यूरेनियम नाभिक में 12 प्रोट्रॉन होते हैं। उनमें विद्युतीय आवेश होता है। अतएव वे एक-दुसरे को प्रतिकर्षित करते हैं। ये प्रोट्रॉन अलग-अलग हो जाते यदि नाभिक में 140 के लगभग न्यूट्रॉन न होते। इन न्यूट्रॉनों में विद्युतीय आवेश नहीं होता तथा ये नाभिकीय बलों द्वारा नाभिक को संग्रहित रखते हैं। आकर्षण के ये नाभिकीय बल तथा विद्युतीय प्रतिकर्षण बल बड़े नाजुक तरीके से संतुलित रहते हैं। इन बलों में थोड़ी-सी भी गड़बड़ नाभिक अस्थिर बना सकती है। संतुलन बिगड़ने पर नाभिक खिचकर बीच में से पतला होकर दो भागों में खंडित हो जाता है। ये दोनों खंड बड़ी तेजी से अलग हो जाते हैं। इस प्रक्रिया को नाभिकीय विखण्डन कहते हैं। ये खंड चारों ओर के पदार्थ में पैदा धर्षण के कारण तुरन्त रुक जाते हैं और इनकी ऊर्जा उष्मा में बदल जाती है। परमाणु शक्ति पैदा करने के लिए इसी उष्मा का इस्तेमाल किया जाता है।

बड़ी बात तो यह है कि विखण्डन प्रक्रिया में शृंखला अभिक्रिया पैदा करने की सम्भावना होती है। आम तौर पर कुछ न्यूट्रॉन अलग हो जाते हैं। और ये न्यूट्रॉन अन्य यूरेनियम नाभिकों में टक्कराकर और अधिक विखण्डन कर सकते हैं तथा यह क्रम इसी तरह चलता रह सकता है। यदि शृंखला अभिक्रिया निर्वाध चलती रहे तो शायद परमाणु विस्फोट हो जाय।

यहाँ परमाणु वर्मों के बारे में नहीं वरन् नियंत्रित शृंखला अभिक्रिया के बारे में विचार किया जाएगा। इन दोनों में वैसा ही अन्तर है जेसा शुरू-शुरू में आस्ट्रेलिया में खगोश लाये

जाने पर वहाँ उनकी संख्या की निर्बाध वृद्धि तथा जन्म और मृत्यु दर बराबर होने के कारण रहने वाली जनसंख्या की स्थिरता में था। यूरेनियम से नियन्त्रित शृंखला अभिक्रिया पैदा करने के लिए हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि जितने न्यूट्रॉन पैदा हो उतने ही नष्ट हो जाएँ।

वास्तव में शृंखला अभिक्रिया पैदा करना इतना सरल नहीं है। प्राकृतिक यूरेनियम दो समरस्थानिकों का मिश्रण है। अर्थात् इसमें दो प्रकार के यूरेनियम परमाणु होते हैं, जिन में प्रोटानों की संख्या तो बराबर होती है परन्तु न्यूट्रॉनों की संख्या में अन्तर होता है। हल्के समरस्थानिक यूरेनिम 235 (यू-235) में 92 प्रोटॉन और 143 न्यूट्रॉन होते हैं। कुल मिलाकर इसके 235 नाभिक्रिया निपंड (block) बनते हैं। इन निपिण्डों को न्यूक्लिआन्स (nucleons) कहा जाता है। यू-235 इतना संवेदनशील होता है कि न्यूट्रॉन निगलने के बाद इसका विखण्डन अवश्य होता है। परन्तु यूरेनियम के 140 परमाणुओं में से एक ही यू-235 परमाणु होता है। शेष सभी यू-238 परमाणु होते हैं। इनमें 143 के बजाय 146 न्यूट्रॉन होते हैं। यू-238 अधिक स्थायी है और आम तौर पर विना विखण्डित हुए न्यूट्रॉन पचा जाता है। इसलिये आम यूरेनियम में न्यूट्रॉनों की संख्या कभी भी नहीं बढ़ सकती। क्योंकि यू-235 के विखण्डन से मुक्त होने वाले न्यूट्रॉन यू-238 द्वारा सोख लिये जाते हैं। शृंखला अभिक्रिया के लिए किसी और तरकीब की जरूरत पड़ती है। केवल यू-235 ही असली विखण्डनीय द्रव्य है अर्थात् न्यूट्रॉनों के प्रभाव में इसका तुरन्त विखण्डन हो जाता है। यू-235 की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध यू-238 बहुत शीघ्रता से न्यूट्रॉन निगल लेता है। परन्तु कभी-कभी ही इसके किसी एक नाभिक का विखण्डन होता है। शक्ति उत्पादन के लिए इस मिश्रण का उपयोग करना, घटिया किरम के कोयले का काफी मात्रा में रेत से मिलाकर जलाने के समान होगा।

कोयले को रेत से अलग करना सरल है, परन्तु यू-235 के परमाणुओं को यू-238 के परमाणुओं से अलग करना कठिन कार्य है। रासायनिक तरीके व्यर्थ हैं, क्योंकि दोनों ही समरस्थानिकों के रासायनिक गुण एक समान होते हैं। परन्तु यह कार्य भौतिक प्रणाली से सम्भव है। मिसाल के तौर पर यदि किसी गैरीय यूरेनियम यौगिक को छिद्रोंवाली झिल्ली में से पम्प किया जाय तो हल्के यू-235 परमाणु कुछ अधिक तेजी से झिल्ली पार करते हैं। गैस को हजारों झिल्लीयों में से पम्प करने के बाद हमें संवर्धित (enriched), यूरेनियम प्राप्त होता है जिसमें प्राकृतिक यूरेनियम की अपेक्षा कई गुण अधिक यू-235 होता है। (आधुनिक परमाणु भौतिकी, ओटो. आर. फिश)

डार्क मैटर

आपको यह जानकार शायद हैरत होगी कि ब्रह्मांड का अधिकांश पदार्थ अदृश्य है। विभिन्न ग्रहों, तारों या आकाश-गंगाओं के रूप में हम जिस दृश्य पदार्थ को देखते हैं

उससे करोड़ों-अरबों गुना अधिक मात्रा में अदृश्य पदार्थ या डार्क मैटर ब्रह्मांड में मौजूद है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि ब्रह्मांड का निर्माण ही अदृश्य पदार्थ यानि डार्क मैटर से हुआ है। यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया के अंतरिक्ष विज्ञानी बजिनीया ट्रिवल कहते हैं हम 25 वर्ष से हम डार्क मैटर के रहस्य के गहन शोध में जुटे हैं और अब तक सही-सही नहीं जानते हैं कि वास्तविकता में यह चीज़ है क्या? नासा की जेट प्रोप्लशन लैब के अंतरिक्ष विज्ञानी चाल्स लारेंस के अनुसार आकाश-गंगाएं जिस गति से धूर्घन कर रही है उस धूर्घन के बल के कारण उन्हें अब तक छिन्न-भिन्न हो जाना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं होता, क्योंकि आकाश-गंगाओं के करोड़ों ग्रहों के बीच के खाली स्थान को डार्क मैटर ने भर रखा है और सभी ग्रह इसी डार्क मैटर द्वारा एक-दूसरे से बंधे हुए अपनी जगह पर धूर्घन करते रहते हैं। अंतरिक्ष विज्ञानियों ने इस डार्क मैटर को भिन्न वर्गों में विभाजित कर रखा है -

(1) माचो :- अंतरिक्ष विज्ञानियों का मानना है कि ब्रह्मांड के धुंधले न्यूट्रॉन सितारों या ड्वार्क स्टार्स, ब्राउन ड्वार्क नष्ट हो चुके सितारों या फिर विंग-वैंग के समय से ही मौजूद ब्लैक होल्स के रूप में मैसिव कॉम्पैक्ट हालों ओब्जेक्ट्स (माचो) के विशाल बादल ब्रह्मांड में मौजूद हैं।

(2) न्यूट्रिनोज :- न्यूट्रिनोज परमाणु के अंदर पाए जाने वाले क्वार्क जैसे सवर्टेमिक पार्टिकिल्स हैं। न्यूट्रिनोज न्यूक्लियर रिएक्टरों के साथ ही हमारे सौरमंडल के सूर्य और ब्रह्मांड में सूर्य जैसे अरबों सितारों द्वारा उत्पन्न होते हैं। एक खास बात कास्मिक न्यूट्रिनोज की खोज के लिए अमेरिका की यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिल्वेनिया के रेमंड डेविस और जापान की यूनिवर्सिटी ऑफ टोक्यो के मासातोषी कोशिवा के संयुक्त रूप से वर्ष 2002 के भौतिकी नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। न्यूट्रिनोज अन्य प्रकार के पदार्थ से बहुत कम सम्पर्क करते हैं। न्यूट्रिनोज के बारे में सबसे हैरत अंगेज तथ्य यह है कि भौतिक शास्त्रियों के अनुसार प्रत्येक सेंकड़ अरबों न्यूट्रिनोज की धारा एं हमें नुकसान पहुँचाए वगैर हमारे शरीर के आरपार प्रवाहित होती रहती है। साइंटिस्ट इस कोशिश में है कि यदि यह सावित हो जाता है कि न्यूट्रिनोज का सूक्ष्म भार या द्रव्यमान भी होता है तो डार्क मैटर का बड़ा हिस्सा न्यूट्रिनोज ही होंगे।

(3) थ्योरेटिकल पार्टिकिल्स :- कुछ भौतिक शास्त्रियों का मानना है कि कुछ ऐसे थ्योरेटिकल पार्टिकिल्स या सैद्धांतिक कणों का अस्तित्व मौजूद है जिनमें सूक्ष्म द्रव्यमान होने के बावजूद जिन्हें पहचानना सम्भव नहीं है। भौतिक शास्त्री इन पार्टिकिल्स, को सुपरसीमिट्रिक पार्टिकिल्स, फोटिनोज न्यूट्रेजिनोज या एक्सिनोज जैसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। साइंटिस्टों ने इन पार्टिकिल्स को वीकली इटेरेक्टिंग मैसिव पार्टिकिल्स

(डब्यूआइएमपी) की श्रेणी में रखा है। अंतरिक्ष विज्ञानियों का मानना है कि इन तीनों वर्गों के पार्टिकिल्स ही ब्रह्मांड के डार्क मैटर का निर्माण करते हैं।

हाल ही में साइंटिस्टों ने नासा की चंद्र एक्स-रे आब्जरवेटरी की मदद से आकाश गंगाओं में मौजूद डार्क मैटर की पहचान के लिए विस्तृत छानबीन की। छानबीन के बाद वे इस नतीजे पर पहुँचे की ब्रह्मांड का 80 प्रतिशत पदार्थ डार्क मैटर या अदृश्य पदार्थ है। चंद्र एक्स-रे आब्जरवेटरी द्वारा साइंटिस्टों ने पृथ्वी से करीब एक अरब प्रकाश वर्ष दूर स्थित एबेत 2029 नामक आकाश गंगाओं के झुंड की जांच की यह झुंड या बादलनुमा संरचना दरसल गर्म गैस और डार्क मैटर है जो अपने आप में हजारों आकाश गंगाओं को समेटे हुए हैं। एस्टोफिजिकल जर्नल में इस संबंध में प्रकाशित शोधपत्र के मुख्य लेखक यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया के एरोन लेविस कहते हैं कि इतनी दूर स्थित आकाश गंगाओं के इस झुंड के केन्द्र में भी हम डार्क मैटर की पहचान करने में सफल रहे, वाकई यह अविश्वसनीय है कि डार्क मैटर के संबंध में एक तथ्य बहुत महत्वपूर्ण है, कि डार्क मैटर पार्टिकिल्स आपस में तो संपर्क करते हैं और जुड़ते हैं लेकिन सामान्य पदार्थ से नहीं। डार्क मैटर पार्टिकिल्स सामान्य पदार्थ के पार्टिकिल्स से केवल गुरुत्वाकर्षण द्वारा ही संपर्क करते हैं। साइंटिस्टों के अनुसार ब्रह्मांड में मैटर और डार्क मैटर की मौजूदगी का अनुपात 10 और एक है। इसका सीधा अर्थ यह है कि यदि हम डार्क मैटर को देख सकते हैं तो हमें अपनी आकाश गंगा मिलकी वे अपने आकार से दर गुना अधिक बड़ी नजर आती है। वास्तव में ब्रह्मांड में मौजूद तारों आकाश-गंगाओं, ग्रहों, गैरों के घने बादलों और यहाँ तक कि धूल जैसी चीजों का वास्तविक आकार हम जो देखते हैं उससे कही अधिक बड़ा है। यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया की वर्जीनिया ट्रिवल कहती है डार्क मैटर के रहस्य से पर्दा उठाने के लिए अभी साइंटिस्टों को सैद्धान्तिक और प्रयोगिक दोनों स्तरों पर काफी काम करना है। उदाहरण के तौर पर हमें अत्यधिक उच्च ऊर्जा युक्त गामा किरणों और अत्यधिक ऊर्जा युक्त कार्सिक किरणों के परिक्षण और वेहतर तरिकों से करने हैं। ये दोनों ही किरणें तब उत्पन्न होती हैं जब मिलकी वे में डार्क मैटर पार्टिकिल्स सामान्य पदार्थ के परमाणु से टकराते हैं। डार्क मैटर के रहस्य से पर्दा उठाने का काम अंटार्कटिक समेत कई देशों में शुरू हो चुका है। न्यूमॉक्सिकों और अंटार्कटिक में भूमिगत प्रयोगशालाएं बनाई गई हैं। ट्रिवल कहती है कि आने वाले चार-पाँच वर्षों में हम डार्क मैटर की सही-सही व्याख्या दे सकेंगे। (संदीप निगम)

एंटी हाइड्रोजेन ऐटम

नई शताब्दी साइंस और तकनीक की अविश्वसनीय प्रगति का युग है। वैज्ञानिकों ने हाल ही में लैब में 'एंटी ऐटम' यानि प्रति अणु बनाकर, युगांतरकारी खोज की है। एंटी

मैटर या प्रति पदार्थ की थ्योरी और उसकी खोज काफी पुरानी बात है, लेकिन अब तक वैज्ञानिकों को एंटी ऐटम बनाने में सफलता नहीं मिली थी।

विश्व प्रसिद्ध साइंस जनरल 'नेचर' और 'न्यू साइंटिस्ट' के ताजा अंकों में प्रकाशित रिपोर्टों के अनुसार जेनेवा स्थित अंतर्राष्ट्रीय शोध केंद्र सीईआरएन के एंटीप्रोटॉन डिसेलेरेटर (एडी) संयंत्र पर काम कर रहे भौतिक शास्त्रियों की टीम ने कोल्ड एंटीहाइड्रोजेन के 50,000 ऐटम्स बनाकर विश्व को चौंका दिया है।

नेचर और न्यू साइंटिस्ट की रिपोर्टों के अनुसार, सीईआरएन की एडी फैसिलिटी पर विश्वभर के साइंटिस्टों की दो टीमें, 'एथीना' और 'एट्रेप' वीते तीन वर्षों से एंटी ऐटम बनाने की कोशिशों में जुटी थी। एथीना का नेतृत्व कर रहे थे डेनमार्क की यूनिवर्सिटी आफ आरहस के भौतिकशास्त्री ज्योफ्री हैमर्ट, जबकि एट्रेप की कमान हावर्ड यूनिवर्सिटी के भौतिकशास्त्री ज्योफ्री गेसाल्ड गेब्रिएल्से ने संभाल रखी थी। इन टीमों में इस बात की प्रतिस्पर्द्धा थी कि पहले कौन सफल होता है। भाग्य ने एथीना टीम का साथ दिया और भौतिकशास्त्री ज्योफ्री हैमर्ट नेतृत्व वाले दल ने मानवता के इतिहास में सबसे पहले हाइड्रोजेन के एंटी ऐटम बनाने में सफलता प्राप्त की। एथीना टीम ने एंटी बनाने और उसे पहचानने में कौन सी तकनीक प्रयोग की और एंटी ऐटम क्यों इतना महत्वपूर्ण है इसकी चर्चा करने से पहले यह जाने कि एंटी ऐटम और एंटी मैटर आखिर है क्या?

दरअसल एंटी मैटरों के योग से एंटी ऐटम बनता है। एंटी मैटर को हम शीशों के उदाहरण से समझ सकते हैं। शीशों के सामने खड़े होने पर हमें अपना प्रतिविम्ब नजर आता है जो हमारे भार, रंग और आकार में समान होता है। लेकिन यदि हम अपना वायां हाथ उठाए तो हमारे प्रतिविम्ब का दायां हाथ उठता है। एंटी मैटर भी एक तरह से मैटर का ही प्रतिविम्ब है। इनका भार, रंग और आकार समान होता है, लेकिन चार्ज और स्पिन की दिशा अलग-अलग होती है। उदाहरण के तौर पर इलेक्ट्रॉन एक मैटर है जबकि पॉजिट्रान एंटी मैटर। इलेक्ट्रॉन और पॉजिट्रान का भार और आकार समान होता है, लेकिन इलेक्ट्रॉन निगेटिव चार्ज और पॉजिट्रान पॉजिटिव चार्ज का होता है और इनके स्पिन की दिशा विपरीत होती है। एक खास बात, मैटर को हम देख सकते हैं लेकिन एंटी मैटर को देख नहीं सकते। अब सवाल उठता है कि यह एंटी मैटर आता कहां से है? महान् विज्ञानी आइंस्टीन के प्रसिद्ध इनर्जी और मास रिलेशनशिप के अनुसार यदि अत्यधिक ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है तो मास यानि पदार्थ उत्पन्न होता है। एक इलेक्ट्रॉन को उत्पन्न करने के लिए हमें काफी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा यानि फोटॉन से क्रिया कर निगेटिव चार्ज इलेक्ट्रॉन अस्तित्व में आता है, लेकिन इस क्रिया से ऊर्जा संरक्षण के नियमों का सीधा उल्लंघन होता है। दोगुनी ऊर्जा के फोटॉन का प्रयोग करने पर प्रकृति ऊर्जा संरक्षण के

नियमों का पालन करती है और दो पार्टिकिल उत्पन्न होते हैं, निगेटिव चार्ज इलेक्ट्रान और पॉजिटिव चार्ज पॉजिट्रान। इलेक्ट्रान मैटर है जबकि पॉजिट्रान एंटी मैटर। ब्रह्मांड में मैटर और एंटीमैटर दोनों ही सृष्टि की शुरुआत से मौजूद है। मैटर और एंटी मैटर को दो अन्य उदाहरणों से भी समझा जा सकता है। पहला उदाहरण है सिक्का बनाने की क्रिया। इस क्रिया के दौरान मैटल शीट को पंच करके उससे गोल आकृति का सिक्का निकाल लिया जाता है। यहाँ मैटल शीट ऊर्जा का प्रतीक है जबकि सिक्का उससे निकाला मैटर यानि, पदार्थ और मैटल शीट पर छेद एंटीमैटर का प्रतीक है। दूसरा उदाहरण है टाइम ट्रेवल का। भौतिक रूप से एंटी मैटर को वर्तमान के सापेक्ष मैटर की भूतकाल में यात्रा के तौर पर देखा जा सकता है। यानि मैटर हमेशा समय के साथ आगे बढ़ता है जबकि एंटीमैटर समय में पीछे जाता है। यह बेहद आश्चर्यजनक और लंबे शोध का विषय है लेकिन इस टाइम ट्रेवल से भौतिकी के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं होता। एंटीमैटर की थ्योरी 1905 में स्पेस और टाइम के बीच आपसी संबंध पर आइन्स्टीन की स्पेशल थ्योरी आफ रिलेटीविटी और इनर्जी और मास के संबंध वाले प्रसिद्ध समीकरण के साथ ही अस्तित्व में आई। 1920 के दौरान इर्विन श्रूडिंगर ने ऊर्जा को अणु के साथ जोड़ते हुए अपनी थ्योरी क्वाटम फिजिक्स दी। इसके बाद 1928 में पाल डाइरेक्ने अपने समीकरणों से रिलेटीविटी और क्वाटम फिजिक्स को जोड़ दिया। डाइरेक्ने के समीकरणों के नतीजों ने सावित किया कि यदि पॉजिटिव चार्ज ऊर्जा है, तो निगेटिव चार्ज ऊर्जा भी वहीं मौजूद होगी। इस तरह मैटर और एंटी मैटर की थ्योरी प्रकाश में आई।

मैटर और एंटी मैटर की थ्योरी के अनुसार यदि ये दोनों एक दूसरे के संपर्क में आएं तो एक दूसरे से जुड़े जाते हैं और इससे ऊर्जा उत्पन्न होती है। पॉजिट्रॉन यानि एंटी इलेक्ट्रान की तरह एंटी प्रोटान और एंटी न्यूट्रान की खोज की जा चुकी है लेकिन वैज्ञानिकों को अब तक एंटी एंटम बनाने में सफलता नहीं मिली थी। सीईआरएन रिसर्च सेंटर में अपने एक्सपरिमेंट के दौरान एथिना टीम के साइंटिस्टों ने पेनिग ट्रेप नाम के एक मैग्नेटिक व इलेक्ट्रोकल ट्रेप में एब्सोल्यूट जीरों से कुछ छिपी अधिक के तापमान में एंटीप्रोटान और एंटीइलेक्ट्रान (पॉजिट्रान) जैसे एंटी मैटरों को आपस में मिलाया। इस ट्रेप के चारों ओर लगे डिक्टेक्टरों ने कुछ ही देर में आपस में जुड़ते एंटी मैटर पार्टिकिलों को पकड़ना शुरू कर दिया। इनमें से कुछ ट्रेप के बाहर आने में सफल हो गए। एथिना टीम का नेतृत्व कर रहे ज्योफ्री हैर्स्ट कहते हैं कि केवल न्यूट्रल पार्टिकिल ही इलेक्ट्रो मैग्नेटिक ट्रेप से बाहर आने में सफल हो सकते हैं। ऐटम न्यूट्रल होते हैं, इसलिए ट्रेप से बाहर आए हुए से न्यूट्रल पार्टिकिल ही एंटीहाइड्रोजन ऐटम हैं। भौतिकशास्त्रियों की टीम एथिना के प्रवक्ता रॉल्फ लाङ्डुआ का कहना है कि हमारी इस खोज से ब्रह्मांड के नए रहस्य उजागर होंगे और पता

चलेगा कि प्रकृति ने एंटी मैटर की बजाये मैटर को ही क्यों प्रमुखता दी।

वर्तमान में एंटी मैटर का प्रयोग मेडिकल में मानव मरिट्यक व अन्य अंगों की कार्यप्रणाली के अध्ययन के लिए पीईटी स्कैन में और साइंटिफिक रिसर्च में किया जा रहा है। कॉर्सोलॉजी में एंटी मैटरों का व्यापक महत्व है। इनकी मदद से हम कुछ अवूझ प्रश्नों जैसे ब्रह्मांड का भूतकाल क्या था और भविष्य क्या होगा की व्याख्या कर सकते हैं। एंटीमैटर बनाने की क्रिया और उसे स्टोर करने की विधि अभी इतनी एडवांस नहीं है कि उसका व्यावसायिक इस्तेमाल किया जा सके। वर्तमान में यदि आप एक वर्ष के दौरान विश्व भर में बनाए गए सभी एंटीमैटरों का संग्रह करें तो भी वह एक ग्राम से भी कम निकलेगा। एंटीमैटर का भविष्य में सबसे ज्यादा इस्तेमाल सोनिक रेप्रेसक्राप्ट और रॉकेटों में होगा। उदाहरण के तौर पर एंटीमैटर फ्यूलवाला रॉकेट मात्र एक ग्राम एंटीहाइड्रोजन ऐटम की मदद से मंगल ग्रह जाकर मात्र तीन महीनों की अवधि में पृथ्वी पर लौट आएगा। इस नई टेक्नॉलॉजी से न केवल रेप्रेस ट्रैवल ही आसान और सरता हो जाएगा बल्कि दुनिया और मानवता का परिदृश्य ही बदल जायेगा। इस संबंध में नासा और विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध जारी है। (जागरण जोश)

‘एंटीमैटर’ तथा विश्व के रहस्य

वैज्ञानिकों ने दुनिया की पहली एंटीमैटर फेक्टरी के निर्माण की तैयारियाँ आरंभ कर दी हैं। कुछ ही महीनों के अंदर वे एंटी हाइड्रोजन (विलोम-हाइड्रोजन) के परमाणुओं का उत्पादन शुरू कर देंगे। एंटी हाइड्रोजन के इन परमाणुओं को एब्सोल्यूट जीरो (माइनस 272 डिग्री) के आसपास ठंडा करके उन पर शक्तिशाली लेजर किरणों से प्रहार किया जाएगा। वैसे तो इस प्रयोग का उद्देश ब्रह्मांड की जटीलतम गुणित्यों को सुलझाना है। लेकिन यह परियोजना एक संपूर्ण और आदर्श ईंधन के विकास का रास्ता भी खोल सकती है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि मात्र 20 किलोग्राम एंटीमैटर से प्राप्त ऊर्जा से एक अंतरिक्षयान आकाशगंगा की यात्रा कर सकता है। कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि एंटीमैटर की इस्तेमाल बम बनाने के लिए किया जा सकता है। एंटीमैटर से बने बम सर्वाधिक शक्तिशाली परमाणु बम से कही ज्यादा विनाशकारी हो सकते हैं। अनुसंधानकर्ताओं के अनुसार फिलहाल इस तरह के बम बनाए जाने की कोई संभावना नहीं है। जिनिवा में हाई एंटर्जी पार्टिकल फिजिक्स रिचर्स सेंटर, ‘सर्न’ में एंटीमैटर प्रोजेक्ट के नेता, डॉ. रोल्फ लाङ्डुआ का कहना है कि हम जिस स्तर पर एंटीमैटर का उत्पादन करने जा रहे हैं, उस हिसाब से बम बनाने लायक या अंतरिक्ष यान को बनाने लायक एंटीमैटर का उत्पादन करने में अरबों वर्ष लग जायेंगे।

फिलहाल वैज्ञानिकों की ऐसी लंबी चौड़ी योजनाएँ नहीं हैं। उनका एकमात्र उद्देश एंटीमैटर एकत्र कर उसका अध्ययन करना है।

एंटीमैटर अथवा विलोम - पदार्थ 1928 से ही वैज्ञानिकों के लिए एक बड़ी पहली बना हुआ है। ब्रिटिश भौतिकविद् पॉल डिराक ने ऐसे परमाणुओं की मौजूदगी की परिकल्पना की थी जिनके मध्य में नेगेटिव चार्ज वाले एंटी प्रोटोन (विलोम प्रोटोन) हो और पोजिटिव चार्ज वाले एलेक्ट्रॉन (पोजिट्रॉन) उनकी परिकल्पना कर रहे हों। साधारण परमाणुओं में पोजिटिव चार्ज प्रोटोन होते हैं। जिनके चारों तरफ नेगेटिव चार्जवाले इलेक्ट्रॉन मंडराते रहते हैं। एंटी पार्टिकल अथवा विलोम कण बनाना बहुत ही दुष्कर कार्य है। इनका निर्माण सिर्फ शक्तिशाली पार्टिकल एक्सेलरेटर के भीतर ही किया जा सकता है। एंटीमैटर के परमाणु बनाने में सर्व के वैज्ञानिकों को पहली सफलता 1997 में ही मिल सकी, जब उन्होंने एंटी हाइड्रोजन (विलोम-हाइड्रोजन) के परमाणुओं का निर्माण किया। सिर्फ 9 परमाणु ही बनाया जा सके और वे भी एक सैंकेड के कुछ अरब वें हिस्से के अंदर ही नष्ट हो गए।

डा. लांदुआ का कहना है कि हम एंटीमैटर के परमाणुओं को धीमाकर उन्हें इकट्ठा करना चाहते हैं। जिससे कि हम उनका अध्ययन कर सकें। यही हमारी एंटीमैटर फैक्टरी का उद्देश्य है बहर हाल यह कोई आसान काम नहीं है।

लांदुआ ने बताया कि हम जो एंटीमैटर बनाने जा रहे हैं उसका निर्माण 10 करोड़ खरब डिग्री सेल्सियस तापमान पर होगा। यह सूर्य की सतह के तापमान से भी अधिक होगा इसके पश्चात् इस माइनस 272 डिग्री सेल्सियस पर ठंडा किया जाएगा। यह प्लूटो की ठंडी सतह से कही ज्यादा ठंडा है। एक बार एंटीमैटर का उत्पादन होने के बाद सबसे बड़ी समस्या यह सामने आयेगी कि इसे कैसे संभाला जाए। सामान्यतया पदार्थ या मैटर का परमाणु और विरोधी पदार्थ का परमाणु साथ-साथ नहीं रखे जा सकते क्योंकि वे टकरा कर एक दूसरे को नष्ट कर देंगे। अतः वैज्ञानिक एंटीमैटर के परमाणुओं को हिफाजत से रखने के लिए विद्युत् चुंबकीय क्षेत्रों का इस्तेमाल करेंगे। वैज्ञानिकों को एक घंटे के अंदर 2000 एंटी मैटर परमाणुओं के उत्पादन की उम्मीद है।

सैद्धांतिक तौर पर मैटर और एंटीमैटर में कोई अंतर नहीं होना चाहिए, सिवाय इस तथ्य के कि इनके परमाणुओं के विद्युत् गुण एक-दूसरे के विपरीत होते हैं। अन्य सभी मामलों में यहाँ कि आयतन (वॉल्युम) में भी मैटर और एंटी मैटर के परमाणु एक जैसे होने चाहिए। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि ब्रह्मांड में जितना मैटर है उतना ही एंटीमैटर भी होना चाहिए। एंटीमैटर की आकाशगंगाएं भी होनी चाहिए जहाँ एंटीमैटर की दुनिया में एंटीमैटर के लोग एंटीमैटर के घरों में ही रह रहे हों।

बहर हाल एंटीमैटर जहाँ कहीं भी हो वैज्ञानिक उसे खोज पाने में असमर्थ है। संभवतः कुछ कारणों से हमारा ब्रह्मांड सिर्फ सामान्य मैटर से ही बना हुआ है हालांकि थ्योरी यह कहती है कि ब्रह्मांड के सृजन की प्रक्रिया 'विग वैंग' के दौरान एंटी मैटर का निर्माण समान मात्रा में हुआ होगा। हो सकता है कि विग वैंग के दौरान कुछ फालतू मैटर उत्पन्न हुआ हो। सारा एंटीमैटर मैटर के संपर्क में आने के बाद नष्ट हो गया और सामान्य मैटर का बचायु चा हिस्सा हमारे ब्रह्मांड में रह गया। यह कोई नहीं जानता कि मैटर ने एंटीमैटर को कैसे परास्त किया। यह एक बहुत बड़ी पहेली है। वैज्ञानिक शायद एक दिन इस गुन्थी को सुलझा कर यह खुलासा कर पाएंगे कि दुनिया में जनों का अस्तित्व क्यों है, विरोधी-जनों का क्यों नहीं। (मुकुल व्यास)

समीक्षा :- भले वैज्ञानिकों ने विरोधी जनों का शोध नहीं कर पाए है, परन्तु इस ब्रह्मांड में अनन्तानन्त विरोधी जनों का सद्भाव है जिन्हें शुद्ध जीव या सिद्ध जीव या समर्त अशुद्धताओं (कमियों) कर्मों से रहीत जीव कहते हैं। वे सिद्ध जीव अनन्त ज्ञान अनन्त वीर्य, अनन्त सुख, अनन्त दर्शन आदि अनन्त गुणों से युक्त एवं मानव में निहीत संपूर्ण विकृतियों/कमियों से रहीत हैं। यहाँ तक कि सिद्ध जीव शरीर इन्द्रियाँ, मन, तथा जन्म-मरण, बुद्धापा आदि से भी रहित होते हैं।

पेन्टाक्वार्क

वैज्ञानिकों ने तीस साल की खोज के बाद आखिरकार पांच क्वार्कवाले कण 'पेन्टाक्वार्क' के अस्तित्व का पता लगा लिया है। इस खोज से रुसी भौतिक-विज्ञानियों द्वारा करीब छह साल पहले की गई 'पेन्टाक्वार्क' की सैद्धान्तिक भविष्यावाणी की पुष्टि हुई है। क्वार्क किसी भी मौलिक कण का आधारभूत घटक है। अधिकांश कण या तो मेसॉन होते हैं, जिनमें एक क्वार्क और एक एन्टीक्वार्क होता है या वेरियोन्स होते हैं, जिसमें तीन क्वार्क या तीन एन्टीक्वार्क होते हैं। अब जापान, रुस और अमेरीका के परमाणु वैज्ञानिकों ने ऐसे कण का पता लगाया है जिसमें दो 'अप' क्वार्क दो 'डाउन' क्वार्क और एक एन्टीक्वार्क हैं।

प्रकाश को बदला जा सकेगा तरल पदार्थ में - क्या प्रकाश को तरल पदार्थ में बदला जा सकता है, शायद नहीं, लेकिन रेपेन के वैज्ञानिकों के एक समूह ने कम्प्यूटर सिम्यूलेशन के जरिये यह करिश्मा करने का दावा किया है। ऑरेंस स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ विगो के वैज्ञानिक कम्प्यूटर पर लाइट पल्स का अध्ययन कर रहे थे। ये पल्स उच्च ऊर्जा वाले लेजर पुंज के कारण काफी धनी हो गई थी। उन्होंने देखा कि प्रकाश स्तंभ में भी पानी की तरह सर्फेस टैंशन है। जब उन्होंने पल्सों को दूसरी सतह पर डाला, तो ये छोटी-छोटी बूंदों में बदल गई। यह अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों में से एक हंवटों मिचनेल ने बताया कि

उनको विश्वास है कि वे अपनी इस खोज को प्रयोगशाला में भी सिद्ध कर सकेंगे। इसका उपयोग अगली पीढ़ी के कम्प्यूटरों में तथा जहां प्रकाश को तरल बूंदों का रूप देकर सूचनाओं का भंडारण आसानी व सुरक्षित तरीके से किया जा सकेगा।

शरीर एवं व्यक्तित्व का निर्माण जीन

दुनिया की अब तक की महत्वपूर्ण खोजों में जीन संरचना की खोज को भी माना गया है, जो जीन सिफ चिकित्सा जगत् में युगांतकारी परिवर्तन का कारण बनेगी बल्कि जीवन के बारे में रहस्य का उद्घाटन भी करेगी, जिसे प्रकृति ने अब तक गोपनीय बना रखा है। पृथ्वी पर जब से मानव जीवन शुरू हुआ है, तब से मानव अपने और अपने जीवन के रहस्यों के बारे में जानने के लिए उत्सुक रहा है। प्रकृति इतनी रहस्यपूर्ण है कि उसकी पूरी संरचना की थाह पाना संभव नहीं, उसी तरह मानव का जीवन भी एक अद्भुत रहस्य चक्र हैं, जिसमें होने वाले परिवर्तन हमेशा वैज्ञानिकों के सामने चुनौती बनते रहे हैं।

जीवन के रहस्य को जानने की अद्भुत सफलता ब्रिटेन के वैज्ञानिकों ने डॉ. फ्रांसिस कोलिस के नेतृत्व में मानव जीनोम परियोजना के अंतर्गत लंबी शोध और अनुसंधान के बाद हासिल की है।

जीवन का रहस्य खोलने के लिए वैज्ञानिकों ने डी.एन.ए. का निर्माण करने वाली ईकाइयों को क्रमबद्ध किया। डी.एन.ए. (डी ऑक्सीरिबो न्यूक्लिक एसिड) में ही लगभग 5 लाख जीन होते हैं, हालाँकि इनकी सही संख्या का अभी पता नहीं है। डी.एन.ए. कोश के भीतर जीवन की इवारत लिखी होगी। डी.एन.ए. में एडनाइड, थाइमीन, गुनाइन और सिस्टासाइन युग्म रूप में मौजूद होते हैं तथा इनको 'न्यूक्लियोटाइड' कहते हैं। यही जीवन संरचना का आधार है, लेकिन इन युग्मों के जुड़ने की प्रक्रिया बहुत कठिन होती है। वैज्ञानिकों ने इन्हीं युग्मों को क्रमबद्ध करने के बाद उनका अध्ययन किया और सफलता हासिल की, इन युग्मों का समूह एनिनो एसिड के निर्माण पर नियंत्रण रखता है और इन प्रोटीनों से ही कोशिका, हास्मोन और शरीर के अन्य तमाम अवयव बनते हैं।

मानव शरीर का निर्माण करने वाली सूक्ष्म कोशिकाओं, डी.एन.ए. और जीन की संख्या आश्चर्यजनक है:-

- मानव शरीर की सौ खरब कोशिकाओं में से हरेक में मौजूद डी.एन.ए. कोड को लिखने के लिए तीन अरब अक्षर लगते हैं।
- यदि मानव शरीर के सभी डी.एन.ए. को जोड़कर एक डोरी बनाई जाए तो उससे पृथ्वी और सूर्य की दूरी 600 बार मापी जा सकती है।
- समस्त जीन संरचना (जीनोम) की अगर फुलरकेप कागज पर टाइप किया जाए तो ऐसे कागजों का ढेर कुतुवमीनार से भी ज्यादा ऊँचा होगा।

- मनुष्य के डी.एन.ए. और चिंपांजी के डी.एन.ए. में 18 प्रतिशत समानता है।
- प्रत्येक व्यक्ति की जीन संरचना दूसरे व्यक्ति से अलग होती है, लेकिन जुड़वाँ बच्चों में समान जीन संरचना हो सकती है। किसी भी व्यक्ति में आधे जीन माता से और आधे पिता से आते हैं।

कोशिकाएँ अपने कार्य संचालन, मरम्मत, रक्षा और विभाजन के लिए जिन प्रोटीनों का इस्तेमाल करती हैं, वे जीन के निर्देश पर ही बनते हैं। जीन प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में क्रोमोसोम में होते हैं। किसी भी व्यक्ति में 22 क्रोमोसोम के अलावा दो अतिरिक्त क्रोमोसोम लिंग निर्धारण वाले होते हैं - एक्स और वाय। स्त्री में ऐसे दो एक्स क्रोमोसोम होते हैं जबकि पुरुष में एक एक्स क्रोमोसोम होता है और एक वाय।

एक बार किसी जीन विशेष का शरीर की खास गडबडी से संबंध स्थापित हो जाए तो फिर वैज्ञानिक इस जीन को संशोधित कर ठीक कर या बदलकर (या फिर इससे बनने वाले प्रोटीन को अलगकर, ठीक कर या बदलकर) शारीरिक गडबडी का इलाज कर सकते हैं।

जीन की पहचान कर लेने के बाद उनके द्वारा बनाए जाने वाले प्रोटीन की पहचान भी वैज्ञानिकों के लिए आसान हो जाएगी, जिससे यह मालूम किया जा सकेगा कि कौन-सा जीन विस प्रकार का प्रोटीन बनाती है और वह शरीर में क्या काम करता है। इसके दो सुखद परिणाम होंगे। एक-जीन में मौजूद खामी को दूर करना संभव होगा और दो-चिकित्सक ऐसी वीमारियों के लिए दवाइयाँ इजाद कर सकेंगे, जो अब तक लाइलाज हैं। (डॉ. इक्वाल मोदी)

अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों के एक दल ने आदमी के एक क्रोमोसोम की आनुवंशिक संरचना के रहस्य पर से पर्दा उठाया है। कहा जा रहा है कि इस खोज से जीवन के रहस्यों की समझ बहुत आसान हो जाएगी। मानव जेनोम अनुसंधान संस्थान के निर्देशक डॉ. फ्रांसिस कॉलिंस का कहना है कि आदमी के क्रोमोसोम के समुच्चे क्रम को देखना उसी तरह है जैसे कुहासे से निकलने वाले किसी जहाज को देखना। पहले अनुसंधान से मालूम हुआ था कि क्रोमोसोम-22 आदमी की प्रतिरक्षण प्रणाली, दिल के रोगों, मानसिक दुर्बलता, तथा कुछ प्रकार के कैंसर में महत्वपूर्ण रोल अदा करता है। एक वैज्ञानिक डॉ. ब्रूस रो का कहना है - 'अब हम समझा सकते हैं कि क्रोमोसोमों पर जीन कहां होते हैं। वे अपने आप को कैसे व्यक्त करते हैं, वे कैसे रोग पैदा करते हैं और कैसे क्रोमोसोम अपना विस्तार कर अगली पीढ़ियों तक जाते हैं।'

क्रोमोसोम आदमी के शरीर में गुणसूत्र होते हैं। क्रोमोसोम 22 का पता लगने के बाद आदमी के डीएनए में शेष क्रोमोसोमों के 22 जोड़ों पर आनुवांशिक संहिता का पता

लगाने के लिए अनुसंधान चल रहा है।

क्रोमोसोम की संहिता का पता लगाने के लिए अति आधुनिक जीन-क्रमांक स्वचालित मशीनों का प्रयोग किया गया, जो सप्ताह में सातों दिन 24 घंटे चलती है। क्रोमोसोम संबंधी खोज की घोषणा सबसे पहले कैब्रिज (इंग्लैंड) स्थित सेंगर केंद्र के वैज्ञानिकों ने की। यहां अनुसंधान के लिए 100 मशीनें लगी हैं, जिनकी सूचनाएं कंप्यूटरों पर दर्ज होती हैं, जहाँ वे इंटरनेट पर प्रसारित करने के लिए तैयार की जाती है।

यह खोज 2 दिसंबर के 'नेचर' में प्रकाशित हुई। कहा गया कि क्रोमोसोम 22 का डीएनए तीन करोड़ 35 लाख 'अक्षरों' या रासायनिक अवयवों का बना होता है। वैज्ञानिकों ने इन्हीं अवयवों के क्रम को डिसाइफर किया है। सह क्रम डीएनए की सबसे लंबी तथा लगातार रहने वाली कड़ी है, जिसे डिसाइफर करके जोड़ा गया है। आदमी की हर जीन रासायनिक निर्माण खंडों की वनी होती है जिसका प्रतिनिधित्व ए (ऐडेनीन) टी (थाईमीन), जी (गुआनीन) तथा री (सिटीसोन) अक्षर करते हैं। इन अक्षरों की संख्या तथा क्रम 'आधार' (वेस) कहलाते हैं और यही हमें बताते हैं कि हम क्या हैं, कैसे दिखते हैं और हमको क्या रोग होने का अंदेशा हो सकता है। हम कह सकते हैं कि क्रोमोसोम - 22 के अनुसंधान दल ने मानवीय अनुवंशिक निर्देश पुस्तिका के एक अध्याय का पता लगा लिया है। वैज्ञानिकों को आशा है कि इस अध्याय से और अधिक रहस्यों का पता चलेगा। वैज्ञानिक अब पहली बार किसी क्रोमोसोम के समूचे डीएनए को देख सकते हैं।

क्रोमोसोम की गतिविधियों से मालूम हो सकता है कि एक प्रकार का मानसिक विकार, जिसे डिजार्ज सिंड्रोम कहते हैं, क्यों होता है। यह भी पता चल सकता है कि समय के साथ-साथ किस प्रकार क्रोमोसोम-संरचना बदलती है। उल्लेखनीय है कि 22 वें क्रोमोसोम के चार करोड़ 70 लाख वेस सभी 23 क्रोमोसोमों में विद्यमान तीन अरब वेस में शामिल हैं।

ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट के वैज्ञानिकों ने हाल में एक अरब वेस की संहिता का रहस्योदघाटन किया था। सेंगर केंद्र को आशा है कि अगली मई तक वह शेष दो अरब वेस का पता लगा लेगा।

आज आदमी के सामने सबसे बड़ी गुंत्थी यह है कि एक ही रोग विभिन्न मरीजों में विभिन्न कारणों से क्यों होता है? वर्तमान अनुसंधान के पूरे परिणाम आने तक यह गुंत्थी भी सुलझ जाएगी। अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग आनुवंशिक भिन्नाताएं होती हैं, इसीलिए कुछ को जो दवा लगती है, वह अन्य को नहीं लगती। निकट भविष्य में आदमी इस उलझन से भी छुटकारा पा लेगा। (ह. अग्रवाल)

शरीर में जीन मशीन

न्यूयार्क विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने डी एन ए से एक 'जीन-मशीन' बनाई है। वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि इस जीन-मशीन के आधार पर ऐसे सूक्ष्मरोबोट बनाए जा सकते हैं, जो शरीर में प्रवेश करके बीमार कोशिकाओं की मरम्मत करेंगे। अपनी मर्जी से इधर-उधर धूम सकने वाले डी एन ए मौलिक्यूलों का निर्माण वैज्ञानिकों के लिए एक बहुत बड़ी सफलता है। वैज्ञानिकों को इस बात का पूरा भरोसा है कि इल मौलिक्यूलों के सहारे ऐसे रोबोट बनाए जा सकते हैं, जो शरीर में ठीक उसी तरह गश्त लगाएं, जिस तरह 'फैटास्टिक वॉर्ल्ज' नामक फिल्मों में दर्शाया गया था। (डी एन ए मौलिक्यूलों का लेकर एक रोबोटिक भुजा बनाई गई है। वैज्ञानिक दरअसल बहुत ही सूक्ष्म रासायनिक फैक्टरियों के लिए मशीनें बनाना चाहते हैं। फैक्टरियाँ इतनी छोटी होगी कि एक पिन के सिरे पर सैकड़ों फैक्टरियाँ समा सकती हैं। रोबोटिक भुजा ऐसी ही फैक्टरियों के लिए मशीनें बनाने का प्रयास है। आपके ये सब बातें ख्याली पुलाव लग रही होगी लेकिन वैज्ञानिक तो इससे भी दूर की जांच कर रहे हैं। उनका ख्याल है कि अतिसूक्ष्म रोबोटों की अधिक उन्नत किरणें शरीर को चौकसी करेगी, हमलावर वायरसों और बैक्टेरियाओं की तलाश कर उन्हें नष्ट कर देगी, रक्त धमनियों की सफाई करेगी तथा बुदापे की प्रक्रिया से नष्ट होने वाले टिशुओं की मरम्मत करेंगी। डी एन ए से बनी रोबोटिक भुजा धातु से बनी सबसे छोटी कांटेदारचक्रियाँ और पहियों से भी हजारों गुना छोटी हैं। इसे सिर्फ माइक्रोस्कोप से ही देखा जा सकता है। रोबोटिक भुजा का निर्माण न्यूयार्क विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने प्रोफेसर नेड्रियन सीमन के नेतृत्व में किया है। उन्होंने डी एन ए के लच्छों से यह रोबोटिक भुजा बनाई है। ध्यान रहे कि डी एन ए सभी जीव जंतुओं का एक ऐसा रासायनिक ब्लू प्रिंट है, जिसमें अपनी प्रतिलिपियाँ तैयार करने की अद्भुत क्षमता है। प्रो. सीमन ने बताया कि हमने सिंथेटिक डी एन ए के एक ऐसा मौलिक्यूलर मैकेनिकल सिस्टम बनाया है, जिसे नियंत्रित किया जा सकता है। मौलिक्यूल के स्तर पर निर्माण कार्यों के लिए अतिसूक्ष्म रोबोटों की आवश्यकता पड़ेगी। प्रो. सीमन को उम्मीद है कि उनकी टीम द्वारा विकसीत किए गए मौलिक्यूलर-मैकेनिकल सिस्टम से सूक्ष्म रोबोटों के निर्माण में मदद मिलेगी। यह संभवता पहला अवसर है। जब किसी ने जैविक मौलिक्यूलर से एक चलती फिरती संरचना तैयार की है।

वैज्ञानिकों का तात्कालिक लक्ष्य एक ऐसे सूक्ष्म रोबोट तैयार करना है, जो जटिल से जटिल पदार्थ बना सके। इन पदार्थों में जीन इंजीनियरों वाली हवाएं शामिल हैं, जो फिलहाल बैकटीरियाओं द्वारा निर्मित की जाती हैं।

मनुष्य की जैविक घड़ी - एक टाइम ऑफिस कुदरत ने आपके शरीर में भी दिया हुआ है। इसे आप चाहे तो शरीर की घड़ी कह सकते हैं। यह ऐसा महत्वपूर्ण अंग है जो आपके

शरीर का तापमान संतुलित रखता है, आपकी दिनचर्या पर अंकुश रखता है, समय के अनुसार सुलाने-जगाने का काम करता है और मौसम के मुताबिक शरीर को ढालता भी है।

वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया है कि यह घड़ी आपके दिमाग में कुछ गहराई में आपकी आंखों के विल्कुल पीछे लगी हुई है। हर व्यक्ति इस घड़ी का धनी है। वैज्ञानिकों ने इस को अपनी भाषा में 'सुप्रासिसमेटिक न्यूक्लियस' नाम दिया है और वे इसको न सिर्फ अलग कर सकते हैं वरन् इलेक्ट्रोड से जोड़ सकते हैं और उसकी लगातार होने वाली टिक-टिक को नियमित इलेक्ट्रॉनिक वीय के रूप में सुना भी सकते हैं, यह घड़ी आप के लिए इस कारण बहुत ज्यादा अहम है, क्योंकि यह आपको सावधान भी करती है जब आप वक्त या कायदे के खिलाफ कुछ करते हैं।

इस विषय में गहरा अध्ययन कर रहे शोधकर्ताओं की यही चेतावनी भी है। वे कहते कि अप्राकृतिक जीवनशैली अपनाने के कारण शरीर-घड़ी का समय आगे-पीछे हो रहा है। समुद्रपार की यात्राएँ, अलग-अलग पालियों में काम और देर रात तक पार्टियों में मशगूल रहने वाली अपनी शरीर-घड़ी की चेतावनी को अनसुनी कर देते हैं। इसके लिए वे कैफिन या दूसरी चीजों का इस्तेमाल करते रहते हैं और वह चेतावनी नहीं दे पाती अर्थात् आपको शरीर के हाल और समय के मुताबिक खाने या लेटने या सोने के लिए प्रेरित नहीं कर पाती है। करती भी है तो उसे नजर-अंदाज कर दिया जाता है।

सरे विश्वविद्यालय, ब्रिटेन में एन्डोक्राइनलांजी विषय की प्रोफेसर जो एरेंट का कहना है : हमको अपनी 24 घंटे की दिनचर्या के बारे में बहुत ज्यादा सावधान रहना चाहिए। उनके कहने का निष्कर्ष यह है कि अगर आप अपनी घड़ी के आलार्म की अनसुनी जारी रखेंगे तो अपने दिल को नुकसान पहुँचा सकते हैं। प्रो. एरेंट बताती है : पालियों में काम करने वाले लोगों में दिल की बीमारियों के ज्यादा मामले पाए गए। उनके खून के नमूनों में चर्बी का स्तर अधिक मिला, क्योंकि शरीर की पाचन प्रणाली वेवक्त वर्ही खाना ठीक से नहीं पचा सकती जो दिन में सही वक्त पर खाया जाता है। इसी तरह उनमें हाजमें और गैस की शिकायतें तथा पेट में अल्सर के मामले ज्यादा मिले। पालियों में काम करने वाले लोगों में दुर्घटना की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं और वे सामाजिक तथा पारिवारिक समस्याओं का शिकार भी ज्यादा बनते हैं।

यह तथ्य सामने आ जाने के बाद कि शरीर-घड़ी की अनदेखी या उसकी चेतावनी की अनसुनी करने से समर्याएँ बढ़ जाती हैं, वैज्ञानिक अब यह पता लगाने की कोशिश में जुटे हैं कि क्या आड़ी-तिरछी जीवनशैली के अनुसार शरीर-घड़ी को ढाला जा सकता है? इस शोध में अमेरिकी सेना में विशेष दिलचर्पी दिखाई है और इसके लिए एक अनुसंधान परियोजना को धन भी मुहैया कराया है। यह परियोजना नॉर्थ वर्स्टर्न विश्वविद्यालय की डॉ.

फिलिस जी की अगुवाई में चलाई जा रही है। शरीर-घड़ी की पेचीदा कार्यप्रणाली और वक्त के मुताबिक तालमेल रखने का सूक्ष्म तरीका जन्म जात होता है और इस तरह यह आपकी जैविक संरचना का ही हिस्सा होती है। फिलीस जी अपने शोध के जरिये कोशिश कर रही हैं कि इस घड़ी के संचालन के लिए जिम्मेदार डीएनए तंतु को अलग कर सकें। अभी तक इतनी सफलता तो मिल चुकी है कि जैविक घड़ी का हूवहू नमूना बना लिया गया है और उसके लिए एक चतुर जीन ढूँढ़ा वाकी है। इस खोजकी व्यापक और दूसामी उपयोगिता है। इसके फलस्वरूप आप जन्म के समय से ही अपने जैविक चक्र को समझाने में सफल हो जाएंगे। जिस तरह कारें अलग-अलग रफ्तार से चल सकती हैं, वैसे ही मनुष्यों का जैविक चक्र भी अलग-अलग होता है। यह मालूम किया जा सकता है कि आपका जैविक चक्र 'लंबा' है या 'छोटा' अर्थात् आप विनोदी व्यक्ति है या मूढ़। इसके जरिये यह भी पता तयार किया जा सकता कि दिन के किस वक्त पर कोई व्यक्त सबसे ज्यादा सजग और किस वक्त सुरक्षित रहता है। यहाँ तक कि इसकी मदद से आप यह भी तय कर पाएंगे कि इंटरव्यू देने के लिए कौन सा समय सबसे उपयुक्त रहेगा और किस समय आप कोई 'टेरस्ट' सबसे अच्छी तरह दे पाएंगे। यह मासिक धर्म के निर्धारण और गहरी नींद सोने का जरिया भी बन सकता है।

लेकिन जब तक डॉ. जी. उस नामालूम जीन का पता लगाएँ, तब तक वेतरतीव जीवनशैली वितानेवालों को किस तरह की सावधानियाँ बरतनी चाहिए?

शरीर-घड़ी आना समय निर्धारण रोशनी के आधार पर करती है। इसी से वह 24 घंटे - वर्स्तुतः उसका दैनिक चक्र 24 घंटे 20 मिनट होता है का चक्र बनाती है। (उल्लेखनीय है कि हमारी यह घड़ी रेटिना से विशेष रूप से संबंधित है और इसीलिए नेत्रहीन व्यक्तियों में दैनिक क्रियाशीलता हमारी तरह प्रकाश के अनुरूप संचालित नहीं है और उनमें नींद से जुड़ी समस्याएँ भी लगभग नहीं के बराबर पाई जाती हैं।) इसलिए वेवक्त काम करने के लिए शरीर को अनुकूल बनाने का सबसे अच्छा तरीका खुद को ज्यादा रोशनी में ले जाना हो सकता है। मिसाल के लिए, 'नासा' अपने अंतरिक्ष यात्रियों पर ऐसे मौकों पर तेज रोशनी डालता है।

शरीर-घड़ी और अपने आपको काम के लायक बनाए रखने का दूसरा तरीका मेलटोनिन का प्रयोग है। मेलटोनिन का मुख्य काम ही यह है कि वह शरीर को (अंधेरा होने की जानकारी) देता है। यह हारमोन जैसा स्राव पीनल ग्रंथि से निकलता है। यह शरीर के तापमान में कमी के अलावा नींद लाने का काम भी करता है।

यह अंधेरे का हारमोन है और उन सभी मनुष्यों या पशुओं के लिए महत्वपूर्ण है जिनको निद्राचक्र या प्रजनन चक्र के निर्धारण कि जरूरत होती है। (हर्ष देव)

वृक्ष की जैविक घड़ी :- पौधों में जीवन है, यह तथ्य वैज्ञानिकों ने बहुत पहले ही सिद्ध कर दिया था। लेकिन उनमें ऐसी कौनसी चीज है, जो उनके प्रकाश संश्लेषण और उपापचयी क्रियाओं के समय को नियंत्रित करती है, यह वैज्ञानिकों के लिए हमेशा जिज्ञासा का विषय रहा है। इजराइल और अमरीका के कृषि विभाग के वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि मनुष्यों और जानवरों की तरह पौधों में भी जैविक घड़ी मौजूद होती है। जिस तरह हमारे शरीर की जैविक घड़ी हमें बताती है कि हमें कब उठना है, ठीक उसी तरह पौधों में उपस्थित जैविक घड़ी उन्हें सूर्य के उगने का संकेत देती है। उनकी यह घड़ी हर सुबह एक नियत समय पर शुरू हो जाती है। यह पौधों के लिए एक अलार्म की तरह है, जो उन्हें सूर्य की रोशनी में प्रकाश संश्लेषण के लिए तैयार करता है।

'एकल्चर रिसर्च सर्विस लैब' विभाग के पादप शरीर क्रिया विज्ञान ऑटर के माटू बताते हैं कि पौधों में उपस्थित जैविक घड़ी एक एन्जाइम को नियंत्रित करती है। यह एन्जाइम एक प्रोटीन 'डी 1' को रूपान्तरित कर एक अन्य प्रोटीन में बदल देता है, जो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया का एक अत्यावश्यक तत्व है। इसी से पौधे सूर्य की रोशनी में भोजन बनाते हैं। यह रूपान्तरित प्रोटीन क्लोरोफ्लास्ट में पाया जाता है। वास्तव में क्लोरोफ्लास्ट पादप कोशिकाओं में उपस्थित एक विशेष संरचना होती है, जो कार्बोहाइड्रेट, वसा और प्रोटीन से बनी होती है। माटू का मानना है कि यह प्रोटीन पौधों की उपापचय दर को भी नियंत्रित करने में मदद करता है। इसी के कारण पौधे सूर्य की तीव्र रोशनी में भी रख्य को जीवित रख पाते हैं। उनका कहना है 'पौधे भाग नहीं सकते, उनकी जड़े उन्हें बाधकर रखती हैं' इसलिए उनका तन्त्र इस तरह व्यवस्थित होता है कि वे प्रतिकूल वातावरण में भी अपनी रक्षा कर सकते हैं। जैसे यदि पौधे को परावैग्नी विकिरणों की अधिकता में रखा जाए, तो उनमें फ्लेवोनॉइड्स के अणु पैदा हो जाते हैं। ये उनके लिए सनरक्तीन की तरह काम करते हैं।

जब सूरज डूब जाता है, यह जैविक घड़ी काम करना बंद कर देती है, लेकिन यदि रात के अंधेरे में पौधे को कृत्रिम रोशनी दी जाए तो घड़ी फिर से काम करना शुरू कर देती है। सच तो यह है कि पौधे वास्तव में कभी नहीं सोते।

चावल का जीनोम

वैज्ञानिकों ने मानव जीनोम पढ़ लिए जाने के बाद इस क्षेत्र में एक और उपलब्धि हासिल की है। अब उन्होंने चावल के जीनोम कोड का पता लगा लिया है। इस खोज से चावल की नई किरणों तैयार की जा सकेंगी तथा गेहूं और मक्का जैसी फसलों की पैदावार बढ़ाई जा सकेगी।

चीन के वीजिंग जेनेमिक्स इन्स्टीट्यूट और अमरीका के युनिवर्सिटी ऑफ

वाशिंगटन जीनोम सेंटर के वैज्ञानिकों ने चावल की 'इंडिका' प्रजाति के जीनोम कोड को पढ़ने में सफलता हासिल की। साथ ही स्विट्जरलैण्ड की सिंजेंटा कम्पनी के एक अन्य वैज्ञानिक दल ने जापान में पाए जाने वाली 'जापेनिका' प्रजाति का जीनोम कोड पढ़ा। यह शोध 'साइंस' पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। शोध से पता चला है कि चावल में मनुष्य के मुकाबले अधिक जीन्स होते हैं। चावल में पचास से साठ हजार जीन्स होते हैं जबकि मनुष्य में केवल तीस चालीस हजार। वैज्ञानिकों का मानना है कि चावल अपने जीन्स का बहुत कम प्रयोग करता है इसलिए उसमें इनकी संख्या मानव के मुकाबले अधिक है। इसके अलावा पौधे स्थिर रहते हैं और अपने बचाव के लिए रासायनिक रक्षा तन्त्र विकसित करते हैं जिससे उनमें यह संख्या बढ़ जाती है।

वैज्ञानिकों ने पहली बार किसी फसल का जीनोम कोड पढ़ने में सफलता पाई है। 'साइंस' पत्रिका के संपादक डोनाल्ड केनेडी का मानना है कि चावल विश्व में सबसे ज्यादा खाए जाने वाली फसल है। इस सफलता के बाद गेहूं, मक्का और जई के जीनोम पढ़ने की राह आसान हो गई है। वैज्ञानिकों का मानना है कि इस उपलब्धि के बाद चावल की ऐसी किरणों तैयार की जा सकेंगी जो एशिया व अफ्रीका के कम वारिश वाले क्षेत्रों में उगाई जा सकें।

तीसरे गुणसूत्र का शोध :-

आदमी के जीवन की किताब का तीसरा अध्याय पढ़ लिया गया है। जीनोम परियोजना से जुड़े ब्रिटिश वैज्ञानिकों ने जेनेटिक सामग्री के बाहर डीएनए गुच्छों में मौजूद चौबीस गुणसूत्रों में तीसरे गुणसूत्र का सम्पूर्ण जेनेटिक खाका पढ़ने का दावा किया है।

वैज्ञानिकों की उम्मीद है कि इस खोज से जीन विकृति जनित मधुमेह, मोटापा एवं जन्मजात एक्जिमा जैसे आम रोगों के कारणों का पता चल सकेगा और माकूल उपचार की गई दवाइयों की राह खुलेगी। क्रेम्बिज के निकट वेलकम ट्रस्ट सेंगर इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने तीसरे गुणसूत्र (क्रमांक बीस) का खाका पढ़ा। यह अब तक का ज्ञात सबसे बड़ा गुणसूत्र है। इसमें करीब छह करोड़ जेनेटिक कोड है, जिन्हें शृंखलावद्वि किया जा चुका है। इस गुणसूत्र में करीब 720 जीन का पता चला है जो मधुमेह, मोटापा, जन्मजात एक्जिमा (त्वचा रोग) तथा आदमी को होने में डकाऊ बीमारी (वीसीजेडी) के कारणों पर रोशनी डाल सकते हैं। वेलकम ट्रस्ट के निदेशक डॉ. माइक डेक्स्टर का कहना है कि गुणसूत्र क्रमांक बीस की जीन विकृति की वजह से ही लोग इन रोगों की चेष्ट में आते हैं। अब सम्पूर्ण जेनेटिक खाका उपलब्ध होने से इन रोगों की जड़ तक पहुंचना संभव होगा। डेक्स्टर के अनुसार करीब सैंतीस प्रतिशत लोगों के इस गुणसूत्र में अतिरिक्त डीएनए सामग्री होती है, जिससे एक विशेष जीन उत्पन्न होता है। लेकिन इस जीन की कार्यप्रणाली

अब तक अज्ञात है। इससे पहले 1998 में गुणसूत्र क्रमांक वाइस तथा 2000 में गुणसूत्र क्रमांक इक्कीस का जेनेटिक खाका पढ़ लिया गया था। गौरतलव है कि वर्ष की शुरुआत में अमरीकी, ब्रिटिश एवं अन्य देशों के वैज्ञानिकों के दो अन्तर्राष्ट्रीय समूहों ने मानव शरीर के सम्पूर्ण जेनेटिक खाके को पढ़कर 'जीवन की कुंजी' की खोज की थी। उसके बाद से जीवन की किताब के हर पन्ने का सिलसिलेवार अध्ययन जारी है।

जीनोम

- जीनोम जेनेटिक कोड (डीएनए), जीन और आनुवांशिकीय सामग्री की मदद से जीवन की रचना का मूल तत्व।
- जीवन की उत्पत्ति के निर्देशों का सम्बन्ध गुणसूत्रों में होता है। हमारे शरीर में इनके तेर्झिस जोड़े होते हैं।
- वाइस गुणसूत्रों का क्रमांक ज्ञात है। दो लिंग निर्धारण गुणसूत्र एक्स एवं वाय होते हैं।
- डीएनए में करीब 3.1 अरब कोड होते हैं।
- डीएनए के ए.सी.जी.एवं टी. कोड में प्रत्येक प्राणी की रचना के निर्देश होते हैं।
- मानव शरीर में तीन से चार लाख जीन हैं। चूहों और मनुष्य के 85% प्रतिशत जीन एक समान होते हैं।
- शरीर में करीब 97% डीएनए अनुपयोगी है।
- सम्पूर्ण डीएनए कोड को शृंखलावद्वय किया जाए तो पृथ्वी से सूर्य की आने-जाने की दूरी से छह सौ गुना अधिक लम्बा होगा।
- सम्पूर्ण जेनेटिक खाके को पुस्तक के रूप में समाहित किया जाए तो, यह दो सौ फीट ऊंची या दो सौ से पांच सौ पृष्ठों की फोन निर्देशिका में समाप्त होगा।

वैज्ञानिक हैं क्रेग वेंटर, जिन्होंने 11 फरवरी 2001 को लन्दन से प्रकाशित 'ऑब्जर्वर' में दावा किया कि 'हमारे व्यवहार, हमारी प्रवृत्तियों के लिए हमारे आस-पास का वातावरण ही जिम्मेदार है न कि जीन।

मनुष्य प्रजातियों की आश्चर्यजनक विभिन्नताओं में हमारे जेनेटिक कोड कठोर (अपरिवर्तनीय) नहीं है और इन पर विभिन्न वातावरणों का प्रभाव पड़ता है। वेंटर के इस कथन का अर्थ है कि जीन भी वातावरण और पालन-पोषण के अनुसार परिवर्तनकारी हैं और वे इनसे प्रभावित होकर ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

30 हजार जीन्स :- वेंटर के जीनोम शृंखला के अध्ययन से निष्कर्ष निकला कि मनुष्य के आचार-विचार-व्यवहार को निर्धारित करने के लिए केवल तीस हजार जिनोम ही जिम्मेदार होते हैं। इससे पहले यह माना जाता था कि इस काम में एक लाख से भी अधिक

जीनोम प्रयुक्त होते हैं।

वैज्ञानिक वेंटर के कथन को कुछ हद तक ठीक मानते हैं लेकिन वे कहते हैं कि बहुत थोड़े जीन ही वातावरण से ज्यादा प्रभावित होते हैं और इस प्रकार के कार्य निर्धारण में 30 हजार से ज्यादा जीन अवश्य प्रयुक्त होते हैं।

'नेचर वाया नर्चर' के लेखक ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के प्राणी विज्ञानी मेट रिडली कहते हैं, 'वेटर के इस दावे के कुछ सप्ताह बाद ही एक वैज्ञानिक ने मुझ से कहा कि केवल 33 जीन ही, जो 'ऑन' और ऑफ प्रकार के मानव शरीर को अलग व्यक्तित्व देने के लिए काफी होंगे। इन 33 जीनों से ही दस अरब से ज्यादा संयोजन (अलग-अलग ढंग से संयोग कराने पर) बैठाये जा सकते हैं। इसका अर्थ है कि मनुष्य की प्रकृति बदलने के लिए बहुत कम जीन बदलने की आवश्यकता होगी और मक्खियां, बैक्टीरिया आदि में तो और भी कम जीनों के परिवर्तन की आवश्यकता होगी।

आदत में बदलाव सम्भव-मानव जीनोम योजना पर दशकों के शोध कार्य में नई खोज में मामूली-सा परिवर्तन हुआ है। पहले वैज्ञानिकों ने बताया था, कि जीन में प्रोटीन होता है, जो शरीर की कोशिकाओं का निर्माण करता है। और अब हमें ज्ञात भी हो गया है कि जीन की प्रकृति परिष्कृत कर मानव व्यक्तित्व और उसकी प्रकृति में सुधार लाया जा सकता है। जीन में यह सुधार लाया जा सकता है। जीन में यह सुधार ख्वतः अनुभव से भी आता है।

वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम कोई चीज सीखने की कोशिश करते हैं, उस समय कुछ विशेष जीनों की 'खिड़कियाँ' खुलती और बंद होती हैं। इसका अर्थ है कि हमारे शरीर के जीन (गुण सूत्रों) पर हमारे विचारों में होने वाली हर उथल-पुथल का प्रभाव पड़ता है। वे माता-पिता से मिली कोई अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है, बल्कि हमारे शरीर रूपी चलती-फिरती इमारत के सक्रिय भागीदार हैं, जो हर उस चीज से जो हमारे घटित होती है, कोई न कोई संकेत लेकर ख्वय में परिवर्तन करते हैं।

अब वैज्ञानिकों की समझ में आ रहा है कि किस तरह गर्भाशय में ही अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित हो भून में परिवर्तन हो जाता है और किस तरह कुछ लोग समलैंगिक या अन्य विकृति लिए पैदा होते हैं। विशेषकर पिछले कुछ दशकों से वातावरण में बहुत से परिवर्तन हो गए हैं, जिनका सीधा असर मनुष्य के दिमाग पर और गर्भाशय में पलने वाले प्राणी पर भी पड़ रहा है।

शायद अब हमारे विचारों के अनुसार हमारे जीन्स में परिवर्तन कर हम, इच्छित दिशा में तेजी से आगे बढ़ सकते हैं। इस नई खोज से अध्यात्मिक रुचि रखने वाले लोग भी अधिक ख्वतन्त्र विचार मंथन कर अपनी आध्यात्मिक क्षमता बढ़ा सकेंगे और उन्हें अपना

रास्ता चुनने में सहायता मिलेगी।

हम कठपुतलियाँ नहीं – शायद अब वो समय आ गया है जहां जीन हमारे मालिक नहीं हैं, वे अब हमें कठपुतलियों की तरह नचा नहीं पाएंगे। बल्कि वे स्वयं हमारी कठपुतलियाँ हैं, जो हमारे व्यवहार के अनुसार नाचते हैं वे हमारी दया पर निर्भर हैं। शायद अब प्रकृति रीखने के विरुद्ध नहीं है। वातावरण का प्रभाव आमतौर पर जीन की तुलना में हमारे ज्यादा अनुकूल होता है। और फिर प्रकृति को तो पालन पोषण के लिए ही आकार दिया गया है। पालन-पोषण के आधार पर निर्माण से ही तो पूर्ण एवं सामायिक व्यक्तित्व बन पायेगा।

वातावरण का प्रभाव जीन पर कैसे पड़ता है, यह इस उदाहरण से स्पष्ट होता है। सामान्यतया बन्दर सांप से डरते हैं। उनमें यह डर इसलिए समा जाता है क्योंकि वे किसी दूसरे प्राणी को सांप से डरते हुए देखते हैं, लेकن उन्हें फुलों से डरना सीखाने के लिए बहुत मशक्कत करनी पड़ेगी। तात्पर्य यह कि सांप से डरना अनुवांशिक नहीं है। इसी कारण से बहुत से वच्चे जो अनजाने में ही सांप से खेलने लगते हैं, वडे होने पर उनसे डरने लगते हैं। क्योंकि आस-पास का वातावरण उन्हें सांप से डरना सीखाता है और डरने की विशेषता उनके जीन्स में पैदा हो जाती है।

मानव प्रवृत्ति जन्मजात होती है या बनाई जाती है, यह पहली बहुत पुरानी है। इस पर अस्तु और प्लूटो ने भी बहस की थी। दार्शनिक जॉन लॉक और डेविड ह्यूम ने भी तर्क दिया था कि मनुष्य का दिमाग अनुभवों से बना है, जबकि इसके उलट प्रकृति विज्ञानी जीन जेक्स, रसो और इम्यानुएल कॅट ने कहा कि मनुष्य कि प्रकृति अपरिवर्तनीय है। विख्यात विचारक नॉम चोमरकी ने 1958 में दावा किया था कि मनुष्य ग्रामर की क्षमता के साथ ही पैदा होता है, जबकि सिंगमंड फ्रायड का कहना था कि मनुष्यत्व का निर्माण माता-पिता, सपनों, हंसी-ठहकों और यौन क्रियाओं से होता है। फ्रांस वोएस भी इससे इलिपिक रखते हुए कहते हैं 'भाग्य और वातावरण ही सांकृतिक विविधता के लिए जिम्मेदार होते हैं।'

बहरहाल इस बहस का कोई निष्कर्ष निकलने में अभी और समय लगेगा, लेकिन वेंटर की इस नई खोज ने यह तो लगभग तय ही कर दिया है कि जीन आस-पास के वातावरण से प्रभावित होते हैं। वे अपरिवर्तनीय नहीं हैं उन्हें प्रभावित किया जा सकता है। एक नजर में –

अधिक शक्तिशाली कौन है – प्रकृति या पालन पोषण? आधुनिकतम विज्ञान कहता है – तुम्हारा अनुभव और जीन ही तुम्हारी जिन्दगी के लिए उत्तरदायी है।

मनुष्य प्रजातियों की आश्चर्यजनक विभिन्नताओं में हमारे जैनेटिक कोड सख्त नहीं हैं और इन पर विभिन्न वातावरणों का प्रभाव पड़ता है। केवल 23 जीन जो दो प्रकार

के हैं मानव शरीर अलग व्यक्तित्व देने के लिए काफी होंगे। जीन-माता-पिता से आए अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है बल्कि हमारे शरीर रूपी चलती-फिरती इमारत के सक्रिय भागीदार है। ये जीन, हर चीज जो हमारे सामने घटित होती है, उससे कोई न कोई संकेत लेते हैं और उस अनुभव से स्वयं में परिवर्तन करते हैं। अधिकांश जीन्स में एक वटन होता है, जिसे प्रमोटर कहते हैं। यह वटन ही जीन के सक्रिय होने, कैसे होना क्य होना या नहीं होना आदि को नियमित करता है। इनके साथ एनहान्सर भी काम करते हैं। प्रमोटर और एनहान्सर तभी काम करते हैं जब उनके साथ तथाकथित प्रतिलिपिकरण घटक (Transcription Factors) जुड़े होते हैं। प्रतिलिपिकरण घटक जुड़ते हैं और दूसरे एन्जाइम जीन की आर.एन.ए. कॉपी बनाने में सफल होते हैं और पहला काम लम्बी प्रक्रिया से होता है – प्रोटीन बनाने का, जिसकी जरूरत कोशिकाओं को होती है। (हरि शर्मा)

जल्द युवा होना –

पितृविहीन घरों में पली-बड़ी लड़कियों में जल्दी युवा हो जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है। युवा होने के इस समय परिवर्तन के लिए कुछ शरारती जीन्सों के सेटों पर वातावरण के प्रतिकूल प्रभाव को जिम्मेदार माना जाता है। इन सेटों की संख्या के बारे में वैज्ञानिक पता नहीं लगा पाए हैं।

अपराधी परिवार

अपराध क्या है और कितना गलत है? लोगों में इस सोच का निर्धारण करने वाले जीन वातावरण से भी प्रभावित होते हैं। शायद इसी कारण अपराधी आभिभावकों की प्राकृतिक संतानों से उनकी गोद ली गई संतानें ज्यादा कानून तोड़ती हैं। तलाक

यदि जन्मजात (Fraternal) जुड़वा का तलाक हो जाता है, तो इस बात के 30 प्रतिशत अवसर हैं कि उसकी जुड़वा संतानों भी तलाक ले लें। यदि एक रूप (Identical) जुड़वां में से यदि कोई एक तलाक ले लेता है, तो दूसरा भी तलाक ले लेगा, इस बात की 45 प्रतिशत संभावना है।

समलैंगिक पुरुष :- समलैंगिक महिलाओं या इतरलिंगी पुरुषों की तुलना में अधिकांश समलैंगिक पुरुषों का बड़ा भाई अवश्य होता है। शायद यह मां के गर्भ में पहले पुरुष भ्रूण के चले लिंग निर्धारण जीन्स में हुए परिवर्तनकारी प्रभावों का परिणाम होता है। सातवें गुणसूत्र का विश्लेषण

वैज्ञानिकों ने मानव जीनोम में परियोजना के अन्तर्गत सातवें गुणसूत्र का विश्लेषण कार्य पूरा कर लिया है। इस दौरान उन्होंने कुछ ऐसे जीनोम का पता लगाया है जो हाथ-पैरों के विकास, वहेरपन, लिम्फोमा तथा दूसरे तरह के कैंसर के अलावा सिस्टिक फाइब्रोसिस

जैसी वीमारियों से जुड़े हैं।

मानव शरीर में 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं। इन पर कई लाख जीन होते हैं जो हमारी पारिवारिक, शारिरिक और जैविक समानताओं के अगली पीढ़ियों में ले जाने का काम करते हैं। इन गुणसूत्रों में से छटा गुणसूत्र सबसे बड़ा है। जिसका विश्लेषण अभी किया जाना है। इस पर लगभग 1150 जीन होते हैं। इनमें एक जीन इस बात को समझने में काफी मददगार हो सकता है कि कुछ तरह के केंसर पर दवाइयाँ क्यों कारगर नहीं होती।

वाशिंगटन विश्वविद्यालय के सेंट लुई में जीनोम विश्लेषण केन्द्र के निदेशक डॉ. रिचर्ड विल्सन ने बताया कि केंसर के पीछे कई जीन होते हैं जिनके अध्ययन से यह पता चल सकेगा कि जिन लोगों को केंसर होता है। उनके जीनोम में क्या परिवर्तन होते हैं। उन्होंने बताया कि इससे हमें केंसर के उपचार की कई औषधियाँ बनाने में मदद मिलेगी।

सातवें गुणसूत्र पर हुए शोध कार्यों को 'नेचर पत्रिका' के ताजा अंक में प्रकाशित किया है। इसमें बताया गया है कि सातवें गुणसूत्र में सिस्टिक फाइब्रेसिस के अलावा विलिमय न्यूरेन सिंड्रोम से जुड़े कई जीन होते हैं जिनके वजह से मानसिक विकलांगता और चेहरा असामान्य हो जाता है। इन जीवों के अध्ययन से रक्त कोशिकाओं के केंसर ल्यूकीमिया को भी समझा जा सकता है।

यौन व्यवहार का निर्धारण जीन से !

ताजा अध्ययन से पता चला है कि मनुष्य के यौन व्यवहार का निर्धारण उसके जीन से ही होता है। इस नतीजे से वह धारणा गलत हो गई जिसके अनुसार माना जाता था कि मनुष्य अपनी इच्छा से समलिंगी या विपरीत लिंगी हो जाता है।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के औषधि विभाग में जीन विज्ञान के प्रोफेसर डॉ. एरिक विलेन ने सोमवार को प्रकाशित शोध रिपोर्ट में कहा की शोध के नतीजों से यह जानने में मदद मिलेगी कि हम स्वयं को पुरुष या स्त्री क्यों महसूस करते हैं। डॉ. विलेन के मुताबिक इंसानों के यौन व्यवहार उसके जन्म से पहले ही तय हो जाते हैं, क्योंकि यह उसके जिनोम की संरचना में ही निहित होता है।

पहले वैज्ञानिकों का मानना था कि एस्ट्रोजेन और टैस्टोरेटोन नामक हार्मोन मस्तिष्क में यौन व्यवहार को निर्देशित करते हैं। इस शोध से पता चलता है कि पुरुषों और स्त्रियों के बीच यौन विभेद पूरी तरह हार्मोनों पर निर्भर नहीं करता। शोध के अंतर्गत चूहों पर किए गये प्रयोग से पता चला कि जीन में पुरुष अथवा स्त्री मस्तिष्क का निर्माण भ्रूणावस्था, में उसी वक्त हो जाता है जब उनके यौनांग विकसित नहीं हुए होते हैं।

एथलीट बनने का जीन :-

खेलकूद संबंधी आदतों का अध्ययन कर रहे ऑस्ट्रेलियाई वैज्ञानिकों ने व्यक्तिव के एथलेटिक-प्रदर्शन को नियंत्रित करने वाले जीन को खोजने का दावा किया है। इस जीन से तय होता है कि उस व्यक्ति में फर्फटा दोड का धावक बनने के गुण है या लम्बी दूरी का धावक बनने के खोजा गया यह जीन ए.सी.टी.एन.-3 है। यह दो रूपों में पाया जाता है। इसका आर रस्ता एक्टिनिन नामक प्रोटीन बनाता है। इसी का दूसरा रूप एक्स है, जो एक्टिनिन नहीं बनाता। इन जीनों की भूमिका को लेकर मतभेद है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि कोई व्यक्ति सिर्फ जिन के आधान पर एथलीट नहीं बनता। दूसरी और इस तरह की छटाई के पक्षधर लोग कहते हैं इन जीनों के आधा पर कोई एथलीट इतना निर्णय तो कर ही सकता है कि वह स्प्रिंटर एथलीट बनें या लम्बी दूरी का धावक ! क्योंकि बेलगाम हो जाते हैं पुरुष :-

महिला हो या पुरुष, गुरसा सभी को वरावर आता है, लेकिन यह देखने में आया है कि महिलाएं अपने गुरसे को नियंत्रण में कर लेती हैं, जबकि पुरुष आपा खो देते हैं। पेनसिल्वेनिया यूनिवर्सिटी के रकूल ऑफ मेडिसन के साइकोलॉलिस्टरूबेन सी गर द्वारा किए गए एक अनुसंधान में पाया है कि महिलाओं की तुलना में पुरुषों के मस्तिष्क में क्रोध नियंत्रण वाला हिस्सा छोटा होता है, इसीलिए वे ज्यादा आक्रामक होते हैं।

इस अनुसंधान के लिए वैज्ञानिकों ने 116 एडल्ट वालंटियर्स का अध्ययन किया, जिनमें 57 पुरुष और 59 महिलाएं थीं। इन सभी वालंटियर्स के ब्रेन कि मैनेटिक रिसोने इमेजिंग डिवाइस से रेंजिंग की गई। इसके बाद महिलाओं और पुरुषों दोनों के ब्रेन की बनावट का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इसमें पाया गया कि महिलाओं की तुलना में पुरुषों का आर्टिल फ्रेंटल कार्टेक्स कहा जाने वाला हिस्सा छोटा होता है।

वैज्ञानिकों ने गुरसे और उसके नियंत्रण के बारे में मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को स्पष्ट करते हुए बताया कि हमारे मस्तिष्क की एमिगडाला कहा जाने वाला हिस्सा भावनात्मक उतार-चढ़ाव या उत्तेजना पैदा करने का काम करता है। क्रोध का जन्म मस्तिष्क के इसी हिस्से में होता है। चूंकि एमिगडाला का वाल्यूम महिलाओं और पुरुष में समान रूप में पाया गया, इसलिए यहाँ कहा जाता है कि गुरसा दोनों को समान रूप से आता है। मस्तिष्क में आगे की तरफ आँखों की तरफ आँखों के ऊपर स्थित आर्वीटल क्रेंटल कार्टेक्स कहा जाने वाला हिस्सा भावनात्मक उतार-चढ़ाव या गुरसे को नियंत्रित करने का काम करता है। एमिगडाला से उत्पन्न क्रोध की अच्छे-बुरे के आधार पर तार्किक विवेचना और उसका नियंत्रण काम यही हिस्सा करता है। महिलाओं के ब्रेन में इस हिस्से का वाल्यूम पुरुषों की तुलना में अधिक पाया गया। यही वजह है कि महिलाएं क्रोध आने पर अच्छे-बुरे सोचकर

उसे काबू में कर लेती हैं। साइक्या-ट्रिस्ट राक्वेल ई गर ने अपने इस तर्क के समर्थन में बताया कि ऐसे अनेक मामले देखने में आए हैं, जिनमें सिर के अगले भाग में चोट के बाद कुछ पुरुष इतने ज्यादा गुस्सैल हो गए कि उन्होंने ने या तो किसी की हत्या कर दी, या आत्महत्या कर ली।

जीनोम, शरीर और स्वास्थ्य :- विज्ञान

मानव जीनोम के गुणसूत्रों को पहचानने से मानव स्वभाव, विश्व से हमारे सम्बन्ध और अपने भविष्य के बारे में अन्तः दृष्टि का मार्ग प्रशस्त हुआ है। अब निर्देशों का वह पूरा क्रम हमारे पास है, जिससे मानव का विकास होता है। किस प्रकार एक अकेली कोशिका (एक उर्वरित कोश) से शनैः शनैः एक वयस्क मानव बनता है जिसमें हजारों प्रकार की खरबों कोशिकाएँ होती हैं। प्रश्न है कि अब आगे क्या होगा?

जीनोम की भाषा डीएनए है, जिसकी वर्णमाला में सिर्फ चार, 'अक्षर' 'जी', 'सी', 'ए' और 'टी' होते हैं। लेकिन जीनोम में ऐसे तीन अरब अक्षर होते हैं। मानव जीनोम परियोजना ने उनका अनुवाद करके पांच सौ खण्डों की 'जीवन की पुस्तक' तैयार की है। प्रत्येक खण्ड में हजार पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर औसतन छह अक्षरों के हजार शब्द हैं। कार्य प्रणाली के तौर पर मानव जीनोम तीन अरब शब्दों का एक लम्बा वाक्य है जो 24 टुकड़ों में होता है। 'क्रोमोसोम' कहलाने वाले इन टुकड़ों का आकार 4.5 से 28 करोड़ अक्षरों तक का होता है।

एक पुस्तक में शब्द वाक्यों के रूप में संग्रहित होते हैं, वाक्य पैराग्राफों में और पैराग्राफ अध्यायों के रूप में होते हैं, हर स्तर पर अर्थ उच्चतर और अधिक सुरुसंगत स्तर वाला होता है। इसी प्रकार मानव स्वयं जीनोम की एक पुस्तक है। डीएनए के शब्द जीन्स हैं जिन में प्रोटीन के कूट संकेत होते हैं। प्रोटीन ही जीवन का अणु-स्तर पर निर्माण करता है। जीन्स और प्रोटीन मिलकर हृदय, मस्तिष्क, गुर्दे और ऐसी ही अन्य जैवकीय प्रणालियों को बनाते हैं।

फरवरी 2001 में प्रकाशित मानव जीनोम के प्रथम मसविदे में चार नई बुनियादी वाते पेश की गई। पहली, मानवता की 'जीवन की पुस्तक' में केवल 30-35 हजार अलग अलग शब्द अथवा जीन्स होते हैं। यह आश्चर्य की वात है, क्योंकि पहले क्रमवद्ध किए गए एक छोटे से कीट के जीनोम में करीब 20 हजार जीन थे। यह एक अवूझ पहेली है कि एक साधारण छोटे कीट के मुकाबले मात्र एक तिहाई जीन्स ही अधिक होने पर मानव में इतना अन्तर क्यों है?

दूसरे, जीवन की पुस्तक में कोई ऐसे शब्द नहीं हैं जिन्हें मूलतः किसी नर्सल-विशेष से सम्बन्धित माना जाए। हकिकत तो यह है कि दो अश्वेत व्यक्तियों की 'जीवन की

'पुस्तक' में एक अश्वेत और एक काकेशियाई व्यक्ति की 'जीवन की पुस्तक' के मुकाबले कही अधिक अंतर हो सकता है। नर्सल की अवधारणा सांस्कृतिक है, जेनेटिक से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

तीसरे, जीवन की पुस्तक में, चाहे वह मानव की हो या मछली या मक्खी की हो या फिर खमीर की हो, बड़ी संख्या में एक जैसे शब्द होते हैं (हालांकि उनकी शब्द रचना में कुछ भिन्नता हो सकती है।) इन जीन्स और प्रोटीनों से वनी अनेक बुनियादी जैवकीय प्रणालियों में उल्लेखनीय समानता होती है। इससे समस्त जीवन के मूल पूर्वज की समान अथवा समस्त उत्पत्ति एक ही स्रोत से होने की वात की पुष्टि होती है।

चाथी बुनियादी वात भी इसी प्रकार समस्त जीवन के परस्पर सम्बन्धित होने को उजागर करती है। उदाहरण के लिए, मानव की 'जीवन की पुस्तक' में करीब 200 जीन्स अन्य जीवों से मिलते-जुलते होते हैं। इससे लम्बे समय से चली आ रही इस धारणा का खंडन होता है कि हमारे सभी जीन्स हमें विरासत में अपने दुःखों से दादा-पड़दादा से माता पिता द्वारा बच्चों को मिले हैं। ऐसा लगता है कि यह मानव विकास का क्षतिजिक संदर्भ भी है, जिसमें सभी जीव अपने आस पास के समकालीन जैवकीय विकास से सूचनाओं का समावेश करते हैं।

जीवन की पुस्तक से मिले ज्ञान से जीव विज्ञान और औषधियों में गुणात्मक परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ है। अब हम किसी जैवकीय प्रणाली का किसी एक जीन या प्रांटीन पर एक समय ध्यान केन्द्रित करने के बजाए उसके अवयवों की अन्तःक्रिया को समझते हुए अध्ययन कर सकते हैं। दरअसल मेरा विश्वास है कि 21 वीं शताब्दी में प्रणालियों के हिसाब से जीव विज्ञान के अध्ययन का प्रमुख स्थान होगा। यही वात जीव विज्ञान प्रणाली संरक्षण (इस्टीट्यूट ऑफ सिर्टम वायोलॉजी) में दो वर्ष पूर्व जिसकी स्थापना में मैं सहभागी था, प्रतिविम्बित हुई थी।

इसी प्रकार औषधियों के क्षेत्र में अब गुणात्मक परिवर्तन होंगे। हमारे वर्तमान प्रतिक्रियात्मक तरीके में अगले 10-15 वर्ष में परिवर्तन दिखाई देने लगेगा। अभी तो आप वीमार होने पर चिकित्सक के पास जाते हैं और वह आपको चंगा कर देने की कोशिश करता है। इसके बजाए एक पूर्वरोधी, निरोधक और अंतः व्यक्ति केन्द्रित किरण की दवाएं प्रचलन में आएंगी। उदाहरण के लिए अगर किसी महिला के जीन्स में एक भी ऐसा दूषित जीन हो जो स्तन कैसर से सम्बन्धित है तो उसके 60 वर्ष की आयु तक स्तन कैसर से ग्रस्त होने की 70% संभावना है। सिर्फ 70% ही क्यों? कुछ मामलों में दूषित जीन को सक्रिय होने के लिए पर्यावरण से जुड़े कुछ संकेत मिलने जरूरी होते हैं, जबकि दूसरा स्पष्टीकरण यह भी हो सकता है कि एक ही दूषित जीन का होना पर्याप्त कारण नहीं,

अनेक दूषित जीन मिलकर काम करें, तभी वीमारी हो सकती हैं।

महत्वपूर्ण बात यह है कि अगले 10-15 वर्ष में हम ऐसे सैकड़ों जीन्स का पता लगा लेंगे, जो किसी व्यक्ति को वीमार बना देने का कारण हो सकती हैं। इसमें सामान्य वीमारियों के अलावा बाद में सामने वाली कैसर, हृदय, मानसिक और चय-अपचय सम्बन्धि वीमारियाँ शामिल हैं। हम रक्त का नमूना लेंगे और जेनेटिक खामियों की संभावना का अध्ययन करेंगे। इससे उस व्यक्ति को होने वाली संभावित वीमारियों का पता चल सकेगा। चिकित्सक अपने कार्य क्षेत्र की जैवकीय प्रणालियों के सन्दर्भ में मरीज के जीन्स का अध्ययन करेगा तथा तज्जनित सीमाओं को पार पाने का प्रयत्न करेगा।

पहले से आशंकित, निरोधक और व्यक्ति आधारित दवाओं के साथ भविष्य में पर्यावरण परिवर्तन संदर्भित विशेष तौर पर बनाई गई दवाएँ भी आएंगी। इसके अलावा जीव अभियांत्रिकी और भ्रूण रस्टेम कोशिकाओं के विकास से भी मदद मिलेगी। इस सबसे हम एक दूसरे ही भविष्य में पहुंच जाएंगे। इससे मानव जीवन की आयु में दस से तीस वर्ष तक की वृद्धि हो सकती है। इससे विपुल संभावनाएँ बनेगी लेकिन। एक तरफ मनोहारी दृश्य के साथ दूसरी तरफ परेशान कर देने वाले नैतिक, सामाजिक और कानूनी मुद्दे भी जुड़े होंगे।

उदाहरण के लिए, अगर औसतन मानव जीवन को नब्बे की उम्र के पार या उससे भी अधिक करने के बाद उसकी सृजनात्मकता और उत्पादकता में वृद्धि की भारी संभावनाओं को साकार कैसे कर पाएंगे? स्वास्थ्य के बारे में पूर्वभ्यास का संकेत कौन समझेगा? क्या हम तकियानूसी धार्मिक दृष्टिकोण को अनुमति देंगे की वह भ्रूण रस्टेम कोशिकाओं की व्यापक संभावनाओं और उनसे करोड़ों लोगों की वीमारी से मुक्त करने की हमारी क्षमताओं पर विराम लगा दे? इन प्रश्नों से विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में हो रही प्रगति से कदम मिलाकर चलने का दायित्व रेखांकित होता है। तभी हम मानव जाति का कल्याण कर पाने के अवसर का लाभ उठा पाएंगे। इससे पैदा होने वाली चुनौतियों के बारे में सोच-विचार कर तर्कसंगत रारते निकाले होंगे। (लेरॉय हूड)

'टीएनए की खोज'

अब तक माना जाता रहा है कि पृथ्वी पर जीवन के उद्भव का आधार 'राइबो न्यूक्लिक एसिड' 'आरएनए' है, लेकिन हाल में हुई एक खोज ने साइंटिस्टों को जीवन की उत्पत्ति के सिद्धान्त पर फिर से विचार करने पर मजबूर कर दिया है। 'न्यू साइंटिस्ट' के ताजा अंक की एक्सकलुसिव रिपोर्ट के अनुसार जीवन की उत्पत्ति का आधार आरएनए या डीएनए नहीं बल्कि टीएनए है।

अब तक हमने डीआॅक्सी राइबो न्यूक्लिक एसिड (आरएनए) के बारे में ही सुना

था, लेकिन राइबोस के बजाय शर्करा थ्रेओस पर आधारित 'थ्रेओस न्यूक्लिक एसिड' (टीएनए) की खोज ने सभी को हेरत में डाल दिया है। ज्यूरिख स्थित स्विस फेडरेल इंस्टीट्यूट आफ टेक्नोलॉजी के अल्वर्ट एशेनमोसर बताते हैं यदि प्रकृति के पास यह चुनने के विकल्प हो कि वह आरएनए या टीएनए में से किसका निर्माण पहले करेगी तो वह निश्चित तौर पर टीएनए का ही चुनाव करेगी क्योंकि राइबोज के बजाये थ्रेओस का निर्माण कहीं अधिक आसान है।

उल्लेखनीय है कि अल्वर्ट एसेनमोसर और उनकी टीम ने तीन वर्ष पहले एक मुश्किल केमिकल सेंथसिस द्वारा टीएनए का निर्माण करने में सफलता पाई थी। उसके बाद उन्होंने इस पर लम्बा अध्ययन किया और अब जाकर न्यू साइंटिस्ट जनरल के जरिए इसकी अधिकारिक घोषणा की है। उधर वोर्स्टन स्थित मैसाचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल में मॉलिक्यूलर बायोलॉजिस्ट और टीएनए शोध में एशेनमोसर के सहयोगी रहे जैक जोस्टॉक ने सायित कर दिखाया है कि टीएनए प्राकृतिक एंजाइम्स द्वारा एसेम्बल किए जा सकते हैं। उन्होंने जान कापट ने अपने इस प्रयोग की शुरुआत डीएनए की सीडीनुमा संरचना के एक धागे या स्ट्रेंड के निर्माण के लिए नाभिक की संरचना करने वाले आधारभूत तत्व (टीएनए) की मदद ली। इस प्रयोग से वह आमतौर पर पाए जाने वाले कोशिका के नाभिक की रचना तो नहीं कर सके। बल्कि उन्होंने जिस नाभिक का निर्माण का वह डिऑक्सीराइबोल के बजाय थ्रेओस की प्रचुरता वाला था। इस प्रयोग की सबसे खास बात यह थी कि रासायनिक गुण में हल्के अंतर के बावजूद डीएनए पॉलीमेरेस एजाइम ने थ्रेओस पर आधारित नाभिक को स्वीकार किया ओर डीएनए-टीएनए हाइब्रिड मालिक्यूल की अद्भूत रचना कर दी। जॉस्टॉक कहते हैं कि टीएनए के बारे में सबसे हेरत अंगेज बात यह है कि हालांकि आरएनए या डीएनए की अपेक्षा इस मालिक्यूल के शर्करा-फारफेट आधार में एक कार्बन परमाणु कम हैं फिर भी यह आधार जोड़े बनाने के (वेसपेयरिंग) उत्कृष्ट गुणों का प्रदर्शन करता है। जॉस्टॉक की योजना टीएनए के और गुणों की खोज करने की है। टीएनए का प्रमुख गुण यह भी है कि यह भी आरएनए की तरह रासायनिक अभिक्रियाओं में उत्प्रेरक की भूमिका निभा सकता है। इन प्रयोगों से यह विचार सामने आया है कि सृष्टि में आरएनए से पहले टीएनए का निर्माण हुआ होगा, हालांकि इसे सावित करना असंभव है, लेकिन शोधकर्ता इस खोज में जुटे हुए हैं कि क्या टीएनए आधारित जीवविज्ञान का अस्तित्व संभव है। टीएनए के आविष्कारक एशेनमोसर मुरकाते हुए कहते हैं अब जॉस्टॉक को टीएनए आधारित दुनिया की खोज करनी होगी। (लॉस एंजिल्स) वह क्या सोच रहा है? दफ्तर से लौटते ही रिमोट क्यों थाम

लेता है ? आखिर वह मुझसे बात क्यों नहीं करता ? पुरुषों के प्रति दुनिया की लगभग हर महिला नजरिया लगभग ऐसा ही होता है। इन सवालों से धिरी महिला को अपने पति, व्यायफ्रेंड या अपने बेटे पर गुरुसा आ रहा है या प्यार यह समझना आसान नहीं है, लेकिन अब इन सवालों का हल ढूँढ़ लिया गया है। इन फिजूल के सवालों का सम्बन्ध दिल नहीं दिमाग से है। दार्शनिक और लेखक माइकल गुलियन के मुताविक पुरुषों में यह प्रवृत्ति न तो सुर्स्ती के कारण होती है और न वेपरवाही के कारण। इसके पीछे किसी तरह की यौनविकृति भी नहीं है और न ही खालिस नारीवादी नजरिया। इसका कारण मुख्य कारण है पुरुषों और महिलाओं के मरिटिष्ट की अलग-अलग बनावट।

वैज्ञानिकों ने इसे सावित करने की तकनीकी इजाद कर ली है। पिछले दो दशक के दौरान गुरियन ने रोजमरा के इस तरह के अनुभवों का अध्ययन कर न्यूरोवायोलॉजिकल रिसर्च के जरिए मानव की मनोवृत्ति के बारे में महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं। 'द वंडर ऑफ द ब्याय' और 'वंडर ऑफ द गर्ल' जैसी चर्चित पुस्तके लिखने वाले गुरियन ने इन सवालों का हल 'माइन्स द फिल्ड ऑफब्रेन साइंस' के जरिए प्रकाशित किया है। पुस्तक में पति पत्नि के रिश्तों को मजबूती से उभारा गया है। वे कहते हैं कि संसार या संस्कृति की अपनी भूमिका है, लेकिन आदमी के व्यवहार को वॉयोलॉजी से ही समझा जा सकता है। रैकेन के जरिए लोग देख सकते हैं कि पुरुष और महिला के मरिटिष्ट किस तरह मिल होते हैं। इसे समझने के बाद निश्चय रूप से लोगों का जीवन खासतौर से वैवाहिक जीवन बदल सकता है। उनके रिश्ते बेहतर हो सकते हैं।

पुरुषों और महिलाओं के मरिटिष्ट की बनावट में फर्क होने के कारण पत्नी दफ्तर से लौटने पर भावनात्मक बातें करना चाहती है ताकि पति की थकान दूर हो जाए लेकिन पति के थके हारे दिमाग का दिल इससे नहीं बहलता, वह रिमोट थामकर र्पोट्र्स चैनल या एक्शन मूवी देखना चाहता है। मुरियन के मुताविक पुरुषों का मरिटिष्ट महिलाओं के मुकाबले बेरुखा होता है इसलिए उसे न तो घर में जमा धूल दिखाई देती है और नहीं बिखरे सामान। दिमाग की बनावट की बजह से ही पुरुषों का ध्यान घर से ज्यादा दफ्तर पर होता है।

प्रभामण्डल (ओरा)

यह असंभव सा लगता है, लेकिन असंभव नहीं है। संसार भर में कुछ वरिष्ठ अध्यात्म वैज्ञानिक इस मान्यता को बल दे रहे हैं कि किसी भी व्यक्ति के चरित्र को, उसके स्वारथ्य को यहाँ तक कि उसके व्यवहार को प्रभामण्डल या ओरा (ऑरिओल) के जरिए परखा जा सकता है। ये वैज्ञानिक प्रभामण्डल के सहारे किसी व्यक्ति को स्वारथ्य संबंधी परेशानियों को भी दूर करने की बात कहते हैं। दिल्ली स्थित ध्यान केंद्र प्राण विजय के संस्थापक कृष्णन विरप्पन कहते हैं - ऐसा विल्कुल संभव है, पर कठिन इसलिए है कि

प्रभामण्डल मानव शरीर तरह जटिलताओं से भरे हैं। इसको देखना लंबे अभ्यास के बाद ही संभव है। ध्यान, प्राणायाम और आँखों की संवेदना को जगाने के बाद ही कोई व्यक्ति किसी अन्य के या खुद के प्रभामण्डल की झलक पा सकता है।

ऑर्ट्रेलिया के पश्चिमी केम्ब्रेलेज में पाए गए प्रागैतिहासिक काल के गुफा भित्ति चित्रों में भी कुछ व्यक्तियों को प्रभामण्डल या ओरा के साथ दिखाया गया है। ऑर्ट्रेलिया के मेलबोर्न विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डॉ. थेम चाको, जो कि पिछले कई वर्षों से इस विषय पर शोध कर रहे हैं, का मानना है कि भगवान् बुद्ध, महावीर, जीसस क्राइस्ट आदि के चित्रों में अंकित प्रभामण्डल इस बात का ठोस सवूत है कि उस समय लोग अपना या दूसरे का प्रभामण्डल देख सकते थे। वे लोग प्रभामण्डल में प्रकाश की तीव्रता या स्वच्छता से एक दूसरे के बारे में विना कुछ बताए समझ लेने की कला में पारंगत थे। सवाल उठता है, आखिर यह प्रभामण्डल या ज्ञानपुंज है क्या ? भारतीय आध्यात्म मानता है कि संसार के हर चल या अचल पदार्थ का अपना एक प्रभामण्डल होता है। यह बात अलग है कि सजीव व मानव शरीर का जो प्रभामण्डल है वह बदलता रहता है जबकि पदार्थ का प्रभामण्डल लगातार स्थिर रहता है। इसे और रूप से समझने के लिए मानव शरीर की संरचना को समझना होगा। मानव शरीर को सात भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहला है स्थूल शरीर या फिजीकल वॉडी, जिसे हम सब देखते हैं। इससे सूक्ष्म दूसरा शरीर है - इथरिक वॉडी या आकाश शरीर और तीसरा शरीर जो उसके भी पीछे है वह है एस्ट्रल वॉडी यानी सूक्ष्म शरीर।

चौथा शरीर है मेंटल वॉडी यानी मानस शरीर। पाँचवा शरीर जो उसके भी पीछे है रिपरिचुअल वॉडी यानी आत्मिक शरीर। छठा शरीर है कॉस्मिक लेअर या ब्रह्म शरीर तथा अंतिम है वॉडी लेस वॉडी यानी निवार्ण शरीर। हम यह भी जानते हैं कि इस धरती का हर पदार्थ चाहे वह सजीव प्रभामण्डल या निर्जीव उसका प्रत्येक अणु, प्रत्येक परमाणु यहाँ तक कि हमारी सोच, संवेदना तरंगों से निर्मित है। ऐसे में सामान्य बातचीत की भाषा में हम कह सकते हैं कि प्रभामण्डल वह विद्युतीय तरंग का पुंज है जो पदार्थ के चारों ओर चक्कर लगाता है। दिल्ली स्थित गाझोरिट्क एंड एथ्रोपॉलोजिकल रस्टडी सेंटर की परि शिक्षिका ल्यूज अल्मेडा ने प्रभामण्डल को थर्मो-इलेक्ट्रिकल फील्ड माना है। वह कहती है - 'ओरा सिर्फ देवताओं के नहीं होते। यह धरती के सारे पदार्थों के साथ जुड़ा है।

वैसे व्यक्ति जिन्होंने साधना के जरिए एक आध्यात्मिक ऊंचाई पाई है, उनका प्रभामण्डल अन्य की अपेक्षा अधिक स्वच्छ और चमकिला होता है। वौद्धिक प्रगाढ़ता भी प्रभामण्डल को प्रभावित करती है। वैसे प्रभामण्डल को देख पाना सामान्यतः एक कठिन व चुनौतीपूर्ण कार्य है। पर इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि प्रभामण्डल

में रंग और प्रकाश की तीव्रता के सहारे किसी के व्यक्तित्व को मापा जा सकता है। प्रभामण्डल को देख पाने में सक्षम व्यक्ति इस बात का भी पता लगा सकता है कि सामने बैठा जो व्यक्ति लगातार अपनी निर्दोषता की वकालत कर रहा है, वह सचमुच वैसा है क्या ? डॉ. टॉम कहते हैं - सच्चाई को कभी भी झुटलाया नहीं जा सकता। वैसे इस संभावना पर भी विचार किया जा रहा है कि गंभीर मामलों में अपराधियों को पकड़ने में प्रभामण्डल विशेषज्ञ की मदद ली जाए। कुछ लोग प्रभामण्डल को आध्यात्मिक हस्ताक्षर कहते हैं। जब आप किसी व्यक्ति को वहुत ही चमकिले और रवच्छ प्रभामण्डल के जरिए देखते तो आप निश्चय रूप से कह सकते हैं कि वह व्यक्ति पारदर्शी व्यक्तित्व रखता है। साथ ही वह वौद्धिक रूप से भी समर्थ हैं। जब कि भूरे या गहरे रंग के प्रभामण्डल का स्थायी व्यक्तित्व निम्न कोटि का माना जाता है। डॉ. टॉम कहते हैं कि इस धरती पर अधिकांशतः लोगों का प्रभामण्डल वहुत कमजोर और धूमिल मिलता है, जबकि यह धूमिल प्रभामण्डल भय, ईर्ष्या और इसी तरह के भावों का व्योतक है, पर प्रभामण्डल के अध्ययन की प्रक्रिया क्या है ? डॉ. रोम का उत्तर है, - आँखों की संवेदनशीलता को बढ़ाने के बाद ही प्रभामण्डल को पढ़ना संभव है, जबकि पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में यह शक्ति जन्मजात रहती है। बच्चे प्रभामण्डल को महसूस कर सकते हैं। उनका किसी के प्रति लगाव या अलगाव प्रभामण्डल के रंगों की पसंद या नापसंद पर निर्भर करता है। हालांकि अब तक की रिलीयन फोटोग्राफी जरिए ही और का अध्ययन किया जा रहा है। 1880 में अमेरिकी वैज्ञानिक गे कोगिंस ने भी एक ऐसी विधि तैयार की, जो टोरसो अमा की भी फोटोग्राफी कर सकता है, पर ये सभी साधन महंगे हैं। डॉ. टॉम सलाह देते हैं - 'नंगी आँखों से खुदका या दुसरे का प्रभामण्डल देखे और अच्छे या बुरे में फर्क करें। बस जरूरत है तो इसमें दृढ़ इच्छाशक्ति, थोड़ी-सी जागरूकता और इन्द्रियों की सजगता की। और सचमुच ऐसा हो तो वह दिन दूर नहीं जब ये दुनिया और अधिक सुंदर हो जाएगी। डॉ. टॉम प्रभामण्डल देखने की विधि बताते हैं - किसी आदमकद शीशे के समक्ष प्रायः 1.5 मीटर की दूरी पर खड़े हो जाएं। ध्यान रहे की आपके पीछे का बैक ग्राउंड सफेद हो और खुद आप भड़कोले कपड़े न पहनने हों। अपनी आँख के फोकस को कपाल के मध्य जिस जगह तीसरी आँख की कल्पना की गई है, पर केंद्रित करें। 10-15 मिनट रोज ऐसा करें। आप खुद के प्रभामण्डल को देख सकेंगे। और यह आपके लिए एक आध्यात्मिक अनुभव के समान होगा। इसी प्रक्रिया के तरह अभ्यास के जरिए दूसरे के प्रभामण्डल को भी देखा जा सकता है। (देव प्रकाश) ओरा क्या कहता है ?

यद्यपि किसी भी व्यक्ति का ओरा या प्रभामण्डल सात रंगों के मेल से बना होता है,

पर अंततः इसका अपना एक शेड होता है जो व्यक्तित्व को दर्शाता है। यहाँ प्रस्तुत है प्रभामण्डल के विभिन्न शेडों के आलोक में व्यक्तित्व के प्रकार -

रंग	व्यक्तित्व
नीला	शांतिप्रिय, स्थिर और अध्यात्म में रुचि
हरा	महत्वकांक्षी
सफेद	विलक्षण पर सांसारिक मोहमाया से दूर
नारंगी	रचनात्मक और वाक्पटू
लाल	स्फूर्तिवान और अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाला
बैंगनी	उत्तम स्वास्थ्य

श्री चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते हुए तीर्थार्टन करते थे। इसी तरह एक दिन कीर्तन करते हुए वृदावन जा रहे हैं। वह प्रेम की कथा ही अद्भुत है जिसे देखकर पत्थर भी पिघले जा रहे हैं। दार्यभाव को धारण किए वे प्रेम से रुदन कर रहे हैं। भक्त भी उनके प्रेम में गदगद होकर कीर्तन करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हैं। रास्ते में बीहड़ बन हैं। उस बन के समर्त जानवर सिंह, हाथी, मृग और पक्षी तक महाप्रभु के गायन से आकर्षित होकर चले आ रहे हैं। सब पशु पक्षी उनसे प्रभावित होकर कीर्तन में शामिल होकर नाचने लगते हैं। यह है चैतन्य महाप्रभु के 'ओरा' का असर। श्रीकृष्ण के प्रति समर्त मथुरा वृन्दावन वासियों का, गोपियों का इतना आकर्षण क्यों था ? बात फिर वही है कि उनका भी 'ओरा' ही ऐसा था।

'ओरा' यानी ह्यूमन ऐनर्जी फिल्ड। हम जहाँ भी जाते हैं, 'ओरा' एक चुंबक की तरह हमारी वाइब्रेशनल ऐनर्जी को उठाकर हमारे साथ चलता है। उदाहरण के तौर पर अगर हम फूलों को ले। फूलों की खुशबू हर किसी को अपनी तरफ खीचती है तभी भवरें उनके ईद-गिर्द मंडराते रहते हैं। क्योंकि फूलों के पास खुशबू है जिसे सूंघकर हम ताजगी, सुकून और खुशी महसूस करते हैं। फूलों का 'ओरा' है यह। संसार में ऐसे कितने महापुरुष हुए हैं जिन्होंने अपने 'ओरा' से इन्सान को जिंदगी के अनेकों सुख प्रदान किए हैं।

स्वामी विवेकानंद का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि सिस्टर निवेदिता हमेशा के लिए अपना अमेरिका छोड़कर उनके साथ हिंदुस्तान चली आई और उनकी शिष्या बन गई। व्यक्ति खुद दी अपने 'ओरा' का निर्माण करता है। अच्छे विचार, भावनाएँ, दृष्टिकोण 'ओरा' बनाने में सहायक होते हैं। वैज्ञानिकों की भाषा में सृष्टि में हर चीज एक तरह से वाइब्रेशन ही लगती है।

हर ऐटम, ऐटम का हर भाग, इलेक्ट्रॉन और पार्टिकल, यहाँ तक कि हमारे विचार और चेतना भी एक तरह की वाइब्रेशन है, इसलिए 'ओरा' किसी वस्तु के वाहरी जोश या

उत्साह का इलेक्ट्रो-फोटोनिक रिस्पांस कहा जा सकता है। रुस के वैज्ञानिक पिछले पचास सालों से 'किर्लिन प्रभाव' के जरिए 'ओरा' के अध्ययन में जुटें हुए हैं। उनका मानना है कि लोगों के आसपास का 'ओरा' समय के साथ तैजी से बदलता है, लेकिन स्थायी वस्तुओं का 'ओरा' निश्चित ही होता है। रुस साइंसिस्ट्स के मुताबिक इन्सानों के आसपास का 'ओरा' अल्ट्रावायरेट लाइट से इन्फ्रारेड और माइक्रोवेव से फैलते इलेक्ट्रो मॅग्नेटिक रेडिएशन से बनता है।

बॉडी हीट के इन्क्रारेड पार्ट लो-फ्रीक्वेंसी माइक्रोवेव बॉडी के निचले स्तर से संवंधित होते हैं जब कि हाई फ्रीक्वेंसी यूवी पार्ट हमारी काशियसएक्टिविटी से ज्यादा संवंधित होते हैं, जैसे की थिंकिं, क्रिएटीविटी, इटेंशन, सेंस ॲफ हामर और इमोशन्स। खासतौर पर सिर के ऊपर और आसपास 'ओरा' के रंगों और गहराई के विशेष अर्थ होते हैं। किसी व्यक्ति के बोलने से पहले ही उसे उनके 'ओरा' से जाना जा सकता है।

इसके लिए चाहे वह व्यक्ति कितना ही झूट बोले 'ओरा' से उसकी असलियत पता चल जाएगी। 'ओरा' नकली नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इससे व्यक्ति का सही स्वभाव और इसादे पता चलते हैं। कहा जाए तो 'ओरा' व्यक्ति का स्प्रिच्युअल सिंगनेचर है।

चमकदार और स्पष्ट 'ओरा' अच्छे और आध्यात्मिक व्यक्ति का संकेत है जबकि ग्रे और गहरा व्यक्ति के अस्पष्ट इरादों और खोखलेपन को जाहिर करता है। प्रत्येक व्यक्ति का एक अपना 'ओरा' होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार धरती पर बहुत से लोगों का 'ओरा' कमज़ोर और नीरस है। इससे लगता है कि उनकी जिंदगी में चेतना के विकास को अवरुद्ध करने वाला जिंदगी भर का मैटीरियलिस्टिक दृष्टिकोण, डर, इर्ष्या और ऐसी ही भावनाओं का सीधा परिणाम है। 'ओरा' के अलग-अलग रंग है और ये रंग व्यक्ति के अलग-अलग स्वभाव का संकेत देते हैं।

सफेद रंग की लेअर यह बताती है कि व्यक्ति परमात्मा की इच्छा से चलने वाला है। बैंगनी रंग 'हाइरेस्ट वाइब्रेशन ऑफ ह्यूमन रिप्रिट' का सूचक है। नीला रंग बेहद सेंसेटिव व्यक्ति को दर्शाता है। ऐसे व्यक्ति दयालु और दूसरों की सहायता करने वाले होते हैं। हरा रंग बेहद इंटेलेक्युअल व्यक्ति का प्रतिनिधि है। पीला रंग भी ऐसे ही लोगों का सूचक है लेकिन इसमें हरे रंग की तरह हीलिंग गिफ्ट नहीं होते। व्यक्ति की बेहद महत्वाकांक्षा को लेकर चलती है ओरा की संतरे लेअर। गुलाबी रंग व्यक्ति की प्रेममयी भावनाओं को प्रकट करता है। लाल रंग से पता चलता है कि इस किस्म के व्यक्ति बहुत निडर से होते हैं। इनमें पुलिस वाले, फायरमैन और सैनिक लोग शामिल होते हैं। गेल्ड यानी सुनहरी रंग आत्मात्मिकता का प्रतिक है। वही हरमेज ट्रिस्मेजिस्ट्स ओरा के ग्रे, काले रंग की लेअर को नेगेटिव पर्सनेलिटी वाला मानते हैं।

EFFECT OF BIS INTAKES ON HUMAN GENOME

M.M. BAJAJ & P. AGARWAL

DEPARTMENT OF PHYSICS AND ASTROPHYSICS
UNIVERSITY OF DELHI, DELHI

On the basis of our extensive research work, during the last two decades, the authors have come to the conclusion that several chromosomes and genetic disease are accentuated, facilitated and accelerated by increasing BIS impedances. Best method of Controlling these genetic diseases is to mitigate the BIS load on the human body.

INTRODUCTION

1.1 Human Genome

The complete set of instructions for making an organism is called its genome. It contains the master blueprint for all cellular structures and activities for the lifetime of the cell or organism. Human genome is found in every nucleus of a person's many trillions of cells. It consists of tightly coiled threads of deoxyribonucleic acid (DNA) and associated protein molecules, organized into structures called chromosomes.

Some DNA details : If unwound and tied together, the strands of DNA would stretch more than 5 feet but would be only 50 trillionths of an inch wide.

For each organism, the components of these slender threads encode all the information necessary for building and maintaining life, from simple bacteria to remarkably complex human beings. Understanding how DNA performs this function requires some knowledge of its structure and organization.

1.2 DNA

In humans, as in other higher organisms, a DNA molecule consists of two strands that wrap around each other to resemble a twisted ladder whose sides, made of sugar and phosphate molecules,

are connected by rungs of nitrogen-containing chemicals called bases. **Each strand is a linear arrangement** of repeating similar units called nucleotides, which are each composed of one sugar, one phosphate, and a nitrogenous base. Four different bases are present in DNA: adenine (A), thymine (T), cytosine (C), and guanine (G). The particular order of the bases arranged along the sugar-phosphate backbone is called the DNA sequence; the sequence specifies the exact genetic instructions required to create a particular organism with its own unique traits. The two DNA strands are held together by weak bonds between the bases on each strand, forming base pairs (bp). Genome size is usually stated as the total number of base pairs; the human genome contains roughly 3 billion up.

Each time a cell divides into two daughter cells, its full genome is duplicated ; for humans and other complex organism, this duplication occurs in the nucleus. During cell division the DNA molecule unwinds and the weak bonds between the base pairs break, allowing the strands to separate. Each strand directs the synthesis of a complementary new strand, with free nucleotides matching up with their complementary bases on each of the separated strands. Strict base-pairing rules are adhered to; adenine will pair only with thymine (an A-T pair) and cytosine with guanine (a C-G pair). Each daughter cell receives one old and one new DNA strand. The cells adherence to these base-pairing rules ensures that the new strand is an exact copy of the old one. This minimizes the incidence of errors (mutations) that may greatly affect the resulting organism or its offspring.

1.3 Genes

Each DNA molecule contains many genes-the basic physical and functional units of heredity. A gene is a specific sequence of nucleotide bases whose sequences carry the information required for constructing proteins, which provide the structural components of cells and tissues as well as enzymes for essential biochemical reactions. The human genome is estimated to comprise approximately 80,000100,000 genes human genes very widely in length, often

extending over thousands of bases, but only about 10 per cent of the genome is known to include the protein-coding sequences (exons) of genes. Interspersed with many genes are intron sequences, which have no coding function. The balance of the genome is thought to consist of other noncoding regions (such as control sequences and intergenic regions), whose functions are obscure.

All living organisms are composed largely of proteins; humans can synthesize about 80,000 different kinds. Proteins are large, complex molecules made-up of long chains of subunits called amino acids. Twenty different kinds of amino acids are usually found in proteins.

Within the gene, each specific sequence of three DNA bases (codons) directs the cells' protein synthesizing machinery to add specific amino acids. For example, the base sequence ATG codes for the amino acid methionine. Since three bases code for 1 amino acid, the protien coded by an average-sized gene (3000 bp) will contain 1000 amino acids. The genetic code is thus a series of codons that specify which amino acids are required to make up specific proteins. From genes to proteins (67k GIF). The protein-coding instructions from the genes are transmitted indirectly through messenger ribonucleic acid (mRNA), a transient intermediary molecule similar to a single strand of DNA.

For the information within a gene to be expressed, a complementary RNA strand is produced (a process called transcription) from the DNA template in the nucleus. This mRNA is moved from the nucleus to the cellular cytoplasm, where it serves as the template for protein synthesis. The cells protein-syntesizing machinery then translates the codons into a string of amino acids that will constitute the protein molecule for which it codes. In the laboratory, the mRNA molecule can be isolated and used as a template to synthesize a complementary DNA (cDNA) strand, which can then be used to locate the correspoding genes on a chromosome map.

Chromosomes

The three billion bp in the human genome are organised into 24 distinct, physically separate microscopic units called chromosomes. All genes are arranged linearly along the chromosomes. The nucleus of most human cells contain two sets of chromosomes, one set given by each parent.

Each set has 23 single chromosomes-22 autosomes chromosome and an X or Y sex chromosome. (a normal female will have) an X or Y pair). Chromosomes contain roughly equal parts of protein and DNA. Chromosomal DNA contains an average of 150 million bases. DNA molecules are among the largest molecules now known.

Chromosomes can be seen under a light microscope and, when stained with certain dyes, reveal a pattern of light and dark bands reflecting regional variations in the amounts of A and T vs G and C. Differences in size and banding pattern allow the 24 chromosomes to be distinguished from each other, an analysis called a karyotype.

A few types of major chromosomal abnormalities, including missing or extra copies or gross breaks and rejoining (translocations), can be detected by microscopic examination ; Down's syndrome, in which an individual's cells contain a third copy of chromosome 21, is diagnosed by karyotype analysis. Most changes in DNA, however are too subtle DNA abnormalities (mutations) are responsible for many inherited disease such as cystic fibrosis and sickle cell anemia or may predispose an individual to cancer, major psychiatric illnesses, and other complex disease

2. PHYSICAL NATURE OF BIS LOAD

There are three types of BIS loads:

1. Resistive:

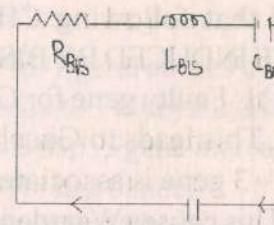
Meat of any type

2. Inductive:

Wine, alcholic drinks and narcotics (substances which make addiction and destroy the human body, tobacco, heroin, morphines etc.)

3. Capacitative:

(prostitution, stealing other money, property, books).



Surces of body current

Diagrammatic representation of the three types of BIS loads, which ruin the human body and destroy the neural networks.

3. BIS LOADS ARE OF FOUR TYPES

Internal BIS load - (meat)

External BIS load - (-leather products)

Violence related business - (Business BIS load)

Direct killing of living creatures - (BIS load due to murder)

$$\begin{aligned}
 Z &= \sum_{i=j}^{i=\infty} \sum_{j=0}^{j=n} Z_i t_j \\
 &= \int_{t=0}^{T=T} \int_{i=1}^{i=\infty} Z_i dt = \int_{t=0}^{t=T} \int_{i=1}^{i=\infty} f_i(x,y,z) dx dy dz
 \end{aligned}$$

4. IMPACT OF BIS LOAD ON HUMAN GENOME

In the past couple of years, experimental biologists have targeted biology's most important and ambitious mapping expedition-the Human Genome Project (HGP). The new map developed through the HGP will enable researchers to pinpoint specific genes on our chromosomes.

5. BIS LOADS ON THE HUMAN GENOME AND GENETIC

DISEASES

On the basis of our own investigations and those of earlier worker. We have found that following CHROMOSOME AND GENETIC DISEASES ARE INDUCED BY BIS MECHANISMS: 5-59

CHROMOSOME\1: Faulty gene for GBA an enzyme which breaks down certain fats. This leads to Gaucher's disease.

CH.2: Faulty PAX – 3 gene is associated with deafness. Each eye is a different colour. This causes Waardenburg syndrome.

CH3: Faulty VHL gene causes abnormal blood vessel formation. This gives von Hippel-Lindau disease.

CH4: Faulty gene causes dementia. This leads to Huntington' disease.

CH5: Faulty gene causes malformed hands and feet. This leads to diastrophic dysplasia.

CH6: Faulty SCA1 gene causes clumsiness through withering of the cerebellum. This leads to Spinocerebellar atrophy.

CH7: Faulty gene causes ultimately fatal build-up of mucus in lungs and pancreas. This leads to Cystic fibrosis.

CH8: Defective gene causes premature ageing. This leads to Werner's syndrome.

CH9: Skin cancer is more likely in people with faulty CDKN 2 tumour repressor gene. This leads to Malignant melanoma.

CH10: Defects in MEN2A gene causes tumours of thyroid and adrenal glands. This leads to Multiple endocrine neoplasia.

CH11: Harvey RAS oncogene predisposes to common cancers. This leads to cancer.

CH12: Defects in PAH gene causes mental retardation by blocking digestion of common amino acid in food. This leads to Phenylketonuria.

CH13: Defects in BRCA 2 gene raises risk of breast cancer.

CH14: Faulty AD3 gene is linked with the development of plaques in the brain. This leads to Alzheimer's disease.

CH15: Abnormal FBN1 gene weakens connective tissue,

potentially rupturing blood vessels. This leads to Marfan's syndrome (position unknown.)

CH16: Faulty PkD1 gene causes cysts to form, which trigger kidney failure. This leads to Polyeystic kidney diseases.

CH17: Mutations in p53 gene increase vulnerability to cancer, BRCA1 predisposes to breast cancer.

CH18: Damage to DPC4 gene accelerates pancreatic cancer.

CH19: Defective gene for apolipoprotein E raises blood cholesterol, predisposing to artery blockage. This leads to Coronary heart diseases.

CH20: Abnormal adenosine deaminase (ADA) gene destroys immunity. Correctable by gene therapy. This leads to Severe combined immunodeficiency.

CH21: Wasting disease linked with defective superoxide dismutase I (SODI) gene. This leads to Lou Gehrig's disease.

CH22: Abnormal DGS gene triggers heart defects and facial changes. This leads to DiGeorge syndrome.

CH23: Anormal DMD gene triggers muscle degeneration. This leads to Duchenne muscular dystrophy.

CH24: Governed by the gene for testis-determining factor. This leads to Testicle development.

6. DISCUSSION

Gene Silencing And 'Junk' DNA

Certain repetitive sequences of DNA interspersed throughout the genome and often dismissed as inconsequential "junk" DNA may play a major role in the regulation of a process specific to placental mammals, whereby thousands of genes on one of the two X chromosomes in females becomes silenced during embryonic development. This process, known as X inactivation, ensures that females don't get double doses of most genes on the X chromosome, compared to males. X inactivation is highly unusual among gene regulation mechanisms in that almost all of the genes along the entire chromosome are silenced. Although much is known about how X

inactivation is initiated and maintained through successive cell divisions, little is understood about how inactivation spreads along the length of the X chromosome.

Almost twenty years ago one researcher suggested the concept of “boosters” along the X chromosome that propagate the inactivation signal. About fifteen years later based on evidence that X chromosomes of mice and humans appeared to be in disproportion rich in repetitive DNA sequences called LINE-1 elements, another scientist proposed these elements as candidate boosters. In an article published in the Proceedings of the National Academy of Sciences, Researchers at Case Western Reserve School of Medicine and University Hospitals of Cleveland present findings that support the idea that LINE-1 elements help to propagate the inactivation signal along the X chromosome.

Based on analysis of data occurring from the human genome project, the authors report that LINE-1 elements comprise about 26% of DNA of X chromosomes and only 13% of the DNA of the other chromosomes. They found the most significant clustering of LINE-1 elements in a region of X chromosome known to be the center of X inactivation.

Further more, segments of the X chromosome harbouring genes that escape inactivation had a relatively low density of LINE-1 elements when compared to segments containing inactivated genes. These and other non random features of LINE-1 element distribution on the X chromosome provide strong evidence that these repetitive sequences may serve as “way stations” that propagate inactivation signal along the X chromosome.

7. CONCLUSION

The human genome gets highly perturbed due to heavy BIS loads. The type of genetic disease which creeps in depends on the internal, external and distance BIS loads. Resistive, inductive and capacitative loads are partial BIS loads, which contributes to the total effective BIS loads responsible for the damage to the human genome.

परिशिष्ट

अलौकिक गणित (प्रस्तुत कृति को समझने के लिए मूलभूत गणित)

गणना की सर्वजग्न्य/प्राथमिक इकाई = परमाणु

खंडं सयल-समर्थं तस्य य अद्वं भण्ठि देसो त्वि ।

अद्वं च पदेसो अविभागी होदि परमाणु ॥ (95)

(तिलोयपपण्णती, पृ. 21)

सब प्रकार से समर्थ (सर्वाशपूर्ण) स्कन्ध, उसके अर्धभागको देश और आधे के आधे भाग को प्रदेश कहते हैं। स्कन्ध के अविभागी (जिसके और विभाग नहीं हो सके ऐसे) अंश को परमाणु कहते हैं।

सत्थेण सु-तिक्रवेण छेत्तुं भेत्तुं च जं किर ण सक्को ।

जल-अणलादिहिं णासं ण एदि सो होदि परमाणु ॥ (96)

जो अत्यन्त तीक्ष्णशरत्र से भी छेदा या भेदा नहीं जा सकता, तथा जल और अन्नि आदि के द्वारा नाश को भी प्राप्त नहीं होता वह परमाणु है।

अंतादि मज्जा हीणां अपदेसं इंदिएहिं ण हि गेज्ज ।

जं दव्वं अविभत्तं तं परमाणु कहंति जिणा ॥(98)

जो द्रव्य अन्त, आदि एवं मध्य से विहिन, प्रदेशों से रहित (अर्थात् एक प्रदेशी हो), इन्द्रियद्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकने वाला और विभाग रहित है, उसे जिन भगवान परमाणु कहते हैं।

उवसन्नासन्न स्कन्ध का लक्षण :-

नाना प्रकार के अनन्तानन्त परमाणु-द्रव्यों से उवसन्नासन्न नाम से प्रसिद्ध एक स्कन्ध उत्पन्न होता है ॥ (102)

सन्नासन्न से अंगुल पर्यन्त के लक्षण :-

उवसन्नासन्न को भी आठ से गुणित करने पर सन्नासन नामका स्कन्ध होता है अर्थात् आठ उवसन्नासन्नों का एक सन्नासन्न नाम का स्कन्ध होता है। आठ से गुणित सन्नासन्नों अर्थात् आठ सन्नासन्नों से एक त्रुटिरेणु और इतने (आठ) ही त्रुटिरेणुओं का एक त्रसरेणु होता है। त्रसरेणु से पूर्व पूर्व स्कन्धों द्वारा आठ-आठ गुणित क्रमशः रथरेणु, उत्तमभोगभूमि का बालाग्र, मध्यम-भोगभूमि का बालाग्र, जघन्य-भोगभूमि का बालाग्र, उत्तमभोगभूमि का बालाग्र, मध्यम-भोगभूमि का बालाग्र, जघन्य-भोगभूमि का बालाग्र, कर्म-भूमि का बालाग्र, लीख जूँ, जौ और अंगुल, ये उत्तरोत्तर स्कन्ध कह गये हैं ॥ (103-106)

अंगुल के भेद एवं उत्सेधांगुल का लक्षण :-

अंगुल तीन प्रकार का है – उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल। ऊपर परिभाषा से सिद्ध किया गया अंगुल उत्सेधांगुल या सूच्यांगुल होता है ॥(107)

प्रमाणांगुल का लक्षण :-

पांच सौ उत्सेधांगुल प्रमाण, अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती भरत के एक अंगुल का नाम ही प्रमाणांगुल है। (108)

आत्मांगुलका लक्षण :-

जिस-जिस काल में भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगूल का नाम आत्मांगूल है॥ (109)

उत्सेधांगूल द्वारा माप करने योग्य वस्तुएँ :-

उत्सेधांगुल से देव, मनुष्य, तिर्यच एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान एवं नगरादिक का प्रमाण जाना जाता है।

प्रमाणांगुल से मापने योग्य पदार्थ :-

द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड (सरोवर), जगती और भरतादिक क्षेत्र का प्रमाण प्रमाणांगुल से ही होता है ॥(111)

आत्मांगूल से मापने योग्य पदार्थ :-

झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शर्या, शक्ट (गाड़ी), हल, मूसल, शक्ति, तोमर, सिंहासन, वाण नालि, अक्ष, चामर, दुन्दुभि, पीठ, छत्र, मनुष्यों के निवास स्थान एवं नगर और उद्यानादिकोंकी संख्या आत्मांगुल से ही समझना चाहिए ॥ (112-113) प्राद से कोश-पर्यन्त की प्रज्ञानाण् :-

छह अंगुलों का पाद, दो पादों की वितस्ति, दो वितस्तियों का हाथ, दो हाथों का रिकू, दो रिकूओं का दण्ड, दण्ड के वरावर अर्थात् चार हाथ प्रमाण ही धनुष, मूसल तथा नाली और दो हजार दण्ड या धनष्ठ का एक कोस होता है ॥ (114-115)

योजना का माप :- चार कोसका एक योजन होता है। उतने ही अर्थात् एक योजन विस्तार वाले गोल गड्ढे का गणितशास्त्र में निपूण पुरुषों को धनफल ले आना चाहिए॥

व्यवहार पत्र्य के रोमों की संख्या निकालने का विधान तथा उनका प्रमाण :-

उत्तम भोग-भूमि में एक दिन से लेकर सात दिन तक के उत्पन्न हुए मेडे के करोड़ों रोमों के अविभागी-खण्ड करके उन खण्डित रोमाण्यों से लगातार उस एक योजन विस्तार वाले प्रथम पल्य (गड्ढे) को पृथ्वी के बराबर अत्यन्त सघन भस्ना चाहिए ॥(119 - 120)

ऊपर जो 19/24 प्रमाण घनफल आया है, उसके दण्ड कर प्रमाणांगल कर

लेना चाहिए। पुनः प्रमाणांगुलों के उत्सेधांगुल करना चाहिए। पुनः जौ, जूँ, लीख, कर्मभूमि के बालाग्र, जघन्य भोग भूमि के बालाग्र मध्यम भोगभूमि के बालाग्र, उत्तम भोगभूमि के बालाग्र, इनकी अपेक्षा प्रत्येक को आठ के घन से गुण करने पर व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या निकल आती है ॥(121-122) यथा -

नोट :- मूल सदृष्टि के 50 का अर्थ 3 शुन्य (000) है। मूल में तीन वार 96, तीन वार 500 और चौबीस वार 8 के अंक आए हैं। हिन्दी अर्थ में तीन वार 500 और इक्कीस वार 8 के अंक रखे गये हैं, तीन वार 96, तीन वार 8 और 9 शुन्य अवशेष रहे। 96000 को आठ से गुणित करने पर $(96000 \times 8) = 768000$ अंगुल प्राप्त होते हैं, जो एक योजन के बराबर हैं। इन अंगुलों के कोस आदि बनाने पर 4 कोस, 2000 धनुष, 4 हाथ और 24 अंगुल होते हैं। अर्थ में तीन वार 4, तीन वार 2000, तीन वार 4 और तीन वार 24 डसी के सचक रखे गये हैं।

विशेषार्थ :- एक योजन के चार कोस, एक कोस के 2000 धनुष, एक धनुष के चार हाथ और एक हाथ के 24 अंगुल होते हैं। एक योजन व्यास वाले गड्ढे का घनफल $19/24$ प्रमाण घन योजन प्राप्त हुआ है, एक प्रमाण योजन के 500 व्यवहार योजन होते हैं। 'घन राशि का गुणाकार या भागहार घनात्मक ही होता है' इस नियम के अनुसार $19/24$ को तीन बार 500 से गुणा किया और इन व्यवहार योजनों के रोम खण्ड बनाने हेतु तीन-तीन बार 4 कोस, 2000 धनुष, 4 हाथ, 24 अंगुल एवं आठ-आठ यव, जूँ आदि के प्रमाण से गुणा किया गया है॥ (121-122)

उपर्युक्त संदृष्टिका गणनफल :-

अन्त के स्थानों में 18 शून्य, दो, नौ, एक, दो, एक, पाँच, नौ, चार, सात, सात, सात, एक, तीन, शून्य, दो, आठ, शून्य, तीन, शून्य, तीन, छह, दो, पाँच, चार, तीन, एक और चार ये क्रम से पल्ल्य रोमके अंक हैं ॥ (123-124)

व्यवहार पल्य का लक्षण :-

सौ-सौ वर्ष में एक-एक रोम खण्ड के निकालने पर जितने समय में वह गङ्गा खाली होता है - उतने काल को व्यवहार-पल्योपम पल्य कहते हैं। यह पल्य उद्घार-पल्य का निमित्त है। (125)

उद्घार पल्ल्य का प्रमाण :-

व्यवहारपत्य की रोम राशि में से प्रत्येक रोम खण्डों के, असंख्यात करोड़ों वर्षों के जितने समय हों उतने खण्ड करके, उनसे दूसरे पल्य को (गड्ढे को) भरकर पुनः एक-एक समय में एक-एक रोम-खण्ड को निकाले। इस प्रकार जितने समय में वह दूसरा पल्य (गड्ढा) खाली होता है उतना काल उद्धार नाम के पल्यका है ॥(126-127)

अद्वार या अद्वापल्य के लक्षण आदि :-

इस उद्धार-पल्य से द्विप और समुद्रों का प्रमाण जाना जाता है। उद्धार-पल्य की रोम-राशि में से प्रत्येक रोम-खण्ड के असंख्यात वर्षों के समय-प्रमाण खण्ड करके तीसरे गड्ढे के भरने पर और पहले के समान एक-एक समय में एक-एक रोम खण्ड को निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा रिक्त होता है, उतने काल को अद्वार पल्योपम कहते हैं। इस अद्वा पल्य से नारकी तिर्यच, मनुष्य और देवों की आयु तथा कर्मों की स्थिति का प्रमाण (जानना चाहिए) ॥ (128-129)

व्यवहार, उद्धार एवं अद्वा सागरोपमों के लक्षण :-

इन दस कोडाकोडी पल्यों का जितना प्रमाण हो उतना पृथक-पृथक एक सागरोपम का प्रमाण होता है। अर्थात् दस कोडाकोडी व्यवहार पल्यों का एक व्यवहार सागरोपम दसकोडाकोडी उद्धार पल्यों का एक उद्धार-सागरोपम और दस-कोडाकोडी अद्वा-पल्यों का एक अद्वार सागरोपम और दस-कोडाकोडी अद्वा-पल्यों का एक अद्वा-सागरोपम होता है ॥(130)

सूच्यंगुल और जगत्‌श्रेणीके लक्षण :-

अद्वा पल्य के जितने अर्धच्छेद हो उतनी जगह पल्य रखकर परस्पर गुणित करने पर सूच्यंगुल प्राप्त होता है। अर्थात् -

सूच्यंगुल=(अद्वापल्य) की घात (अद्वापल्य के अर्धच्छेद) : तथा अद्वपल्य की अर्धच्छेद राशि के असंख्यातवे भाग प्रमाण घनांगुल रखकर उन्हें परस्पर में गुणित करने से जगत्‌श्रेणी प्राप्त होती है। अर्थात् -

जगत्‌श्रेणी = (घनांगुल) की घात (अद्वापल्यके अर्धच्छेद/असंख्यात) ॥(131)

सूच्यंगुल आदि का तथा राजू का लक्षण :-

उपर्युक्त सूच्यंगुल का वर्ग करने पर प्रतरांगुल और जगत्‌श्रेणी का वर्ग करने पर जगत्पत्र होता है। इसी प्रकार सूच्यंगुल का घन करने पर घनांगुल और जगच्छ्रेणी का घन करने पर लोक का प्रमाण होता है। जगश्रेणी के सातवे भाग प्रमाण राजू का प्रमाण कहा जाता है ॥(132)

प्र.अं. 4 ; ज.प्र. = ; घ. अं. = 6 ; घ. लो. = 7 राजू है।

विशेषार्थ :- गाथा 131 और 132 में सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और घनांगुल तथा

जगत्‌श्रेणी, जगत्पत्र और लोक एवं राजू की परिभाषाएँ कही गयी हैं अंकसंदृष्टि में मानलो अद्वापल्य का प्रमाण 16 है। इसके अर्धच्छेद 4 हुए (विवक्षित राशि को जितनी बार आधा करते करते एक का अंक रह जाय उतने, उस राशि के अर्धच्छेद कहलाते हैं। जैसे 16 को चार बार आधा करने पर एक अंक रहता है, अतः 16 के 4 अर्धच्छेद हुए)। अतः चार बार पल्य ($16 \times 16 \times 16 \times 16$) का परस्पर गुणा करने से सूच्यंगुल (65 अर्थात् 65536) प्राप्त हुआ। इस सूच्यंगुल के वर्ग ($42 =$ अर्थात् 65536×65536) को प्रतरांगुल तथा सूच्यंगुल के घन ($65536 \times 65536 \times 65536$) या $(65536)^2 \times 65536 = (65536)^3$ को घनांगुल कहते हैं।

मानलो - अद्वापल्य का प्रमाण 16, घनांगुल का प्रमाण (65536^3) और असंख्यात का प्रमाण 2 है। अतः पल्य (16) के अर्धच्छेद $4 \div 2$ (असंख्यात) = लघ्द 2 आया, इसलिए दो बार घनांगुलों $\{(6536)^3 \times (65536)^3\}$ का परस्पर गुणा करने से जगत्‌श्रेणी प्राप्त होती है। जगत्‌श्रेणी वर्ग को जगप्रतर और जगत्‌श्रेणी घनको लोक कहते हैं। जगत्‌श्रेणी ($65536^4 \times 65536^2$) के सातवे भाग को राजू कहते हैं। यथा जगत्‌श्रेणी = राजू

द्रव्य क्षेत्रादि के प्रमाण (सूत्रात्मक)

(I) क्षेत्र का प्रमाण

द्रव्य के अविभागी अंश = परमाणु

8 जूं = 1 यव (जौ)

अनन्तानन्त परमाणु = 1 अवसन्नासन्न

8 यव = 1 उत्सेधांगुल

8 अवसन्नासन्न = 1 सन्नासन्न

500 उ. अंगुल = 1 प्रमाणअंगुल

8 सन्नासन्न = 1 त्रुट्टेण आत्मांगुल = भारत क्षेत्र के चक्रवती का अंगुल

(व्यवहाराणु) (ति.प. 1/109/13)

8 त्रुट्टेणु = 1 त्रसरेणु (त्रस जीव के पांव से उड़ने वाला अणु) 6 विवक्षित अंगुल = 1 विवक्षित पाद

8 त्रसरेणु = 1 रथरेणु (रथ से उड़ने वाली धूल का अणु) 2 वि. पाद = 1 वि. वितरिति

2 वि. वितरिति = 1 वि. हस्त

8 रथरेणु = उत्तम भोग भूमिज का वालाग्र

2 वि. हस्त = 1 विकिष्टु

8 उ. भो. भू. वा. = मध्यम भो. भू. वा.

2 किष्टु = 1 दंड युग, धनुष, मूसल

8 म. भो. भू. वा. = जघन्य भो. भू. वा.

या नाली, 6' नाडी

8 ज. भो. भू. वा. = कर्म भूमि वालाग्र

8 क. भू. वालाग्र = 1 लिक्षा (लीख)

2000 दंड या, (धनुष) = 1 कोश

8 लीख = 1 जूं

4 कोश = 1 योजन

नोट :- उत्सेधांगुल से मानव योजने या व्यवहार योजन होता है और प्रमाणांगुल

से प्रमाण योजन।

(ति.प./1/131-132); (रा.वा./3/38/7/208/10.23)

500 मानव योजन = 1 प्रमाण योजन (महायोजन या दिव्य योजन) 80 लाख गज = 4545.45 मील

1 योजन = 768000 अंगुल

1 प्रमाण योजन गोल व गहरे = 1 अद्वापल्य

कुण्ड के आश्रय से उत्पन्न

(1 अद्वापल्य या प्रामाण - योजना³)⁶ = 1 सूच्यांगुल

जब कि छे = अद्वापल्य की अद्वृद्धेद राशि या 10g₂ पल्य

1 सूच्यांगुल² = 1 प्रतांगुल

1 सूच्यांगुल³ = 1 घनांगुल

(1 घनांगुल) अद्वापल्य ÷ असं, = जगत् श्रेणी (प्रथम मत)

(असं = असंख्यात) (ध./3/9, 2, 4/34/1)

(1 घनांगुल छे ÷ असं,) = जगत् श्रेणी (द्विं. मत)

छे व असं = दे 0 ऊपर (ध./3/1.24/34/1)

जगत् श्रेणी ÷ 7 = 1 रज्जू (दे 0 राजू)

(जगत् श्रेणी) = 1 जगत् प्रतर

(जगत् श्रेणी) = जगत् घन या घनलोक

ध./9/4, 1, 2/39/4 = (आवली र असं,) आवली ÷ असे,

(आवली = आवली के समयों प्रमाण ÷ आकाश प्रदेश)

(II) द्रव्य क्षेत्रादि के प्रमाणों का निर्देश

(क) संख्या की अपेक्षा द्रव्यप्रमाण निर्देश

(ध. 5/प्र./22)

1. एक = 1

16. निरब्बुद = (10000000)⁹

2. दस = 10

17. अहह = (10000000)¹⁰

3. शत = 100

18. अबव = (10000000)¹¹

4. सहस्र = 1000

19. अटट = (10000000)¹²

5. दस सहस्र = 10000

20. सोगन्धित = (10000000)¹³

6. शत सहस्र = 100000

21. उप्पल = (10000000)¹⁴

7. दस शत सह, = 1000000

22. कुमुद = (10000000)¹⁵

8. कोटि = 10000000

23. पुंडरीक = (10000000)¹⁶

9. पकोटि = (10000000)² 24. पद्म = (10000000)¹⁷

10. कोटिप्पकोटि = (10000000)³ 25. कथान = (10000000)¹⁸

11. नहुत = (10000000)⁴ 26. महाकथान = (10000000)¹⁹

12. निन्हुत = (10000000)⁵ 27. असंख्येय = (10000000)²⁰

13. अखोभिनी = (10000000)⁶ 28. पण्डी = (256)² = 65536

14. विन्दू = (10000000)⁷ 29. वादाल = पण्डी²

15. अब्बुद = (10000000)⁸ 30. एक्टी = वादाल²

(ति.प./4/309-311; (रा. वा./3/38/5/306/17); (त्रि. सा. 28-51))

(1) जघन्य संख्यात = 2

(2) उत्कृष्ट संख्यात = जघन्य परीतासंख्यात - 1

(3) मध्यम संख्यात = (जघन्य + 1) से (उत्कृष्ट - 1) तक

नोट:- आगम में जहाँ संख्यात कहा जाता है वहाँ तीसरा विकल्प समझना चाहिए।

(4) जघन्य परीतासंख्यात = अनवस्थित कुण्डके सर्सों के परिमाण जघन्य परीतासंख्यात है।

(5) उत्कृष्ट परीतासंख्यात = जघन्य युक्तासंख्यात - 1

(6) मध्यम परीतासंख्यात = (जघन्य + 1) से (उत्कृष्ट - 1) उतक

(7) जघन्य युक्तासंख्यात = (क^५)(क^५) (यदि जघन्य परीतासंख्यात = क)

(8) उत्कृष्ट युक्तासंख्यात = जघन्य असंख्यातासंख्यात - 1

(9) मध्यम युक्तासंख्यात = (जघन्य + 1) से (उत्कृष्ट - 1) तक

(10) जघन्य असंख्यातासंख्यात = (जघन्य युक्ता) जघन्य युक्ता

(11) उत्कृष्ट असंख्याता = जघन्य परीतानन्त - 1

(12) मध्यम असंख्याता = (जघन्य + 1) से (उत्कृष्ट - 1) तक

(13) जघन्य परीतानन्त = जघन्य असंख्यातासंख्यात को तीन बार वर्गित संवर्गित करके उसमें द्रव्यों के प्रदेशों आदि रूप से कुछ राशियाँ जोड़ना

(14) उत्कृष्ट परीतानन्त = जघन्य युक्तानन्त - 1

(15) मध्यम परीतानन्त = (जघन्य + 1) से (उत्कृष्ट - 1) तक

(16) जघन्य युक्तानन्त = जघन्य परीतानन्त की दो बार वर्गित संवर्गित राशि

(17) उत्कृष्ट युक्तानन्त = जघन्य अनन्तानन्त - 1

(18) मध्यम युक्तानन्त = (जघन्य + 1) से (उत्कृष्ट - 1) तक

(19) जघन्य अनन्तानन्त = (जघन्य युक्ता) जघन्य युक्ता

(20) उत्कृष्ट अनन्तानन्त = जघन्य अनन्तानन्त को तीन बार वर्गित संवर्गित करके उसमें कुछ राशि में मिलान।

(21) मध्यम अनन्तानन्त = (जघन्य+1) से (उत्कष्ट - 1) तक

काल प्रभाण

- (1) समय = एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश पर मन्दगति से जाने का काल।
(सेकेण्ड का असंख्यतवे भाग)
 - (2) ज, युक्ता, असंख्यात समय = 1 आवली
 - (3-4) संख्यात आवली = $2880/3773$ सेकेण्ड = 1 उच्छ्वास या प्राण
 - (5) 7 उच्छ्वास = $5 \times 185/539$ सेकेण्ड = 1 स्तोक
 - (6) 7 स्तोक = $37 \times 31/77$ सेकेण्ड = 1 लव
 - (7) $38 \frac{1}{2}$ लव = 24 मिनट = 1 नाली (घड़ी)
 - (8) नाली (घड़ी) = 48 मिनट = 1 मुहूर्त
1510 निमेष = 3773 उच्छ्वास (द्रे. मुहूर्त)
मुहूर्त - 1 समय = 1 भिन्न मुहूर्त
(भिन्न मूहूर्त - 1 समय) = अन्तमूहूर्त से (आवली + 1 समय) तक
 - (9) 30 मूहूर्त = 24 घण्टे = 1 अहोरात्रि (दिवस)
 - (10) 15 अहोरात्रि = 1 पक्ष
 - (11) 2 पक्ष = 1 मास
 - (12) 2 मास = 1 ऋतु
 - (13) 3 ऋतु = 1 अयन
 - (14) 2 अअयन = 1 संवत्सर
 - (15) 5 वर्ष = 1 युग
 - (16) 10 व 100 वर्ष = 1 वर्षदशक व 1 वर्षशतक
 - (17) 1000; 10000 = 1 वर्ष सहस्र व 1 वर्ष दश सहस्र
 - (18) 100,000 वर्ष = 1 वर्ष लक्ष

अन्य प्रकार से काल प्रमाण निर्देश

असंख्यात समय = 1 निमेष

15 निमेष = 1 काष्ठा (2 सैकेपड़)

30 काष्ठा = 1 कला (मिनट)

कल अधिक 20 कला (24 मिनट)

(महाभारत की अपेक्षा 15 कला) = 1 घटिका (घड़ी) आगे पर्ववत्

2 घड़ी (महाभारत की अपेक्षा) 3 (कला + 3 काष्ठा) = 1 महर्त्व

एक मिनट = 60 सैकेण्ड

24 सैकेण्ड = 1 पल

60 पल (24 मिनट) = 1 घड़ी शेष प्रवृत्त -

एक मिनट = 540000 प्रति विपलांश

60 प्रति विपलांश = 1 प्रति विपल

60 प्रति विपल = 1 विपल

60 विपल = 1 पल

60 पल = 1 घर्डी

उपमा काल प्रमाण निर्देश

1. पल्य सागर आदि का निर्देश

व्यवहार पल्य के वर्ष = 1 प्रमाण योजना गोल व गहरे गर्त में 1 से 7 दिन तक के उत्तम भौभूमियों के भेड़ के बच्चें के बालों के अग्रभागों का प्रमाण x 100 वर्ष
 $= 1/4\pi \times 4^3 \times 2000^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 2^3 \times 6^3 \times 500^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3$
 $\times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 \times 8^3 = 45$ अक्षर प्रमाण बालग्र $\times 100$ वर्ष अथवा -
4134,5263,0308,2031,7774,9512, 1920000000000000000000000
 $\times 100$ वर्ष व्यवहार पल्य के समय = उपरोक्त प्रमाण वर्ष $\times 2 \times 3 \times 2 \times 2 \times 15 \times 30 \times$
 $2 \times 38 1/2 \times 7 \times 7 \times$ (आवली प्रमाण संख्यात) \times (जघन्य युक्त संख्यात) समय।
उद्धार पल्य के समय = उपरोक्त 45 अक्षर प्रमाण रोम राशी प्रमाण \times असंख्यात करोड़ वर्षों के समय

अद्वा पल्य के समय = उद्वार पल्य पल्य के उपरोक्त समय x असंख्यात वर्षों के समय
व्यवहार उद्वार या अद्वासागर = 10 कोडा कोडी विवक्षित पल्य

10 कोडा कोडी अद्वासागर = 1 अवसर्पिणी काल या 1 उत्सर्पिणी काल

एक अवसर्पिणी या एक उत्सर्पिणी = एक कल्प काल

२ कल्प काल (अव.+उत.) = एक युग

एक उत्सर्पिणी या एक अवसर्पिणी = छ

(3) सषमा - दषमा (4) दषमा - सषमा (5) दषमा (6) दषमा - दषमा।

सषमा सषमा काल = 4 कोडा कोडी अद्वासागर

सषमा काल = 3 कोङ्का कोङ्की अद्वासापरम्

सूर्यमा दृष्टि काल = 2 कोङ्गा कोङ्गी अद्वासाग्रह

दृष्टि सुषमा काल = 1 कोडा कोडी अद्वासागर - 42000 वर्ष

दृष्टमा काल = 21000 वर्ष

दुष्मा दुष्मा काल = 21000 वर्ष

संदर्भ ग्रन्थ - सूची

1. दिग्म्बर जैन ग्रन्थ

- (1) धवला सिद्धान्त ग्रन्थ (अनेक भाग) (2) गोमटसार जीवकाण्ड (3) गोमटसार कर्मकाण्ड (4) तत्त्वार्थवार्तिक (5) वृहत् द्रव्य संग्रह (6) रत्नकरण्डक श्रावकाचार (7) पंचास्तिकाय (8) पंचाघ्यायी

2. श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ

- (1) भगवती सूत्र (अनेक भाग)
- (2) उत्तराध्ययन

3. आचार्य ज्ञकनंदी (प्रस्तुत कृति के लेखक) के ग्रन्थ

- (1) स्वतंत्रता के सूत्र (तत्त्वार्थ सूत्र की समीक्षा)
- (2) विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह की समीक्षा)
- (3) सत्यसाम्यसुखामृतम् (प्रवचनसार की समीक्षा)
- (4) विश्व विज्ञान रहस्य
- (5) विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य
- (6) दसण मूलो धम्मो
- (7) कर्म का दार्शनिक वैज्ञानिक विवेचन

4. अन्यान्य ग्रन्थ

- (1) आधुनिक परमाणु भौतिकी, लेखक-ओटो, आर, फिश
- (2) अर्हत् वचन
- (3) विभिन्न पत्र - पत्रिकायें।
- (4) Effect of bis intakes of human genome
- (5) भारत में विज्ञान की उज्ज्वल परम्परा

श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो मनो यद्वाचो ह वाच स उप्राणस्य प्राणः ।

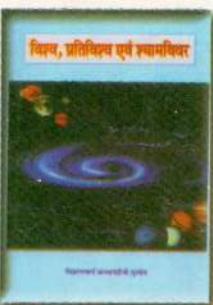
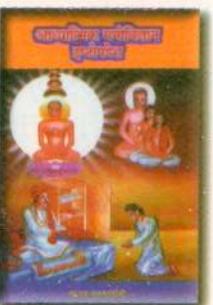
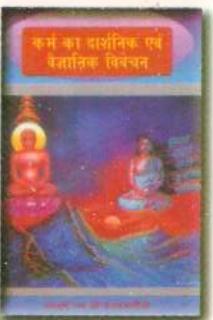
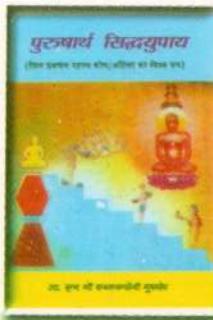
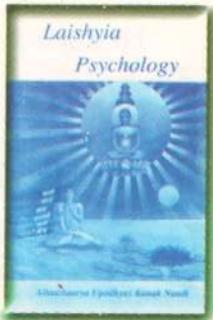
चक्षुषश्च क्षुरातिमुच्यधीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥२॥

जो मन का मन अर्थात् कारण है प्राण का प्राण है, वाक् इन्द्रिय का वाक् है ।

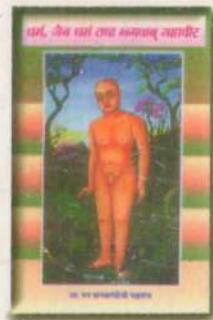
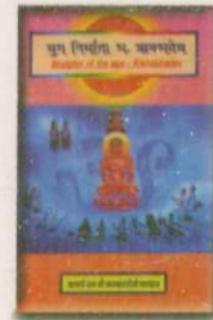
श्रोत्रेन्द्रिय को श्रोत्र है और चक्षु इन्द्रिय का चक्षु है, वह ही इन सब का परमात्मा है ।

ज्ञानीजन जीवन्मुक्त होकर इस लोक से जाने के बाद अमर हो जाते हैं ।

आचार्य कनकनंदी जी द्वारा रवित कुछ ग्रंथ



आवार्य कनकनंदी जी द्वाया रवित कुछ ग्रंथ



लेखक :- वैज्ञानिक धर्मावार्य श्री कनकनन्दी जी



इस कृति का संक्षिप्त वर्णन

जैन तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञान धारा-१) में हम उन परम वैज्ञानिक, गणितीय, सार्वभौम, शाश्वतिक, सर्वजीव हितकारी, सर्वजीव सुखकारी, विश्व कल्याणकारी सत्य-तथ्यों को उजागर कर रहे हैं जो जैन ग्रन्थों में समाहित हैं। जैन ग्रन्थों में वर्णित होने गात्र से इसे संकीर्ण धर्मान्धता तथा अपूर्ण विज्ञान से आवेशित होकर सत्यग्राही, उदारमना, स्व-पर-विश्व कल्याणकारी भावना से युक्त व्यक्तियों के द्वारा त्यजनीय नहीं है परन्तु सादर ग्रहणीय / अनुकरणीय तथा प्रचार-प्रसार के योग्य हैं।

इस कृति में सम्पूर्ण भौतिक ब्रह्मांड, सूर्य, नीहारिका, रसायन, शरीर D.N.A., R.N.A., प्रकाश फोटोन, इलेक्ट्रॉन, से लेकर कवार्क, कर्म आदि के अविभाज्य मूलतत्व स्वरूप परमाणु का सप्रमाण सविस्तार वर्णन है जो कि आधुनिक विज्ञान से भी परे हैं।

इस कृति में जो २३ भौतिक परमाणुओं के समूह स्वरूप (परस्पर अबंधावस्था) वर्णणाओं का वर्णन है ऐसा वर्णन हमें किसी भी देश-विदेश के धर्म-दर्शन या आधुनिक विज्ञान में अभी तक नहीं मिला है।

इस कृति में ब्रह्मांड के सम्पूर्ण सूक्ष्म रोगाणु, जीवाणु, वनस्पति, कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि में जो विभिन्न आकार-प्रकार, बुद्धि-भावना, किया-प्रतिक्रिया, रोग रंग, रूपादि पाये जाते हैं उसके मूलभूत कारण स्वरूप कर्म सिद्धान्त एवं कर्म परमाणु का वर्णन किया गया है। अनेक दर्शन, धर्म में कर्म का वर्णन तो है परन्तु कर्म के भी भौतिक परमाणु होते हैं इसका वर्णन नहीं है। आधुनिक विज्ञान शरीर, रोग, भावना आदि के कारणभूत विभिन्न ग्रन्थियों के स्त्राव से लेकर D.N.A., R.N.A., जीनोम तक तो पहुँच गया है परन्तु कर्म परमाणु तक नहीं पहुँचा है। उपर्युक्त समस्त विषयों का वर्णन इसमें अत्यन्त वैज्ञानिक, गणितीय, आध्यात्मिक एवं मनोविज्ञान की टक्कि से किया गया है।